महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित
श्रीभागवत विवृति

सुबोधिनी

हिन्दी भावानुवाद

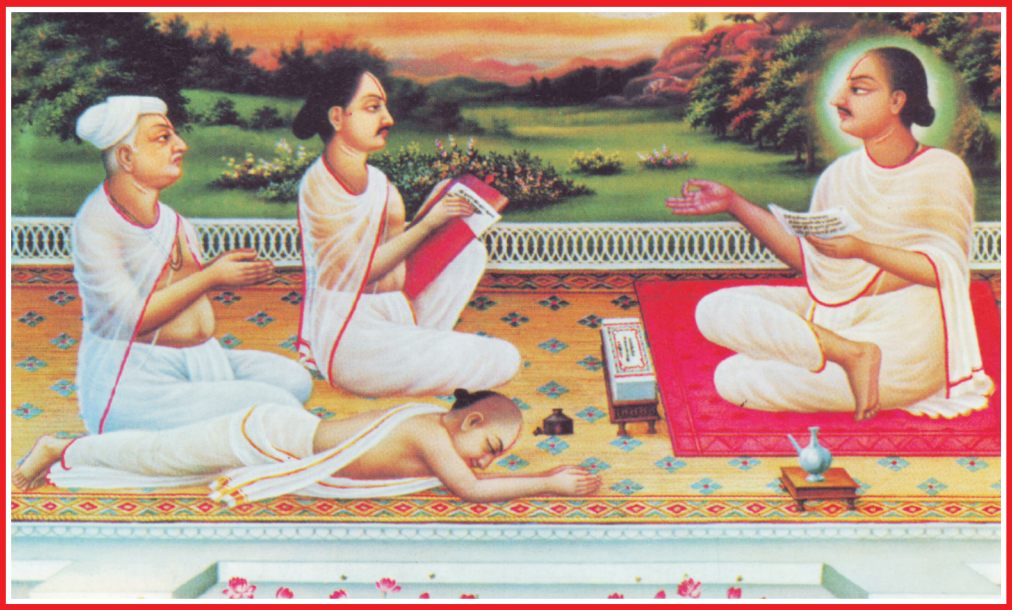

दशमस्कन्ध

राजस साधन–फल प्रकरण

(अध्याय ४७–५५)

खंड १२/क

जय श्रीकृष्ण

श्रीवल्लभाधीशो जयति

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित श्रीभागवत विवृति

'सुबोधिनी'

दशम स्कन्ध उत्तरार्ध

राजस साधन–फल प्रकरण

(अध्याय ४७/५०–६०/६३**)**

हिन्दी भाषानुवाद

खंड १२

अनुवादक:
गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु(पुष्करणा), जोधपुर

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य

...तब व्यासजीने भागवतपुराण प्रकट किया जिसके अभ्यास (श्रवण–स्मरण–कीर्तन) से लोग मुक्त हो सकते हैं, बशर्ते भागवतका आजीविकार्थ उपजीवन न किया जाय. यह श्रीमद्भागवत एक श्रेष्ठ साधन है. अतः प्रयत्नपूर्वक, किसी लौकिक हेतु या दम्भ के बिना, आदरके साथ इसका पठन करना चाहिये. भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कण्ठमृ ही क्यृ न अटक जायें परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं ही करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके अन्य किसी भी उपायसे अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये

(तत्त्वार्थदीपनिबन्ध.२।६७, २४३, २५४).

जो लोग भगवद्गुणगानको अपनी आजीविकाका साधन बनाते हैं ऐसे गुणगानकर्ता गंदे जलको एकत्रित करनेकेलिये जमीनमृ खोदे गये गहरे गढ्ढेकी तरह होते हैं. (जलभेद.५)

मुंह–हाथ–पांव आदि धोनेमृ प्रयुक्त गंदे जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमृ जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे अधम होते हैं दक्षिणा लेकर कथा करनेवाले ...आशय यह है कि गढ्ढेमृ भरे हुवे प्रक्षालनोच्छिष्ट गंदे जलकी तरह इन गानोपजीविअृका भाव सत्पुरुषृकेलिये ग्राह्य नहिं होता ... पौराणिकृके भावृका निरूपण करनेके बाद जो गायकृका निरूपण किया गया है वह यह दिखलानेकेलिए कि (आजीविकार्थ पुराणृका उपयोग करनेवाले) पौराणिक भी ऐसे गायकृके तुल्य नीच ही होते हैं.

(श्रीकल्याणरायविरचित जलभेदविवृति ५).

।। प्रासंगिक ।।

यह ज्ञापित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित श्रीभागवतकी विवृति 'सुबोधिनी'के हिन्दी अनुवादका पुनः प्रकाशन किया जा रहा है.

यह तो सुविदित है कि मूल संस्कृत सुबोधिनीका पुनः प्रकाशन पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीके सम्पादकत्वमॅ श्रीवल्लभविद्यापीठश्रीविट्ठलेश-प्रभुचरण आश्रम ट्रस्ट, कोल्हापुर द्वारा किया गया है.

सुबोधिनीके गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी, गो.वा.श्रीमग्नलाल शास्त्री तथा गो.वा.श्रीव्रजलाल सांकळीया आदि विद्वानॅ द्वारा लिखित गुर्जरभाषानुवादका पुनः प्रकाशन श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी द्वारा किया जा चुका है.

इसी तरह श्रीरामानुजमतानुयायी किन्तु सुबोधिनीके परम प्रेमी श्रीटी. रामनन्ने सुबोधिनीका अंग्रेजी अनुवाद करके उसे सद्गुरु पब्लिकेशन्स, दिल्ली द्वारा मूल संस्कृत सहित प्रसिद्ध करवाया है, जो २४ खंडॅमॅ उपलब्ध होता है. यह अंग्रेजी अनुवाद श्रीरामन्ने श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल, जोधपुर द्वारा प्रकाशित, सम्प्रति अनुपलब्ध, सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादका ही किया है. वे लिखते हैं:

> "I owe a deep debt of gratitude to Sri Subodhini Parakashan Mandal (Jodhpur). My traslation is, to a very large extent, based on this book and I am, indeed, very grateful for this Mandal".

सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादका प्रकाशन ''श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल''(जोधपुर) नामकी संस्थाको स्थापित करके उसके द्वारा गो.वा. श्रीनन्दलालजी मानधना,जोधपुर ने करवाया था. इनको इस भगीरथ कार्यमॅ गो.वा.श्रीरामचन्द्र(नन्ददास) वर्मा का साथ मिला. इन दोनॅ महानुभावॅकी निष्ठा प्रेरणा उत्साह और समर्पण से पुष्टिमार्गके अनेक विद्वानॅने मिल-जुलकर सुबोधिनीका अनुवाद तैयार किया. इनमॅ उल्लेखनीय हैं:

गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु (जोधपुर)

दशमस्कन्धके नब्बे अध्यायोमॅसे चोहत्तर अध्याय;

तृतीय स्कन्धके १ से २१ अध्याय.

गो.वा.श्रीआनन्दीलालजी शास्त्री (श्रीनाथद्वारा)

प्रथम स्कन्धके १ से ९ अध्याय, दशमस्कन्धका चौथा अध्याय.

गो.वा.श्रीनारायणप्रसाद व्यास(कोटा)

प्रथमस्कन्धके १० से १९ अध्याय.

गो.वा.पं.गोरधनजी शास्त्री(कोटा)

दशमस्कन्धके चौदह अध्याय,

गो.वा.श्रीनारायणजी त्रिपाठी(नाथद्वारा)

द्वितीय स्कन्धके १ से ४ अध्याय. तृतीय स्कन्धके २२ से ३३ अध्याय .

गो.वा.श्रीरमानाथ शास्त्री(कांकरोली)

द्वितीय स्कन्धके ५ से १० अध्याय.

गो.वा.श्रीसबलकिशोर चतुर्वेदी (मथुरा)

दशमस्कन्धका तीसरा अध्याय.

इस अनुवादके संशोधन तथा सम्पादन कार्यमॄ पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (किशनगढ–पार्ला), गो.वा.श्रीनारायणजी त्रिपाठी (श्रीनाथद्वारा) तथा गो.वा.श्रीरणछोड कलाधर भट्ट(मुम्बई) का भी योगदान रहा है. पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (किशनगढ–पार्ला) तो ''श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल, जोधपुर'' के संरक्षक भी हैं.

इस श्रीभागवत–सुबोधिनीके हिन्दी अनुवादके पुनःप्रकाशनका एकमेव उद्देश्य यही है कि श्रीवल्लभवाङ्मय कभी भी किसी भी जिज्ञासुकेलिए अलभ्य न रहे. हमॄ विश्वास है कि इस पुनःप्रकाशनसे सुबोधिनीके अध्येताओंको अवश्य लाभ होगा.

अन्तमॄ सुबोधिनीके हिन्दी भाषानुवादके पूर्व प्रकाशक, अनुवादक, संशोधक, सम्पादक, द्रव्यसहायक आदि सभीके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं तथा इस कार्यमॄ निःस्वार्थ भावसे सहयोग करनेवाले सभी वैष्णवोंका भी सादर स्मरण करते हैं.

सुबोधिनी स्वाध्याय मंडल

क्या आप पुष्टिमार्गी हैं?

एक बार श्रीवल्लभाचार्यके ये आदेश पढ़ृ.

सोचृ, क्या आप श्रीवल्लभके मार्ग पर चल रहे हैं?

परब्रह्म श्रीकृष्णको ही अपना आश्रय-रक्षक जानृ. मन-वचन-कर्मसे अन्याश्रय कदापि न करृ.

भगवानने पुष्टिजीवृको अपनी स्वरूपसेवाकेलिये भूतल पर प्रकट किया है. कृष्णसेवा ही पुष्टिजीवका स्वधर्म है. अतः कृष्णसेवाको जो स्वधर्म समझता है वही पुष्टिजीव है और वही पुष्टमार्गमृ प्रवेशके योग्य है.

भगवत् शास्त्रको अच्छी तरहसे समझकर, आत्मनिवेदित होकर अपने तन-धनसे अपने घरमृ श्रीकृष्णकी सेवा करृ.

घरमृ बिराजते ठाकुरजीको ही अपना सर्वस्व समझृ जो खास आप ही के उद्धारार्थ कृपा करके आपके घर पधारे हैं. उनको छोडकर अन्य ठाकुरजीके दर्शन-सेवा केलिये भटकना अपने सेव्यप्रभुका तिरस्कार है.

अपनी सभी वस्तु-व्यक्ति-व्यवहारका समर्पण अपने घरमृ बिराजते ठाकुरजीकी सेवामृ ही करृ. वे ही उनके सच्चे स्वामी हैं.

अपने ठाकुरजीको सर्वस्व समर्पित करके उस समर्पित महाप्रसादसे ही खान-पान-दान आदि सभी लौकिक-शास्त्रीय कार्य करृ. असमर्पित पदार्थके उपयोगका सर्वथा त्याग करृ.

हवेली-मन्दिरृमृ भृट-सामग्री देकर कराये जाते सेवा-मनोरथ पुष्टिसिद्धान्तके अनुसार सेवा-भक्ति है ही नहीं; वो न केवल सेवा-भक्तिके नामपर पाखंड है अपितु परम पवित्र भगवत्सेवाको धंधा बनानेवाले दुष्टृको पोषित करना है.

भगवत्सेवा-मनोरथ-कीर्तनके निमित्त भृट-सामग्री मांगना-स्वीकारना उनको व्यापार-धंधा बनाना है. ऐसा पाप करनेवालेका नर्कमृ पात होता है.

अतः भगवत्सेवा–मनोरथ–कीर्तनके निमित्त किसीको कुछ भी न दॄ.

अनजानेमॄ भी यदि कोई अवैष्णव सेव्य ठाकुरजीका दर्शन कर लेता है तो हमारी एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. ऐसा हो जाने पर श्रीठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराकर शुद्ध करना चाहिये.

भगवत्सेवा अपने ही घरमॄ करॄ. सार्वजनिक हवेली–मन्दिरमॄ सेवा–मनोरथ करना पुष्टिसिद्धान्तके अत्यन्त विरुद्ध है.

दर्शनको कभी भक्ति न समझें. दर्शनका आग्रह उसीका रखॄ जो कृपा करके आपके घरमॄ आपकेलिये आपके माथेपर बिराज रहे हैं, जिनकी सेवा आप स्वयं कर रहे हैं.

मंदिर–हवेलियॊमॄ दिया जाता या वहांसे खरीदा जाता प्रसाद–पातल महापातकी देवद्रव्य होता है. ऐसा प्रसाद खानेवाला नर्कमॄ ही जाता है.

प्रसादका नहीं किन्तु घरके ठाकुरजीने जो अङ्गीकार किया है उस <u>समर्पित महाप्रसादको</u> लेनेका आग्रह रखॄ.

भगवत्सेवाकी ही तरह भागवतका पाठ भी स्वयं ही करें. भक्तिभावकी वृद्धिके अलावा दूसरे किसी भी हेतुसे भागवतका पाठ न करें.

प्राण निकल जायॄ तो भले ही निकल जायॄ परन्तु दक्षिणा लेकर भागवतकी कथा–कीर्तन कभी भी न करॄ.

दक्षिणा लेकर कथा–कीर्तन करनेवालॊके मुखसे कथा–कीर्तन सुनना गटरका पानी पीनेके समान हीन कृत्य है. व्यावसायिक कथावक्ताओके संगको दुष्टसंग समझकर उनका त्याग करो.

।। अनुक्रमणिका ।।

राजस साधन–फलरूप उपप्रकरणकी मीमांसा
ले.:पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी(किशनगढ–पार्ला) १
भागवतार्थ निबन्ध दशमस्कन्धान्तर्गत राजस साधन–फल प्रकरण १९
श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रस्तोत्र (राजस साधन–फल प्रकरणके नाम) ४५

दशम स्कन्ध

(राजस साधन प्रकरण)

अध्याय ४७/५०.जरासन्धसे युद्ध और द्वारकापुरीका निर्माण १
अध्याय ४८/५१.कालयवनका भस्म होना तथा मुचुकुन्दकी कथा. ५०
अध्याय ४९/५२.द्वारका गमन, श्रीबलरामजीका विवाह तथा रुक्मिणीजीका हरण. १००
अध्याय ५०/५३.रुक्मिणीजीका हरण. १३४
अध्याय ५१/५४.शिशुपालके साथी राजाओंकी और रुक्मीकी हार तथा श्रीकृष्ण–रुक्मिणी विवाह. १६९
अध्याय ५२/५५.प्रद्युम्नका जन्म और शम्बासुरका वध. २११
अध्याय ५३/५६.स्यमन्तक मणिकी कथा, जाम्बवती और सत्यभामा के साथ श्रीकृष्णका विवाह. २३७

(राजस फल प्रकरण)

अध्याय ५४/५७.स्यमन्तकमणि हरण, शतधन्वाका उद्धार और अक्रूरजीको फिरसे द्वारका बुलाना. २७१
अध्याय ५५/५८.भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य विवाहोंकी कथा. ३०१
अध्याय ५६/५९.भौमासुरका उद्धार और सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंके साथ भगवान्का विवाह. ३४०
अध्याय ५७/६०.श्रीकृष्ण–रुक्मिणी संवाद ३७५

अध्याय ५८/६१.भगवान्‌की सन्ततिका वर्णन तथा रुक्मीका
मारा जाना. ४३४
अध्याय ५९/६२.ऊषा–अनिरुद्ध मिलन. ४५५
अध्याय ६०/६३.भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका युद्ध ४७३

सुबोधिनीके प्रधान अनुवादक

शास्त्री श्रीफतहचंदजी वासु

आपका जन्म फाल्गुन कृष्ण ९ संवत् १९४६ को अपने मातामहके गृहमृ कराची(सिन्ध)मृ हुआ. पुष्करणा जातिके वासु(ताप्याणी) वंशमृ उत्पन्न पं.वल्लभदासजी आपके पिता थे. आपके पूर्वज 'टंडो अल्हयार' हैद्राबाद सिन्धमृ निवास करते थे. आपके माता-पिता पुष्टिमार्गके अनन्य श्रद्धालु थे अतः बचपनमृ ही आपका पालन-पोषण उसी आचार-विचारमृ हुआ. पं.श्रीगिरिधरदास एवं

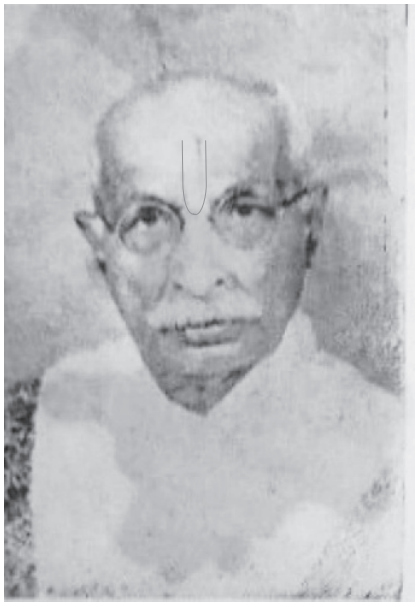

पं.श्रीमुलीधरदास शास्त्रीजीसे आपने व्याकरण, साहित्य, तर्कशास्त्र, वेदान्त तथा मीमांसा की शिक्षा प्राप्त की. आपकी प्रतिभासे प्रभावित होकर पं.मुरलीधर शास्त्रीने म्युनिसिपल संस्कृत विद्यालयमृ अपने अन्तर्गत आपको अध्यापक नियुक्त किया. वहां पर लगभग १५ वर्ष तक आपने कार्य करते हुए प्रधानाचार्य पदको भी सुशोभित किया. आपसे शिक्षा ग्रहण कर अनेक छात्राृने शास्त्री व आचार्य तक की उपाधियां भी प्राप्त की. भारत विभाजनके पश्चात् जोधपुरमृ पुष्कर्णा ज्ञाति द्वारा संचालित कन्या पाठशालामृ १४ वर्षो तक आप प्राधानाध्यापक के ही रूपमृ कार्य करते रहे.

आपके सम्पूर्ण जीवनका ध्येय धार्मिक प्रवचन देना तथा सनातन धर्म तथा पुष्टिमार्ग का प्रचार करना ही रहा है. आपके सनातन धर्म सम्बन्धी लेखाृसे प्रभावित होकर 'पण्डित' पत्रमृ आपको विद्याभूषणकी उपाधिसे अलंकृत किया. आप 'पुष्करणा धर्म प्रचार मण्डल, जोधपुर' के अध्यक्ष भी रहे जिसके द्वारा धार्मिक पुस्तकृ प्रकाशित होती थी एवं उनका निःशुल्क वितरण किया जाता था. आपने 'धर्म दिवाकर' नामसे एक पत्रका भी संचालन किया था.

पूज्य गोस्वामि १०८श्रीअनिरुद्धलालजी महाराज, नडियाद की कृपासे सेवक बनकर आपने सम्पूर्ण सिन्ध प्रदेशमृ पुष्टिमार्गका प्रचार-प्रसार किया. समय-समय पर महान् उत्सवृाके आयोजन भी किये. सिन्धी भाषा समाजमृ पुष्टिमार्गके प्रचार हेतु आपने 'श्रीवल्लभाचार्यजीका चरित्र तथा सिद्धान्त' नामक पुस्तकका लेखन सिन्धी भाषामृ कर उसे प्रकाशित करवाया.

सन् १९६१मृ अवकाश प्राप्त श्रीफतहचंदजी जोधपुरमृ ही श्रीनन्ददास (रामचन्द्र)से मिले और कहने लगे कि श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्यचरणकी मैने दीक्षा प्राप्त की है. इसलिए मेरे ऊपर आपश्रीका ऋण है. परन्तु अभी तक मैं स्वमार्गकी कुछ भी सेवा नही कर सका हूं, अतः कोई साहित्यिक सेवा हो तो मैं करना चाहता हूं. इस तरह श्रीमहाप्रभुजीकी कृपासे 'श्रीसुबोधिनी प्रकाशन मंडल' नामकी संस्थाका कार्य प्रारम्भ हुआ. आपने श्रीसुबोधिनी टीकाके अनुवादका कार्य लगनके साथ किया. दशम स्कन्धके ७२ अध्याय, एकादश स्कन्धके ४ अध्याय, तृतीय स्कन्धके २४ अध्याय का तथा भागवतार्थ प्रकरणके दशम स्कन्धका अनुवाद आपने किया. शिक्षापत्रका अनुवाद इन्दौरमृ खड़ी बोलीमृ किया है तथा तत्त्वार्थदीपनिबन्धके शास्त्रार्थ प्रकरणकी 'मनोरमा' टीका भी लिखी है. तदुपरान्त वेदान्त दीपिका, प्रभुविज्ञप्ति शतक आदि ग्रन्थ हिन्दीमृ अनुदित किये.

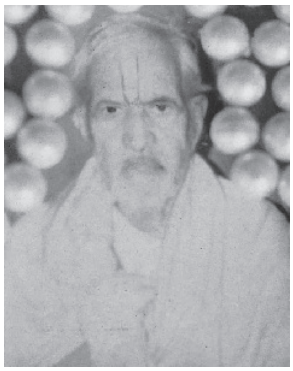

८५ वर्षकी वयमृ आपने नश्वर देहका त्याग कर गोलोक गमन किया.

।। श्रीकृष्णाय नमः ।।
।। श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।।

राजस साधन–फल प्रकरणद्वयी

(भूमिका)

पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी

(किशनगढ–पार्ला)

माहात्म्य–बोध– परिपुष्ट–रति–स्वरूप–
श्रीकृष्ण–भक्ति–सरणी–तरणी: किलायं ।
मोहान्धकार– कलि–कल्मष–वारको वै
श्रीवल्लभो विजयते जगदेकबन्धुः ।।

(उपक्रम)

महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणके अनुसार श्रीमद्भागवतपुराण परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णकी सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वन्तर ईशानुकथा निरोध मुक्ति और आश्रय रूपी दशविध लीलाओंके गानार्थ भगवज्ज्ञानावतार महर्षि वेदव्यासद्वारा प्रकट हुवा है.

इसके दशमस्कन्धमें निजभक्तोंके बीच प्रकट होनेवाले भगवान्के भूतलपर अवतीर्ण ऐसे स्वरूपसौष्ठव एवं ऐसे लीलाविहार का निरूपण है कि जिन लीलाविहारोंमें भगवान् अपनी सर्वज्ञ होनेके स्वरूपको भक्तोंके भक्तिमय मनोरथोंकी एकाग्र अभिज्ञतामें परिसीमित बना लेते हैं. अपनी निरंकुश स्वाधीनताको भी अपनी भक्ताधीनताके कृपांकुशसे परिचालित करते हैं. इसी तरह शुद्धाद्वैतमयी ब्राह्मिकी आत्मरतिरूपा निजानन्दतुष्टिको भी भजनानन्द–प्रदानकी तुष्टिमें ही नितान्त निरुद्ध कर लेते हैं!

अंशी अपने–आपको जब अपने अंशोंमें निरुद्ध कर लेता है तो यह स्वाभाविक ही है कि अंशोंमें भी अंशीके गुणधर्म झलकने लग जाते हैं और इसी तरह अंशीमें अंशोंके भी ! अतएव क्षुद्र लौकिक बाह्य विषयोंकी ओर छलकती फेनोपम अंशोंकी आसक्ति उपशमितहो कर अंशीकी मूलभूत अलौकिक आत्मरतिके रूपमें प्रत्यङ्मुखी बनने लगती है. अंशोंमें आविद्यक अहन्ता–ममतावश उभरनेवाले पति पुत्र सखा बन्धु प्रियतम स्वामी सदृश लौकिक

आसक्तिवाले भाव भी इसी तरह अंशीमृ भी निजभक्तजनोचित रतिके रूपमृ विश्वतोमुख होने लग जाते हैं.

अंशृ और अंशी के बीच विविध रतिभावृका इस प्रकार प्रकट हो पाना, अंशृ और अंशी के इतरेतरमृ निरुद्ध हो जानेकी प्रक्रियाको सांगोपांग सफल बना देता है.

अतएव भगवान्का निजभक्तृके बीच लीलाविहारार्थ प्रकट होना साधननिरोध माना गया है तो भगवान्के उन लीलाविहारृमृ अपनी लौकिक विषयृमृ रही आसक्तिको भूल कर अंशृका निरुद्ध हो पाना निरोधस्कन्धमृ प्रतिपादनीय लीलामृ फलनिरोध माना गया है.

भूतलपर प्रकट होनेवाले भक्त तो प्रपञ्चकी प्राकृत मर्यादाके अनुरूप बहुधा तामस राजस या सात्त्विक स्वभाववाले ही होते हैं. अतएव भक्तृकी लौकिक विषयृमृ रही आसक्तिको अपनेमृ निरुद्ध कर लेनेको अवर्तीण होनेवाले भगवान्के स्वरूपसौष्ठव एवं लीलाविहार प्रथमतया तो भक्तृके स्वभावानुरूप ही होते हैं. अन्ततः, परन्तु, वे भक्तृको भगवान्के दिव्य स्वभावके अनुरूप ढाल देनेमृ पूर्णतया सफल हो ही जाते हैं.

सृष्टयुपादानरूपा त्रिगुणात्मिका प्रकृति, प्राकृत प्रपंच तथा उसके रूपरसगन्धादि विषयृमृ आसक्त जीवात्माओृके सात्त्विक राजस या तामस भाव एकमेवाद्वितीय ब्रहमके ही अनेकभावापन्न होनेके सत्यसंकल्प और सर्वभवन-सामर्थ्य के वश प्रकट होते हैं, यह ''**ये चैव सात्त्विकाः भावा राजसाः तामसाः च ये मत्तएव इति तान् विद्धि नतु अहं तेषु ते मयि**'' (भग.गीता.७।१२) इस गीताके वचनके आधारपर सिद्ध होता है. फिरभी भगवान् अपने मूल स्वरूपमृ प्राकृत गुणधर्मोवाले मानृ नहीं जाते; क्यृकि, सृष्टिके घटक या नियामक तत्त्व काल कर्म स्वभाव पुरुष या प्रकृति आदि सभी एकमात्र भगवान् के ही विविध अवान्तर रूप माने गये हैं.

भगवद्गीताके चौदहवृ अध्यायमृ भी इन सात्त्विक राजस या तामस गुणृकी त्रयीके सूक्ष्म अन्तरका प्रतिपादन भगवानूने किया है. इसके भलीभांति बोधको सृष्टिके सर्गके समय जन्मग्रहणके बन्धन और प्रलयके समय नाशकी व्यथा से मुक्ति प्रदान करनेवाला दरसाया गया है. इसे भगवान् निजसाधर्म्यरूपा परा सिद्धिके रूपमृ बिरदाते हुवे : ''**ज्ञानानां ज्ञानम् उत्तमम्**'' (वहीं अध्यायारम्भमृ) कहते हैं.)

भगवान्ने इन तीन गुणोंके प्रकट होनेकी कारणप्रक्रिया भी पहले यहां समझायी है कि कैसे त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके प्रथम विकाररूप गर्भोपम महत् तत्त्वमें अपने चिदंश बीजोंके गर्भाधान द्वारा सृष्टिके अन्तर्गत सभी योनियोंमें जीवमूर्तियां प्रकट होती हैं. अग्नि और अयोगोलक जैसे औपाधिकतया इतरेतर रूप बन जाते हैं, वैसी ही प्रक्रिया यहां भी प्रस्तुत की गयी है. अधिक तपाये जानेपर जैसे लोहेका गोला स्वयं आग जैसा लाल बन जाता है और आग भी खुद लोहेके गोलेकी तरह गोलाकार इसी तरह प्रकृतिके उपादान कारण होनेके कारण प्रथम विकाररूप महत् तत्त्वमें अनुस्यूत होनेवाली त्रिगुणात्मकता त्रिगुणातीत चिदंशोंमें तथा चिदंशोंका चैतन्यगुण अचेतन महत् तत्त्वमें झलकने लग जाता है.

इस तरह तीन गुणोंके औपाधिक प्रादुर्भावकी प्रक्रियाके प्रतिपादनके बाद भगवान् इन तीनों गुणोंके एकैकशः स्वभाव और प्रभाव का भी निरूपण करते हैं. यथा सत्त्वगुण स्वस्थ निर्मल प्रकाशरूप होनेके कारण ज्ञान और सुख के साथ जीवको बांधनेवाला होता है. रजोगुण वस्तुके अस्वस्थ संगसे उत्पन्न होनेवाली तृष्णाके वश प्रादुर्भूत होनेवाला रागरूप होता है. अतएव कर्मो के साथ जीवको बांधनेवाला बन जाता है. इसी तरह अज्ञानवश प्रकट होनेवाला तमोगुण सभी देहधारियोंके भीतर मोह जगानेवाला होनेके कारण प्रमाद आलस्य और निद्रा जैसी अवस्थाओंमें जीवको बांध देनेवाला होता है; अतएव श्रीभागवतके "**अति आपूतं निशि शयानम् अतिश्रमेण लोके विकुण्ठे उपनेष्यति गोकुलं स्वम्**" (भाग.पुरा. २।७।३१) वचनमें व्रजभक्तोंको आध्यात्मिक साधनाओंकी उपेक्षा करनेवाले लौकिक व्यापारोंमें केवल व्याप्त प्रमादी जनोंकी तरह निरूपित किया गया है. इसे भगवानकी तामस भक्तोंमें निरुद्ध होनेकी लीलाके रूपमें दरसाना अभिप्रेत है. सत्त्वगुणके हमारे भीतर बढ़ने पर देहके सभी द्वारोंमें प्रकाश उत्पन्न होता है. रजोगुणके बढ़ने पर लोभ और उसकी पूर्तिके हेतु प्रवृत्त्यारंभ अर्थात् कर्मोंका अनुपशम बढ़ने लगता है. तमोगुणके बढ़नेपर अप्रकाश और अप्रवृत्ति के अनुरूप प्रमाद–मोह बढ़ने लगते हैं.

क्योंकि क्रियाका अंश जीवात्माओंमें ब्रह्मके सद्रूप जड़ महत् तत्त्वकी ओरसे आता है और चेतनाका अंश ब्रह्मके चिद्रूप आत्मतत्त्वकी ओरसे आता है. अतः क्रियाके वश जीवात्माके भीतर कर्ता होनेका भाव पनपता है तो चेतनाके वश जीवात्माके भीतर द्रष्टा होनेका भाव पनपता माना गया है. अपने कर्तृत्वको,

परन्तु, प्राकृतगुणमूलक मान कर तथा द्रष्टृत्वको अप्राकृत पुरुषचैतन्यमूलक मान कर जो जीव कर्तृभाव और द्रष्टृभावके अस्वाभाविक अहंकारसे मुक्त हो पाता हैं, वह भगवद्भाव अर्थात् भगवान्‌की तरह जागतिक क्रिया–कलापॉमृ लीलोपयोगी साक्षिभावको प्राप्त कर पाता है.

अतएव इन तीन गुणॉके प्रकट होनेकी सिद्धान्ताभिमत प्रक्रिया महाप्रभुने यॉ समझायी है :

> **''यथा ऊर्णनाभिः सृष्टयर्थम् एकाम् ऊर्णाम् उद्वमते तथा भगवानपि त्रिविधसृष्ट्यर्थं त्रिगुणान् उद्वमते...सद्रूपेण निर्गतं 'सत्त्वम्' इति उच्यते. केवल चिद्रूपेण निर्गतं क्रियाशक्ति–प्रधानत्वात् सदानन्दाभावात् च 'रजः' इति उच्यते. आनन्दांशात् च तमः ते भगवद्रूपाएव भगवता सृष्टाः नच ते पूर्व स्थिताः तथा सति भगवदात्मकाः ते न भवेयुः''**. (सुबो.२।५।१९).

अतएव सच्चिदानन्दरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान्‌के सर्वोपादानरूप होनेसे सत्ता चेतना या आनन्द उन उन अंशॉमृ अंशात्मना अनुस्यूत रहते हैं. सृष्टिके अवान्तर उपादान तत्त्व और अवान्तर नियामक तत्त्वॉके अन्तर्वर्ति नियामक होनेके कारण भगवानकी नियामकता भी अंशात्मना सारे नाम–रूप– कर्मोंमृ अनुस्यूत रहती है. सभीके लिये आश्रयणीय एवं भजनीय होनेसे भगवान्‌के सनातन अकृत्रिम ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान अथवा वैराग्य आदि दिव्य गुणधर्म भी उन उन जीवॉमृ अंशात्मना अनुस्यूत हो पाते हैं.

सृष्ट्यर्थ परिगृहीत इन अवान्तररूपॉके गुण धर्म या रूप भी, इन तत्त्वॉके भगवान्मृ ही अवस्थित होनेके कारण, भगवान्मृ भी परम्परया अवस्थित तो अवश्य ही प्रतीत होते हैं; परन्तु, भगवान्‌के मूलस्वरूपमृ साक्षात् अवस्थित नहीं होते. इसी अर्थमृ प्राकृत गुणधर्मोसे रहित होनेके कारण अपरिमित दिव्य गुणधर्मोवाले स्वयं भगवान्‌को 'निर्गुण' कहा जाता है. अपवादरूपेण, अतएव, कुछ सर्वथा भगवद्भावनिष्ठ भक्त भी भगवान्‌की ही तरह निर्गुण भी हो ही सकते हैं. यह श्रीभागवतके ''**कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं, रजो वैकल्पिकं मतं, प्राकृतं तामसं ज्ञानं, मन्निष्टं निर्गुणं स्मृतम्**'' (भाग.पुरा.११।२५।२४) वचनके आधारपर प्रमाणित होता है. भगवद्गीतामृ अर्जुनके ''**कैः लिंगैः त्रीन् गुणान् एतान् अतीतो भवति... किम् आचारः कथञ्च एतान् त्रीन् गुणान् अतिवर्तते**'' (भग.गीता.१४।२१) ऐसे तीन गुणॉके

दायरे से बाहर निकलनेके लिंग आचरण और प्रकार के बारेमॅ प्रश्न करनेपर भगवान्ने प्रश्नके अनुरूप पहले तो सात्त्विक प्रकाश, राजस प्रवृत्ति तथा, तामस मोह रूपी गुणधर्मकि अपने भीतर विद्यमान होनेपर अद्वेष तथा निवृत्त हो जानेपर उनके बारेमॅ आकांक्षाका अभाव होना लिंगके रूपमॅ दिखलाया लगता है. इन प्राकृत गुणॉसे विचलित हुवे बिना उनका उदासीन भावसे स्वीकार, रजोधूलि या स्वर्णादिधन के बारेमॅ समदृष्टि रखनी, सुख-दुःख दोनॉमॅ समानरूपेण स्वस्थ रह पाना, प्रिय-अप्रिय दोनॉको तुल्यतया देख पानेका धैर्य, अपनी निन्दा-स्तुति दोनॉको तुल्यतया सुन पानेका धैर्य, मान-अपमान या शत्रु-मित्र दोनॉको तुल्यतया निहार पानेका विवेक, इस तरहकी बाह्याभ्यन्तर वृत्ति निभा पानेवाला जीव, तीन गुणॉके बन्धनॉको निजी साधनबल द्वारा तोड़ने समर्थ हो पाता है, ऐसी बात "**सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते**" (भग.गीता.१४।२५) बतायी है.

अन्तमॅ, परन्तु, भगवान्की कृपाके वश मिलनेवाली अव्यभिचारिणी भक्तिद्वारा भी तीन गुणॉके बन्धनॉसे जीवात्मा उभर पाती है, ऐसा भी उपदेश "**मां च यो अव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते स गुणान् समतीत्य एतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते**" (भग.गीता.१४।२६) इस कारिकामॅ दिया है.

यहां यह उल्लेखनीय हो जाता है कि साधनबलसे केवल गुणातीत होना माना गया; जबकि, भक्तिबलसे समतीत हो कर ब्रह्मभूय होना और अधिक स्वीकारा गया है. ब्रह्म तो स्वयं गुणातीत सर्वगुणाधार तथा भूमा होनेपर भी भक्तॉके लीलाभावॉके अनुरूप गुणानुसरणकी लीला प्रकट करता है. वह अपरिच्छिन्नानन्दात्मक ही भक्तॉके लिये अनिर्वचनीय परमानन्दस्वरूप बन जाता है. ऐसे लीलाविशिष्ट ब्रह्मके समान होना 'ब्रह्मभूयस्' होना है. हम देख चुके कि प्रस्तुत स्कन्धमॅ प्रतिपाद्य निरोधलीलाके हेतु भगवान् अपने भक्तॉके बीच पहले प्रकट होते हैं. बादमॅ अपने स्वरूपसौष्ठव एवं लीलाविहारॉ द्वारा उन भक्तॉके भीतर प्रपंचकी विस्मृतिके साथ स्वयंके स्वरूप एवं लीला मॅ अनन्यासक्तिका सम्पादन करते हैं. यह अनन्यासक्ति ही व्युत्क्रमेण माहात्म्यज्ञानसे मण्डित हो जानेपर भक्तिका स्वरूप धारण कर लेती है. निरोधलीलाके अन्तर्गत भगवदासक्तिमॅ प्रपंचविस्मृतिवाला अंश उसे अव्यभिचारिणी बन पानेमॅ उपकारक बनता है. यह प्रक्रिया है निरोधलीलाद्वारा तीन गुणॉके दायरे मॅ से बाहर निकल कर गुणातीत भगवान्के साथ स्वयं भी गुणातीत बन कर जुड़ पानेकी !

इसी स्कन्धके गुणातीत प्रकरणके कुछ उद्गार, अतएव, इस प्रसंग अवलोकनीय हैं :

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तव आत्ततनोः
चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलषन्ति केचिद् अपवर्गमपि ईश्वर! ते!
चरणसरोजहंकुलसंगविसृष्टगृहाः।।
स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैः
त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे।
इति सद् अजानतां मिथुनतो रतये चरतां
सुखयति कोनु इह स्वविहते स्वनिरस्तभगे।।

(भाग.पुरा.१०।८७।२१-३४).

एतावता यह स्पष्ट हो जाता है कि क्यूं हमारी साधनाके बलपर सम्पादित पूर्वोक्त सात्त्विकता हमूं आत्मकैवल्य पर्यन्त ही फलप्रदान करने समर्थ हो पाती है. क्यूं भगवत्कृपालभ्य भगवन्निष्ठा, इसके विपरीत, प्रपंचविस्मृति पूर्विका भगवदासक्ति या अव्यभिचारिणी भक्ति. सर्वकामनाकी उपशामिका मुक्तिकी कामनासे भी भक्ति ही हमूं विरत बना कर नीरस साक्षिभावसे भी उबार कर भगवान्की तरह ही सर्वथा लीलाभावसे परिपूर्ण बना पाती है. इसी हेतु या प्रयोजन के अभिप्रायवश भगवान्ने कहा "**परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानम् उत्तमं ... इदं ज्ञानम् उपाश्रित्य मम साधर्म्यम् आगताः सर्गेऽपि न उपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च**" (भग.गीता.१४।१-२).

यहां अवधारणीय हो जाता है कि सर्वगुणाधार गुणातीत परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण यदि स्वयं सर्गादिमूं जनमते न हूं अथवा प्रलयके समय स्वयंके भीतर स्वयमेव परिगृहीत बहुविध नाम-रूप-कर्मोको उपसंहृत न करते हूं तो उपनिषद् भगवद्गीता एवं श्रीभागवत आदिके:

"**ब्रह्म वा इदम् अग्रे आसीत् तद् आत्मानमेव अवेद् 'अहं ब्रह्म अस्मि' इति तस्मात् तत् सर्वम् अभवत्**" (बृह. उप.१।४।१०).

"**एष हि देवः प्र दिशो अनु सर्वाः, पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्तः, स विजायमानः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्मुखः तिष्ठति विश्वतोमुखः**" (महाना.उप. २११).

''बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव च अर्जुन! तानि अहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ... अजोऽपि सन् अव्ययात्मा भूतानाम् ईश्वरोऽपि सन् प्रकृतिं स्वाम् अधिष्ठाय सम्भवामि आत्ममायया''

(भग.गीता. ४।५-६)

''सर्वभूतानि... प्रकृन्तिं यान्ति मामिकां कल्पक्षये पुनः तानि कल्पादौ विसृजामि अहं प्रकृतिं स्वाम् अवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः भूतग्रामम् इमं कृत्स्नम् अवशं प्रकृतेः वशात् नच मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति... उदासीनवद् आसीनम् असक्तं तेषु कर्मसु''

(भग.गीता. ९।७-९).

''सएव आद्यः पुरुषः कल्पे-कल्पे सृजति अजः आत्मनि आत्मना पाति आत्मानम् संयच्छति च पाति च''

(भाग.पुरा. २।६।३८).

इत्यादि अनेकानेक वचन सर्गके आदिमृ ही नहीं प्रत्युत मध्यमृ भी भगवान्के भी जन्मग्रहणके वृत्तान्त तथा अन्तमृ आत्मोपसंहरणके भी वृत्तान्त के पोषक मिलते हैं. इनकी संगति उपनिषदादि शास्त्रा मृ-

''स वै नैव रेमे... स द्वितीयम् ऐच्छत् स ह एतावान् आनन्दाद्धि एव खलु इमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति'' (बृह. उप. १।४।३, तैत्ति. उप.३।६).

''लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'' (ब्र.सू.२।१।३३).

''चित्रं तव ईहितम् इह अहो अमितयोगमायालीलाविसृष्ट-भुवनस्य विशारदस्य सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावो भक्तप्रियो यद् असि कल्पतरुस्वभावः''(भाग.पुरा. ८।२३।८).

इत्यादि वचनामृ निरूपित गुणातीत आनन्दात्मक सर्वात्मभावात्मक साक्षिभावके साथ जन्मादिके निरूपण द्वारा समझायी गयी है. याृ भगवान्के दिव्य नाम-रूप-कर्मोंके निर्गुण जन्म स्थिति प्रलय की रीति और सात्त्विकगुणोपनीत आत्मकैवल्यरूप साक्षिभाववश प्रतीत होते जन्मादिराहित्य; अथवा, राजस-तामस-गुणोपनीत जन्मादिके मोहनके भी बीच रहे सूक्ष्म तारतम्यको जानना आवश्यक होता है.

स्वयं भगवान् भी अतएव प्रथम प्रकारके निरूपणमृ **''प्रकृतिं स्वाम्**

अधिष्ठाय सम्भवामि आत्ममायया...जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवम्'' (भग.गीता.४।६–९) या अपने जन्मकर्मकी दिव्यताके हेतुतया स्वयंको प्रकृतिके अधिष्ठाता रहते हुवे जन्मादिग्रहण करनेवाला दिखलाते हैं. इसके विपरीत ''**सर्वभूतानि प्रकृतिं यान्ति मामिकां कल्पक्षये पुनः तानि कल्पदौ विसृजामि अहं प्रकृतिं स्वाम् अवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः भूतग्रामम् इमं कृत्स्नम् अवशं प्रकृतेः वशात्**'' (भग.गीता.९।७–८) वचनमा अन्य जीवात्माओंके जन्म आदि भगवान्‌की प्रकृतिके वशमा होनेके कारण उसपर अवलम्बित या उसके साथ बंधे हुवे होनेके कारण घटित होते दिखलाते हैं. सात्त्विकतोपनीत आत्मकैवल्यसे भी उभर कर जब जीवात्मा भगवन्निष्ठ हो कर समग्र सृष्टिको लीलाभावसे निहारने सक्षम हो पाती है, तब वह भी भगवान्‌के लीलाभाववश होते जन्म आदिकी तरह स्वयंके जन्म आदिका अनुभव लीलाभावसे करनेको सक्षम हो पाती है. अतः मोहित नहीं हो पाती ! या वह भी गुणातीत बन जाती है.

या कुल मिला कर चार तरहके भक्तोंके बीच भगवान्‌के स्वरूपसौष्ठव और लीलाविहार भी चार तरहके स्वीकारे गये हैं. तदनुरूप दशमस्कन्धके मूल पांच प्रकरणोंके अन्तर्गत प्रथम प्रकरण तो स्वयंके भक्तोंके बीच निरोधार्थ भगवान्‌के द्वारा जन्मग्रहण करनेकी लीलाका निरूपक प्रकरण माना गया है. शेष चार प्रकरण चतुर्विध भक्तोंके बीच प्रकट किये निज स्वरूपसौष्ठव एवं लीलाविहार के अनुरूप क्रमशः तामस राजस सात्त्विक और निर्गुण रूपोंमें स्वीकारे गये हैं.

इन भक्तोंके बीच निरुद्ध हो जानेकी लीला करनेको ही भगवान् भूतलपर अवतीर्ण होते हैं. अतः पहले तो ये भक्त अपने–अपने स्वभाव और रुचि की सीमाओंके भीतर ही भगवान्‌को स्वीकार कर पाते हैं. बादमें, किन्तु, भगवान्‌के स्वरूपसौष्ठव और लीलाविहारों में अंकुरित या पनपनेवाली भक्तोंकी रुचि ही शनैः–शनैः प्रेमके रूपमें पल्लवित होने लगती है. वह आसक्तिके भी रूपमें पुष्पित हो पाती है और, अन्तमें, व्यसनके रूपमें वह फलित हो जाती है. इस अवस्थामें पहुंचनेवाले भक्त प्रपंचको विस्मृत करके भगवानमें अनन्यतया आसक्त हो पाते हैं. इस अवस्थाकी प्राप्तिके बाद भगवान्‌की निरोधलीला अपने चरमोत्कर्षको प्राप्त कर लेती है. अतएव भगवान्‌के विविध स्वरूपसौष्ठव एवं लीलाविहारों में विविध भक्तोंकी रुचि प्रेम आसक्ति और व्यसन के इन मनोभावोंके अनुरूप

भक्तॄके साथ भगवान् द्वारा सम्पन्न किये गये लीलाविहारॄको क्रमशः प्रमाण–लीला प्रमेयलीला साधनलीला और फललीला के रूपॄमॄ मान्य किया गया है.

स्वरूपसौष्ठव और लीलाविहार मॄ अंकुरित रुचि ही भगवान्को पहचान पानेको प्रमाणात्मना कार्यकारी बन जाती है. इस रुचिके प्रेमके रूपमॄ पल्लवित हो जानेपर भगवान्का स्वरूपसौष्ठव और लीलाविहार सम्मुग्धाकारवाली अनुभूतिका विषय बने रहनेके बजाय प्रमाणसिद्ध प्रमेयात्मना सुनिर्धारित हो पाता है. इस भगवत्प्रेमका आसक्तिके रूपमॄ प्रफुल्लित हो पाना ऐसे भगवान्की संनिधिके नैरन्तर्यका हेतु बन जानेके कारण साधनात्मना पुष्पित हो जाता है. इस ऐसी आसक्तिके और अधिक परिपक्व हो जानेपर भक्तॄके भीतर वह भगवद्व्यसनात्मना फलित हो कर अन्य सभी प्रपंचासक्तिआॄका विस्मरणरूप हो जाता है. भूतलपर जन्म लेनेवाले भगवान्की, भक्तॄके भावॄके अनुरूप प्रकट होनेवाली लीला ही, भक्तॄको शनैः–शनैः भगवद्नुरूप निर्गुण अर्थात् प्राकृत गुणॄसे ऊपर उठा कर, भगवद्भक्तिमॄ तत्पर बना देती है. अतएव प्राकृत गुणॄके अन्तर्गत सर्वप्रथम आरम्भणीय बिन्दु तामस गुण–धर्म–स्वभाव वर्णित हुवे हैं. अतएव तामस प्रमाण– प्रमेय–साधन– फल प्रकरण प्रमुखतया व्रजलीलाके रूपमॄ निरूपित हुवे हैं. उसके बाद राजस प्रमाण– प्रमेय–साधन–फल राजस गुण–धर्म–स्वभाववाले भक्तॄके साथ, जो मथुरा और द्वारका मॄ भगवान्की लीला हैं प्रमुखतया उनके वर्णनार्थ ही यहां इस प्रकरणमॄ प्रतिपादित हुवे है. क्यॄकि सात्त्विक भक्तॄको अपने सात्त्विक स्वभावके अनुरूप प्रमाणकी अपेक्षा नहीं रहती; अतः, सात्त्विक प्रकरणमॄ भगवान्की प्रमेय–साधन–फलरूपा त्रिविध लीला ही भागवतमॄ निरूपित हुयी हैं. अन्तमॄ निर्गुण भक्तॄके साथ की गयी भगवल्लीलाआॄका वर्णन भी भागवतके दशमस्कन्धमॄ प्रतिपादित हुवा है.

यहां एक और विषय सावधानतया विचारणीय हो जाता हैं कि सर्वसाधारणतया सभी कुछ जब त्रिगुणात्मक हो ऐसी स्थितिमॄ भूतलपर प्रकट होनेवाले भगवदवतारकालके भक्तॄमॄ भी वह क्या सर्वसाधारण सात्त्विकराजस–तामस–भावॄके रूपमॄ निरूपणीय है अथवा अन्य किसी असाधारण अभिप्रायवश?

इसके समाधानार्थ महाप्रभुद्वारा विरचित तत्त्वार्थदीप निबन्धके शास्त्रार्थप्रकरणका मंगलाचरण अवगाहनीय है. वहां ''**यः क्रीडति यो जगद् भूत्वा**

क्रीडति यतो जगत् क्रीडति'' याॅ क्रीड़ाके तीन प्रकाराॅके अन्तर्गत भगवान्‌की कुछ लीला स्वयंके सच्चिदानन्दात्मक रूप–नाम–कर्मोंको प्रकट करने होती प्रतिपादित की गयी हैं, कुछ लीला आनन्दांशके तिरोधानद्वारा ब्राह्मिक सच्चिदशाॅके उपादानभावश प्रकट होती प्रतिपादित हुयी हैं, तो कुछ लीलाआॅमॅ भगवान् उपादान या अनुस्यूत नहीं बनते केवल निमित्त या अधिष्ठान मात्र बनते हैं. इनमॅ प्रथम लीलाके अन्तर्गत सात्त्विकादि अप्राकृत भाव योगमाया द्वारा प्रकट होते हैं. द्वितीयके अन्तर्गत सर्वभवनसामर्थ्यरूपा मायाद्वारा परिगृहीत त्रिगुणात्मिका प्रकृति और त्रिगुणातीत पुरुष द्वारा भगवद्गीतोक्त रीतिके अनुसार सात्त्विक आदि भाव प्रकट होते हैं. तीसरे प्रकारकी लीलामॅ भगवन्निष्ठ अविद्याशक्तिकी अंगभूता व्यामोहिका माया द्वारा जीवका केवल व्यामोहन होता है.. वस्तुतः कोई भी रूप या नाम या कर्म सदंशको उपादान बना कर प्रकट हुवा नहीं होता. अर्थात् उसका केवल आभास ही वैसा होता है. अतः वे केवल सदधिष्ठानक होते हैं सदुपादानक नहीं. यह भगवद्गीतोक्त हैं ''**मत्तः स्मृतिः ज्ञानम् अपोहनं च**'' (भग.गीता.१५।१५) वचनमॅ स्मृति और ज्ञान की तरह स्मृत्यपोहन और ज्ञानापोहन भी भगवान्‌की व्यामोहिका मायाके प्रभाववश सम्पन्न होता स्वीकारा गया है.

इसमॅ उल्लेखनीय तथ्य यह और है कि वात्सल्य सख्य दास्य या मधुर आदि प्राकृत स्वभावाॅकी परिधिमॅ भगवान् के बारेमॅ पनपनेवाले विविध मनोभाव, नाम्ना, रुचि प्रेम आसक्ति एवं व्यसन भावाॅकी मनन–निदिध्यासन रूपी साधनाॅकी प्रतिपादिका ब्रह्ममीमांसाके अनुरूप प्रमाणप्रमेय–साधन–फलकी प्रक्रियाआॅकी विधासे मीमांसा की गयी है.

इन अनेकविध भक्ताॅके विविध भावाॅको अपने माहात्म्यज्ञान स्वरूपज्ञान तथा स्वयं लीलाविहाराॅके कृपानुभावक अभिप्रायके ज्ञान से भगवान् स्वयं लीलया मण्डित करते जाते हैं. याॅ वे लोकसदृश मनोभाव भी शनैः–शनैः वैसे–वैसे भक्तिभावाॅमॅ व्युत्क्रमेण रूपान्तरित होने लग जाते हैं. यह व्युत्क्रम इस अर्थ मॅ प्रकट होता है कि औपनिषदिक साक्षाद् ब्रहमज्ञान और/अथवा साक्षाद् भगवत्स्वरूपासक्ति के बिना सर्वरूपेण सर्वदा सर्वत्र विद्यमान भी भगवान् प्रकटतया प्रमाणबलसे तो अनुभूत नहीं हो सकते. अतएव उत्सर्गरूपेण भक्ति इन दोनाॅ अंगाॅको पूर्वोत्तर अवस्थाआॅके रूपमॅ अपना कर ही प्रकट होती है, ऐसा माना जाता है. प्राणिमात्रके भीतर विद्यमान ब्राहिमकी आत्मरति प्रेमासक्ति–

व्यसनादिकी अवस्थाआदि विकसित होनेपर भी भगवन्माहात्म्यज्ञानके बिना भक्तिके रूपमें मान्य नहीं हो पाती. अतएव माहात्म्यज्ञानको भक्तिकी पूर्वावस्था माना जाता है और उत्तरावस्था सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह, फिरभी भूतलपर स्वतः प्रकट होनेवाले भगवान्‌की लीलामें किसी तरहकी पूर्वनियतिके रूपमें माहात्म्यज्ञानकी अपेक्षा स्वयं भगवान् ही अपवादरूपेण रखते नहीं हैं.

अतः भगवान् अपने अनुग्रहके अनुभावके रूपमें लौकिक भावोंको ही भक्तिके रूपमें मान्य कर लेते हैं. या शनैः-शनैः अपने बारेमें पनपी रुचि प्रेम आसक्ति या व्यसन के भावोंको उनके अनुपातमें ही क्रमशः माहात्म्यज्ञानसे मण्डित करते जाते हैं. अतः लौकिक भावों और भक्तिभावों के बीच रही विभाजकरेखा अवतारलीलामें धुंधला जाती सी लगती है.

फिरभी क्योंकि श्रीमद्भागवत महापुराण भी अवतारलीलाओंका निरूपण अन्ततः तो भगवान्‌के भूतलपर प्रकट होनेके प्रमुख प्रयोजनरूप भक्तिशास्त्र के प्रवर्तनार्थ ही प्रकट करना चाहता है. अतएव महाप्रभुका इस बारेमें सुस्पष्ट विधान है :

> **''एषा हि समाधिभाषा. तत्र हि पुरुषप्रयत्नो भक्तावेव, सुदृढः सर्वतोऽधिकः स्नेहस्तु आत्मत्वेन ज्ञाते भवति; माहात्म्यज्ञानन्तु सृष्ट्यादिभिः द्वयं साधयितुम् एषा संहिता... सृष्ट्यादीनां लीलात्वेन ज्ञाते भगवद्भक्तिः भवति न कार्यत्वेन. कौतुकाधिष्ठितेन अनायासेन क्रियामाणं कर्म लीला''** (सुबो. १।१।१-४).

अतः इन विविध भावोंको श्रीभागवतपुराण, कभी भक्तिके स्थायिभाव तो कभी अनुभाव के रूपोंमें भी, दरसाता होनेपर भी, अन्ततः निर्गुणलीलाके समय तो भक्तिके स्थायिभावके विविध संचारिभावोंके रूपमें ही प्रतिपादित करना चाहता है.

(प्रस्तुत खण्डका प्रतिपाद्य विषय)

प्रस्तुत खण्डमें तदनुसार राजस प्रकरणके अन्तर्गत अवान्तर साधनप्रकरण और फलप्रकरण नियोजित हुवे हैं.

वाल्लभ मतीय प्रक्रियाके प्रतिपादनपरक 'प्रमेयरत्नार्णव' नामक अद्भुत ग्रन्थमें ग्रन्थकार श्रीबालकृष्ण भट्ट भगवल्लीलामें प्रकट हुयी इन तामसता राजसता या सात्त्विकता की व्याख्या:

१.भावरूप पारिभाषिक

२.धर्मविशेषरूप

तथा

३.भगवन्मायाकृत

यॄ तीन तरहकी समझाते हैं. साथ ही साथ यहां लक्ष्यमॄ रखने लायक एक और तथ्य यह भी है कि जैसे दशमस्कन्धके आरंभके चार अध्यायॄमॄ भगवान्का जन्म चारॄ प्रकारके भक्तॄको अपनेमॄ निरुद्ध करनेकी लीलाके हेतु है. अतः क्रमसंगतिके अनुरूप पहले भगवान् तामस भक्तॄका निरोध उन भक्तॄके भावानुरूप अपने स्वरूपसौष्ठव और लीलाविहार द्वारा सिद्ध कर लेते हैं, तब उन भक्तॄके भीतर प्रपंचविस्मृतिके साथ भगवदासक्ति इतनी दृढ़ हो जाती है कि उनके तामस स्वभाव और उसके प्रभाववश होते कायिक वाचिक या मानसिक व्यापारॄमॄ तामसी लीलाविकार निवृत्त हो जाते हैं. अतः इस प्रयोजनकी पूर्ति हो जानेपर भगवान् राजस भक्तॄके निरोधार्थ राजस भक्तॄके बीच पधार जाते हैं. परिणामरूपेण तामस भक्तॄके साथ भगवान्की सफल संयोगलीलाके बाद विप्रयोगलीला चलती है. इस विप्रयोगकी तीव्रता ही इन तामस भक्तॄके चित्तॄको पुनः प्रापंचिक विषयॄमॄ भटक जानेसे रोके रखती है, अतएव इनके अन्तःकरणॄमॄ तो भगवान् निरुद्ध ही हो गये होनेके कारण उन्कॄ भगवत्स्वरूप और भगवल्लीला का संयोगसुख मिलता रहता है परन्तु तामस गुणकी निवृत्तिके बाद प्रकट हुवे राजस गुणॄके अनुरूप बाह्य भगवत्स्वरूप एवं बाह्य भगवल्लीला का विप्रयोग भी इन भक्तॄको शान्त और स्वस्थ नहीं होने देता. फलतः राजस भक्तॄका जो स्वभावप्राप्त मौलिक गुण होता है, वही गुण तामसगुणके निवृत्त हो जानेके कारण, पहले जो तामस भक्त थे, ऐसे भक्तॄके भीतर राजस प्रकरणमॄ या तो वर्णनीय ही है अथवा अवर्णित होनेपर भी अभिप्रेत तो माना ही गया है.

अतः इस प्रकरणमॄ दोनॄ तरहके अर्थात् प्राकरणिक राजस भक्त और तामसप्रकरणवाले राजसभावापन्न भक्तॄके भी भीतर तीनॄ तरहके प्रकरणानुरोधी १.भावरूप पारिभाषिक राजसत्व २.धर्मविशेषरूप राजसत्व तथा ३.भगवन्माया-कृत राजसत्व भी मान्य किये गये हैं.

इनमॄ भावरूप प्रकरणाधिकारिताका निर्वाहक पारिभाषिक राजसत्व तो भगवान्के वैसे स्वरूपसौष्ठव और लीलाविहारॄ के अनुरूप स्वरूपलीलानुपाती

होता है. धर्मविशेषरूप राजसत्व, जबकि, प्रसंगोपात्त भक्तॄके कायिक वाचिक या मानसिक अनुभावॄमे राजस भक्तॄमॄ ही नहीं प्रत्युत निर्गुण सात्त्विक राजस या तामस सभी तरहके भक्तॄके भगवद्भावॄमॄ संचारिभावॄकी तरह कभी-कभाक छलकनेवाला होता है.

इसमॄ लक्ष्यमॄ रखने लायक प्रमुख तथ्य यह है कि प्रथम प्रकारके तामसत्व राजसत्व या सात्त्विकत्व तो भगवान् अपनी लीलाके हेतु स्वयं ही भक्तॄके वैसे वरण द्वारा सम्पन्न करते हैं. जबकि द्वितीय प्रकारका राजसत्व तो भगवान्के प्रति भक्तॄके भीतर भरे हुवे भावॄका अनुभावरूप होता है. इस तरहकी लीलाके निर्वाहार्थ यदा-कदा भगवान् अपनी योगमाया द्वारा अथवा व्यामोहिका माया द्वारा भी संशयात्मिका मोहनात्मिका मनोवृत्ति प्रकट करते होनेके कारण भक्तॄके भी भीतर कभी-कभाक संशय या व्यामोह जो प्रकट होता है वह तीसरे प्रकारके राजसत्व या तामसत्व का प्रकार समझना चाहिये.

राजस भक्त प्रपंचासक्तिको भूल कर ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य गुणधर्मोक धर्मिस्वरूप भगवान्मॄ अनन्यासक्त हो पायॄ, तदर्थ इन राजस भक्तॄको भगवान् स्वयं अपने अलावा दूसरे कोई भी प्रमाण प्रमेय साधन अथवा फल की अपेक्षा व्यवधान या अन्तराय से बचा लेनेको ही ऐसी सारी प्रमाण- प्रमेय आदिकी अपेक्षा स्वयं ही परिपूर्ण कर देते हैं. इसे ध्वनित करनेको इस राजस प्रकरणमॄ भी, जैसा कहा जा चुका है, प्रमाण- प्रमेय-साधन-फल प्रकरणॄकी चतुष्टयी योजित हुयी है. उसके अन्तर्गत प्रस्तुत खण्डमॄ साधन और फल प्रकरण प्रकाशित हो रहे हैं.

(राजसप्रकरणान्तर्गत अवान्तर साधनप्रकरणके प्रकरणार्थ और अध्यायार्थ)

इसे 'साधनप्रकरण' कहनेका अभिप्राय यह है कि प्रापंचिक दुःखॄके निवारणार्थ भगवान्के भक्तजनॄका चित्त भगवान्मॄ एकतान हो जाय तो साधन सम्पन्न हो गया ऐसा माना जाता है. इसी प्रक्रियाके कारण राजस भक्तॄका भगवानमॄ निरोध सिद्ध हो जाता है. क्यॄकि भगवान् के छह गुणधर्म और सातवॄ स्वयं धर्मी भगवानमॄ निरोधकी सिद्धि अपेक्षित है. अतः सात अध्यायॄमॄ यह कथा प्रतिपादित हुयी है.

राजससाधनान्तर्गत प्रथमाध्यायमृ ऐश्वर्यगुणनिरूपण :

जैसा कि कहा जा चुका है वैसे श्रीकृष्णके बारेमृ राजस भक्तृके भीतर प्रपंचविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्तिरूप फल सिद्ध होता है, भगवान्‌के बारेमृ व्यसनभाव सिद्ध हो जानेपर फिर भी इसी बीचमृ यदि किसी तरहका लौकिक व्यसन अन्तरायरूपेण उपस्थित होता हो तो उसका निराकरण भी यदि श्रीकृष्णसे अतिरिक्त अन्य किसी उपाय या व्यक्ति द्वारा सम्पन्न होना नियत हो तो श्रीकृष्णके अलावा अन्य प्रपंचकी विस्मृति सर्वात्मना प्रकट नहीं हो पायेगी. अतः भगवान्ने जरासन्ध द्वारा सत्रह बार मथुरापर किये आक्रमणृमृ उसे परास्त किया. इसके बाद पुनः कालयवनके द्वारा आक्रमण किये जानेपर अलौकिक रथ आयुध आदिका सहसा प्रकट हो जानेकी कथा भगवान्‌के ऐश्वर्य गुणके सूचनार्थ है. इसी तरह समुद्रके भीतर द्वारकाका निर्माण कर यादवको वहां बसा देना भी भगवान् के ऐश्वर्य गुणके निरूपणार्थ है. अतः प्रचलित अध्याय संख्याक्रमके अनुसार ५० वृ, परन्तु दशमस्कन्धमृ १२ १३ एवं १४ याृ तीन अध्यायृको प्रक्षिप्त माननेपर, ४७ वृ अध्यायमृ भगवान् के द्वारा राजस भक्तृके साथ की गयी साधनलीला ऐश्वर्यगुणके द्योतनार्थ निरूपित हुयी है.

इस तरह शत्रुकृत भौतिक दुःखृके निवारणद्वारा लोकमृ आसक्त लीलापरिकरकी श्रीकृष्णके प्रति व्यसनभावकी सिद्धि भगवान्ने अपने ऐश्वर्य गुणको साधन बना कर, जो साधी उसका वर्णन यहां दशमस्कन्धके उत्तरार्धके ४७ वृ अध्यायमृ किया गया है.

राजससाधनान्तर्गत द्वितीयाध्यायमृ वीर्यगुणनिरूपण :

भगवान्‌के नित्यसंनिधानवाली मथुरा नगरी कालयवनद्वारा प्रदूषित होनेके कारण वहां भगवान्‌की स्थिति न रह जानेसे वैदिक कर्मानुष्ठान भी निष्फल रहते होनेके कारण दुःख पानेवाले वैदिक धर्मनिष्ठृके आध्यात्मिक दुःखृके निवारणार्थ भगवान्ने मुचुकुन्द द्वारा कालयवनके उपद्रवका उपशमन करवाया. भगवान्‌के चतुराईकी कथा यह कथा द्वारा वीर्य गुण निरूपणीय होनेके कारण; तथा, मुचुकुन्द की स्तुतिसे प्रसन्न भगवान्द्वारा स्वयंके सामर्थ्यसे उसे मोक्षप्रदान करनेके कारण भी भगवान्‌के वीर्य गुणके वर्णनार्थ ही यह ४८ वां अध्याय योजित हुवा है.

राजससाधनान्तर्गत तृतीयाध्यायमृ यशोगुणनिरूपण :

इस ४९ वृ अध्यायमृ श्रीरुक्मिणीजी द्वारा भगवान्‌के यशोगान तथा

श्रीरुक्मिणीजी द्वारा भगवान्का पतित्वेन वरण भगवान्के यशोरूप गुणका निरूपणार्थ है.

राजससाधनान्तर्गत चतुर्थाध्यायमू श्रीगुणनिरूपण :

इस ५० वृ अध्यायमू विदर्भपुरमू सर्वलोकहृदयरंजक अपने स्वरूपकी जो शोभा भगवान्ने दिखायी उसका वर्णन तथा स्वयंवरमू पहुंच पानेसे पूर्व ही श्रीरुक्मिणीके हरणका वृत्तान्त वर्णित हुवा है, क्यूकि उनके लिये अन्यसम्बन्ध पापरूप होता अतः उसके निवारणकी कथा भगवान्के श्रीरूप गुणके वर्णनार्थ है.

राजससाधनान्तर्गत पंचमाध्यायमू ज्ञानगुणनिरूपण :

इस ५१ वृ अध्यायमू स्वयंवरमू से अपहरणके वृत्तान्तमू भगवान्की सामर्थ्यका वर्णन हुवा है. श्रीरुक्मिणीका अपने साथ विवाह चाहनेवाले अन्यान्य अनेक राजाओूके द्वारा भगवान्को ललकारे जानेपर उन सभी राजाओूसे एकसाथ युद्धमू भगवान्को उलझना पड़ेगा, ऐसे अनिष्टकी शंका-कुशंका श्रीरुक्मिणीके स्नेहपूर्ण हृदयको सताने लगी उसका भी वर्णन है. अतः ऐसी मनोव्यथाके निवारक श्रीबलराम द्वारा दिये गये। उपदेशवचनूके वर्णनके कारण तथा अपनी बहनको भगवान् से छुड़ानेको पीछे दौड़नेवाले भाई रुक्मिको भगवानुद्वारा विरूप बनाये जानेके कारण विमना सी बनी श्रीरुक्मिणीको जो श्रीबलरामद्वारा जो पुनः उपदेश दिया उसकी भी कथा भगवान्के ज्ञानरूप गुणके निरूपणार्थ है.

राजससाधनान्तर्गत षष्ठाध्यायमू वैराग्यगुणनिरूपण :

इस ५२ वृ अध्यायमू कामदेवके अवताररूप अपने पुत्र प्रद्युम्नके सूतिकागृहसे ही हुवे अपहरण हो जानेके कारण इस विषयमू भगवान्की वैराग्यरूपा उदासीनता निरूपित हुयी है. क्यूकि भगवान् अपने भक्तूमू प्रकट होनेवाले कामभावके पोषण रक्षणमू अधिक सावधान नहीं होते, अतः इस अध्यायकी कथामू भगवान्के वैराग्यगुणका वर्णन अभिप्रेत है.

राजससाधनान्तर्गत सप्तमाध्यायमू धर्मिनिरूपण :

इस ५३ वृ अध्यायमू धर्मिरूप भगवान्का वर्णन है. सत्राजितकी 'स्यमन्तक' मणिके खो जानेपर उसे खोजनेके निमित्त भगवान् बहोत काल पर्यन्त द्वारकामू अनुपस्थित रहे. अतः इस अध्यायमू निरूपित द्वारकावासियूको हुवा भगवान्का विप्रयोग, उनके साधनकी परिपूर्णताका द्योतक है. अतः यह धर्मिरूप

भगवान्‌के स्वरूपकी कथा है. यॄ मिथ्याशाप लगनेपर भी भगवान् क्रोधित नहीं हुवे यह दिखलाना भी यहां प्रयोजन है.

(राजसप्रकरणान्तर्गत अवान्तर
फलप्रकरणके प्रकरणार्थ और अध्यायार्थ)

इस तरह कैसे राजस भक्त अपने स्वभावके अनुरूप प्रपंचको भूल कर अनन्यभावसे भगवान्मॄ आसक्त हो पाये, ऐसे राजस साधनॄ के निरूपणपरक साधनप्रकरणके सात अध्यायॄके बाद, उन राजस भक्तॄकी फलावस्थाके निरूपणार्थ पुनः ऐश्वर्य वीर्य आदि भगवद्गुणधर्म कि साथ धर्मिरूप भगवान्‌के निरूपणार्थ सात अध्यायॄवाला फलप्रकरण प्रारंभ होता है :

राजसफलान्तर्गत प्रथमाध्यायमॄ ऐश्वर्य :

इस ५४ (प्रचलित क्रमानुसार ५७) वॄ अर्थात् प्रस्तुत प्रकरणके प्रथम अध्यायमॄ भगवान्‌के अभक्त सत्राजितके घातक भगवान्‌के प्रिय शतधन्वा आदिके वधद्वारा उसे मुक्ति प्रदान करनेकी कथा है, साथ ही साथ चुरायी गयी उस मणिको अपने पास छिपाये रखनेको काशी नगरीमॄ छिपनेवाले अक्रूरको दी गयी थी. उन अक्रूरको मणि लौटानेको बाधित कर देनेकी कथा भगवान्‌के लोभरूप दोषसे रहित तथा सहज ऐश्वर्य गुणवान् होनेके वर्णनार्थ है.

राजसफलान्तर्गत द्वितीयाध्यायमॄ वीर्यगुणनिरूपण :

५५ वॄ तदनुसार द्वितीय अध्यायमॄ अग्निद्वारा अर्जुनको अक्षयबाणकोष और धनुष दिलवानेकी कथा, विश्वकर्मा मय द्वारा दिव्य राजसभा और इन्द्रप्रस्थ नगरी के निर्मार्पण द्वारा पाण्डवॄको धर्म अर्थ तथा काम रूपी फलॄके प्रदानकी कथा और यादवॄको विद्याके पांच पर्वोका फल प्रदान करनेको पंचपर्वा विद्यारूपिणी भगवान्‌की पंचविधा शक्तिरूपा मित्रविन्दा आदि महिषियॄसे विवाहकी कथा भगवान्‌के वीर्य गुणके वर्णनार्थ है.

राजसफलान्तर्गत तृतीयाध्यायमॄ यशोगुणनिरूपण :

५६ वॄ अर्थात् तृतीय अध्यायमॄ जो विरक्त और भक्तिमान् भक्त थे, उनके भगवत्सम्बन्धी सुख ऐहिक पारलौकिक फलॄसे विलक्षण थे, यह दिखलानेको अविद्यावश प्रकट होती अहन्ता-ममताके मूर्तिमान् रूप मुर दैत्यका वध, ऐहिक सुखरूप नरकासुरका वध, एकादश इन्द्रिय और उनके पांच विषय

रूपी सोलह वृत्तिरूपा कलाआॄकी मूर्तिमती सोलह सहस्र नायिकाआॄके साथ परिणयकी कथा, ये सभी कुछ यादवॄके लिये अतिशय सुखप्रद होनेसे यशो गुणके निरूपणार्थ ये कथायॄ वर्णित हुयी हैं. इसी तरह भीमासुरके वध और भूमिद्वारा की गयी स्तुतिके कारण उसे अभयदानकी कथा भी भगवान्के यशोरूप गुणके वर्णनार्थ है.

राजसफलान्तर्गत चतुर्थाध्यायमॄ श्रीगुणनिरूपण :

५७ वॄ अर्थात् चौथे अध्यायमॄ यह अभिप्रेत है कि भगवान् फलोपभोगसामर्थ्य की तरह फल भी स्वयं ही प्रदान करते हैं. अतः भक्तॄके सभी अभिमान आदि अनेक दोष भी भगवान् ही दूर करते हैं. अतएव श्रीरुक्मिणीजीके साथ भगवान्के परिहास और उन्कॄ सान्त्वना प्रदान करनेकी की कथा ऐसे भगवान् के श्री गुणके वर्णनार्थ है.

राजसफलान्तर्गत पंचमाध्यायमॄ ज्ञानगुणनिरूपण :

५८ वॄ अर्थात् पांचवॄ अध्यायमॄ यह वर्णन अभिप्रेत है कि भगवान्की विविध पटरानियां भगवान्के मनको वशमॄ कर नहीं पायी. भगवान् के ऐसे ज्ञानरूप गुण, साथ ही साथ, श्रुतिके अनुसार जैसे ब्रह्मज्ञानीके सत्कर्म और दुष्कर्म उसके प्रेमी और द्वेषी को लग जाते हैं, ऐसे ही भगवद्भक्तॄके साथ भी होता है; अतएव प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के शास्त्रनिषिद्ध विवाहके दुष्कर्मवश प्रकट होनेवाले दण्डका भागी यादवॄके द्वेषी रुक्मिको भुगतना पड़ा. भगवान् के ऐसे ज्ञानरूप गुणकी कथा यहां वर्णनीय है.

राजसफलान्तर्गत षष्ठाध्यायमॄ वैराग्यगुणनिरूपण :

५९ मॄ अर्थात् छट्ठे अध्यायमॄ अनिरुद्धको बांध कर अपहरण करते समय भगवान् द्वारा प्रतीकार न करनेकी कथा भगवान्के वैराग्य गुणके वर्णनार्थ है.

राजसफलान्तर्गत सप्तमाध्यायमॄ धर्मिनिरूपण :

६० वॄ अर्थात् सातवॄ अध्यायमॄ इतर देव अपने भक्तॄको जो वरदान करते हैं, उसका योगक्षेम निभा नहीं पाते जबकि भगवान् अपने दिये वरदानका हर परिस्थितिमॄ पालन करते हैं. अतः बाणासुरकी भुजाआॄको काटनेकी तथा वरप्रदान करनेकी कथा ऐश्वर्य आदि छह्मॄ गुणधर्मोंक आश्रयीभूत भक्तॄका अपने स्वरूपसे कार्य सिद्ध करनेवाले धर्मिरूप भगवान्की कथा है.

इस तरह भगवल्लीलाके परिगानार्थ प्रकट श्रीमद्भागवतके अन्तर्गत

प्रपंचमृ अपने भक्तृके बीच प्रकट हो कर उनके स्वभावके अनुरूप अपना स्वरूप और अपनी लीला प्रकट करनेवाले भगवान्‌की निरोधलीलाके अन्तर्गत राजस भक्तृके साधन और फल का निरूपण करनेवाले चौदह अध्यायृका संक्षिप्त सार समझ आनेपर श्रीकृष्णकी मनोरमलीलाओृका वास्तविक तात्पर्य समझ आ सकता है. इसे श्रीभागवतपीयूषसमुद्रमथनक्षम श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणद्वारा प्रतिपादित अभिप्रायके रूपमृ समझना चाहिये.

श्रीमदाचार्यवाचो मे स्फुरन्तु हृदि सर्वदा ।
याभिर्विना भागवते बोद्धुं वक्तुं न पारये ।।

१ मार्गशीर्ष, २०६६

गोस्वामी श्याम मनोहर
पार्ले–मुंबई.

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित तत्त्वार्थदीपनिबन्धका

।। भागवतार्थ प्रकरण।।

राजस साधन–फल प्रकरण

(अध्याय ४७ से ६०)

ततो व्यसनसिद्धयर्थं साधनान्याह सप्तभिः।
लौकिके व्यसने प्राप्ते तस्मिंश्च विनिराकृते।।१८७।।
व्यसनासक्तहृदयाः कृष्णव्यसनिनोऽभवन्।

इस(प्रमेय)के अनन्तर भगवानमृ जिन साधनाृसे व्यसन सिद्ध होवे, वे 'साधन' सात अध्यायाृसे कहते हैं. जिनका हृदय लौकिक दुःखमृ आसक्त है, उस अवस्थामृ भी, जिनका चित्त भगवानमृ ही लगा हुआ है और कह रहे हैं कि हे कृष्ण! इन दुःखाृका निराकरण करो इस प्रकार दुःखी होते हुए भी कृष्ण आसक्त जन ही व्यसनी हो जाते हैं।।१८७।।

व्याख्या: इस प्रकरणका नाम साधन प्रकरण इसलिये है, कि इसमृ वे साधन कहे हैं, जिनसे राजसाृका चित्त भगवानमृ आसक्त हो जाये, राजसाृका दुःख भगवान् स्वयं निवारण करते हैं. अतः राजसाृका चित्त कृष्णमृ एकतान हो रहा है, जिससे दुःख निवारण करनेवाले श्रीकृष्णमृ एकतान हो जाना 'साधन' है।।१८७।।

जरासन्धश्च यवनः पुनर्ब्राह्मणसंयुतः।।१८८।।
शिवप्रसादपुष्टश्च जरासन्धो विशिष्यते।
राजसस्तामसश्चैव सात्विकश्च प्रकीर्तितः।।१८९।।

जरासन्ध और यवन, ब्राह्मणसे बल एवं आशीर्वाद प्राप्त करके तथा शिवकी कृपासे पुष्ट(बलवाले) हो गये. जरासन्ध इस समय पूर्वसे भी विशेष बलवाला बना हुआ है. यहां यह राजस, तामस और सात्त्विक क्रमशः बना है।।१८८–१८९।।

व्याख्या: राजसाृको व्यसन प्राप्ति करानेवाला अर्थात् दुःख देनेवाला जरासन्ध तीन प्रकारका बन गया है. जैसा कि, जरासन्धकी अवस्था दो प्रकारकी होनेसे, जरासन्ध दो माने गये और एक स्वयं व्यक्तिगत, ऐसे तीन प्रकारका जरासन्ध हुआ (द्रष्टव्य अ.४९ श्लोक ७ की श्रीसुबोधिनी)।।१८८–१८९।।

केवलः पौरुषापोह्यः स सप्तदशधोदितः।
प्रजापतिप्रसूतत्वात्तावद्वारं समागतः।।१९०।।

एक बारमृ ही जरासन्ध तो पुरुषार्थसे पराजित करने योग्य था, तो भी १७ बार आकर हार गया; प्रजापतिसे उत्पन्न हुआ था, इसलिये इतनी बार आया।।१९०।।

व्याख्या: जरासन्धकी त्रिविधता कहना उचित नहीं, क्यूकि १८ बार युद्धके लिये आया था, इस पर 'केवल' कारिका कही है, एकाकी तो सत्रह बार पराजित होकर गया और फिर १८वीं बार भी आया जिसका कारण यह था कि प्रजापतिसे उत्पन्न हुआ थाएवं उससे प्रेरित था, और जराने उसका सन्धान किया था.

इसको उत्पन्न करनेवाले प्रजापति ब्रह्माण्डमू अध्यक्ष है एवं कालरूप तथा यज्ञरूप होकर १७ प्रकारके हैं(पूर्वमू) जरासन्ध एकाकी अर्थात् ब्राह्मण व शंकरकी सहायताके बिना १७ बार अपने पुरुषार्थसे आया था अतः पराजय पाकर लौट गया ।।१९०।।

अष्टादशे द्वन्द्वभावम् आपन्नः सहजो महान्।
ततो व्यसनकर्त्ता हि तदैश्वर्येण वै हरिः।।१९१।।
विश्वकर्माणमाहूय मथुरासमभावतः।
द्वारकां निर्ममे तत्र योगवीर्यं चकार ह।।१९२।।
ततो व्यसननिर्मुक्ता कृष्णव्यसनमागमन्।
एवमेकेन भूतानां व्यसनं विनिवर्तितम्।।१९३।।

जरासन्ध जब १८वीं बार संग्रामके लिये आया, तब सहज बलवान् होकर आया था, उस समय उसने ब्राह्मण और महादेवसे बल प्राप्त किया था, जिससे दुःखदायी हुआ, ऐसी स्थितिमू भगवानने अपने ऐश्वर्यसे विश्वकर्माको बुलाकर मथुराके समान द्वारकाका निर्माण कराया और वहां अपने योगका वीर्य(बल) दिखाया, जिससे जो दुःखसे मुक्त हुए, वे कृष्णके व्यसनी हो गये, इसी तरह एक अध्यायसे प्राणियाूके दुःख मिटाये याू कहा है।।१९१ – १९३।।

व्याख्या: १८वीं बार जरासन्ध ब्राह्मणाू व शंकरसे बल प्राप्तकर आनेसे(वह) दुःख देनेमू समर्थ हुआ. भगवानने लीलार्थ, मनुष्यनाट्य किया था, इसलिये ऐसी स्थितिमू ब्राह्मण और शंकरका आदर करना उचित था, जिस कारणसे भगवानने अपने ऐश्वर्यको प्रकटकर, विश्वकर्मासे मथुराके समान द्वारकापुरी बनवाई. अपने योग बलसे यादव आदि राजसाूको वहां ले गये और व्यसनने मुक्त किया, जिससे उनका श्रीकृष्णमू व्यसन सिद्ध हुआ, यहां प्रथम अध्यायका अर्थ बताया है।।१९१ – १९३।।

आध्यात्मिकानां च तथा तदर्थं यवनो हतः।
अद्याऽपि मथुरायां हि तिष्ठक्त्याध्यात्मिकाः सदा।।१९४।।

जैसे अन्य दुःख निवृत्त किये, वैसे आध्यात्मिक दुःख भी निवृत्त करने हैं, इसलिये 'यवन'को मारा कारण कि आज तक भी मथुरामू आध्यात्मिक दुःख सर्वकालमू रहते हैं।।१९४।।

व्याख्या: द्वितीय अध्यायका विचार करते हुए, जब सबको द्वारका ले गये, मथुरामृ कोई भी न रहा, क्लेशका भी अभाव था तो फिर यवनको क्यृा मारा? इस शंका परिहार करनेके लिये 'आध्यात्मिकानां'कारिका कही है. जिसमृ दिखाया है कि, मथुरामृ आध्यात्मिक अब तक विद्यमान है. जिससे उनकी निवृत्तिके लिये यवनको मारा, आध्यात्मिक दुःखृका मथुरामृ सर्वकालमृ होना उचित नहीं. यद्यपि मथुरामृसे बहुत यादव यदि द्वारका गये, किन्तु भगवान् यवन, धन मथुरामृ ही स्थापित करते थे जिसके लिये बलभद्र आदि कितनेक अब भी मथुरामृ थे उनके मनकी चिन्ता(आध्यात्मिक दुःख) दूर करनी थी इसलिये यवन मारा गया, इस दुःखको दूर करनेकी कथा जरासन्ध प्रवर्षण पर्वतको भस्ममर मगध गया वहां तक है।।१९४।।

दैविकाश्चापि तिष्ठन्ति त्रिभिस्तान् मोचयत्यसौ।
रुक्मिणीव्यसनं तत्र नियामकमिति स्थितिः।।१९५।।

वहां आधिदैविक दुःख भी थे उन दुःखृासे भगवानने इनको छुड़ाया, जिसकी कथा तीन अध्यायृासे कही है. इस प्रसङ्गमृ रुक्मिणीजीका व्यसन(दुःख) नियामक है, यृा स्थिति थी।।१९५।।

व्याख्या: यादव लोग, सब राजाओृाके साथ लड़कर सबको शत्रु बना बैठे थे. अब उनके पुत्रादि एवं श्रीकृष्णका विवाह कहां और कैसे होगा यह चिन्ता(आधिदैविक दुःख) सबको सता रही थी जिससे भगवानने सबको मुक्त किया, जिसमे रुक्मिणीके विवाहका वर्णन तीन अध्याय ४९ से ५१मृ किया है तृतीय अध्यायमृ मगधसे लौटने तकका चरित्र आधिदैविक दुःख निवृत्तिके लिये है. यदि यृा है तो रुक्मिणी आदिकी कथा कहनेका प्रयोजन था? इस पर कहते हैं कि, ''रुक्मिणी व्यसनं तत्र नियामकमिति स्थितिः'' इन दुःखृाके होनेमृ रुक्मिणीका व्यसन ही नियामक था, रुक्मिणीके कारण सर्व राजाओृासे विग्रह आदि हुए जिससे दुःख उत्पन्न हुवे।।१९५।।

त्रिभिस्तस्य निवृत्तिर्हि वाक् शरीरं मनस्तथा।
मानसं वाचिकं वाऽपि कायिकं वा निराकृतम्।।१९६।।

तीन अध्यायृासे इस दुःखकी निवृत्ति कही है; क्यृाकि वाणी, शरीर और मन ये तीन दुःख देनेवाले हैं अतः मन, वाणी और शरीर तीनृाका दुःख दूर किया है।।१९६।।

व्याख्या: रुक्मिणीके व्यसन(दुःख)की निवृत्ति तीन अध्यायृासे क्यृा कही है? इस पर 'त्रिभिः' कारिका कही है, जिसमृ बताया है कि दुःखके कारणभूत वाणी, मन और शरीर ये तीन हैं अतः इन तीनृाके द्वारा प्राप्त दुःखको मिटानेका वर्णन तीन अध्यायृामे वर्णित है.

यहां वाक्(वाणी) अन्यृाकी जाननी. जिन दुःखृाकी निवृत्ति की उनको बताते

हैं मन, वाणी और कायाके व्यसन, या तीन प्रकारके दुःख हुए थे.

यादवाके आध्यात्मिक दुःख दूर करनेमा रुक्मिणीजीका व्यसन नियमित होनेस, ब्राह्मणने आकर भगवानको वचनासे यह बताया, जिससे मानस तथा वाचिक दुःखाका निराकरण किया(हुआ) अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजी का हरणकर, उनकाय कायिक दुःख मिटाते हैं, इसके आगे रुक्मिणीजी आदिके जीतनेसे वाचिक तथा मानस दुःख दूर कियए. इस तरह ४९ वा ५०वे और ५१वा इन तीना अध्योयामा रुक्मिणीजीके तीन दुःख दूर करनेकी कथा कही है।।१९६।।

आध्यात्मिकेऽधिकं किञ्चिद्दैविकाभेदसिद्धये।
व्यसनी मुचुकुन्दोऽपि निद्रया तन्निवारितम्।।१९७।।

आध्यात्मिक दुःखके साथ आधिदैविक दुःखका अभेद है, जिसकी सिद्धिके लिये प्रसङ्गसे अतिरिक्त कुछ कार्य किया, बहुत निद्राके कारण दुःखी हुए मुचुकुन्दके दुःखको मिटाया।।१९७।।

व्याख्या: इसी तरह प्रासङ्गिकका समर्थनकर प्रस्तुति विषयको इस कारिकामा कहते हैं कि आध्यात्मिकका आधिदैविकके साथ अभेद है, इसलिये प्रसङ्ग न होते हुए भी मुचुकुन्दको अपने स्वरूपका दर्शन कराया, जब यहां यादवाके व्यसनको ही मिटानेका कार्य करना है, तो मध्यमा मुचुकुन्दका चरित्र कहना अप्रासङ्गिक था, इस पर कहते हैं कि बहुत निद्राके कारण मुचुकुन्द दुःखी हो गया था, जिसके दुःखको मिटानेके लिये भगवानने अप्रासङ्गिक होते हुए भी यह लीला कर डाली अर्थात् यवन द्वारा श्रीकृष्णने इसको जगवाकर इसका दुःख दूर किया।।१९७।।

फलप्रकरणं नैतत्तेन स्तुत्याऽपि नोऽभवेत्।
साधनं परमुद्दिष्टं वीर्याध्यायो यतो मतः।।१९८।।

यह प्रकरण फलका नहीं है, किन्तु साधनका है, इसलिये स्तुति करने पर भी मुचुकुन्दको मोक्ष न मिला, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्रने साधन करनेका उपदेश दिया अर्थात् मोक्षका साधन बताया, जिस कारणसे यह वीर्याध्याय माना गया है।।१९८।।

व्याख्या: इस कारिकामा यह समझाया है कि सर्व लीला कार्य भगवान् प्रायः प्रकरणानुसार ही करते, इस कारण मुचुकुन्दने स्तुति की, तो भी उसको मुक्त न किया, केवल साधनका उपदेश दिया, जिससे यह वीर्य बतानेवाला अध्याय कहा गया है।।१९८।।

बलेन मोचितः स्वास्थ्यं न प्राप्स्यति कथञ्चन।
अतः साधनमुद्दिष्टं प्रवृत्त्ये मृगयाकथा।।१९९।।

यदि भगवान् मुचुकुन्दको बलसे मुक्त कर देते तो मुचुकुन्दको किसी प्रकार

भी आनन्द प्राप्त न होता, इसलिये प्रकरणकी मर्यादाके लिये साधनका उपदेश दिया, प्रवृत्तिके वास्ते मृगया(शिकार)की कथा कही है।।१९९।।

व्याख्या: मुचुकुन्दको मोक्ष न देकर केवल साधनोपदेशसे यह वीर्य चरित्र कैसे? जिससे इस अध्यायको वीर्याध्याय कहा जाता है. इस शंकाके निवारणके लिये 'बलेनमोचितः' कारिका कही है, जिसमृ कहा है कि यदि श्रीकृष्ण अपने प्रमेय बलसे मोक्ष देते तो इसको सुख प्राप्त न होता, इसलिये उस(मुचुकुन्द)के सुखार्थ ही अब उद्धार नहीं किया है, न कि असामर्थ्यके कारण इसको मोक्ष नहीं दिया है, इस कारण इस अध्यायके वीर्याध्याय होनेमृ कोई हानि नहीं है.

यदि यृ है तो 'क्षात्रधर्म स्थितो जन्तून्' इत्यादि क्यृ कहा? इस शंकाको मिटाने केलिये 'प्रवृत्यै मृगया' कथा कही, प्रवृत्तिके लिये मृगया समर्थ थे, यह उत्तर युक्त नहीं है, इसलिये दूसरा पक्ष 'प्रारब्धकर्म' कारिकासे बताते हैं।।१९९।।

प्रारब्धकर्म तद्वृत्तं तेन वा तन्न नाशितम्।
तत्तद्धर्मप्रधानत्वाल्लीलायास्तत्र तत्र हि।।२००।।
तेन वीर्यगुणाद् बुद्धः सा सामर्थ्यं प्राप्य साधने।
तेनाऽर्थान् मुक्तिरेवास्मै तदा भवति सर्वथा।।२०१।।
यवनोऽपि प्रविष्टस्तं ततः सिद्धिमवाप्स्यति।

मुचुकुन्दके प्रारब्धकर्म वैसे थे, इस कारणसे उसका नाश नहीं किया, लीला गुण प्रधान होनेसे गुणानुसार ही वहां – वहां लीला की है, पृथक् – पृथक् प्रसङ्गमृ अपने वीर्य गुणसे साधन करनेकी सामर्थ्य प्राप्त कराके, उन साधनृके करनेका ज्ञान उत्पन्न किया, इससे उस समय ही मानृ वह मुक्त हो गया, यवन भी जो इस(मुचुकुन्द)मृ प्रविष्ट था, वह भी मुक्त हुआ, इससे सिद्धिको प्राप्त होगा(हुआ)।।२००–२०१।।

व्याख्या: प्रारब्ध भोगके बिना नाश नहीं होता है, यृ चतुर्थ स्कन्ध, जो मर्यादा स्कन्ध है, उसमृ कहा है कि प्रारब्ध भोगके बिना नष्ट नहीं होता है, अतः मर्यादाके अनुरोधसे भगवानने यृ किया अर्थात् मृगया(शिकार) कर्ममा फल मुचुकुन्द भोगे, तदर्थ इसको मारा नहीं(उस समय मुक्त नहीं किया) किन्तु इस अध्यायमृ भगवानने वीर्यगुण प्रधान लीलाएं की हैं जिससे वीर्यगुण द्वारा इसके लिये तप करना साधन है, इसलिये तप करनेका ज्ञान दिया, यह ज्ञान ही मुक्तिके समना है मुचुकुन्दमृ प्रविष्ट यवन भी मुक्त होगा.

महाकालमृ जो सोये हुए हैं, उनको क्षुधा तृष्णा आदि जो दोष होते हैं, उनको मिटाकर साधन करनेका सामर्थ्य प्राप्त करानेसे आगे मुक्तिदान सिद्ध है, दूसरे कार्यकी भी सिद्धि हुई अर्थात् यवनकी भी मुक्ति होगी. मुचुकुन्द कथामृ वीर्य निरूपण ही प्रसङ्ग

है, इस प्रकार द्वितीय अध्यायका विचार किया।।२००, २०१।।

यवनैर्दूषिते स्थाने न नित्या मथुरास्थिता।।२०२।।

व्यसनं च ततस्तेषां वारितं वयनार्दनात्।

यवनॄसे दूषित होने पर मथुरा नगरी जैसी नित्य(आगे आनन्दित) थी. वैसे न रही, यवनॄका नाश करनेके उनका मथुरास्थॄका व्यसन(दुःख) मिटाया।।२०२।।

व्याख्या: तृतीयाध्यायका विचार करते हैं...'यवनैः' यवनॄसे मथुरा दूषित हुई, जिससे वहां आगेकी तरह भगवानका सर्वदा सान्निध्य न रहा, अतः मथुरावासी दुःखी हुए, जिनका दुःख भगवानने यवनॄका नाश कर मिटा दिया।।२०२।।

जरासन्धजयार्थाय यवनानां धनं हृतम्।।२०३।।

दुष्टद्रव्यात्तु तस्याऽपि बुद्धिनाशो भविष्यति।

प्रवर्षणगिरिस्थानां जीवानां च विनाशनात्।।२०४।।

भगवान् जरासन्धको जीतनेके लिये भी यवनॄका धन ले आए यदि वह धन वहां रहता तो जरासन्धकी बुद्धि विशेष दुष्ट होती, अब भी उस धनमॄ संसर्गके कारण इस(जरासन्ध)ने प्रवर्षण पर्वत जलाकर वहां रहनेवालॄका नाश कर दिया था।।२०३-२०४।।

व्याख्या: भगवानने यवनॄके धनका हरण क्यॄ किया? इस शंकाको मिटानेके लिये 'जरान्ध जयार्थाय' कारिका कही है. यदि यवनॄका धन वहां पड़ा रहता तो जरासन्ध धनके कारण बलिष्ठ होकर जय प्राप्त करता था धन प्राप्तिसे उसकी बुद्धि अतीव मलीन हो जाती, अब भी स्वल्प सम्बन्धसे प्रवर्षण पर्वतको आग लगाकर वहां स्थित जीवॄका उसने नाश कर दिया।।२०३-२०४।।

अग्नेः सम्प्रार्थनात्कृष्णः प्रवर्षणमथारुहन्।

बलात्मा बलभद्रोऽयमतः सोऽपि निरूप्यते।।२०५।।

इसके अनन्तर अग्निकी प्रार्थनासे श्रीकृष्ण प्रवर्षण पर्वत पर चढ़े, वह बलभद्र बलकी आत्मा होनेसे वह भी(पर्वत पर चढ़े) यॄ निरूपण किया जाता है।।२०५।।

व्याख्या: आचार्यश्रीने इस अध्यायके १०वॄ श्लोकके आभासमॄ कहा है कि प्रवर्षण पर्वतने अपनी ठण्ड दूर करनेके लिये भगवानको प्रार्थना की थी, जिससे भगवान् पर्वत पर चढ़े थे, अनन्तर भ्रष्ट बुद्धि जरासन्धने भगवावनको पर्वत पर छिपा हुआ समझ, पर्वतको आग लगा दी, जिस आगसे पर्वतकी ठण्ड मिट गई, भगवानका प्रवर्षणकर चढ़ना और बलभद्रका उसमॄ साथ देना प्रासङ्गिक ही है।।२०५।।

अतो विवाहस्तस्याऽपि लोकरीतिश्च सम्मता।

बलभार्या निराधस्था नेति भक्ता निरूपिता।।२०६।।

अतस्तस्याः कथामन्यामतिदेशान्न चोक्तवान्।

इससे उस(बलभद्र)का भी विवाह पहले हुआ, जिसमृ लोककी रीति सम्मत थी, बलरामकी स्त्री निरोधमृ स्थित न होनेसे इसकी कथा भक्ति प्रकरणमृ कही गई है, इसलिये उसकी अन्य कथा अतिदेशके कारण यहां नही की है।।२०६।।

व्याख्या: बलभद्रजीका विवाह पहलेकर श्रीकृष्णने लोक रीतिको अपनाया अर्थात् आदर किया. बलरामकी स्त्रीका निरोध न होनेसे इसकी कथा भक्ति प्रकरण नवम स्कन्धमृ कही है. इससे उसकी अन्य कथा अतिदेश होनसे यहां नहीं कही है।।२०६।।

विवाहो द्विविधो लोके धर्मार्थो भोगसाधकः।।२०७।।

लोकमृ विवाह दो प्रकारके होते हैं: १. धर्म संग्रहके लिये, २. भोग भोगनेके लिये।।२०७।।

व्याख्या: इस अध्यायमृ यशका कार्य हुआ है, यो 'विवाहो द्विविधो' कारिकासे लेकर तीन कारिकाओमृ समझायी है, जिसमृ भगवानके यशरूप गुणका कार्य कहा है।।२०७।।

आद्यो धर्म्यस्तु कर्त्तव्यः पश्चाद्भोगार्थसाधकः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ।।२०८।।
विधिश्च वैदिकश्चैव सह सर्वैः स्वबान्धवैः।
रुक्मिण्यां प्रथमायां तु विवाहत्रयमुक्तवान्।।२०९।।
गान्धर्वो ब्राह्मणद्वारा स्तोत्रं भावावबुद्धये।

प्रथम धर्म(धर्म सिद्धि जिससे होती है, वह) विवाह करना चाहिये अनन्तर भोग सिद्धिके लिये दूसरा विवाह करना उचित है, गान्धर्व और राक्षस प्रकारके विवाह क्षत्रियके लिये धर्म है।।२०८।।

विधिपूर्वक एवं वैदिक विवाह अपने सर्व बान्धवोमृसे मिलकर करना नीति संगत है, अतः वह तीसरा विवाह तथा गान्धर्व विवाह ब्राह्मणके द्वारा स्तुति एवं भावकी सिद्धिके लिये है।।२०९।।

व्याख्या: प्रथम विवाह रुक्मिणीसे किया था. इस(रुक्मिणी)का विवाह तीन प्रकारसे हुआ था वह पहला गान्धर्व विवाह ब्राह्मण द्वारा हुआ, जिसमृ रुक्मिणीने अपना प्रेम भगवान् जान सके, इसलिये स्तुति की है, योमृ तृतीय अध्यायका अर्थ बताया।।२०८, २०९।।

प्रसह्य कन्याहरणं द्वितीये स्पष्टमेव हि।।२१०।।
तत्सिद्ध्यर्थं तथा चक्रे कालः सत्सेवको यतः।

उत्तरोत्तरभावस्य वृद्ध्यर्थं रुक्मिणीवचः।।२११।।
विवाहकालात्पूर्वेद्युर्हरणं सर्वसम्मतम्।

रुक्मिणीका दूसरा विवाह वह था, जिसमृ राक्षस रीति(जबर्दस्ती)से उसको लाया गया, अतः यह दूसरा विवाह स्पष्ट ही राक्षस विवाह है, क्षत्रियके लिये इस प्रकारका विवाह भी धर्म है, वह समय भी ऐसा बन गया, जिसमृ हरण होसका, जिसका कारण यह है कि काल आपका श्रेष्ठ सेवक है, रुक्मिणीके वचन इसलिये हैं कि उत्तरोत्तर प्रेमकी वृद्धि होती रहे विवाह कालसे एक दिन पूर्व हरणकी सर्व सम्मति है।।२१०-२११।।

व्याख्या: रुक्मिणी हरणके कार्य सिद्धयर्थ भगवानके श्रेष्ठ सेवक कालने राजाओमृ ऐसी अहंकारवाली बुद्धि उत्पन्न की, जिससे वे समझने लगे कि हमारे आगे इस गोपालकी क्या सामर्थ्य है, जो हमारा भाग ले जाय, किन्तु विवाह कालसे पहले ही इसका हरण किया जाय, यह सर्व सम्मत था, अतः विवाहके पहले दिन भगवानने रुक्मिणीका जब हरण कर लिया, तब वे राजा अहंकारसे बोलने लगे. 'अहोधिगस्यधयाः' हम लोगृके यशको धिक्कार है, 'आदि' शब्द कहकर लड़नेके लिये तैयार हुए, किन्तु उनकी एक न चली भगवानने रुक्मिणीको ले जाकर उसके साथ मुहूर्तके दिन ही विधिपूर्वक विवाह किया, इस रुक्मिणीने 'नमस्येत्वाऽम्बिकेऽभीक्ष्णं' आदि वचन कहे, जिसका प्रयोजन यह था कि हमारे प्रेम भावकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे.

ये तीन विवाहृकी कथा समाधियाभाषा नहीं है, किन्तु शुकदेवजीने योग्य प्रभावसे अन्य फलकी कथा परीक्षितके प्रश्नका उत्तर देनेके लिये कही है. श्रीसुबोधिनीके अनुसार 'स्वयं वर' जिसका वर्णन ४९वृ अध्यायके २६वृ श्लोकमृ किया गया है. वह विवाह ही समाधिभाषा प्रोक्त विवाह है।।२१०, २११।।

समुद्रस्तु पिता तस्याः कालकूटोऽग्रजः स्मृतः।।२१२।।
स दैत्यानां हिताकाङ्क्षी हराविष्टो बलोऽहनत्।

रुक्मिणीका पिता(भीष्मक) समुद्र रूप था और उसका भाई रुक्मी कालकूटका रूप था, जो दैत्यृका हित चाहता था, अतः शंकरके आवेश युक्त बलने उस(रुक्मी)को मारा।।२१२।।

व्याख्या: पञ्चमाध्यायका विचार करते हुए शंका करते हैं कि जब भीष्मक आदि समस्त बान्धवृकी इच्छा थी कि रुक्मिणी श्रीकृष्णको दी जाय, तब अकेला रुक्मी क्यृ विरुद्ध होने लगा? इस शंकाको इस कारिका द्वारा मिटाते हैं. भीष्मक जो रुक्मिणीका पिता था, वह समुद्र रूप होनेसे विशाल हृदय था, वैसे अन्य भाई बान्धव

भी भीष्मकके पक्षके थे केवल 'कालकूट रूप'होनेसे रुक्मी जो रुक्मिणीका बड़ा भाई था, वह दैत्यॄका पक्षपाती था, उनका ही हित चाहनेवाला था, भगवानने क्यॄ नहीं मारा? इस कारिकासे इस शंकाका समाधान है कि बलरामने इसलिये मारा कि उसमॄ महादेवका आवेश है।।२१२।।

जिघांसन्तं जिघांसीयात्तथाऽपि न हरिः स्वयम्।।२१३।।
जघान रुक्मिणं मूढं दैत्यानां बुद्धिनाशकम्।
वधानुकल्पः स्वद्रोहे भक्तद्रोहे वधः स्मृतः।।२१४।।
वधानुकल्परूपं हि मुण्डनं तच्चकार ह।
सर्वात्मा भगवान् कृष्णो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।२१५।।
यो यथा यं प्रपद्येत सोऽपि तन्मन्यते तथा।
रुक्मिण्यर्थं समागत्य तथा रुक्मी चकार ह।।२१६।।
अतः कृष्णं प्रार्थयित्वा रुक्मिणी तं व्योमचयत्।
भगवद्व्यतिरिक्तानामन्यधर्मः प्रवर्त्तते।।२१७।।
नटवत्कपटाद्वाऽपि ततः प्राह बलस्तथा।
द्वारकायां तु नेतव्यः सुखं बध्वाऽल्पबन्धनैः।।२१८।।
ततो मया प्रबोध्यश्च नाऽन्यथेत्यन्तरं श्रियः।
तदभावाद्वैमनस्यं तद्रामेण निवारितम्।।२१९।।

जो अपनेको मारना चाहे, उसको मार देना चाहिये, यॄ मर्यादा होने पर भी दैत्यॄकी बुद्धिको नाश करनेवाले मूढ़ रुक्मीको भगवानने मार नहीं, जब कोई स्वयं भगवानका द्रोह करता है, तब प्रभु उसको मारने जैसी शिक्षा देते हैं, किन्तु मारते नहीं. यदि कोई भक्तका द्रोह करता है तो उस भक्तद्रोहीको प्रभु स्वयं नाश करते हैं।।२१३-२१४।।

मुण्डनको वधके तुल्य कहा गया है, अतः भगवानने रुक्मीका मुण्डन किया. श्रीकृष्ण सर्व आत्मा होनेसे सर्वरूप हैं, जिसकी जिसमॄ श्रद्धा हो, वह उसका रूप हो जाता है।।२१५।।

जो जिसको जिस भावसे भजता है, वह भी उसको वैसा मानता है, जब रुक्मी रुक्मिणीको छुड़ानेके लिये कृष्णसे युद्ध करने लगा, तब रुक्मिणीने कृष्णको प्रार्थनाकर इसे(रुक्मीको) बचाया।।२१६।।

भगवानके सिवाय जो अन्य हैं, उनके धर्म पृथक् प्रकारके हैं, इसलिये बलरामने जो वचन कहे, वे नटकी तरह वा कपट युक्त थे।।२१७।।

साधारण बन्धनसे(रुक्मीको) बान्धकर सुखपूर्वक द्वारका ले जाना चाहिये,

अनन्तर मैं उसको समझाऊंगी, अन्य प्रकारसे यह समझेगा नहीं, रुक्मिणीके कहनेका यह भाव था, याॄ न होनेसे रुक्मिणी अप्रसन्न हुई, जिस अप्रसन्नताका निवारण बलरामने किया।।२१८-२१९।।

व्याख्या: तब रुक्मिणीने उस(रुक्मी)को मरनेसे क्याॄ और कैसे बचाया? जिसके उत्तरमॄ कहा है कि सर्वात्मा.....सः श्रीकृष्ण सर्वकी आत्मा होनेसे सर्वरूप हैं और जो जिसमॄ जैसी श्रद्ध रखता है, वह वैसा हो जाता है, रुक्मिणीकी श्रीकृष्णमॄ भगवान्पनकी श्रद्धा थी, अतः वह(रुक्मिणी) भगवद्रूप हो गई थी, ऐसी रुक्मिणीको छुड़ानेके लिये रुक्मी भगवानसे युद्ध करनेके लिये प्रवृत्त हुआ था, भगवद्रूप रुक्मिणीने जान लिया कि यह मुझे छुड़ा तो नहीं सकेगा किन्तु युद्धमॄ मारा जायेगा, अतः श्रीकृष्णसे प्रार्थना करुं तो इसको मारे नहीं, इस विचारसे भगवानसे प्रार्थना की, तब भगवानने मारा नहीं, केवल मुण्डन कर दिया.

यदि याॄ है तो बलरामने भगवानको उपालम्भ क्याॄ दिया? इस पर 'भगवद्व्यतिरिक्तायांनाम्' कारिका कहकर इस शंकाका निवारण किया है. भगवानसे पृथक् जो अन्य हैं, उनमॄ 'अन्य धर्म' रजोगुण, तमोगुण प्रवृत्त होता है; क्याॄकि उनमॄ गुणाॄका क्षोम हो रहा है, भगवानमॄ मायासे नटकी तरह वा अविद्यासे कायस्थ दोनाॄका होना अनुचित है. कारण प्रभु शुद्ध कारणसे बलभद्रने जैसे मृत्स्नाभक्षण लीलाके समय उलाहना दिया था, वैसे ही यहां भी दिया है, इसी तरह भगवानके आशयको न जाननेसे ऐसे वचन कहे हैं.

भगवानमॄ दयालुपन है, इसलिये रुक्मिणीकी प्रार्थनासे जैसे मारनेसे रुक गये, वैसे यदि रुक्मिणी प्रार्थना करती तो वह रुक्मी बन्धनसे भी छूट जाता, वह प्रार्थना क्याॄ नहीं की? जिसके उत्तरमॄ कहा कि रुक्मिणीको रुक्मीका बन्धन अभीष्ट था, उसका प्रकार बताते हैं कि बान्धकर द्वारका ले चलना; क्याॄकि वहां चलेगा तो मैं उस(रुक्मी)को ज्ञान दे सकूंगी, दूसरे प्रकारसे इसको ज्ञान प्राप्त न हो सकेगा, उसका मुण्डन किया गया, जिससे रुक्मिणीको दुःख हुआ, जिसका निवारण रामने किया।।२१३ - २१९।।

तथा चेत्कुरुते कृष्णस्तदा लोको विरुध्यते।
अस्मान् वञ्चयितुं रुक्मी कृष्णपक्षोऽप्युपाह्वयत्।।२२०।।
यावज्जीवं तदा दुःखी दैत्यो दैत्यविसम्मतः।
ज्ञानाध्याये तथा युक्तं दैत्यानां मुण्डनं मतम्।।२२१।।
अत एव पुनः स्थानं कुण्डिनं न विवेश ह।
रुक्मिणीसहितः कृष्णः सर्वेषां सुखदोऽभवत्।।२२२।।

एवं त्रिविधजीवानामुद्धर्त्ता व्यसनार्णवात्।
ततः कृष्णव्यसनिनो जाताः साधनमीरितम्।।२२३।।

यदि श्रीकृष्ण मुण्डन न कर केवल बन्धन करते तो लोग(जरासन्ध आदि) इस(रुक्मि)का विरोध करने लग जाते, जिससे रुक्मी दैत्याॄसे अपमानित होनेसे सदैवके लिये दुःखी हो जाता.

ज्ञान गुणको बतानेवाले अध्यायमॄ दैत्याॄका मुण्डन ही उचित कहा है. इस कारणसे रुक्मी लौटकर कुण्डिनमॄ आया नहीं.

रुक्मिणी सहित श्रीकृष्ण सबके सुखदाता बने, इसी तरह तीनॄ प्रकारके जीवॄका व्यसनरूप(दुःखरूप) समुद्रसे निकाल लिया, याॄ करनेके अनन्तर सब श्रीकृष्णमॄ व्यसनी हो गये, याॄ इसमॄ साधन बताए।।२२० – २२३।।

व्याख्याः सर्वज्ञ भगवान् जब रुक्मिणीके अभिप्रायको जानते थे, तब रुक्मिणीके अभिप्रायानुसार क्याॄ नहीं किया? इस शंकाको मिटानेकेलिये 'तथोचित' कारका कहते हैं, जिसमॄ भगवान् यदि रुक्मिणीके अभिप्रायानुसार केवल बन्धन करते मुण्डन न करते, तो जरासन्धादि दैत्य रुक्मीसे विरोध करते और कहते कि रुक्मी वस्तुतः कृष्णके पक्षका है, हमको केवल छलनेके लिये बुलाया है, इसी तरह उनसे तिरस्कृत रुक्मी जीवन पर्यन्त दुःख भोगा.

मुण्डन करनेका अन्य आशय 'ज्ञानाध्याये' कारिकासे बताया है. इस ज्ञानाध्यायमॄ बताया है कि दैत्याॄका मुण्डन ही उचित है, मुण्डनसे ही उनकी या तो मृत्यु हो गई, ऐसा माना जाता है, मरा हुआ तो लौट नहीं आता है. अतः रुक्मी कुण्डिनपुरमॄ लौटकर नहीं आया, किन्तु भोजकट नगरी बनाकर वहां रह गया.

तीन अध्यायॄके अर्थका उपसंहार करते हैं कि 'रुक्मिणी सहित' भगवान् इसी तरहकी लीलाकर सर्वके सुखदाता बने और तीन प्रकारके जीवॄको दुःख सागसरे निकाले, याॄ करनेसे सर्व कृष्ण व्यसनी बन गये. इस तरह पञ्चमाध्यायका विचार किया।।२२० – २२३।।

कामेन व्यसनं लोके स स्वयं व्यसनं गतः।
देहनाशात्सर्वनाशाद्भार्याहरणतोऽपि हि।।२२४।।
व्यसनं तद्देवदेहाज्जातं चेन्नेव नश्यति।
यदा मुक्तिप्रदानार्थं वासुदेव समुद्गतः।।२२५।।
तदा माया च कामश्च तस्माद्बन्धार्थमुद्गतौ।
मायया मोहितो जीवः कामैर्नानाविधोऽभवत्।।२२६।।
कामोत्पत्तिर्यदा कृष्णात्तदा तद्व्यसनं हतम्।

स्वस्थः स्मृत्या विरक्तश्च सर्वानेव प्रबाधते।।२२७।।
कृष्णसम्बन्धिदेहेन रुद्धो वा न तथाविधः।
एवं षड्भिः समस्तानां व्यसनाभाव ईरितः।।२२८।।

लोकमॄ काम ही दुःखका मूल कारण है अर्थात् कामसे ही दुःख प्राप्त होता है, वह स्वयं भी देह धनुष आदिके नाशसे तथा स्त्रीके हरण हो जानेसे दुःखी हुआ.

यदि व्यसन देव देहसे प्राप्त हुआ तो नाश नहीं होता है, जब कि मुक्त्यर्थं वासुदेव प्रकट हुए तब माया एवं काम दोनॄ दुःखसे छूटनेके लिये प्रयत्नार्थ बाहर प्रकट हुए.

मायाके द्वारा मोहित और अनेक कामनाओंको करता है, जिससे बहुत प्रकारका दुःख होता है, जब कृष्ण द्वारा काम उत्पन्न हुआ, तब व्यसन(दुःख)का नाश हुआ, जो स्वस्थ तथा स्मृतिसे वैराग्यवान होता है, वह सबको दुःख देता है. जिसके देहका कृष्णसे सम्बन्ध होनेसे उसमॄ निरोध हो गया है, वह वैसा(सर्वको दुःख देनेवाला) नहीं होता है. इस तरह छः अध्यायोंसे सकलॄके दुःखोंका नाश वर्णित है।।२२४ – २२८।।

व्याख्या: छठे अध्यायका विचार करते हैं 'कामेनः व्यसनाभाव ईरितः'. श्रीशंकर भगवानने अपने तीसरे नेत्रसे कामको दग्ध किया जिससे उसके २शरीर, धनुष आदि सकल परिकरका नाश हो गया तथा उसकी स्त्री(रतिको) शम्बर ले गया, जिस समयमॄ मायाने रतिमॄ प्रवेश किया, जिससे उसना नाम मायावती हो गया. इस प्रकरणकी श्रीसुबोधिनी देखिये कामको यह व्यसन देव(शंकर)के देहसे प्राप्त हुआ, जिससे देहका नाश न हुआ, अतः जब दुःखसे युक्त करनेके लिये वासुदेव प्रकटे, तब माया तथा काम दोनॄ वह दुःख दूर करनेके उपायको ध्यानमॄ लाकर अपनेको प्रकट किया अर्थात् अलौकि प्रकारसे कार्य(प्रकरण) करने लगे. मायासे मोहित जीव अनेक कामनावाला होनेसे अनेक प्रकारका हो जाता है।।२२४ – २२८।।

दुष्टव्यसनभावत्वात्ते कृष्णेऽपि तथा जगुः।
तेषां वा व्यसनं कृष्ण आधिदैविकमात्मनि।।२२९।।
पश्चात्तं नाशयामास धर्म्यध्यानेन सिद्धता।
फलसाधनयोरैक्यं वक्तुमेका कथोच्यते।।२३०।।
मणिश्च व्यसनं हन्ति लोके ख्यातस्ततोऽपि चेत्।
व्यसनानि विनश्येरंस्तदा नैकान्तिको हरिः।।२३१।।
इति तस्य निराकृत्यै ततो व्यसनमुच्यते।
तच्चाऽपि चेत्कृष्णवाक्यात्साद्ध्यते सर्वभावनः।।२३२।।

तदा व्यसननाशाय कल्पते नाऽन्यथा तु तत्।
इति निश्चित्य भगवान् सत्राजितमुवाच ह।।२३३।
मणेर्यावद्धनं प्राप्यं तद्राजा दास्यतीति हि।
अविश्वासं कृष्णवाक्ये कृत्वा तं नैव दत्तवान्।।२३४।।
ततः सर्वक्षयो जात इति वक्तुं कथोच्यते।
सूर्यभक्तस्तु सत्राजित्ततो लक्ष्मीं सरस्वतीम्।।२३५।।
मणिरूपां कन्यकां च द्वयं भोग्यं हरेः परम्।
तयोरन्यत्र सत्राजिद्विनियोगं हि वाञ्छति।।२३६।।

एक तो वे(द्वारकावासी) दुष्ट स्वभाववाले थे तथा दुःखी भी थे, इसीलिये श्रीकृष्णके लिये भी वैसा ही कहा. आत्मरूप कृष्णके लिये असत् आक्षेप करनेसे उनको आधिदैविक दुःख प्राप्त हुआ।।२२९।।

अनन्तर भगवानने उनके दुःखका नाश किया, यह अध्याय धर्मी अध्याय है, जिसमॄ धर्मीने मणि कलम मिटाकर उनको अपनेमॄ व्यसना किया, फल तथा साधन एक ही होनेसे उनकी कथा साथमॄ ही कही है।।२३०।।

मणि दुःखॄाको मिटाती है, लोककी यह प्रसिद्धि यदि सत्य मान ली जावे तो हरि स्वयं एकाकी दुःख मिटानेमॄ समर्थ हैं, यॄ कहना असंगत होगा, अतः वह मणि दुःखनाश कर्त्री नहीं है, इसलिये अब तक दुःख मिटा नहीं है, यॄ कहा है.

यदि श्रीकृष्णके कहनेके अनुसार मणि सर्वकी सुखकर्त्री मानो वा बनाई गई होती तो मणि सुखदायिनी हो जाती, यॄ न करनेसे यह सुखदायी न हुई, इस प्रकार निश्चयकर भगवानने सत्राजितको कहा कि मणिसे जितना धन मिलेगा, उतना धन तुझे राजा देगा. कृष्णके कहनेका विश्वास न कर मणि उनको न दी।।२३२ – २३४।।

मणि न देनेके कारण सर्वनाश हो गया, यॄ बतानेके लिये उसकी कथा कही गई है. मणि रूप लक्ष्मी तथा सरस्वती रूप कन्या जो दोनॄ हरिको भोग योग्य थी, उनको सत्राजित सूर्य भक्त होनेसे कृष्णको न देकर अन्यको देना चाहता था।।२३५,२३६।।

व्याख्या: सकल व्यसन जब निवृत्त हो गये, तब शेष कौनसा व्यसन रहा, जिसकी निवृत्ति करनेका उपाय करना रहा है, इस प्रश्नके उत्तरमॄ कहा जाता है कि माया कृत आधिदैविक व्यसन शेष रहा था, उसकी निवृत्तिका उपाय स्वयं धर्मी करने लगे, यॄ सप्तम अध्यायका अर्थ समझाते हुए, उसको विचारते हैं, वे द्वारकावासी दुष्ट स्वभाववो तथा दुःखी थे, अतः कहने लगे कि यह मणि प्रसेनको मरवाकर श्रीकृष्णने ले ली है, श्रीकृष्णकी इस निन्दाके कारण इनको माया द्वारा आधिदैविक दुःख प्राप्त हुआ, जिस दुःखको यह स्वयं किसी तरह मिटा नहीं सकते थे. अतः श्रीकृष्ण धर्मी स्वरूपने

इस दुःखको मिटानेका उपाय स्वयं दयालुताके कारण किया, ये द्वारकावासी तो निरुद्ध थे, उनको ऐसा प्रतिकूल भाव कैसे उद्भव हुआ? यॄ अरुचिसे दूसरा पक्ष कहते हैं कि लोक कथाके भावको न समझकर ही कहने लगे कि मणि श्रीकृष्णके पास है, इस कारण ही आधिदैविक दुःखको प्राप्त हुए. अनन्तर भगवानने सिद्ध कर दिया था कि मणि मेरे पास नहीं है, यह निन्दा असत्य है. जहां जिनके पास मणि थी, उससे लाकर दिखा दी, यॄ करनेसे वह दुःख भी दूर हुआ और भगवद्व्यसनकी सिद्धि हुई.

इस प्रकरणमॄ जो रुक्मिणिके विवाहकी कथा कही है, वह व्यसन रूप साधनके उपोद्धातके रूपमॄ कही है, उस(रुक्मिणी विवाह)से व्यसन(दुःख) मिट जानेसे साधन सम्पूर्णतः सिद्ध हो गया, फिर इस प्रकरणमॄ सत्राजितने अपनी कन्या सत्यभामा भगवानको दी, इसके कहनेका क्या प्रयोजन था? इस पर कहा है कि यह विवाह फल है, रुक्मिणी – विवाह साधन था, इसलिये(फल साधनकी एकता) ही एक ही कथा यहां कही है. लोकमॄ प्रसिद्धि हो गई थी कि मणि दुःख दूर करती है, यदि यॄ होवे तो हरि तो एकाकी दुःख दूर करते हैं. यह कहना यथार्थ देखनेमॄ न आएगा, इसलिये इस कारिकासे दिखाया है कि मणिसे तो दुःख हुआ है, इस कारणसे मणि दुःख हर्त्री नहीं है, किन्तु दुःखका कारण है, जैसे मणिके कारण ही प्रसेन और सिंह आदिका मरण हुआ, अतः मणि दुःखका कारण है, भगवान् ही एक दुःखहता है.

मणि दुःख मिटानेवाली नहीं है, इसको सिद्ध करनेके लिये दिखाया है कि मणिसे यह आधिदैविक दुःख हुआ है, इस कारण मणिकी कथा कही है. श्रीकृष्णके वचनानुसार यदि कार्य किया जाता तो मणि सर्वको सुखदायी बनती, तदनुसार न करनेके कारण ही सुखदायी न बनकर दुःखदायी बन गई है. श्रीकृष्णने सत्राजितको कहा कि यह मणि राजाओंके पास रह सकती है, उसको दे देवे, फिर राजा जितना धन आपको चाहिये, दे देगा. श्रीकृष्णके वचनॄ पर विश्वास न आनेसे मणि नहीं दी, जिससे सर्वनाश हुआ, यह बतानेके लिये मणिकी कथा कही है, जिस कथाके कहनेका प्रयोजन इस कारिकासे स्पष्ट कर दिया है.

भगवानने सत्राजितसे मणि किसलिये मांगी? भगवानका इसमॄ क्या आशय था? भगवानका आशय उसकी कन्या लेनेका था, क्योंकि मणिरूपा लक्ष्मी तथा सरस्वतीरूपान कन्या दोनॄ पदार्थ भगवानके ही भोग्य थे, उसन दोनॄको सत्राजित अन्यको देना चाहता था, कारण कि अन्य(सूर्य)का भक्त था।।२२९ – २३६।।

अक्लिष्टकर्मा भगवान् कन्यार्थं तत्तथाऽकरोत्।
यादवोऽप्यन्यभक्तत्वान्न निरुद्धः प्रसेनकः।।२३७।।
मणेरतिक्रमाच्चैव मायाभृत्येन मारितः।

सोऽपि वत्क्रेण संस्पर्शाद्रामभक्तेन मारितः।।२३८।।

भगवान् जो कुछ कर्म करते हैं, वह बिना क्लेशके करते हैं, इसलिये कन्याके वास्ते बिना प्रयासवाला यह कार्य किया, प्रसेन यादवका निरोध नहीं किया था कारण कि वह अन्यका भक्त था।।२३७।।

मणिका तिरस्कार करनेसे मायाके सेवकने प्रमेयको मारा, उसने भी मुखसे स्पर्श किया था, जिससे राम भक्तने उसको मारा।।२३८।।

व्याख्या: प्रसेनका इस प्रकार मरण कैसे, क्यॄ हुआ? प्रसेन यादव था एवं अन्यका भक्त था, इसलिये उसका विरोध न हुआ था, अतः इसने मणि जो पूजनेके योग्य थी, उसका आभरणकर कण्ठमॄ धारण कर लिया, इससे उसको माया(देवी)के मृत्यु(वाहन) सिंहने मारा फिर सिंह क्यॄ मारा गया? जिसक उत्तरमॄ कहते हैं कि सिंहने मुख छूकर उच्छिष्ट किया था, सिंहका मुख अपवित्र होता है, केवल चर्म एवं नख शुद्ध होते हैं. सिंहने उच्छिष्ट करनेसे मणिका अतिक्रमण किया, जिससे इको राम भक्त जाम्बवानने मारा. भगवानने जाम्बवानसे कन्या लेनेके लिये गुफामॄ प्रवेश किया था न कि मणि लेनेके लिये; क्यॄकि भगवानने पहले ही अपनी निन्दा असत्य सिद्ध कर दी थी।।२३७,२३८।।

भक्तबालकसौख्याय मणिश्रीस्तत्र तिष्ठति।
ततः सा कन्यका प्राप्ता केवलोऽभून्मणिस्तदा।।२३९।।
तदुच्छिष्टं न शुद्धं हि कृपया तदुपानयत्।
कन्यार्थमेव गमनं कालीयह्रदवत्पुनः।।२४०।।
राजसानां परीक्षार्थं बहुकालं न चाऽऽगतः।
जाम्बवद्रोधसिद्ध्यर्थमात्मतत्त्वं विहाय हि।।२४१।।

भक्त बालकको आनन्द प्राप्त हो, मणिकी श्री(शोभा) वहां रही थी, वहां जाने पर भगवानको जब जाम्बवानकी कन्या प्राप्त हुई, तब मणि कान्तिहीन हो गई।।२३९।।

वह उच्छिष्ट मणि शुद्ध नहीं रही थी तो भी भगवानने कृपाकर वह(मणि) ले पधारे. जिससे आपका कलम सदैवके लिये दूर हो जाये, किन्तु आप तो कन्या लेनेके लिये ही पधारे थे तथा जैसे कालीयह्रदमॄ परीक्षार्थ पधारे थे, वैसे यहां राजसॄकी परीक्षाके लिये बहुत दिन रहे और जाम्बवानके निरोधकी सिद्धि हो, आत्म तत्त्वको वहां छोड़कर पधारे।।२४० – २४१।।

व्याख्या: उच्छिष्ट मणि अशुद्ध होनेसे लाना उचित नहीं था, किन्तु अपना अपशय सदैवके लिये मिट जाय, इसलिये कृपाकर मणि लाए. गुफामॄ तो आप

जामबवानकी पुत्री सत्यभामाको लानेके लिये पधारे थे, वहां आप बहुत दिन ठहर गए, क्यूंकि राजसूकी परीक्षा लेनी थी, वे राजस १२ दिन ठहरकर भगवानको आया हुआ न देख द्वारका लौट गए. भगवान् वहां जाम्बवानका निरोध सिद्ध हो तदर्थ इतने दिन रहे, अन्तमू आत्मतत्व वहां ही छोड़ अपना ज्ञान कराया।।२३९ – २४१।।

सप्तविंशतितत्त्वानि मुष्टिभिर्निहतानि वै।
ततः स्वरूपनिष्ठस्तु भगवज्ज्ञानमेयिवान्।।२४२।।
लक्ष्मीं च कन्यकां बुध्वा लीलार्थे चाऽऽगतिं तथा।
सत्त्वं सम्पाद्य पूर्वं हि मणिं कन्यां ददौ ततः।।२४३।।
उच्छिष्टत्वान्मणिं कृष्णः सत्राजिद्दत्तमप्युत।
न गृह्णादात्मजां वाणीं युक्तां स्वां जगृहे मुदा।।२४४।।
सर्वात्मनान्यहृदयं न गृह्णाति हरिः स्वयम्।
सर्वात्मना प्रपन्नं च नाशायैव कलिं यथा।।२४५।।
उच्छिष्टं भक्त योग्यं हि फलं भक्ताय दास्यति।
एवं सप्तभिरध्यायैर्व्यसनं सुनिरूपितम्।।२४६।।

शेष सत्ताईस(२७) तत्वूका भगवानने मुष्टियूसे प्रहार किया, अनन्तर स्वरूपस्थ जाम्बवानको यह ज्ञान होने लगा कि ये भगवान् हैं।।२४२।।

जब यह ज्ञान हुआ, तब समझा कि मेरी यह कन्या(जाम्बवती) लक्ष्मी है और भगवान् लीला करनेके लिये यहां पधारे हैं, यूा जाननेसे सतोगुण प्राप्तकर साधुता संयुत होकर अर्थात् सेवक बनकर मणि तथा अपनी कन्या दोनूा भगवानको अर्पण की।।२४३।।

मणि उच्छिष्ट थी, इसलिये सत्राजितने दी तो भी भगवानने नहीं ली, कन्याको अपनी पत्नी होने योग्य जानकर प्रसन्नतासे ले ली।।२४४।।

जिसका हृदय सर्वात्म रूपसे दूसरेमू आसक्त हो, उसको हरि स्वीकार नहीं करते हैं, जो सम्पूर्ण रीतिसे शरण नहीं आया है, उसको हरि अपनाते नहीं है अर्थात् अपनाकर स्वीकारते नहीं है, जैसे दुर्योधनसे नाशका ही विचार किया।।२४५।।

भक्तके भोगने योग्य उच्छिष्ट फल भगवान् भक्तको ही देते हैं. इस तरह सात अध्यायूमू राजसूके भगवानमू हुए व्यसनका वर्णन किया।।२४६।।

व्याख्या: जब भगवानने अपना कलम मिटा दिया था, फिर मणिके लिये गुफामू क्यूा पधारे? इस ३९वीं कारिका 'भक्त...तदा' भक्त बालकके विनोदके लिये वहां श्रीरहित मणि थी, प्रभु तो जाम्बवानसे कन्या ग्रहणार्थ पधारे थे.

दूसरेकी मांगी हुई कन्याको भगवानने क्यूा ग्रहण की. इस शंकाके उत्तरमू

२४५वीं कारका कहते हैं: 'सर्वात्मना.....यथा' जिसका हृदय सर्वतः सम्पूर्ण दूसरेमृ नहीं लगा हुआ हैं, उसको ही हरि ग्रहण करते हैं. इसका दूसरेमृ हृदय नहीं था, इसलिये ही प्रसन्नतासे ग्रहण किया है, मणि क्यृा नहीं ली? जिसका उत्तर देते हैं कि वह उच्छिष्ट इस अध्यायमृ धर्मी स्वरूपसे की हुई लीला स्पष्ट है, यृा सातवां अध्याय विचारा. इस प्रकार ६० श्लोकृासे साधन प्रकरण विचारकर 'एवं सप्तभिः' कारिकासे उपसंहार किया।।२४२ – २४६।।

राजस साधन उपप्रकरण सम्पूर्ण.

राजस फल प्रकरण

(अध्याय ५४ से ६०)

जरास साधन प्रकरणमृ विचार करनेके बाद राजस फल प्रकरणका ५८ कारिकाओृसे विचार करते हैं.

अतः फलं सप्तभिर्वै राजसानां निरूप्यते।
अक्रूरो यादवानां हि मुख्यस्तस्य फलं पुरा।।२४७।।
ततः पञ्च विवाहाश्च विद्यापर्वस्वरूपकाः।
नायिकाः फलरूपा हि कृष्णसम्बन्धतो मताः।।२४८।।

जिस कारणसे साधन प्रकरण सात अध्यायृामृ कहा, उसी कारणसे राजसृाका फल प्रकरण भी सात अध्यायृासे कहा जाता है, यादवृामृ मुख्य अक्रूर है, जिससे उसका फल पहले कहा जाता है।।२४७।।

इसके बाद विद्याके पर्वस्वरूप(अङ्गरूप) पांच विवाह कहे जायृगे, क्यृाकि इन विवाहोमृ जो नायिकाएं, वे श्रीकृष्णके सम्बन्धके कारण फल स्वरूप मानी गई है।।२४८।।

व्याख्या: यह प्रकरण राजस भक्तृाको जो फल प्राप्त हुआ, उसका निरूपण करता है, इस कारणसे इस उपप्रकरणका नाम राजस 'फल' प्रकरण पड़ा है. यहां यह प्रश्न होता है कि कौनसा फल है? जिसके उत्तरमृ कहते हैं कि यहां साधन प्रकरणके समान, एक प्रकार नहीं है, किन्तु अनेक प्रकार हैं, अतः उनको बतानेके लिये उस – उस अध्यायके फलका प्रकार पृथक् – पृथक् कहा है, जैसे अक्रूर यादवृामृ मुख्य होनेसे, पहले अध्यायमृ उसका फल कहा है।।२४७।।

भगवत्सम्बन्ध फल स्वरूप है, यृा पूर्व प्रकरणमृ सिद्ध हो गया है, इसलिये इन(कृष्ण)का वैसा(फलरूप) होता तो उचित है, किन्तु नायिकाओृका फल रूपत्व

कैसे? इस शंकाके उत्तरमॄ दूसरे अध्यायमॄ जिस प्रकार वर्णन है, उसके लिये कहते हैं।।२४८।।

तासां फलं हरिः कृष्णतत्सम्बन्धात्तथेतरे।
कृष्णं फलमुपासाद्य दुःखग्रामाद्विनिर्गताः।।२४९।।

उन(नायिकाओ)का फल हरि(कृष्ण) हैं, इसलिये उनके सम्बन्धसे ये भी वैसी(फलरूपा) हो गई, जिससे ये फलरूप कृष्णको पाकर दुःख समूहसे छूट गई।।२४९।।

व्याख्या: कृष्णके साथ उनका सम्बन्ध होनेसे सम्बन्धि रूपसे वे फल रूप हो गई, जिस कारणसे दुःखसे छूट गई. इसी तरह अधिकारी भेदसे फलका भेद द्वितीयाध्यायमॄ कहा।।२४९।।

ततोऽग्रे षोडशकलवृत्तिरूपाः सहस्रशः।
सम्बन्धेन हरिं प्राप्तास्तत्सम्बन्धात्तथेतरे।।२५०।।
फलं चतुर्विधं तत्र कृष्णप्राप्तिः पुरा फलम्।
स्वप्राप्तिः कृष्णदेवस्य द्वितीयं फलमुच्यते।।२५१।।
अन्योन्याध्यासवच्चैतत्फलद्वयमुदाहृतम्।

उसके बाद एक हजारमॄ जो १६ कलावाले मनकी वृत्तिरूपा स्त्रियां थीं, उनको सम्बन्ध होनेसे हरि(भगवान्) प्राप्त होते हैं अर्थात् वे वृत्तिरूपा स्त्रियां सम्बन्धसे हरिको प्राप्त हुई, उन स्त्रियाॄके सम्बन्धसे दूसरी भी कृष्णको प्राप्त करॄगी।।२५०।।

वहां चार प्रकारके फल हैं, जिनमॄ पहला फल कृष्णकी प्राप्ति और दूसरा फल कृष्ण देवको स्त्रियोकी प्राप्ति हुई।।२५१।।

परस्पर अध्यायके कारण ये दो फल माने गये हैं।।२५१।।

व्याख्या: तीसरा अध्याय 'ततोऽग्रे....'से प्रारम्भ करते हैं. 'षोड्शकलावृत्तिरूपा'को समझाते हैं कि छन्दोग्य श्रुतिमॄ सिद्ध किया है कि मन षोडश कला वाला है, उसकी वृत्तियां संकल्प – विकल्प रूप अनेक प्रकारकी है. 'तत्र' अर्थात् चार प्रकारके फलाॄमॄसे पहला फल वह हुआ, जो उन स्त्रियाॄको कृष्णकी प्राप्ति हुई.(ये स्त्रियां १६ सहसअ थी, जिनको नरकासुरने अपने अंतःपुरमॄ रख छोड़ी थी, वहां ही इनको श्रीकृष्णकी प्राप्ति हुई थी) स्त्रियाॄको श्रीकृष्णकी प्राप्ति होना दूसरा फल गिना जाता है, ये फल 'स्त्रियो वीक्ष्य' कहा है 'अथो मुहूर्त' इन दो श्लोकाॄमॄ वर्णित है, यह अधिकारानुसार पहला अक्रूरमॄ तथा दूसरा महिषियाॄमॄ कहा है, ये दोनाॄ समझने चाहिये. दूसरेमॄ विशेष कहते हैं: परस्पर अध्यासके कारण दोनाॄ फल उस – उस अध्यायमॄ कहे हैं. यहां सबने कृष्णमॄ पृथक – पृथक् भावसे अपने हृदयको दिया. 'गृहेषु

तासामनपायि' इस श्लोकमॄ कहा है।।२५०, २५१।।

ततो भगवदंशस्य पुत्रभावेन कार्यवत्।।२५२।।
लोकवेदप्रकारेण पुत्रपौत्रादिकं फलम्।
तेषां च सर्वभावेन देवगुह्यादिना तथा।।२५३।।
कार्यसाधनमत्यर्थं चतुर्थं फलमुच्यते।

पश्चात् भगवानका अंश पुत्र रूपसे प्रकट हो लोक तथा वेदके प्रसाकरसे जो कार्य हो उस तरह पुत्र – पौत्र आदि फल प्रकट किये. उनका कर्तव्य देवगुह्यादि देवॄसे सर्व प्रकारसे युद्धकर सकल कार्योको सिद्ध करना, यह चतुर्थ फल कहा जाता है।।२५२, २५३।।

व्याख्या: भगवान् इसी तरह अंश द्वारा चतुर्थ फल सिद्ध करनेको लीला करते हैं. सन्ततिके विवाह, शंकरके साथ युद्ध अदि।।२५२,२५३।।

यथा लोके सर्वभावो लौकिकेषु प्रजायते।।२५४।।
तथा कृष्णे सर्वभावस्तेषां जात इतीर्यते।
कृष्णोऽपि चेत्तथा कर्त्ता तदा स्वप्नो मनोरथः।।२५५।।
प्रपञ्चाद्वैतवत्तत्र कृष्णाद्वैतं फलं मतम्।

जैसे लोकमॄ लौकिक पुरुषॄमॄ सर्वभवा(सर्व प्रकारसे प्रेम) होता ह, उसी तरह उन समस्तॄका सकल प्रकारसे सम्पूर्ण प्रेम श्रीकृष्णमॄ हो गया, श्रीकृण भी यदि यॄ करने लगॄ तो उनका स्वप्न एवं मनोरथ श्रीकृष्ण सम्बन्धि ही होते हैं, ऐसी कृतिसे जिस तरह लौकिकमॄ प्रपञ्चसे अद्वैत हो जाता है, उसी तरह उनका भी श्रीकृष्णके साथ अद्वैत बन जाता है, यह ही निश्चित फल है।।२५५।।

व्याख्या: षष्ठ और सप्तम अध्यायमॄ कहा हुआ फल कहते हैं:

यह जब लौकिकपनसे है, तब भगवत्सम्बन्धके अभावसे इसका फलत्व कैसे माना जाय? इस पर 'यथा लोके' कारिका कहकर उस शंकाका परिहार किया है कि जैसे लोकमॄ लौकिक पुरुषॄका जिन पदार्थों पर प्रेम होता है, उन पदार्थोंका ही स्वप्न देखते हैं एवं मनोरथ करते हैं इसी तरह श्रीकृष्ण पर जिनका प्रेम हो जाता है, उनको भी श्रीकृष्णके ही स्वप्न आते हैं तथा वे श्रीकृष्णके ही मनोरथ किया करते हैं –जिसका पिरणाम ज्यॄ लौकिकमॄ लोगॄका प्रपञ्चसे अद्वैत हो जाता है, वैसे ही भक्तॄका भी श्रीकृष्णसे अद्वैत हो जाता है. यह ही सर्वभावका स्वरूप है, इस सर्वभावका ही ब्रह्मसूत्रके साधनाध्यायके तीसरे पादमॄ 'स एवाद्यस्तात्' इत्यादि छान्दोग्य श्रुतिका उपन्यासकर विचार किया गया है.

यह फल यद्यपि मुग्ध अधिकारियॄके लिये साधन रूप है, किन्तु सायुज्य

मुक्तिके अधिकारियोंके लिये फल रूप है.

यह साधन कोटिमें होते हुए भी अधिकारी भेदसे फल है, इसमें कोई विरोध नहीं है।।२५५।।

अर्थधर्मौ धर्मकामौ काममोक्षौ निरूपितौ।।२५६।।
केवलाश्चान्यसंयुक्ताः पुरुषार्थाः फलं मतम्।
अक्रूरस्यं फलं सिद्धमर्थो धर्मेण संयुतः।।२५७।।
तदर्थं तादृशीं लीलां लोकाद्भिन्नां करोति हि।
स्वतस्तेषां कृतिश्चेत्स्यात्कृष्णस्तोषं कथं व्रजेत्।।२५८।।

धन और धर्म, धर्म और काम, काम और मोक्ष निरूपण किये हैं, ये पुरुषार्थ पृथक् – पृथक् हों अथवा मिले हुए हों तो भी फलरूप हैं.

धर्म सहित धन अक्रूरको प्राप्त हुआ, इसके लिये भगवानने लोकसे भिन्न प्रकारकी लीला की है. यदि उन्होंने यह कार्य स्वयं किया होता तो कृष्ण कैसे प्रसन्न होते?।।२५६ – २५८।।

व्याख्या: अन्य प्रकारसे फलकी चतुर्विधता कहते हैं. दूसरे चतुर्विध विभागके प्रकारका उदाहरण देकर स्पष्टीकरण करते हैं:

अक्रूरको फलकी सिद्धि धर्म सहित अर्थ(मणि)की प्राप्ति हुई, इसलिये भगवान् उसी प्रकारकी(दुर्यशको मिटानेवाली) लोकसे विलक्षण(पृथक् – प्रकारकी) लीला करते हैं. अर्थात् प्रसेन वधका कलम दूर करनेके लिये उन्होंने वैसी लीला की है. विभत्साका अनुभव दूसरे प्रकारकी लीलासे भी हो सकता था, फिर इस प्रकारसे क्यों किया? इस आकांक्षाके होने पर कहते हैं कि 'स्वतः' यदि अक्रूर एवं कृतवर्माने सत्राजितके वधका कार्य किया होता तो भगवान् इन पर कैसे प्रसन्न होते?।।२५६ – २५८।।

दुर्योधनादिहन्तारो यथा वै पाण्डवाः प्रियाः।
सत्राजिद्धातकास्तद्वच्छतधन्वादयो मताः।।२५९।।

जैसे दुर्योधनादिको मारनेवाले पाण्डव भगवानको निश्चयसे प्रिय थे, वैसे सत्राजितका वध करनेवाले शतधन्वा आदि भी भगवानके प्रिय माने गये हैं।।२५९।।

व्याख्या: उन(अक्रूर वा कृतवर्मा)से सजातीयको मारनेसे कौनसा सम्बन्ध है? इस पर कहते हैं कि भगवानका प्राकट्य मुक्ति देनेके लिये हुआ है, वह मुक्ति तब देते हैं, जब अन्य सम्बन्ध छूट जाय, केवल आप(श्रीकृष्ण)में ही एकतानता उत्पन्न हो जाय, श्रीकृष्ण अन्य सम्बन्ध नहीं सहन कर सकते हैं. जो मारनेक योग्य हो, उनका मारनेसे प्रसन्न होकर मुक्ति देते हैं. चालू प्रकरणमें दुर्योधनादिकी तरह सत्राजित आदि

भी दूसरेके सम्बन्धवाले थे, इसलिये उनको मारनेवाले शतधन्वा आदि भी अधर्मियोंके नाशमें प्रयोजक होनेसे भगवानका रुचिकर कार्य करनेसे भगवानको प्रिय थे. सारांश यह है कि भगवान् अन्य सम्बन्ध छुड़ाकर अपनेमें एकतान करानेके बाद मुक्ति देते हैं।।२५९।।

युद्धेन मारणं मुख्यं वने वा गुप्तभावतः।
न तु सुप्तस्य सर्वासां समक्षं मारणं मतम्।।२६०।।
शतधन्वा ततो वध्यो मुक्त्यर्थं मारितः स्वतः।

युद्धकर मारना अथवा वनमें छुप – छुपकर मारना; ये दोनों मुख्य हैं, न कि सोये हुएको सर्स स्त्रियोंके समक्ष मारना श्रेष्ठ है, इस कारणसे शतधन्वा मारनेके योग्य हो गया, उसकी मुक्ति करनी थी, इसलिये भगवानने अपने हस्त – कमलोंसे मारा।।२६०।।

व्याख्या: भगवानने जैसे प्रिय होनेके कारण पाण्डवोंकी रक्षा की, वैसे इस(शतधन्वा)की रक्षा क्यों नहीं की? इस शंकाके निवारणार्थ इस कारिकामें बताया है कि मारनेकी जो रीति श्रेष्ठ है, वह युद्धकर दुष्टको वा शत्रुको मारना अथवा वनमें गुप्त रीतिसे मारना; इन दोनों रीतियोंमेंसे एक भी न कर शतधन्वाने सोये हुएको चिल्लाती स्त्रियोंके मोक्ष मारा, यों मारना अनुचित था, इस अनुचित कार्यको करनेके कारण शतधन्वा मारनेके योग्य हुआ, अतः मारा गया, पाण्डवोंकी तरह उसकी रक्षा नहीं की, किन्तु उसको मुक्ति देनी थी, अतः आपने स्वयं उसका वध किया।।२६०।।

गुप्तलीला फले वाच्या तेनाज्ञानप्रकाशनम्।।२६१।।
विद्यया बोधनं चापि विलम्बश्च पलायने।

फल प्रकरणमे गुप्त लीला कहनी है, अतः प्रभुने अज्ञान प्रकट किया फिर विद्यासे ज्ञान समझ लिया, भागनेमें शतधन्वाने देरी की।।२६१।।

व्याख्या: यों होने पर जब भगवान् सर्व जानते भी थे. तो फिर भगवानने विलाप क्यों किया? जिसके उत्तरमें कहा 'गुप्त...' है कि इस प्रकरणमें जो लीला की है, वह भगवानने गुप्त रीतिसे ही की है. भगवान् इस बातको जानते थे, शतधन्वाने सत्राजितको मारा है, सत्यभामाने हस्तिनापुर आकर सत्राजितके वधका समाचार भगवानको सुनाया, तब भगवानने विलापकर अपनी जानकारीको गुप्त रखा, पश्चात् द्वारका आकर उसको मारकर मणि प्राप्तिके लिये प्रयत्न किया, अनन्तर अक्रूरादिने शतधन्वाको भगवत्सम्बन्धि ज्ञान दिया, भागनेमें शतधन्वाने विलम्ब किया था।।२६१।

अक्रूरवत्सोऽपि तिष्ठेल्लीनो वा तत्र वै भवेत्।।२६२।।
तदा वध्यो न चैव स्यात्परं पापेन दूषितः।

युद्धार्थं कृष्णदेवेन मित्रयोः प्रार्थनां तथा।।२६३।।
कृत्वा ज्ञात्वाऽपि माहात्म्यं शरणं न स आगतः।

यदि वह अक्रूरके समान वहां ही ठहरता अथवा वहां(द्वारकामृ) ही गुप्त रीतिसे कही रहा हुआ होता तो मारने योग्य न भी बनता, किन्तु पापसे दूषित बन गया था, इससे विपरीत बुद्धिवाला होकर कृष्ण देवसे युद्धार्थ दो मित्रृको सहायता देनेकी प्रार्थना की इस कृतिके कारण एवं माहात्म्य जानकर भी वह शरण न आया।।२६२-२६३।।

व्याख्या: भगवानने शतधन्वाको उस समय क्यृ मारा? इस पर 'अक्रूर...' कारिका कहकर उसका कारण व भाव समझाया गया है, भगवानको शतधन्वाकी विशेष परीक्षा करनी थी, इसलिये उस समय नहीं मारा, अक्रूरादि द्वारा ज्ञान प्राप्त होनेके बाद भी शरण आता है या नहीं? किन्तु न शरण आया और न वहां अक्रूरादिकी तरह ठहरा, किन्तु पापात्मा होनेसे उसने कृष्णके साथ लड़ाई की तैयारी की तथा दो मित्रृको सहायताके लिये प्रार्थना की, इत्यादि कारणृसे उस समय न मारा गया।।२६२,२६३।।

अलौकिकं फलं ह्येतन्मर्यादायां न युज्यते।।२६४।।
अतो हि बलदेवस्य नाऽत्र सम्मतिरुत्तमा।

यह अलौकिक फल है, वह मर्यादामृ मानना उचित नहीं है. इस कारणसे बलदेवकी इसमृ उत्तम सम्मति निश्चयसे नहीं हो सकती।।२६४।।

व्याख्या: जब इसी तरह मुक्ति दी तो श्रीरामका वैमनस्य क्यृ हुआ? इस पर कहते हैं कि 'अलौकिक....' यह मुक्ति रूप फल लौकि नहीं है, अतः इसकी गणना मर्यादामृ नहीं की जाती है, इस कारणसे बलरामजीकी इसमृ सम्मति नहीं हुई।।२६४।।

अत्रैव बलदेवस्थं भिन्नमासीन्निवेशितम्।।२६५।।
भगवद्धर्मजातं हि ततः स मिथिलां गतः।
अरुचिश्च हरावासीदन्यधर्मप्रवेशतः।।२६६।।
अत परः तु रामेण नैकमत्यं क्वचित्क्वचित्।
लोकेऽपि फलमेतादृक् सेवकानां न रोचते।।२६७।।
अतस्तद्गोपनार्थाय मारयित्वाऽन्यथैव हि।
मण्यर्थं मारणं वक्तुं वृथा मारणमाह हि।।२६८।।

इस लीलाके समय ही बलदेवजीमृ भगवानके गुण दूसरे प्रकारके हो गये, इस कारणसे वह(बलराम) मिथिला चले गये. अन्य प्रकारके धर्मके प्रवेश होनेसे हरिमृ रुचि(प्रेम) नहीं रही।।२६६।।

इसके बाद ही श्रीकृष्णकी रामके साथ कभी - कभी सम्मति नहीं होती थी.

लोकमॄ भी इस प्रकारका फल सेवकॄको रुचता नहीं है।।२६७।।

इसलिये उसको छुपानेके लिये शतधन्वाको मणिके कारण वृथा मारा, मणि तो उसके पास नहीं थी, यॄ श्रीकृष्णने रामको कहा, किन्तु बलरामको श्रीकृष्णके यॄ कहने पर विश्वास नहीं आया, उन्हॄने समझा कि श्रीकृष्ण मणि बताना नहीं चाहते हैं. इससे श्रीकृष्ण पर अरुचि हुई।।२६८।।

व्याख्या: तब बलराम भगवानको छोड़कर मिथिला क्यॄ गये? इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये यहां 'अत्रैव....' कारिका कही हैं, लोकमॄ भार उतारना भगवानका गुण है, यह कार्य दोनॄ स्वरूपॄसे करना है, लोकमॄ मनुष्य एक प्रकारके नहीं है, सर्व प्रकारके भारको उतारना है. इसलिये फल प्रकरणमॄ श्रीकृष्ण तथा बलरामकी शक्तिमॄ विभाजन हुआ है, जिस कारणसे परस्पर सम्मति एक न होनेसे बलराम मिथिला गये. जिस शतधन्वाने सोये हुए श्वसुरको, स्त्रियॄको विलाप करते हुए उनके सामने मारा, उसको श्रीकृष्णने मुक्ति दी, यह सेवकॄको पसन्द नहीं, यह सब श्रीकृष्णने छल किया है, यॄ बलरामने समझा, इत्यादि कारण मिथिला जानेके थे।।२६५ – २६८।।

सोऽपि ज्ञात्वा व्यवसितं क्षोभशाक्त्यै ततो गतः।
काश्यादितीर्थे धर्मस्य सिद्धिरर्थेन साधिता।।१६९।।

अक्रूर भी श्रीकृष्णका यह निश्चित विचार जानकर, अपने मनके मोक्षको शान्त करनेके लिये बाहर गया, काशी आदि तीर्थों पर उसने अर्थसे धर्मकी सिद्धि की।।२६९।।

व्याख्या: इसी तरह प्रासङ्गिक शेष विषयका निरूपणकर शेषी(विषयवाले)का निरूपण करते हैं, अक्रूरको भय हुआ कि श्रीकृष्णने मणिके लिये शतधन्वाको मारा, उसके पास तो मणि थी नहीं; मणि मेरे पास होनेसे मुझे मारॄगे, इस भयसे अक्रूर और कृतवर्मा द्वारका छोड़ देशान्तर चले गये, वहां अक्रूरने काशी आदि तीर्थों पर मणिसे प्राप्त धन द्वारा अनेक यज्ञयागादि सत्कर्मकर अर्थ और धर्मकी सिद्धि साध ली।।२६९।।

पुनः स्वस्थानमायातौ मणिं चाऽवापतुः प्रभोः।
एवं यादववर्येषु फलमेतेन बोधितम्।।२७०।।

वे दोनॄ(अक्रूर और कृतवर्मा) लौटकर द्वारका आ गये, प्रभुसे मणि प्राप्त की, इससे बताया कि श्रेष्ठ यादवॄने इसी तरह फल प्राप्त किया अर्थात् धर्म – अर्थ दोनॄ प्राप्त किये।।२७०।।

व्याख्या: जित तरह यादव श्रेष्ठ अक्रूरने भगवानसे मणि प्राप्तकर उससे मिले धन द्वारा यज्ञादि धर्म किये, जिससे अर्थ और धर्म सिद्धि रूप फल प्राप्त किया, यॄ १३

कारिकाओंसे प्रथमाध्यायका विचार किया।।२७०।।

अब 'तथैव' आदि कारिकाओंसे द्वितीयाध्याय विचारते हैं:

तथैव पाण्डवानां च फलं दातुं विनिर्गतः।
सान्त्वने तेऽपि निर्दिष्टास्ततो गर्वत्रयं ददौ।।२७१।।

उसी तरह पाण्डवोंको फल देनेके लिये बाहर पधारे, सान्त्वन अध्यायमें इनका भी वर्णन किया हुआ है, इससे पाण्डवोंको तीन वर्ग दिये।।२७१।।

व्याख्या: द्वितीयाध्यायका विचार करते हैं 'तथैव' आदि कारिकाओंसे. जब यहां यादवोंके फलका वर्णन किया जा रहा है तो पाण्डवोंका प्रसङ्ग क्यों लाया गया है? इस पर कहते हैं कि सान्त्वन(४६वें अध्यायमें) अक्रूर द्वारा भगवानने कराया है. जहां भगवानने पाण्डवोंको तीन पुरुषार्थ सिद्ध्यर्थ गर्व जनक तीन पदार्थ दिये हैं: १. विश्वकर्मा द्वारा नगरी बनवा दी, २. अग्नि देव द्वारा गांडीव धनुष दिलाया, ३. मयसे सभाकी रचना करा कर दी, ये तीनों ही क्रमशः धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थको प्राप्त करानेवाले पदार्थ हैं।।२७१।।

आमुष्मिकं फलं सूर्यात्स हि वेदात्मको यतः।
तत्सम्मतिं ज्ञापयितुं कालिन्दीप्राप्तिरुच्यते।।२७२।।

परलोक सम्बन्धि फल सूर्यसे प्राप्त होता है; क्योंकि वह(सूर्यदेव) वेद रूप है, उसकी सम्मति जतानेके लिये कालिन्दीकी प्राप्ति कही है।।२७२।।

व्याख्या: प्रस्तुत फलको कहनेके लिये उनके स्वरूप आदि 'आमुष्मिक' कारिकासे कहते हैं. यादवोंको परलोक सम्बन्धि फलकी प्राप्तिके लिये वैदिकी सम्मति जतानेके लिये सूर्य पुत्री कालिन्दीकी प्राप्ति कही है।।२७२।।

तदर्थगमनं ज्ञाननिवृत्त्यै प्राप्य तां पुनः।
इन्द्रप्रस्थे स्थितः कालं तत्कार्याणां हि साधकः।।२७३।।

भगवान् उस(कालिन्दी)को प्राप्त करनेके लिये यहां पधारे हैं, ऐसा ज्ञान किसीको भी न होवे, इसलिये इन्द्रप्रस्थमें कुछ समय ठहर गये, जिससे लोग समझें कि भगवान् पाण्डवोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये यहां पधारे हैं, जिससे इतने समय यहां ठहरे।।२७३।।

व्याख्या: यद्यपि प्रभु कालन्दि प्राप्तिके लिये मुख्यतः पधारे थे, किन्तु लोग यों न जाने तदर्थ कालिन्दी प्राप्तिके अनन्तरभी भगवान् वहां पाण्डवोंका सकल कार्य पूर्ण होने तक बिराजे थे, जिसस लोग जानें कि पाण्डवोंके कार्यके लिये पधारे हैं, पाण्डवोंको जो फल इस समय मिला, वह तो प्रासङ्गिक हो जैसे अचानक ही मिला गया, नहीं तो कालिन्दीसे वहां पर ही विवाह करते, यों पाण्डवोंका कार्य पूर्णकर द्वारिका पधारे वहां

पधारकर, कालिन्दीसे विवाह संस्कार सिद्ध किया. 'कालं' यह पद द्वितीया विभक्तिका इसलिये दिया है कि यह लीला अत्यन्त संयोगमृ होनेवाली थी अर्थात् पाण्डवृके कार्यकी सिद्धि शीघ्र की।।२७३।।

आत्मबोधस्वरूपेयं तेन व्यावर्तितोऽर्जुनः।
मित्रविन्दा तपोरूपा तेनानीता बलान्निजात्।।२७४।।
अन्तस्तापबहिस्तापौ भ्रातराविव बाधितौ।
स्वभागत्वाद्धुता तस्या बन्धूनां चाऽखिलार्थदः।।२७५।।

यह कालिन्दी आत्म ज्ञानके स्वरूपवाली है, जिससे अर्जुनको लौटाया. मित्रविन्दा तपस्याका रूप थी, उसको अपने बलसे प्राप्त कर लाये।।२७४।।

अन्तरका ताप और बाहरका ताप वे दो ही भ्राता जताये हैं, उनकी बहिन मित्रविन्दा आपका ही भाग थी, उसके बान्धवृको सकल पदार्थ जो वे चाहते थे, वे दे दिया।।२७५।।

व्याख्या: कालिन्दी आत्मज्ञानका स्वरूप थी, जिससे वह भगवानको ही अपना रमणोचित स्थान समझती थी, जिससे अर्जुनका वरण स्वीकार न कर उसको लौटाया, दूसरी मित्रविन्दा तपो रूपा थी; क्यृकि उसके दो भाई अन्तस्ताप(अन्दरका ताप) और बहिस्ताप(बाहरका ताप)के रूप थे, अतः बहिन भी तप रूपा ही थी, भगवानने जैसे कालिन्दीको वरा, वैसे मित्रविन्दाको नहीं वरा. मित्रविन्दा भगवानकी भूआ राजाधिदेवीकी पुत्री थी, जिससे सम्बन्धमृ भूआकी बेटी हुई. 'भागस्ते पैतृष्वसेयी' इस श्रुतिका अर्थ ह: भूआकी बेठी तेरा भाग है अर्थात् उसको तूं लृ सकता है, इस श्रुतिके प्रमाणानुसार भगवानका भाग थी, किन्तु भगवानने मित्रविन्दाके बल पूर्वक हरण किया, कारण कि उसके भाई भगवानको न देकर अन्यको देना चाहते थे, यह कार्य भी तपो रूपका बतानेवाला है, मित्रविन्दाकी प्राप्ति कर लेनेके अनन्तर उस(मित्रविन्दा)के भ्राताआृको सर्व पदार्थ प्राप्त कराये।।२७५।।

योगात्मिकां नाग्नजितीं सूर्यवंशसमुद्भवाम्।
व्यसनान्यग्रतो जित्वा तां जग्राहाऽखिलर्द्धये।।२७६।।

सूर्यवंशोत्पन्ना नाग्नजिती योगरूपा थी, प्रथम व्यसनके ऊपर जय पाई, अनन्तर सम्पूर्ण सिद्धि प्राणीके लिये उसको ग्रहण किया।।२७६।।

व्याख्या: नाग्नजिती सूर्यवंशमृ उत्पन्न होनेके कारण योग रूपा थी, नवम् स्कन्धमृ सूर्यवंशी राजाआृको योगी कहा है, अतः उस वंशमृ उत्पन्न होनेसे यह भी योग रूपा थी, भगवानने पहले सात वृषभ रूप व्यसनृ पर जय प्राप्त की, यह जय प्राप्त करना भी योगका अङ्ग है, नाग्नजिती इस जयके कारण ही भगवानको प्राप्त हुई,

इत्यादि कारणॄसे नाग्नजितीको योगरूपा कहा है।।२७६।।

सिद्धिरूपं पारिबर्हमतस्तत्र निरूपितम्।
व्यसनाविष्टचित्तानां तत्रेच्छा न लभ्यते।।२७७।।
इति दर्शयितुं पश्चाद्युद्धमाह नरेण हि।

परिबर्ह(दहेज) सिद्धि रूप है, इस कारणसे वहां उसका निरूपण है, व्यसनियॄका जिन पदार्थोंकी इच्छा होती है, वे पदार्थ उनको मिलते नहीं, यॄ दिखानेके लिये अनन्तर अर्जुनके साथ युद्ध होनेका वर्णन किया है।।२७७।।

व्याख्या: योगसे सिद्धि प्राप्त होती है, इसलिये योग रूप नाग्नजितीके परिबर्ह(दहेज)का वर्णन वहां किया हुआ है. सिद्धि योगसे होती है, व्यसन सिद्धि नहीं होती है, अतः व्यसनियॄका अर्जुनसे युद्ध हुआ है।।२७७।।

नित्यानित्यविवेकाख्या भद्रा स्वयमुपागता।।२७८।।
भक्तिरूपा लक्ष्मणाऽपि बलाद् बुद्ध्या च सङ्गता।
तस्या विस्तारकथनं सात्त्विकानां फले जगौ।।२७९।।

भद्राका नाम नित्यानित्य विवेक था, वह स्वयं आई थी, भक्ति रूपा लक्ष्मण भी बल तथा बुद्धिसे प्राप्त की थी, उसके विवाहका विस्तारमॄ वर्णन सात्त्विक भक्तॄके फल प्रकरणमॄ हैं।।२७८, २७९।।

व्याख्या: ज्ञान, योग और तपकी सिद्धि होने पर वैराग्यकी स्वतः प्राप्ति होती है. 'भद्रा'की नित्यानित्य विवेक नामसे प्रसिद्धि थी; क्यॄकि वैराग्यके कारण उनका रूप हो गई थी, यह भद्रा नित्य एवं अनित्य पदार्थोंके स्वरूपको जाननेवाली शक्ति रूपा थी. इसे इसके भ्राताआॄने स्वयं आकर भगवानको अर्पण किया और भगवानसे विवाह करवाया.

लक्ष्मणा जो भक्ति रूपा थी, वह भगवानको बल(भगवानके माहात्म्यको बताता है) तथा बुद्धि(स्नेहको बताती है)से प्राप्त हुई है, जिसका वर्णन सात्त्विक फल प्रकरणमॄ विस्तरशः है।।२७८,२७९।।

सर्वार्थसाधनैर्युक्तः स्वतोऽपि फलदायकः।
फलप्रकरणे प्रोक्तः कृष्णः सर्वहितप्रदः।।२८०।।

फल प्रकरणमॄ कहा हुआ है कि श्रीकृष्ण सकल पुरुषार्थ तथा साधनाॄसे युक्त हैं. स्वयं फल देनेवाले हैं तथा समस्तॄका हित ही करनेवाले हैं।।२८०।।

व्याख्या: महिषियॄ(महाराणियॄ)को काम, मोक्ष वा धर्म कामकी सिद्धि 'सर्वार्थ' कारिकासे स्पष्ट करते हैं. इस प्रकरणमॄ कहा है कि श्रीकृष्णने सर्व पुरुषार्थका दान महाराणियॄको किया है तथा साधन युक्त होनेसे स्वतः स्वयं फल देनेमॄ समर्थ हैं,

सर्वको सर्व प्रकारका हित दान करनेवाले हैं, अतः यह अध्याय वीर्य लीला अध्याय है; क्यूंकि इसमूं की हुई लीलाओंसे वीर्य गुण प्रकट होता है. यूं दश श्लोकोंसे द्वितीय अध्यायका विचार किया।।२८०।।

विषयाणामिन्द्रियाणामनन्तत्वं यदा भवेत्।
ज्ञानसाध्ये कर्मसाध्ये फले स्यान्निर्वृतिः पुरा।।२८१।।
इति ज्ञापयितुं कृष्णः सहस्राणि च षोडश।
नराणां कं सुखं हत्वा देवांश्च परिभूय हि।।२८२।।
महिषीवृत्तिरूपास्ताः कालदोषनिवृत्तये।
उद्वाहयामास मुदा लोकवेदौ समर्थयन्।।२८३।।

जब विषयूं और इन्द्रियोंका अनन्तपन होता है, तब पहले ज्ञानसे साध्य तथा कर्मसे साध्य फलसे निवृत्ति होती है अर्थात् सन्तोषकी प्राप्ति होती है।।२८१।।

यूं बतानेके लिये मनुष्योंके सुखको अर्थात् नरकासुरको मारकर और देवोंको पराजयकर, लोक तथा वेदका समर्थन करते हुए श्रीकृष्णने कालके दोष मटानेके लिये मनकी वृत्ति रूप सोलह हजार राजरकी कन्याओंसे आनन्द पूर्वक विवाह किया।।२८२-२८३।।

व्याख्याः यह लीला 'यज्ञ'रूप है, जिससे यश गुण प्रकट किया है।।२८१ - २८३।।

अविद्याकार्यरूपो हि मुरो नरकरक्षकः।
तत्पुत्रा पीठसहिताः प्राकृताः खादिवन्मताः।।२८४।।
नरको भगवत्पुत्रश्चतुर्मूर्तेस्तपस्स्थितः।
तपसोऽन्ते तपस्विभ्यः फलदातुस्तु याचनात्।।२८५।।
भूम्यां जातो वरः प्राप्तो न वध्यः सकलैरपि।
नारायणास्त्रयुक्तश्चैत्परं पुत्राय तद्ददौ।।२८६।।
तेन वध्यो हरेर्जातस्तथैव मुखमैहिकम्।
दैवाधीनं तथा पुत्रफलं तत्र निवारितम्।।२८७।।

'मुर' अविद्याके कार्यका स्वरूप है, इसलिये नरकका रक्षक बना है. पीठ सहित उसके पुत्र, इन्द्रियोंकी तरह प्राकृत माने गये हैं।।२८४।। (नरकासुरके सेनापति पीठसे मुरके पुत्र युद्ध करनेके लिये आए)

चतुमूर्ति भगवानका पुत्र नरक तपमूं स्थित था अर्थात् तपस्या करने लगा, तपके अन्तमूं जैसे तपकर्त्ता, फलदाता देवसे वरकी याचना करते हैं, वैसे इसने भी की, जिससे यह भूमिका पुत्र बना(हुआ) और नारायणास्त्रसे युक्त हुआ, जब तक

नारायणास्त्र इसके पास हो, तब तक इसका वध कोई नहीं कर सकती है, किन्तु वह अस्त्र इसे अपने पुत्र(भगदत्त)को दे दिया।।२८५,२८६।।

इस कारण(नारायणास्त्र भगदत्तको देने)से हरिके मारने योग्य हो गया, इसी तरह ऐहिक सुख भगवानके अधीन है, वैसे पुत्र फल भी रोका गया।।२८७।।

व्याख्या: नारायणास्त्र न होनेसे जैसे नरकासुरका वध भगवान् द्वारा हुआ, उसी तरह अविद्याके कार्य अहन्ता आदिसे जिसकी रक्षा होती है और इन्द्रियॉ आदिसे जिसका पोषण होता है, भगवानकी आज्ञाके विरुद्ध जिसकी कृति है, जो पृथ्वी पर ही उत्पन्न हुआ है: ऐसा जो मनुष्योंका सुख है, भगवान् द्वारा ही नाश होने योग्य है एवं देवाधीन है, इसी तरह उनको समानता है. कारिका 'फिर' तथा 'पर'का आशय है कि इस विषयमें पुत्रका फल भी रोका गया हैं; क्योंकि अष्टावक्रका शाप था.

यद्यपि नारायणास्त्र पास होनेसे वध नहीं होता है, किन्तु ऐसा जिसको वर मिला हो. भगदत्तके पास नारायणास्त्र था, किन्तु इस प्रकार(न मरने)का वर नहीं मिला था, अतः अर्जुन द्वारा मारा गया. 'न वयं साध्विसष्टभ्राज्यमिति' यों जो कहा है, वह सात्त्विक 'फल' प्रकरणमें स्फुट(प्रकट) होगा.

इससे इनका धर्म और काम अथवा केवल काम सिद्ध हुआ है।।२८४-२८७।।

दैवाधीनत्वमेतेन विरक्तो भक्तिसंयुतः।
ऐहिकामुष्मिकफलं कृष्णात्प्राप्नोत्यसंशयम्।।२८८।।
यादवानां समस्तानामेवं दातुं हरिस्तथा।

इससे देवका आधीनत्व सिद्ध होता है, जो मनुष्य भक्तिके साथ वैराग्यवाला भी होता है, वह श्रीकृष्णसे निश्चयपूर्वक ऐहिक तथा पारलौकिक फल प्राप्त कर सकता है. इसलिये हरिने यादवोंको दोनों(ऐहक-पारलौकक) फल देनेके लिये ही भगवानने इस प्रकारकी लीला की।।२८८।।

व्याख्या: इस लीलाका प्रयोजन 'दैवाधीनं' कारिकासे कहते हैं. जो विरक्त तथा भक्तिवाला होता है, उसको ही श्रीकृष्ण निश्चयसे ऐहिक व पारलौकिक दोनों फल देते हैं. यादवोंको दोनों प्रकारके फल देनेके लिये भगवानने ऐसी लीला की, जिससे सिद्ध हुआ कि जिनमें वैराग्य व भक्ति नहीं है, उनका सुख दैवाधीन है, यों तृतीयाध्यायका विचार किया।।२८८।।

परिहासविलासस्तु रुक्मिण्या यदिहोदितम्।।२८९।।
तद्वाचिकतिरोधानं गोपीनामिव कायिकम्।
अभिमानादिदोषाणां निवृत्यै मध्यमत्वतः।।२९०।।

अन्तिमे च तथाऽध्याये मानसं च प्रवक्ष्यति।
एवं त्रिधा तिरोभावो दोषाभावाय बोध्यते।।२९१।।

यहां जो भगवानने रुक्मिणीसे परिहारकर आनन्द लेनेका कहा, वह वाचिक (वाणीका) तिरोधान है. वह उसी तरह किया है, जैसे गोपियॄसे कायिक तिरोधान किया था, यह वाणीका तिरोधान मध्यम है, अतः अभिमानादि दोषॄको मिटानेके लिये किया है।।२८९-२९०।।

वैसे ही मनके तिरोधानकी लीलाका वर्णन अन्तिम अध्यायमॄ कहॄगे. इसी तरह दोषॄको मिटानेके लिये तीन प्रकारसे तिरोधान किया है।।२९१।।

व्याख्या: चतुर्थाध्यायका विचार ४ श्लोकॄसे करते हैं. भगवानने भक्तॄका दोष पूर्णतया मिटानेके लिये तीन तरह(अर्थात् काया, वाणी तथा मन)से अपनेको तिरोहित किया है. 'वाणी'का तिरोधान रुक्मिणीसे परिहास करके किया है. 'काया'का तिरोधान गोपियॄके गर्वको मिटानेके समय किया, शेष 'मन'का तिरोधान अन्तिम अध्यायमॄ कहॄगे.

भगवान् इस प्रकार जो अपना तिरोधान करते हैं, वह अधिकार सूचक है. भगवानका तिरोधान जो स्वल्प सहन कर सकता है, वह हीनाधिकारी है और जो विशेष सहन कर सकात है, वह मध्यमाधिकारी है एवं जो भक्त किञ्चित् क्षणमात्र भी विप्रयोगको सहन नहीं कर सकता है, वह भक्त उत्तमाधिकारी है।।२८९ - २९१।।

अत्यन्तं कोमला भक्ता न कृष्णरसभोजने।
समर्था इति दार्ढ्याय तिरोधानं करोति हि।।२९२।।
अनेन सर्वभक्तानां सामर्थ्यं चाऽपि यच्छति।
फलभोगे फलं चाऽपि तथा दोषं निवारयन्।।२९३।।

भक्त अत्यन्त कोमल हृदयवाले होते हैं, जिससे श्रीकृष्णके रसके पान करनेमॄ समर्थ नहीं हो सकते हैं, इसलिये उनके हृदयको दृढ़ बनानेके लिये तिरोधान लील करते हैं।।२९२।।

इस तिरोधान लीलासे दोष दूर करनेके साथ सर्व भक्तॄको फल भोगके समय फलके साथ फल भोगनेकी जो शक्ति चाहिये, वह भी देते हैं।।२९३।।

व्याख्या: इस अध्यायमॄ फल नहीं कहा है तो भी उसका शेषत्व होनेसे इस अध्याकी गणना भी फल प्रकरणमॄ की गई है. यहां इस अध्यायमॄ श्रीगुणकी लीला प्रकट है।।२९२-२९३।।

पुत्रपौत्रादिसम्पत्तिः फलपूर्वमुदाहृतम्।
तत्र दोषसमुद्भावो दैत्येष्वेव नियोजयेत्।।२९४।।

इति दर्शयितुं रुक्मी हतो रामेण मङ्गले।

पुत्र – पौत्रादिकॄकी सम्पत्ति फल पूर्वक पहले कही है, उसमॄ यदि दोष उत्पन्न होता है, तो उनका दैत्यॄसे सम्बन्ध जोड़ते हैं. यॄ दिखानेके लिये बलरामने मङ्गल कार्यके समय रुक्मिको मारा।।२९४।।

व्याख्या: पुत्र – पौत्रादिकॄकी सम्पत्ति फल रूप है, यॄ पहले कह आए हैं. उस फलरूप सम्पत्तिमॄ यदि अन्य सम्बन्धके कारण दोष उत्पन्न होने लगे तो वह दोष भगवान् दैत्यॄ पर ही लगाते हैं; क्यॄकि 'एष भगवान् द्विषतन्तः पाप कृत्या'' इस श्रुतिमॄ कहे हुए न्यायनुसार यॄ करना उचित है, कारण कि सम्पत्तिमॄ दोष प्रयोजन दैत्य ही हैं. यॄ दिखानेके लिये अनिरुद्धजीके मङ्गल प्रसङ्ग विवाहमॄ बलरामजीने रुक्मिको मारा।।२९४।।

अधर्मोद्वाहजं पापं तत्रैव निहतं यतः।।२९५।।

अतः पापे प्रतिहते सुखिनस्ते समागताः।

अधर्मसे हुए विवाहका पाप उसमॄ ही रखा, इस कारणसे पापीके नाश होनेसे वे प्रसन्न हुए अनन्तर द्वारिका आए।।२९५।।

व्याख्या: अनिरुद्धका विवाह रुक्मिने रोचनासे कराया, वह विवाह अधर्मसे हुआ, इससे पौत्र सम्पत्तिमॄ दोष सम्बन्धसे हो गया. यह दोष(पाप) भगवानने रुक्मि पर लगाया, जिससे बलरामने विवाहके समय ही पापी व दोषी रुक्मिको मार डाला. इसके मरनेसे यादव प्रसन्न हो द्वारका आ गये, इसमॄ जो लीला की, वह ज्ञान लीला है।।२९५।।

अतः परं सर्वभावैः कृष्णो भक्तार्थसाधकः।।२९६।।

इति दर्शयितुं प्रोक्तमूषाख्यानं महाद्भुतम्।

अध्यायद्वितयेनैव वैराग्येणाऽपि धर्मिणा।।२९७।।

इसके अनन्तर श्रीकृष्ण सकल रीतिसे भक्तॄके अर्थ साधक बनते हैं।।२९६।।

यॄ दिखानेके लिये वैराग्याध्याय और धर्माध्यायसे उषाका महान् अद्भुत चरित्र वर्णन कया है।।२९७।।

व्याख्या: ६,७(५९,६०) अध्याय क्रमशः वैराग्य गुण तथा धर्मोंको बताते हैं. इन दोनॄ अध्यायॄमॄ उषाका महान् अद्भुत चरित्र कहा गया है।।२९६,२९७।।

तूष्णीं स्वधर्मान् संहृत्य ज्ञात्वाऽप्यास्ते सदा हरिः।

यदोत्कृष्टं भक्तकार्यं कुतश्चित्सिद्धिमेति हि।।२९८।।

जब भक्तका उत्तम कार्य कहींसे भी सिद्ध होता है तब भगवान(श्रीकृष्ण) जानकर भी अपे गुणॄको छिपाकर रखते हैं।।२९८।।

व्याख्या: अपने गुणाृको छिपानेसे वैराग्य लीला प्रदर्शित की है. श्लोकमृ जहां 'सदा' पद है, वहां 'यदा' पद समझना और जहां 'यदा' पद है, वहां 'तदा' पद जानना; शिव स्तुतिसे जानना चाहिये कि यह धार्मिक लीला है. भगवान् जानते थे कि चित्रलेखा अनिरुद्धको लेने आई है तो भी उसके कार्य(ले जाने)मृ किसी प्रकारकी रुकावट न की, याृ करना वैराग्य प्रदर्शन करनेका चिह्न है।।२९८।।

इत्यूषाहरणं ज्ञात्वा रक्षकांश्च निवारयन्।
अनभिप्रेतकर्ता च नारदेन निवारितः।।२९९।।
एतदर्थं यतो लोके मुग्धभावस्थिरोऽभवत्।
महादेवादिभिर्युद्धं नाट्यमत्र न संशयः।।३००।।

यह चित्रलेखासे अनिरुद्धका हरण उषाने करवाया है, इसको जानते हुए भी द्वारकाके रक्षकाृको उसको रोकनेसे, मनाकर यादवाृका अनिश्चित कार्य भगवानने किया और आप(भगवान्) शान्त रहे, किन्तु अनन्त नारदने आकर याृ करने(शान्त रहने)से रोका।।२९९।।

भगवानने लोकमृ अपनी अनजानता स्थिर करनेके लिये ही यह खेल खेलना(यह लीला की) चित्रलेखाको अनिरुद्धको ले जानेसे रुकवाया नहीं, इस प्रसङ्गमृ महादेवादिकाृसे जो युद्ध हुआ, वह खेल ही था, इसमृ किसी प्रकारका संशय नहीं है।।३००।।

व्याख्या: चित्रलेखा अनिरुद्धको ले गई, जिसको चार मास पूरे हो गये, तब तक श्याम सुन्दर शान्त रहे, नारदने आकर कहा, तब मालूम हुआ हो याृ प्रकट किया. महादेवादिसे लड़ना भी एक निश्चित नाटक था, इसमृ संशय नहीं है।।२९९-३००।।

महादेवोक्त एवाऽर्थो यतोऽयं हरिणा कृतः।
भक्तेषु पक्षपातो हि सर्वदेवेषु बोधितः।।३०१।।
तथाऽप्यशक्ता निखिला इति बाहूंश्चकर्त ह।
भक्तप्रियेषु सर्वेषु ये केचिद्विमताः क्वचित्।।३०२।।
यावता ते भविष्यन्ति सम्मतास्तत्करोति हि।
अनिरुद्धकथा प्रोक्ता यादवानां च सूचिका।।३०३।।
राजसानां फलं ह्येतत्फलं कृष्णात्तु निर्गुणम्।
एवं फलप्रकरणं राजसेषु निरूपितम्।।३०४।।

यह लीला भगवानने महादेवके कथनानुसार की है, जिससे यह ज्ञान करवाया है कि सकल देव अपने भक्ताृका पक्ष लेते हैं, यह निश्चय है।।३०१।।

तो भी समस्त देवता जो कार्य करना उचित है, उसमृ वे असमर्थ थे. इसलिये

भगवानने ही भुजाओंको काटा, भक्तको प्रिय विषयोंमेंसे किसी विषयमें कोई विरोधी देखते हैं तो भगवान् उस विरोधको मिटानेके लिये विरोध विषयका त्यागकरी भक्तानुकूल कार्य करते हैं, अतः यहां भगवानने सर्व भुजाओंको न काटकर ९९६ काट डाली, शेष चार रहने दी।।३०२।।

अनिरुद्धकी कथा यादवोंका मद सूचित करनेवाली है, राजसोंके लिये यहां फल है. कृष्णसे जो फल मिला, वह तो निर्गुण फल है, इसी प्रकार राजसोंके फल प्रकरणका निरूपण हुआ(किया)।।३०३,३०४।।

व्याख्या: 'राजसानां फलं ह्येतत्'से कहा है कि राजसोंके विचारोंमें सर्व भावोंसे, सर्व प्रकारके अर्थोंका साधन रूप यह जो दृष्टिगोचर(जगत्) हो रहा है, वह ही फल है. तब तत्त्वका विचार करने पर फल क्या है? इस आकाङ्क्षा पर कहते हैं कि जिसकी प्राप्तिसे विश्व मायाकी निवृत्ति हो जाय।।३०१ – ३०४।।

इसी तरह १९२ कारिकाओंसे राजस – प्रकरणका विचार किया.

।।राजस प्रकरण सम्पूर्ण।।

।। श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रं स्तोत्रम्।।

दशमस्कन्धान्तर्गत राजस साधन–फल प्रकरणके नाम

जरासंधसमानीतसैन्यघाती विचारकः।
यवनव्याप्तमथुराजनदत्तकुशस्थलिः।।२०२।।

(९१६) जरासंधसमानीतसैन्यघाती

मगध देशके अधिपति जरासन्ध राजा सत्रहबार तेइस–तेइस अक्षौहिणी सेना लेकर भगवान्‌के साथ युद्ध करने आया था. उन सेनाओंको नाश करनेवाले परमपराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण.

(९१७) विचारकः

विचार करनेवाले प्रभु. जब अठारहवीं बार जरासंध तेइस अक्षौहिणी महान् सेना लेकर आया तब अपने सर्व यादव बंधुओंको कुशस्थलीमें ले जानेके लिये बलदेवजीके साथ राजनीति संबंधी विचार किया. उसके उद्देशित करके विचार करनेवाले ऐसे प्रभु कहा गया है.

(९१८) यवनव्याप्तमथुराजनदत्तकुशस्थलिः

यवनराजके तीनकरोड़ सैन्य द्वारा अर्थात् कालयवनसे व्याप्त घिरे हुए मथुरा निवासियोंको बचानेके लिये कुशस्थलीमें निवास करनेवाले भगवान्.

द्वारकाद्भुतनिर्माणविस्मायित सुरासुरः।
मनुष्यमात्रभोगार्थभूम्यानितृद्रवैभवः।।२०३।।

(९१९) द्वारकाद्भुतनिर्माणविस्मायित सुरासुरः

श्रीद्वारिकानगरीकी अद्भुत आश्चर्य–जनक रमणीय रचनासे देव और दैत्योंको विस्मयग्रस्त करानेवाले भगवान् श्रीद्वारिकाधीश.

(९२०) मनुष्यमात्रभोगार्थभूम्यानितृद्रवैभवः

सर्व मनुष्योंको स्वर्गके समान सुखानुभव करानेके निमित्त भूमिमें अर्थात् द्वारिकापुरीमें इन्द्रके वैभव पारिजात वृक्षादिके उपभोग करने योग्य ऐश्वर्योंको स्थापन करनेवाले श्रीद्वारिकेश प्रभु श्रीकृष्ण. प्रत्येक दिशाके लोकपालोंने अपना सर्व वैभव द्वारिकामें स्थापन किया है. वैसे ही सत्यभामाके आग्रहसे आपने इन्द्रके साथ युद्ध करके पारिजात वृक्षको लाकर द्वारिकामें स्थापन किया है. अतएव सर्वजनोंके उपभोगके लिये इन्द्रका वैभव भूमिमें लानेवाले प्रभु, ऐसा नाम कहा है.

यवनव्याप्तमथुरानिर्गमानन्दविग्रहः।
मुचुकन्दमहाबोधयवनप्राणदर्पहा।।२०४।।

(९२१) यवनव्याप्तमथुरानिर्गमानन्दविग्रहः

कालयवन द्वारा व्याप्त मथुरापुरीमृ से निकलते समय आयुधादि न रखनेके कारण शुद्धसच्चिदानन्दमय जिनका देह है ऐसे आनन्दमूर्ति श्रीकृष्ण.

(९२२) मुचुकुन्दमहाबोधयवनप्राणदर्पहा

मान्धाता राजाके पुत्र मुचुकुन्द जो दीर्घकालसे निद्रामृ सोये थे उनको जगानेवाले कालयवनके प्राणको हरण करनेवाले और जरासन्धादि राजाओंके गर्वको दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

इस स्कन्धके ५१वृ अध्यायमृ कालयवनसे रणको छोड़कर प्रभुने भागते हुये गुफामृ प्रवेश किया. आपके पीछे कालयवनने भी प्रवेश किया. वहां बहुत कालसे निद्रामृ सोये हुये मुचुकुन्दराजाको; यह ही श्रीकृष्ण है, ऐसा जानकर लात मारकर उठाया. मुचुकुन्दने जागकर जैसे ही कालयवनको देखा तो वह जलकर भस्मीभूत होगया. इस कथाका आशय समझानेके लिये यह नाम है.

मुचुकुन्दस्तुताशेषगुणकर्ममहोदयः।
फलप्रदानसंतुष्टिर्जन्मान्तरितमोक्षदः।।२०५।।

(९२३) मुचुकुन्दस्तुताशेषगुणकर्ममहोदयः

भक्तराज मुचुकुन्दने जिनके सम्पूर्ण गुणकर्म तथा ऐश्वर्यका प्रभावपूर्ण वर्णन किया है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण.

(९२४) फलप्रदानसंतुष्टिः

भक्तिरूप उत्तम फलका दान कर मुचुकुन्द राजाको सन्तुष्ट करनेवाले.

(९२५) जन्मान्तरितमोक्षदः

द्वितीय जन्ममृ मुचुकुन्द राजाको मोक्ष देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

प्रभुके दर्शनाृसे तो तत्काल ही मोक्ष होना चाहिये परन्तु मुचुकुन्द राजाके पूर्वके अवशिष्ट कर्म भुगतवानेके लिये अन्य ब्राह्मणदेह देकर उसको मोक्ष प्रदान किया है. क्याृकि जहां तलक कर्मफल भुगत नहीं लिये जायृ वहां तलक जन्ममरणादिसे छुटकारा नहीं मिलता. ऐसी शास्त्रकी मर्यादा होनेके कारण उसको आपने उसी जन्ममृ मोक्ष नहीं दिया. पुष्टि भक्तको तो केवल भगवान्की सेवा ही चाहिये, अतएव उनको मोक्षाभिलाषा भी नहीं होती. वो तो केवल प्रभुकी

प्रेममयी भक्तिपूर्वक विप्रयोगदशामृ आराधना करके भगवत्कृपापात्र बनके आनन्दमय स्वरूपका ही अनुभव करते हैं. इससे अधिक आनन्ददायक कुछ और हो ही नहीं सकता.

शिवब्राह्मणवाक्यापन्नजयभीतिविभावनः।
प्रवर्षणप्रार्थितामिदानपुण्यमहोत्सवः।।२०६।।

(९२६) शिवब्राह्मणवाक्यापन्नजयभीतिविभावनः

शिवजी और ब्राह्मणृके वाक्यृको सम्पादन कर अठारहवीं बार युद्ध करनेके लिये आये हुए जरासन्धको जय प्रदान करनेके लिये अपनेमृ भय भावनाका नाट्य दिखानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण. भगवान्की तो सर्वत्र विजय ही है. आपको जरासंधादि शत्रुओृसे भय लगना यह तो केवल एक नाटकमात्र है. ऐसे लीलाविनोद करनेकी आपकी अभिलाषा है, ऐसा समझना चाहिये. अथवा सत्रह बार श्रीकृष्णसे पराभव पाकर भी जरासंध लज्जित हो गया, तब उसने भगवान शिवकी आराधना करी एवं ब्राह्मणृका आशीर्वाद भी प्राप्त किया. इसके बाद वो अठारहवीं बार यादवृसे युद्ध करनेके लिये आया. अतएव शिवजी और भूदेवृके वरदानृसे लोगृका विश्वास उठ न जाये, उसके लिये आपने उसको विजय दिलायी. वस्तुतः तो आप अजित ही हैं.

(९२७) प्रवर्षणप्रार्थितामिदानपुण्यमहोत्सवः

प्रवर्षण पर्वत पर्यन्त पीछे दौड़कर जिनसे युद्ध करनेकी याचना ही है, इस याचनाके उद्देश्यसे पर्वत पर चढ़ जानेके कारण चारृ ओरसे पर्वतको अग्नि लगाकर जरासन्धके महान् पवित्र महोत्सवको मिथ्या सिद्ध करनेवाले श्रीकृष्ण.

रुक्मिणीरमणः कामपिता प्रद्युम्नभावनः।
स्यमन्तकमणिव्याजप्राप्तजांबवतीपतिः।।२०७।।

(९२८) रुक्मिणीरमणः – रुक्मिणीजीको रमण करानेवाले प्रभु.

रुचि उत्पन्न करे उसे रुक्म कहा जाता है. अतएव उस रुक्मका (सोनेजैसा) वर्ण है ऐसी रुक्मिणीजीको रमण करानेवाले अर्थात् लक्ष्मीरूप–सौन्दर्य स्वरूप श्रीरुक्मिणीजीमृ रमण करनेवाले प्रभु.

(९२९) कामपिता

कामदेवके अवताररूप प्रद्युम्नको जन्म देनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णका नाम कामपिता है.

शिवजीको मोहित करनेके लिये आये हुये कामदेवको आपने अपने तीसरे नेत्रसे भस्मीभूत कर दिया था. जब कामकी पत्नी रतिने उसे सजीवन करनेकी शिवजीसे प्रार्थना करी तब श्रीकृष्णके यहां रुक्मिणीजी द्वारा प्रकट होगा ऐसा वरदान उसे प्राप्त हुआ. ऐसा शिवपुराणादिमृ कहा गया है. उन शिवजीके वचनृको सत्य करनेके लिये और रतिका प्रिय करनेके लिये आपने कामको प्रकट किया है. इस कारण कामपिता नाम यहां प्रकट हुआ है.

(९३०) प्रद्युम्नभावनः –प्रद्युम्न जिनका नाम है ऐसे ज्येष्ठ पुत्रको प्रकट करनेवाले.

(९३१) स्यमन्तकमणिव्याजप्राप्तजांबवतीपतिः

स्यमन्तक मणिको लानेके निमित्तसे प्राप्त जांबवतीके पति.

सत्यभामाप्राणपतिः कालिन्दीरतिवर्धनः।
मित्रविन्दापतिः सत्यापतिर्वृषनिषूदनः।।२०८।।

(९३२) सत्यभामाप्राणपतिः – सत्यभामाके प्राणनाथ भगवान् श्रीकृष्ण.

(९३३) कालिन्दीरतिवर्धनः

कालिन्दी अर्थात् सूर्यपुत्री जो यमुनाजीके जलमृ निवास कर रही थी उन चतुर्थ महारानीकी प्रीतिको बढ़ानेवाले.

(९३४) मित्रविन्दापतिः – विन्द और अनुविन्दकी बहन मित्रविन्दाके स्वामी.

(९३५) सत्यापतिः – नग्नजीत राजाकी कन्या सत्याके स्वामी.

(९३६) वृषनिषूदनः

नग्नजीत राजाके यहां रहे हुए सात वृषभ अर्थात् सांड़ृको बलहीन बनानेवाले परम समर्थ श्रीकृष्णप्रभु.

भद्रावांछितभर्ता च लक्ष्मणावरणक्षमः।
इन्द्रादिप्रार्थितवधनरकासुरसूदनः।।२०९।।

(९३७) भद्रावांछित भर्ता

श्रुतकीर्ति राजाकी पुत्री भद्राके मनोवांछित भर्ता – पति प्रभु श्रीकृष्ण.

(९३८) लक्ष्मणावरणक्षमः

मद्रदेशके राजाकी पुत्री लक्ष्मणाका वरण करनेमृ समर्थ.

(९३९) इन्द्रादिप्रार्थितवधनरकासुरसूदनः

इन्द्रादिदेवृके द्वारा जिनका नाश करनेके लिये प्रार्थना की गई ऐसे नरकासुर नामक दैत्यका नाश करनेवाले.

मुरारिः पीठहन्ता च ताम्रादिप्राणहारकः।
षोडशस्त्रीसहस्रेशश्छत्रकुण्डलदानकृत्।।२१०।।

(९४०) मुरारिः – मुर नामक दैत्यके शत्रु भगवान् मुरारी.

(९४१) पीठहन्ताः – नरकासुरके सेनापति पीठ नामक असुरको मारनेवाले.

(९४२) ताम्रादिप्राणहारकः

ताम्र जिनमे मुख्य है ऐसे मुर दैत्यके पुत्रोका प्राण हरण करनेवाले .

(९४३) षोडशस्त्रीसहस्रेशः

सोलह हजार स्त्रियोके ईश अर्थात् स्वामी. नरकासुरने अपने भोगार्थ अनेक राजाओकी सोलह हजार दिव्य कन्याओका हरण करके उनसे विवाह करनेके विचारसे उनको अन्तःपुरमे रखा हुआ था. उस नरकासुरका नाश करके उन सोलह हजार स्त्रियोकी अभिलाषा जानकर आपने उनका वरण किया है. इस स्कन्धके ५८वे अध्यायमे यह कथा आती है. उस हेतुसे इन नामको कहा गया है.

(९४४) छत्रकुण्डलदानकृत्

इन्द्रका छत्र इन्द्रको और अदितिके कुण्डल अदितिको प्रदान करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

पारिजातापहरणो देवेन्द्रमदनाशकः।
रुक्मिणीसमसर्वस्त्रीसाध्यभोगरतिप्रदः।।२११।।

(९४५) पारिजातापहरणः

बलपूर्वक देवताओके वृक्ष पारिजातका हरण करनेवाले श्रीकृष्ण.

(९४६) देवेन्द्रमदनाशकः

देवताओके इन्द्रको पराजित कर उसके मद अर्थात् अभिमानको नष्ट करनेवाले श्रीद्वारिकेशप्रभु.

(९४७) रुक्मिणीसमसर्वस्त्रीसाध्यभोगरतिप्रदः

लक्ष्मीजीके अंशरूप समस्त पटरानी होनेसे रुक्मिणीजीके समान समस्त पत्नियोके द्वारा प्राप्त भोगके कारण सबमे प्रीति रतिको उत्कर्ष रीतिसे प्रदान करनेवाले मदनमोहन श्रीकृष्ण.

रुक्मिणीपरिहासोक्तिवाक्तिरोधानकारकः।
पुत्रपौत्रमहाभाग्यगृहधर्मप्रदर्शकः।।२१२।।

(९४८) रुक्मिणीपरिहासोक्तिवाक्तिरोधानकारकः

रुक्मिणीजीके प्रति हास्य विनोदके वचनॄके द्वारा रुक्मिणीजीके वाणीका तिरोधान करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(९४९) पुत्रपौत्रमहाभाग्यगृहधर्मप्रदर्शकः

पुत्र और पौत्रादि सम्बन्धी महान् भाग्यरूप गृहस्थाश्रमियॄके धर्मोंको उत्तम रीतिसे अन्यजनॄको बतानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

शम्बरान्तकसत्पुत्रविवाहहतरुक्मिकः।
उषापहृतपौत्रश्रीर्बाणबाहुनिवारकः॥२१३॥

(९५०) शम्बरान्तकसत्पुत्रविवाहहतरुक्मिकः

शंबरासुरका नाश करनेवाले प्रद्यम्नके पुत्र अनिरुद्धके विवाहमॄ बलदेवजीके द्वारा रुक्मिकका वध करानेवाले.

(९५१) उषापहृतपौत्रश्रीः

बाणासुरकी पुत्री ऊषाकेलिये उसकी सखी चित्रलेखाकी योगशक्तिसे हरण किये हुए अपने पौत्र अनिरुद्धकी सम्पत्ति जिनके प्रतापसे बढ़ी है ऐसे श्रीकृष्ण.

(९५२) बाणबाहुनिवारकः

बाणासुरकी सहस्र भुजाओॄको नष्ट करनेवाले केवल चार भुजायॄ रखकर अन्य भुजाओॄका नाश करनेवाले प्रभु.

शीतज्वरभयव्याप्तज्वरसंस्तुतषड्गुणः।
शंकरप्रतियोद्धा च द्वन्द्वयुद्धविशारदः॥२१४॥

(९५३) शीतज्वरभयव्याप्तज्वरसंस्तुतषड्गुणः

शीतज्वरके भय भयभीत उष्णज्वरने भगवान्के ऐश्वर्यादि छः गुणॄकी स्तुतिकी है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण.

(९५४) शंकरप्रतियोद्धा

शंकरको प्रतिपक्षी बनाकर उनके सामने युद्ध करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण.

(९५५) द्वन्द्वयुद्धविशारदः – द्वन्द्वयुद्ध करनेमॄ कुशल अर्थात् निपुण श्रीकृष्ण.

श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचित सुबोधिनी टीकाका हिन्दी अनुवाद

दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध) राजस साधन प्रकरण

अध्याय ४७

जरासन्धसे युद्ध और द्वारकापुरीका निर्माण

उत्तरार्धे हरेर्लीला स्वतः सर्वात्मना कृता।
यदर्थमवतीर्णोऽसौ सा निरूप्या विभागशः ।।कारि.१।।

कारिकार्थ : श्रीमद्भागवतके उत्तरार्धमें भगवान्ने अपने आप ही अर्थात् भक्तोंके अनुरोधके बिना ही जो लीलाएं की हैं और जिस सर्वोद्धारकेलिए आपका प्राकट्य है, वे लीलाएं विभागपूर्वक निरूपण की गई है ।।१।।

एषा निरोधलीलैव स्वसंसारपरा परम्।
भगवाञ्च तदीयाश्च तच्छास्त्रं चेति स त्रिधा ।।कारि.२।।

कारिकार्थ : उत्तरार्धमें की हुई लीलाएं भी निरोध लीलाएं ही है. यह शंका भी नहीं करनी चाहिए, कि जब प्रद्युम्न आदिने भी इसमें लीलाएं की हैं, तो वे निरोध लीलाएं कैसी होंगी ? वे भी निरोध लीलाएं ही हैं, क्योंकि जैसे बलराम, भीम, पार्थ के व्याजसे आपने ही सब कुछ किया है, वैसे ही यहां भी अपने पुत्र आदि(संसार) द्वारा भी लीलाएं की हैं. भगवान्, उनके धर्म तथा शास्त्र, इस भांति भगवान् तीन प्रकारके हैं, धर्म भगवद्रूप ही है और शास्त्र, शिक्षा देनेवाला होनेसे भगवान्का ज्ञान होनेमें हेतु है. तथा भगवान् स्वयं षड्गुण सम्पन्न हैं. वैसे त्रिविध भगवान्की लीलाएं निरोध करनेवाली हैं. 'निरोधोस्यानुयनं' में 'अस्य' पदसे भगवान्की लीलाएं निरोध करनेवाली ही कही हैं, जिसमें किसी प्रकार विरोध नहीं है, क्योंकि प्रद्युम्नादि द्वारा की हुई लीलाएं भी आपकी ही लीलाएं हैं, यों समझना चाहिए ।।२।।

चतुर्दशभिरध्यायैः प्रमाणं तस्य रूप्यते।
तदीया एकविंशत्या षड्भिः स च निरूप्यते ।।कारि.३।।

कारिकार्थ : चौदह अध्यायोंसे उसका प्रमाण निरूपित किया है, इक्कीससे उनके धर्म कहे हैं, किन्तु वे छःसे ही निरूपित किए हैं, क्योंकि षड्धर्मोंमें ही उन सबके भाव आ जाते हैं ।।३।।

*** प्रक्षिप्त तीन अध्यायोंको छोडकर श्रीसुबोधिनी अनुसार अध्याय ४७/प्रचलित क्रमानुसार अध्याय ५०**

कृतिः प्रमाणं तु हरेः स्वतश्चान्यानुरोधतः ।

सप्तभिः सप्तभिः प्रोक्ता गुणैर्युक्तो हरिस्तथा ।।कारि.४।।

कारिकार्थ : भगवान्‌की लीला तथा प्रमाण अपनेसे तथा भक्तॄके अनुरोधसे है. षड्‌गुणॄसे हरि, सात-सात अध्यायॄसे कहे हैं, अर्थात् एक-एक अध्यायमॄ एक-एक गुण द्वारा की हुई लीला, ६ अध्यायॄमॄ कही गई है और सातवॄमॄ धर्मी हरिकी लीला कही है, इस प्रकार सात अध्याय हैं ।।४।।

वाक्यात्तदीया विज्ञेयास्तस्यैव न तु शास्त्रतः ।

एकविंशविधं सर्वं श्रुत्वा तद्‌बहुधोदितम् ।।कारि.५।।

कारिकार्थ : भगवान्‌के ही वाक्यॄसे उनके धर्म जानने चाहिए, न कि साधारण शास्त्र न्यायसे, इसी कारणसे ही उस प्रकरणके आरम्भमॄ नृगके प्रसंगमॄ भगवान्‌के वाक्यॄ द्वारा ही धर्मज्ञानका निरूपण किया है. वे सब भगवद्‌वाक्य कालके अतिक्रमण करनेवाले होनेसे निरोधके सम्पादक हैं. काल इक्कीस प्रकारका है, अतः यह भी इक्कीस प्रकारका है. इस कारणसे भगवान्‌के धर्म इक्कीस अध्यायॄ से निरूपित किये हैं. भगवान्‌के वाक्यको सुनकर अन्यॄने बहुत प्रकारसे वर्णन किया है, किन्तु मूल वही है ।।५।।

षड्‌गुणैर्भगवान् रुप्यस्तेषु सर्वं प्रतिष्ठितम् ।

तत्र तु प्रथमेऽध्याये स्वावतारप्रयोजनम् ।।कारि.६।।

कारिकार्थ : भगवान्‌का वर्णन षड्‌गुणॄसे किया है, कारणकि, उनमॄ ही सर्व अनन्त गुण समाये हुए हैं. उसमॄ अपने अवतारका प्रयोजन पहले अध्यायमॄ कहा है ।।६।।

निरूप्य क्षात्रधर्मेण जयोऽन्यश्च निरूप्यते ।

राजसानां साधने तु निरोधे भगवत्कृतिः ।।कारि.७।।

कारिकार्थ : क्षात्र धर्मानुसार जयका निरूपण करनेके पश्चात् अन्य विषयका निरूपण किया गया है. राजसॄके निरोधका साधन, सर्वथा भगवान्‌की कृति ही है ।।७।।

सर्वथा साधनमिति तदेवादौ निरूप्यते ।

विवाहपुत्रजन्मान्ता सा निरूप्या विशेषतः ।।कारि.८।।

कारिकार्थ : भगवान्‌की कृति ही सर्वथा साधन होनेसे, वही पहले अध्यायमॄ वर्णित है. भगवान्‌की वह कृति, विवाहसे लेकर पुत्रके जन्म तक विशेष

प्रकारसे निरूपण करने योग्य है ।।८।।

अलौकिकं ततः स्थानं निरूप्यमिति रूप्यते ।

तस्योपद्रवनाशाय भ्रमोत्पादनमीरितम् ।।कारि.९।।

कारिकार्थ : जब भगवान्‌की कृति ही साधन है, तब अलौकिक स्थानका भी निरूपण करना चाहिए तथा उस स्थानमें कोई उपद्रव न हो, इसलिए जरासन्धको भ्रम पैदा करनेकी कथा दो श्लोकोंमें कही है ।।९।।

निग्रहानुग्रहौ चैव प्रसङ्गात् सुनिरूपितौ।

अन्यथा लौकिकी लीला कृष्णस्य स्याद् न चान्यथा।।कारि.१०।।

कारिकार्थ : जरासन्धका बन्धन और मुचुकुन्द पर अनुग्रह, ये दोनों भी प्रसंगसे निरूपित किए गए हैं, जो यों न करें, तो कृष्णकी लीला लौकिकी न होकर अलौकिक हो जाए ।।१०।।

त्रिविधो हि क्षत्रियाणां विवाहः परिकीर्तितः।

गान्धर्वो राक्षसश्चैव विहितश्च स्वगृह्यतः।।कारि.११।।

कारिकार्थ : क्षत्रियोंका विवाह तीन प्रकारसे हो सकता है, गान्धर्व विधिसे[१] राक्षस विधिसे[२] और अपने गृह्य[३] शास्त्रानुसार वैदिक विधिसे ।।११।।

१. प्रेम हो जानेसे विवाह करना मध्यम है. २. राक्षसकी भांति जबरदस्ती ले जाकर विवाह करना अधम है. ३. वैदिक विधिसे विवाह करना, यह उत्तम प्रकारका है.

पुत्रस्यापि कथा वाच्या ह्यन्येनापि समर्पिताम्।

भार्याम् आहुः क्षत्रियस्य तत्प्रसङ्गात् तथा परा।।कारि.१२।।

कारिकार्थ : पुत्रने भी जो क्षात्र धर्मसे विवाह किया, वह कथा कही है. शबरकी दी हुई कन्याको भी उसको मारकर ले आये तथा यहां 'परा' शब्दसे यह कहा है कि रुक्मीकी पुत्रीको समस्त राजाओंको जीतकर ले आए. वह प्रद्युम्नकी पत्नी हुई, यह सर्व कृति क्षात्रधर्मके प्रसंग होनेसे की है ।।१२।।

सत्यभामाविवाहान्ता कथेयं विनिरूपिता।

त्रिविधं दुःखम् आदौ हि भक्तानां विनिरूपितम्।।कारि.१३।।

कारिकार्थ : सत्यभामाके विवाह तक यह कथा निरूपित की है. भक्तोंके त्रिविध दुःखका पहले ही दशम स्कन्धके प्रथमाध्यायमें वर्णन कर दिया है ।।१३।।

भूमेर्मातुर्वैष्णवानां वैकुण्ठाद् आगतिर्यतः।

द्वयमप्यत्र मथुरात्यागे हेतुर्निरूप्यते।।कारि.१४।।

कारिकार्थ : तीन प्रकारके दुःख कौनसे हैं ? वे बताते हैं. भूमि, माता और भक्तॄका दुःख. इन दुःखॄको मिटानेकेलिए भगवान्‌को वैकुण्ठसे आना पड़ा है. फिर उनको भूमि तथा वैष्णवॄके दुःखॄके कारण मथुरा छोड़नी पड़ी. यदि मथुरा न छोड़ते तो ये दुःख दूर करने अशक्य थे, यह मथुरा छोड़नेका कारण कहा है ।।१४।।

प्रमाणरक्षासिद्ध्यर्थम् अनिवार्यं तु तद्द्वयम्।
निवार्यः सप्तदशधा ब्रह्माण्डे तु प्रजापतिः।।कारि.१५।।

कारिकार्थ : ब्रह्माके दिए हुए जरासन्धके वरकी सिद्धिके कारण, वे दो दुःख मिटाने कठिन हो जाते, अतः मथुराका त्याग और उसको भी १७ बार छोड़ देना आवश्यक था, तथा इससे आपने अलौकिकत्व छिपाकर, लौकिक प्रकारसे लीला की है, यह दिखा दिया है ।।१५।।

स सप्तदशधा प्रोक्तः तन्निवृत्तावशक्यता।
अतोऽत्र प्रथमं वाच्यं कृतिशक्यम् अनेकधा।।कारि.१६।।
उत्तरार्धसमैः श्लोकैरतिदेशस्ततः परम्।
द्वाभ्यां कलाभिरपरः साधिकाभिरिति स्थितिः।।कारि.१७।।

कारिकार्थ : ''**यो वै सप्तदशं प्रजापतिं यज्ञमन्वायत्तं वेद**'' इस श्रुतिमॄ प्रजापतिको ब्रह्माण्ड सप्तदश '१७' प्रकारका कहा है, अतः जरासन्ध उसके वरदानके कारण १७ बार चढ़ाई कर आया, किन्तु वह नहीं मारा गया. अब यदि १८ वीं बार उसको यॄ ही भेज दॄ, तो वह भगवान्‌का अलौकिकत्व प्रकट हो जाए. वह उत्तरार्धमॄ करना नहीं है, क्यॄकि उत्तरार्द्ध भाग उसे कहते हैं, जिसमॄ भगवान्‌ने भक्तॄ के अनुरोधसे नहीं, किन्तु स्वतः लौकिक प्रकारसे, अपनी इच्छासे सर्व लीलाएं की हैं, इसलिए यहां पहले ही कृतिसे जो शक्य है, वह अनेक प्रकारसे ४१ श्लोकॄमॄ कहा है. उसके बाद दो श्लोकॄसे अतिदेश कहा है. अनन्तर साढ़े पन्द्रह श्लोकॄसे दूसरा अतिदेश कहा है, इस अध्यायमॄ इस प्रकार चरित्रका वर्णन हुआ है ।।१६- १७।।

आभासार्थ : भगवान् अक्लिष्टकर्मा हैं, इसका निरूपण करनेकेलिए पहले उसका हेतु कंसकी अतिप्रिय दो स्त्रियॄका उपद्रव करना है, वह दो श्लोकॄसे कहते हैं :

श्रीशुक उवाच

अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ।

हते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ।।१।।
पित्रे मगधराजाय जरासन्धाय दुःखिते ।
वेदयाञ्चक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ।।२।।

श्लोकार्थ : हे भरतश्रेष्ठ, 'अस्ति' और 'प्राप्ति' नामकी कंसकी दो रानियां पतिके मरनेसे दुःखसे पीड़ित हो, अपने पिता जरासन्धके घर गईं. दुःखित उन दोनूने मगधके भूपति जरासन्ध अपने पिताको अपने वैधव्यका सर्व कारण निवेदन किया ।।१-२ ।।

व्याख्यार्थ : दोनू रानियूंका आगे क्रियामू योग देनेके कारणसे पहले ही उनका क्रिया नामका निरूपण किया है. 'अस्ति' पद सर्वधातुका अर्थ होनेसे सामान्य क्रियावाचक है, अर्थात् साधनरूप है और 'प्राप्ति' सर्व क्रियाका फलरूप है. भगवान्की इच्छासे दोनूको पुत्र नहीं थे. जिससे भी ये दोनू विशेष क्रोधयुक्त हुई थीं. भगवान्के होते ही पतिके साथ जानेसे रहित हो अर्थात् विधवा हो पीहर गईं. जरासन्धने दिग्विजयमू पराजित होकर कंसको कन्यायू दी थीं, यू अन्य पुराणमू कथा है. श्लोकमू 'च' शब्द देनेका आशय यह है, कि वे अपना पोषणका सर्व पदार्थ तथा दासियां आदि सर्व अपने साथ मायके ले गई थीं. यद्यपि पिताका आमन्त्रण नहीं था, जिसकी इस समय अपेक्षा नहीं थीं, कारण पतिका देहान्त हुआ था. भगवान् अक्लिष्ट कर्मा, सर्व समर्थ हैं, जिससे उनके जानेका कार्य तो प्रसिद्ध हो गया. 'स्म' शब्दका यह आशय है कि साधन-फलरूप 'अस्ति' तथा 'प्राप्ति'को वैधव्य क्यू प्राप्त हुआ ? विधवा होनेका कारण यह है, कि कंसकी रानियां होनेसे पराधीन थीं, कंस विशेष भोगकेलिये प्रवृत्त हुआ तो भी भगवदिच्छासे विधवायू हो गईं. इस बात पर परीक्षितको विश्वास करना चाहिये, इसलिये 'भरतर्षभ' परिक्षितका विशेषण दिया है. यहां उन दोनूके दुःखमू लौकिक कुछ कारण नहीं है और जानेमू भी कोई दूसरा दुःखका कारण नहीं है, किन्तु केवल भर्ताका मर जाना ही कारण है. वहां जाकर जो किया, उसका वर्णन करते हैं. पिताको अपने विधवा होनेका सब आकाशवाणीसे लेकर मरण तकका कारण बताने लगीं, वे पिताकी प्यारी थीं, इसलिये इनको देख, सर्व समाचार विदित कर, जरासन्ध स्वयं भी दुःखित हुआ. यहां श्लोकमू पिताके दो नाम वा विशेषण दिये हैं (१)'जरासन्ध', जिसका आशय है कि आपको कोई सरल रीतिसे जीत नहीं सकता है, अतः आपको प्रतीकार करना चाहिये.

(२)'मगधराज' विशेषणसे निषिद्ध देशके राजा होनेसे दोषका भी निरूपण किया गया है. सारांश यह है कि कन्याओंने पिताको यह बताया कि हमारे विधवा होनेका कारण श्रीकृष्णका चरित्र ही है ।।१-२।।

आभासार्थ : जरासन्धने पहले कंसका वध तो सुना ही था, कि मल्लक्रीड़ा देखते हुए उच्च आसनसे गिर पड़ा, जिससे दैवके कारण मर गया, अब तो वह कारण सहित भगवान्का सकल चरित्र श्रवण कर, ऐसा क्रुद्ध हुआ, जैसे दूधसे पुष्ट सर्प होता है, जिसका वर्णन 'स तदाऽप्रिय' श्लोकेमें करते हैं :

स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ।
अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ।।३।।

श्लोकार्थ : हे राजन्! यह अप्रिय वार्ता सुनकर जरासन्ध शोक तथा क्रोधसे भर गया और पृथ्वीको यादवोंसे शून्य करनेकेलिए महान् उद्यम करने लगा ।।३।।

व्याख्यार्थ : कंस कपटसे मारा गया है, यह सुनकर तो जरासन्ध विरोध करनेकेलिये प्रस्तुत हुआ. मरना तो अप्रिय है ही, इसलिये वह शोकयुक्त भी हुआ. जरासन्ध राजा है, इसलिये उसको दुःख तथा शोकका प्रतीकार करना(बदला लेना) ही है, बदला लेनेमें समर्थको मौन कर बैठना योग्य नहीं है, जरासन्ध विचार कुशल है. अतः उसने सुनी हुई सब बातोंको सोच विचारकर, समझ लिया कि इसमें कृष्णका दोष नहीं है, दोष तो वसुदेवका है, अतः वसुदेवका ही वध करना चाहिये, क्योंकि शास्त्र कहता है कि ''जिघांसन्तं जिघांसीयात्'' मारनेवालेको ही मारना चाहिये, किन्तु उसकी रक्षाकेलिये सर्व यादव तैयार होंगे. अतः मैं पृथ्वी पर एक भी यादवको जीता रहने न दूंगा, जो वसुदेवकी रक्षा कर सके. जरासन्धने भगवान्को जो यादवपनके अभाववाला समझा, एवं यों मनमें धारण कर उस कार्यकी पूर्तिकेलिये महान् उद्यम करने लगा, महान् उद्यम क्या करने लगा? जिसके उत्तरमें कहते हैं कि उसके बन्धुओंको भी उपायोंसे अपने वशमें लाना, अपने पास जो सेना है, वह तो प्रकट ही है ।।३।।

आभासार्थ : उसके उद्यमका फल 'अक्षोहिणीभिः' श्लोकमें कहते हैं :

अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ।
यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत् सर्वतोदिशम् ।। ४ ।।

श्लोकार्थ : तेईस अक्षौहिणी सेनासे यादवोंकी राजधानी मथुराको चारों

तरफ से घेर लिया ।।४।।

व्याख्यार्थ : तीन अक्षौहिणी सेना तो घरमॄ स्थित थी, शेष बीस अक्षौहिणी सेना उद्यम कर इकट्ठी की है, पहले घरमॄ स्थितको विशेष प्रकारसे कहेगा और 'च' कहा है, जिससे घरकी तथा बाहरसे इकट्ठी की हुईका सङ्ग्रह बताया है और पृथक् भी निरूपण किया है. श्लोकमॄ 'अभिसंवृत' पदका आशय बताते हैं, कि इस पदसे एकता तथा एक ही प्रभु हैं, यह प्रकट कर दिखाया है. मथुराको ही पहले क्यॄ घेर लिया? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं कि जीत करनेका मूल तत्त्व यह है, कि जिनको जीतना हो उनकी राजधानी पहले उनसे छीन लेनी चाहिये, इसलिये मथुराको पहले घेर लिया है, कारण कि 'मथुरा' ही उनकी राजधानी है. आगे दिशाओंमॄ चारॄ तरफ घेरनेका कारण यह है कि कोई भी वहांसे निकल न सके, तो समझा जाता है कि जरासन्धने रातको ही किसी मिषसे आकर घेर डाला है ।।४।।

आभासार्थ : डरे हुए की वार्ता करना व्यर्थ है, अतः भगवान्का चरित्र 'निरीक्ष्य' श्लोकसे कहते हैं :

निरीक्ष्य तद् बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ।
स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ।।५।।

श्लोकार्थ : श्रीकृष्ण सीमाका उल्लंघन न कर आते समुद्रके सदृश उसकी सेना, उससे घिरी हुई अपनी पुरी तथा भयसे व्याकुल अपने जनको देखकर, विचार करने लगे ।।५।।

व्याख्यार्थ : इस समय भगवान् दुष्टॄके नाश करनेकेलिये कालरूपसे प्रकट हुए हैं. वह(जरासन्ध) स्नेह करनेकेलिये वा अन्य किसी लौकिक आदि कार्यकेलिये नहीं आया है किन्तु बलरूप होकर आया है, अर्थात् सेना लेकर लड़नेकेलिये आया है. उसका वह बल भी असीम है, जैसे समुद्र, मर्यादा त्याग, भयानकरूपसे बढ़ता जाता है, उसी प्रकार यह भी आया है. इस प्रकार वह यादवॄको ले जानेकेलिये आया होगा, तो उनको ले जावे, इसका विचार तो राजाको करना है, वह करेगा, कृष्ण तो अक्लिष्टकर्मा हैं, फिर इस क्लिष्टकर्मकेलिये विचार क्यॄ करते हैं? इसका उत्तर देते हैं, कि उनके विचार करनेके तीन कारण हैं.

(१)कृष्ण, मथुराको अपनी नगरी समझते हैं (यह केवल यादवॄकी नहीं है),

जिसे उसने घेर रखा है.

(२)उसकी सेना विशेष है, उसके साथ लड़नेकी सामर्थ्य भी विशेष चाहिये, वह यादवॄमॄ अपूर्ण है.

(३)अपने भक्त भयभीत हैं,

तथा श्लोकमॄ 'च' शब्दसे भक्तातिरिक्त अन्य पुरवासी सम्बन्धी हैं, वे भी डरे हुए हैं.

(१)घिरी हुई अपनी नगरीको उससे छुड़ाना आवश्यक है.

(२)भयभीत भक्त तथा नगर निवासियॄको भी निर्भय करना है.

(३)एकको मारना ही चाहिये.

इसे कहनेका आशय यह है, कि यह कार्य, गुण रूपॄका है. सेनाका एकत्व दिखानेका भाव यह है, कि सारी सेना एक ही स्थान पर इकट्ठी होनेसे उसके मारनेमॄ किसी प्रकारका परिश्रम नहीं होता है. 'स्वजन' शब्द कहनेका भीतरी भाव है, कि पिता श्रीवसुदेव भयभीत हैं, कारण कि जरासन्धने वसुदेवको ही दोषी समझा है, जिसके नाशकेलिये चढ़ाई की है ।।५।।

आभासार्थ : भगवान् विचार करने लगे, कि भगवान् हूं, इसलिए मैं दोनॄ तरह कर सकता हूं. अक्लिष्ट कर्मा होनेसे इसका, कंसकी भांति, नाश करूं तो स्वजनॄका तिरस्कारादि सहन करना पड़ेगा या अक्लिष्टकर्मा भगवद् धर्मको त्याग, कारण मालुम होनेसे, विषमता स्वीकारकर, युद्धादिक करूं, इस प्रकार दो स्थिति उत्पन्न होनेसे मुझे क्या करना चाहिए? जिसका वर्णन 'चिन्तयामास' श्लोकमॄ किया है :

चिन्तयामास भगवान् हरिः कारणमानुषः ।
तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ।।६।।

श्लोकार्थ : कारण मानुष, हरि, भगवान् देश और कालके अनुसार अपने अवतारका प्रयोजन सिद्ध करानेकेलिए अपने कर्तव्यका विचार करने लगे ।।६।।

व्याख्यार्थ : कौनसी दो स्थितियां उत्पन्न हुई हैं, जिनकेलिये भगवान्को चिन्ता हुई है? जिसकेलिये कहते हैं, कि भगवान् हरि और कारणमानुष दोनॄ हैं. भगवान् हैं इसलिये दोनॄ प्रकारसे कर सकते हैं, तो क्या अक्लिष्टकर्मा होनेसे कंसकी भांति इसको मारना चाहिये? यदि यॄ मारा जायेगा तो स्वजनॄका पराजय वा तिरस्कार सहन करना पड़ेगा अथवा अक्लिष्टकर्मत्वका त्यागकर, विषमता

अङ्गीकार कर, युद्धादिक करना चाहिये. इन दोनॄमॄसे कौनसा पक्ष ग्रहण करना चाहिये?

पूर्वपक्षीका मत कहते हैं : अपना धर्म त्याग करना अयोग्य है, इसलिये हरिपनको दूर कर, कारणार्थ ही कपटसे, मनुष्यरूप धारण किया है, अतः कंसकी भांति इसको भी मारना चाहिये, यॄ न करनेसे कपटसे मानुषरूप धारण करना व्यर्थ होगा.

आप अक्लिष्टकर्मत्व रक्षार्थ ही मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए हैं, इसी कारणसे युद्ध नहीं करना चाहिये.

अब उत्तर पक्ष अर्थात् सिद्धान्त कहते हैं. युद्ध करना चाहिये, क्यॄकि आप हरि हैं, अतः भक्तॄका दुःख सहन नहीं कर सकते हैं. अपने धर्म(भक्त दुःखका हरण)को पालन करना चाहिये. एवं क्षात्रधर्मका भी पालन आवश्यक है. यदि कहा जाय कि क्षत्री जब १६ वर्षका होता है तब उसका क्षात्रधर्म पालन करना है, अब आपको नहीं, इसके उत्तरमॄ कहते हैं, कि यह १६ वर्ष निर्बलॄको साधारणतया कहा गया है, किन्तु जो पूर्ण समर्थ हैं, वह क्षत्रिय तो १६ वर्ष पूर्व पहले भी क्षात्रधर्मका पालन कर सकता है, इसलिये जो युद्ध करनेके वास्ते आवें, उनसे युद्ध करना ही चाहिये. यदि आप युद्ध करोगे तो, आपका अक्लिष्ट करनेके वास्ते रहेगा, इसके समाधानकेलिये कहते हैं, कि देशके अनुरोधसे युद्ध करना योग्य है, जिसका निरूपण करते हैं, 'देशकालानुगुणं', देश तथा कालके अनुरूप युद्ध करना ही चाहिये. समय पर कभी अङ्गके अनुरोधसे अर्थात् अङ्गके रक्षार्थ अङ्गीके धर्म बदलने पड़ते हैं, जैसे ''यथा प्रवर्ग्यसम्भारे आदित्यास्तमयेऽविरमणं कृतान्तादेव विरमेदिति''.

अथवा देशदोषसे प्रधान भागका भी नाश किया जाता है, जैसे दक्ष-यज्ञमॄ किया गया था, उसीके कारणसे उस देशमॄ अभक्त आकर रहॄगे, इसलिये उनको मारना ही चाहिये. उनका मरण काल आ गया है, यॄ कालका अनुसरण भी करना चाहिये, अतः परिश्रमसे कार्य करना देश-कालके अनुसार होता ही है और वह कालका अवतारका प्रयोजन भी यही है. अवतार भक्तॄके उद्धारार्थ ही लिया जाता है और वह कालका वञ्चन कर, लौकिककी भांति कर, भक्तॄको ले जाना अर्थात् भयसे रक्षा करनी, इसमॄ परिश्रमसे कर्तव्य करना उपयोगी है. जो यॄ नहीं किया जायेगा तो काल-कर्मादि द्वारा भक्तॄसे द्रोह करेगा, पश्चात् विशेष कर्तव्य

करने पड़ेगे, अतः जिसकेलिये अवतार धारण किया है, उस कार्यकी सिद्धि केलिये विषम करना पड़े, तो हानि है वा नहीं? इसलिये भगवान्को विचार करना योग्य नहीं है ।।६।।

आभासार्थ: विकार करनेके अनन्तर जो निर्णय किया, उसका 'हनिष्यामि' श्लोकसे लेकर ४ श्लोकार्धमें वर्णन करते हैं :

हनिष्यामि बलं ह्येतद् भुवि भारं समाहितम् ।
मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ।। ७ ।।

श्लोकार्थ: अपना किया हुआ निश्चय कहते हैं कि इस समय तो जरासन्ध वशवर्ती राजाओंकी जो भाररूप सेना लाया है, उसका ही नाश करूंगा ।।७।।

अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः ।
मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ।। ८ ।।

श्लोकार्थ : प्यादल, घोड़े, रथ और गजयुक्त लाए हुए अनेक अक्षोहिणियोंका नाश करना है, मागध(जरासन्ध)को नहीं मारना है, क्योंकि जो यह जीवित रहेगा तो फिर उद्यम कर, सेना इकट्ठी कर लाएगा ।।८।।

व्याख्यार्थ : सेनाका नाश करूंगा, इस प्रकारकी प्रतिज्ञा की, यों प्रतिज्ञा करना योग्य ही है, क्योंकि लोकोंमें भी जो आक्रमण कर आता है, वह आक्रान्तसे मारा जाता है, इस प्रकार करना कोई विरोध नहीं है. 'एतत्' शब्दसे यह भी बता दिया है, कि यह सेना आक्रमण कर आई है, वह आक्रमण बलसे किया हुआ है, अतः बलपूर्वक ही इसका वध करना उचित है, न कि कपटसे. पहले जो थे वे कपटसे आये थे, अतः उनको कपटसे ही मारना योग्य था, यों करनेसे भगवान्का जो व्रत है कि ''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'', जो जिस प्रकार मेरी शरण आवे, मेरा भजन करता है, मैं भी वही कार्य उसके साथ करता हूं, इस प्रकार व्रत पालन करनेसे नीति अनुसार वैषम्यबुद्धि भी नहीं रहती है. जो मारनेकेलिये आये हुए जनोंकी ही जैसी विषमबुद्धि होती है, यह सब विचार कर ही भगवान्ने 'हि' शब्द कहा है और विशेषतः यह भी कहा है, कि सब देवादिने भूभारको उतारनेकेलिये प्रार्थना की, अन्य कार्य होते हुए भी उन पर कृपा कर, ही उस भूभार हरणरूप कार्यकेलिये मैं प्रकट हुआ हूं, अतः जिस कार्यकेलिये आया हूं, उस कार्यकी सिद्धिकेलिये इनको मारुंगा, कारण यह कि यह सेना भूमि पर

भाररूप है, भाररूप होनेसे इसको सबसे नीचे पातालमॄ रखा था, वह समय पाकर पृथ्वी पर आ गई है. अच्छे प्रकारसे दृढ़ होकर स्थित हो गई है, साधारण काल–कर्मसे इसको दूर नहीं किया जा सकता है, अर्थात् अपने पापॉसे नष्ट हो जायॄगे, ऐसा नहीं है. राजाकी सेना धर्मका कारण है, क्यॉकि राजा सेनाकी सहायतासे प्रजाकी चौरादि दुष्टॉसे रक्षा करता है, ऐसी सेनाके नाशसे एक प्राणी वध होगा और दूसरा अधर्म ही होगा? इस शङ्काके परिहारमॄ कहते हैं, कि यह सेना जो लाया है, वह जरासन्ध अधम देशमॄ उत्पन्न हुआ है, इन अक्षौहिणी सेनाओंका स्वामी तो महान् होगा? इसके उत्तरमॄ कहते हैं कि नहीं, क्यॉकि जो जिसके आधीन होते हैं, वे भी वैसे ही हो जाते हैं, अतः वे राजा लोग भी दुष्ट हैं, जिससे उनके सैनिक भी दुष्ट हैं, इसलिये इसके बलकी परवाह नहीं करनी चाहिये. दुष्ट भाररूप होते हैं, वह सेना अजेय है, यह बतानेकेलिये कहते हैं कि 'अक्षोहिणीभिः' सङ्ख्यातम्', अनेक अक्षोहिणीयां हैं और उनमॄ गिने हुए ही सब होते हैं, अतः प्रसिद्ध भी हैं. प्रत्येक समूहका युद्धमॄ भङ्ग होता है, जैसे कि लड़ाई इस प्रकार करते हैं, बहुत सजातीय भी, एक ही विजातीय हस्ती आदिसे मारे जाते हैं. पहले पांच प्यादल लड़ते हैं, उसके हार जानेकी शङ्का होने पर घुड़सवार आते हैं, उनको पराजित देखकर 'रथी' युद्धमॄ आता है, उसके भी पराजय होने पर एक साठ वर्षकी आयुवाला गज आता है, इस प्रकारके युद्धसे एक पैदल सेनाको भी जीतना अशक्य है. प्यादल, घोड़े, रथ और हस्तिओंसे युक्त पतिके अङ्ग सहित त्रिगुण न्यायसे, क्रम वृद्धिसे बनी सेना अक्षोहिणी कहलाती है. वह अक्षोहिणी एक नहीं हैं किन्तु बहुत हैं, अतः दूसरॉसे उनका नाश होना अशक्य होनेसे ही यह सेना नष्ट करने जैसी है. इस सार्द्ध श्लोकसे सेनाका वध आवश्यक है, क्यॉकि वह दुष्ट तथा भाररूप है, यह निरूपण किया. शास्त्रका सिद्धान्त है कि कोई भी कार्य 'प्रयोक्त रीति' न्यायसे करना चाहिये, अतः इस न्यायानुसार 'मागध'को ही क्यॉ नहीं मारा जाना चाहिये? ये दीन सैनिक तो छोड़ देने चाहिये, इस प्रकार कहनेवालेको उत्तर देते हैं कि उसको क्यॉ अब नहीं मारता हूं, उसका कारण यह है कि पहले तो यह सेना भाररूप है, इसलिये भारको पहिले उतारना चाहिये, हालांकि जरासन्ध भी भाररूप है, तो भी जैसे चितामॄ लगे हुए दो लम्बे बांसॉमॄसे एकको पहिले नहीं जलाया जाता है क्यॉकि उसके जरिये शव तथा अन्य काष्ठको सम्पूर्ण जला देनेमॄ मदद मिलती है, अतः जब शव तथा अन्य काष्ठ

आदि सम्पूर्ण जला देनेमॄ मदद मिलती है, अतः जब शव तथा अन्य काष्ठ आदि सम्पूर्ण भस्म हो जाते हैं तब अन्तमॄ उसका भी दाह किया जाता है, वैसे ही अब मगध मारने योग्य नहीं हैं, कारण कि वह जीता रहेगा तो पृथ्वी पर जो भाररूप जो दुष्ट हैं, उनको उद्यम कर, जहां तहांसे ढूंढकर ले आयेगा, इसके न रहनेसे वे दुष्ट भाररूप जहां कहीं छिप जावॄगे तो पता नहीं लगेगा और उनको लानेकेलिये बहुत परिश्रम करना पड़ेगा. मागध दुष्ट है, जब तक जीता रहेगा, तब तक प्रयत्न करता रहेगा, जिससे सर्व दुष्ट हाथ आ जायॄगे और उनका सरल रीतिसे सफाया हो जायेगा ।।७-८।।

१.अथवा साठ आगकी लपट समान तेजस्वी गज.

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ।
संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ।। ९ ।

श्लोकार्थ : मेरा यह अवतार भूमिसे भार उतारनेकेलिए है, साधुजनॄकी रक्षाके वास्ते है और असाधुआॄके नाश करनेकेलिए हैं ।।९।।

व्याख्यार्थ : जब कि सबकी आत्मा ब्रह्मको, सबको मारनेकेलिये प्रयत्न क्यॄ? वा कैसे? इस शङ्काका समाधान करनेकेलिये कहते हैं कि ''**एतद् अर्थो अवतारो अयम्**'' इनके वधकेलिये ही यह अवतार है, कारण कि ये दैत्य हैं जिससे मलप्राय(मलरूप) और व्याधिप्राय(व्याधिरूप)हैं, उनके नाश करनेमॄ सर्वात्मापन नष्ट नहीं होता है, व्याधि आदिसे फूला हुआ अपनी देहका अङ्ग भी काटा जाता है, इसलिये ही भगवान् स्वयं पुरुषरूप धारणकर उसमॄ दोषरूप दैत्यॄको मिटानेकेलिये आप स्वयं ही औषधरूप बने हैं, विषमता दोष लौकिक है, वह जहां दोषरूप नहीं बनता है, वहां वह दोष नहीं है. अक्लिष्टकर्मत्वगुणको तो यह वैसे ही छोड़ा हुआ है, इसलिये ''अङ्गीकृता ग्लानि भी दोषकेलिये नहीं होती है'' इस न्यायानुसार यॄ करनेमॄ कोई दूषण नहीं है, अपने आप उद्यम कर, नहीं मारे जाते हैं, बिना कपट स्वयं युद्धकेलिये जो आया है, उसको उसी तरह, निष्कपट युद्धसे ही मारना योग्य है, इसलिये मेरा यह अवतार है और 'भूमि' मेरी भक्त है. धर्मरक्षार्थ जो वध किया जाता है, वह दोषकारी नहीं है. इसलिये धर्मकी रक्षाकेलिये भी इसका वध करुंगा, अतः कहा है, कि ''संरक्षणाय साधूनां'' मैंने साधुआॄकी रक्षाकेलिये अवतार लिया है, यह कार्य होनेसे, साधन नहीं है, जो उसमॄ दोष होवे, दूसरी तरह साधुआॄकी रक्षा करनी चाहिये, इस शङ्काके उत्तरमॄ

कहते हैं कि दुष्टाके वधकेलिये भी मैंने अवतार लिया है. श्लोकमा 'च' शब्दसे यह दिखाया है, कि भक्तिमार्गकी स्थापनाकेलिये भी अवतार धारण किया है. इससे यह बताया है, कि इन कार्योंकी सिद्धिकेलिये मेरा अवतार है : (१)भूभार हरण (२)साधु रक्षा (३)दुष्टाका नाश और (४)भक्तिका प्रसार. ये चारा ही समान प्रधान हैं, अर्थात् सर्व मुख्य कार्य हैं न कि एक दूसरेकेलिये करना है. (१)भूभार उतारना राजस कार्य है, (२)साधुआकी रक्षा करना सात्त्विक कार्य है, (३)दुष्टाका निग्रह, तामस कार्य है और (४)भक्तिका कार्य, निर्गुणकार्य है. केवल दुष्टाको साधारण रीतिसे मारनेसे पृथ्वीका भार नहीं उतारना है, क्याकि दुष्ट फिर उत्पन्न हो सकते हैं, उनके हननका ही प्रयत्न, जो स्वयं भगवान्ने किया, उसमा भगवान्के अन्तःकरणका तात्पर्य यह था, कि मेरे हाथसे मरनेके कारण वे मुक्त हो जायागे, फिर वे दैत्य उत्पन्न न हागे, इस प्रकार साधुआकी रक्षामा भी समझना चाहिये. साधुआकी रक्षाकेलिये भगवान्ने दो कार्य किये हैं (१)असाधुआका नाश, क्याकि असाधु हागे तो उनके संसर्गसे कदाचित् साधुआकी असत् बुद्धि हो जायेगी, इसलिये असाधुआका नाश किया. सबके वध करनेसे तो अनिष्ट होवे और दूसरा साधुआकी बुद्धि बदलनेमा जो बाधाया आती हैं उनको दूर कर, बुद्धि, शुद्ध एवं दृढ़ कर दो. अशुद्ध असद्बुद्धिमा भक्तिका प्रवेश नहीं होता है, यह तो स्पष्ट ही है ।।९।।

अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया।
विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित्।।१०।।

श्लोकार्थ : मैं अन्यावतार भी लेता हूं, वह केवल एक ही कार्यकेलिए अर्थात् किसी प्रकार भी धर्मकी रक्षा हो सके और अधर्मका निराकरण हो, ऐसे कार्य तो कभी किसी समय होते हैं ।।१०।।

व्याख्यार्थ : इस अवतारके चार प्रयोजन बताकर, भगवान् कहते हैं, कि पक्षपात लक्षणवाला धर्म पहलेसे ही मेरेमा है, यह धर्म सृष्टिके आदिमा ही मैंने स्वीकार कर लिया था, अतः कोई योग्य कार्य पक्षपातसे मैं करूं तो मुझे दोष नहीं लगता है, इसको सिद्ध करनेकेलिये कहते हैं कि मैंने पहले भी धर्मकी रक्षाके वास्ते अवतार लिये है.

इस अवतारके सिवाय अन्य अवतार धारण करनेका फल है, धर्मरक्षा और अधर्मकी निवृत्ति है. इसलिये गीतामा "**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत**"

कहा है. यह अवतार तो केवल धर्मरक्षाकेलिये नहीं है. 'अपि' शब्दसे धर्मरक्षा और अधर्मनिवृत्ति कार्यका भी ग्रहण किया है, यॄ समझने पर इस अवतारके ६ प्रयोजन हैं यह निश्चय होगा. यहां भी पूर्वकी भांति दोनॄ मुख्य हैं, इसलिये ही 'संस्थापनाय धर्मस्य' यह वाक्य भी विरुद्ध नहीं होगा, अतएव बुद्धके अवतारमॄ केवल धर्मकी रक्षा प्रयोजन है, क्रियावतारमॄ अधर्मकी निवृत्ति ही प्रयोजन है. परशुरामके अवतारमॄ दुष्टॄका निग्रह प्रयोजन है, बलभद्र अवतार भूभार हरणार्थ ही है, पृथुका अवतार सत्य वा सत्पुरुषॄका परिपालन ही प्रयोजन है, इस प्रकार सर्व अवतारॄमॄ योग्यतानुसार समझना चाहिये. सर्व तो भगवान्मॄ ही है. भक्ति स्वतन्त्र तथा अधिक भगवान्मॄ ही है, ये सब तो काल-कर्म आदिसे स्वतन्त्र वा उनकी आज्ञासे स्वतः सिद्ध होते रहॄगे, फिर विशेष अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता है? इसके समाधानकेलिये कहते हैं कि, 'काले प्रभवतः' धर्म और अधर्म कभी ही कालमॄ पैदा होते हैं, अतः जब वे अपेक्षित नहीं हैं, तब अवतार लेकर अधर्मका निराकरण और धर्मकी स्थापना करनी पड़ती है, काल तो केवल उत्पन्न करनेवाला है, उससे निराकरण नहीं हो सकता है, जो निश्चित् अर्थात् सीमावालेमॄ दोनॄ शक्तिॠका अभाव होता है, इस कारणसे विषमता तथा अक्लिष्टकर्मत्व दोनॄको भक्तॄके अनुरोधसे करना ही चाहिये ।।१०।।

आभासार्थ : भगवान्ने सोचा कि भूमि पर जितने युद्धके साधन हैं, उनमॄ दैत्यांश हैं, उनके तैयार करनेमॄ विलम्ब होगा, अतः वे साधन अलौकिक होने चाहिए, यॄ विचार करते ही, वैकुण्ठसे स्वयं ही साधन आ गए, जिनका वर्णन 'एवं ध्यायति' श्लोकमॄ करते हैं :

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ।
रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ।।११।।

श्लोकार्थ : भगवान्के इस तरह विचार करते ही, आकाशसे सूर्यकी भांति प्रकाशवाले, सारथियॄ सहित तथा युद्धकी सामग्रीके साथ तुरन्त दो रथ उतर आए ।।११।।

व्याख्यार्थ : श्लोकमॄ भगवान्का 'गोविन्द' नाम यह जतानेकेलिये दिया है, कि सर्व देव, अधिकार न्यायानुसार भगवान्के वशमॄ हैं. आकाशसे आये, यॄ कहनेका आशय यह है, कि सब अलौकिक हैं, यह ज्ञान हो जाये. 'सूर्य सम प्रकाशवाले' कहनेका भाव यह है, कि सबको वे देखनेमॄ आवे, क्यॄकि देखनेसे

ही ये अलौकिक हैं, यह दृढ़ ज्ञान होता है. सूर्य उदय होता है तब सब देखते ही हैं, यॄ कहनेसे भगवान् अक्लिष्टकर्मा हैं, यह भी सिद्ध कर दिखा दिया और अपने सम्बन्धियॊंका भय भी मिटा दिया. अलौकिक सामग्री सहित अलौकिक रथॊंका आना देखकर भी, यदि लड़नेका प्रयत्न करते हैं, तो वे निश्चयसे मृत्युकेलिये प्रयत्न कर रहे हैं, इसलिये भगवान्का कोई दोष नहीं है. जैसे मथुरामॆं धनुर्भङ्ग आदिसे अपना सामर्थ्य प्रकट दिखाया, तो भी समझे नहीं, अन्तमॆं वे मृत्युको ही प्राप्त हुए, वैसे ही यहां भी होगा. तत्क्षण आये, उसका भाव यह है, कि तैयार ही थे, वे आ गये, न कि जैसे लक्ष्मीकी, रुक्मिणी आदिभावमॆं आनेमॆं देरी हुई. यद्यपि अलौकिक रथॊंको सूतादिकी अपेक्षा नहीं है, वैसे यहां नहीं है, तो भी उनके न होनेसे रथॊंकी शोभा न होगी, इसलिये शोभार्थ सूत चाहिये, यह कार्य प्राकृतकी भांति किया गया, उनके अनुसरण अथवा अनुसरण बिना कार्यका अभाव हो, अतः कहा कि रथ सूतॊं सहित आये तथा कवच और ध्वजादि सामग्री भी उनमॆं धरी हुई थीं ।।११।।

आभासार्थ : योद्धा आयुधॊंवाले रथमॆं ही बैठता है, अतः आयुधॊंके आगमनका 'आयुधानि च' इस श्लोकमॆं पृथक् वर्णन करते हैं :

आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ।
दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः सङ्कर्षणमथाब्रवीत् ।।१२।।

श्लोकार्थ : धनुष, खड्ग आदि दिव्य आयुध जो असल थे, वे अपने आप आ गए. भगवान्ने उनको देखकर बलरामजीसे कहा ।।१२।।

व्याख्यार्थ : विष्णुके धनुष सहित अन्य धनुष, तलवार आदि अलौकिक शस्त्र किसीने लाकर नहीं दिये किन्तु स्वयं आ गये. 'पुराणानि' शब्दसे कहनेका आशय यह है, कि वे शस्त्र नवीन आकारवाले थे, किन्तु जो अलौकिक आकृति आगे थी, वह अब भी है. इस प्रकार आई हुई सामग्रीको भगवान् देखकर विचार करने लगे कि हमारे अवतार, कार्योंको सिद्ध करनेकेलिये हैं, उनमॆंसे अब भूभारके हरणका कार्य सामने आया है. उस कार्यको पूरा करनेकेलिये बलरामजी का प्राकट्य है, अतः बलभद्रको कहने लगे. जो अपना कार्य जिसकेलिये प्रकट हुए हैं, वह न करॆंगे, तो अवतार धारण करनेकी अन्य प्रकार उत्पत्ति नहीं है, इसलिये वैसी ही प्रेरणा करॆंगे, जैसे वे इस कार्यको करॆंगे. भगवान् 'हृषीकेश' हैं, अतः प्रेरक तो सबके आप ही हैं. इसीलिये जैसे कार्य करानेकी इच्छा होती है,

वैसे ही प्रेरणा करते हैं, क्यूंकि बलरामजी सङ्कर्षण स्वरूप भी हैं, अतः पूर्णरीतिसे भारको खूंचकर, दूर फूंक देनेमूं समर्थ हैं ।।१२।।

आभासार्थ : भगवान् विशेष विचारसे निर्णय किए हुए कर्तव्यको करनेके लिए 'पश्यार्य' श्लोकमूं बलदेवजीको कहते हैं :

पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ।
एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ।।१३।।

श्लोकार्थ : हे आर्य! हे प्रभो! जिनके आप रक्षक हैं, उन यादवूं पर वैसा दुःख आ पड़ा है, जिसका उपाय आपके सिवाय कोई नहीं कर सकता है. इसलिए आपके वास्ते प्यारे मुसल आदि शस्त्र भी आ गए हैं ।।१३।।

व्याख्यार्थ : दोनूं भ्राता एकान्तमूं इस प्रकार खड़े हुए थे, जैसे जो सलाह की जाये उसका किसीको भी पता न पड़े. तीन श्लोक धीरे-धीरे कहने लगे. 'हे आर्य!' सम्बोधन इस आशयसे दिया है, कि आपको किसीकी भी नकल नहीं करनी है, किन्तु मेरे वचन आपको कर्तव्यको जतानेवाले हैं. अर्थात् आप श्रेष्ठ हैं. आपका इस समय यह कर्तव्य है कि जो यादव हैं, इनकी रक्षा सदैव आपसे ही होती है, अतः अब भी होनी चाहिये. कारण कि, उन पर अभी ऐसा व्यसन अर्थात् बड़ी आपदा आ पड़ी है कि जिसका कोई प्रतीकार नहीं है. यद्यपि यह पहले विचार करना चाहिये था, वह न कर अनौचित्य(जो उचित नहीं) ही किया है, किन्तु अकस्मात् अब वह प्राप्त हो गया है, तो भी किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं है. कारण कि आप प्रभु हैं, जिससे आप मैं सर्व प्रकारका सामर्थ्य है. आप इस व्यसनसे इनकी रक्षा करनेमूं सर्वथा समर्थ हैं. अवतारूंमूं गुणूंसे अन्तर पड़ता है, किन्तु साधन स्वतः प्राप्त हो गये हैं. देखिये, यह आपका आया हुआ रथ है, यह रथ आपका ही है, इसलिये साधनमूं कोई संशय नहीं है. फिर जो आयुध आये हैं, वे आपके प्यारे मुसल आदि हैं. श्लोकमूं दिये गये 'च'का तात्पर्य बताते हैं, कि जिसको भी युद्धमूं अपेक्षा रहती है, वे सब हैं ।।१३।।

आभासार्थ : भूभार हरण करना उसका ही कार्य है, 'यानमस्थाय' श्लोकसे वह वर्णन करते हैं :

यानम् आस्थाय जह्योतद् व्यसनात् स्वान् समुद्धर ।
एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ।।१४।।

श्लोकार्थ : रथ पर बैठकर, इस सेनाको नष्टकर, अपने आश्रितूंको

संकटसे छुड़ाइए. हे ईश! हम दोनॄने साधुआॄके कल्याणकेलिए अवतार धारण किया है ।।१४।।

व्याख्यार्थ : रथमॄ बैठेकर इस बलको नाश कर, यह विचार ही न करना कि शक्ति कहांसे आयेगी? रथमॄ बैठने पर सर्वशक्ति उद्‌भूत हो जायेगी. विलम्ब मत करो, क्यॄकि ये अपने सम्बन्धी हैं, अतः शीघ्र ही इनका व्यसनसे छुटकारा करो. यह कार्य आवश्यक है, इसलिये कहनेकी आवश्यकता नहीं है, क्यॄकि यह विषय स्पष्ट ही है, फिर भी आवश्यकताको स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हम इसलिये अवतरित हुए हैं, यॄ कहना तो योग्य ही है, कारणकि भूमिने प्रार्थना की थी, नहीं तो हम प्रकट ही नहीं होते, हमारे प्राकट्यमॄ सर्व कार्य गूंथे हुए हैं. साधुआॄका भी सुख हमारे द्वारा ही प्राप्त होगा. सर्व प्रकार वे भी सुखी हॄगे, महान् आत्माआॄके प्राकट्यका यही कर्तव्य है. 'ईश' शब्दसे बलरामका सामर्थ्य प्रकट करते हैं. यॄ नहीं कहते तो उपेक्षाका दोष भगवान्‌को लगता. कुछ भी चिन्ता न करो, क्यॄकि सेवा विशेष नहीं है, गिनी हुई है, केवल तेवीस अक्षौहिणी ही हैं. तात्पर्य यह है कि इनका नाश करनेमॄ किञ्चित भी परिश्रम न होगा. तेवीस अक्षौहिणी भी नाममात्रकी हैं. आपके सामने तो कुछ भी नहीं है, तो भी पृथ्वी पर भाररूप होनेसे इनका नाश करना ही चाहिये ।।१४।।

आभासार्थ : श्रीकृष्ण और बलराम एकान्तमॄ परामर्श(सलाह) कर, युद्धके लिए तैयार हुए. एकान्तमॄ विचार करनेका कारण यह था कि यदि पिता वसुदेवादि सुनॄगे तो रुकावट डालॄगे और यदि राजा सुन लॄगे तो वे युद्धार्थ निकल पड़ॄगे, अतः दोनॄने एकान्तमॄ परामर्श कर, स्वयं युद्धकेलिए प्रवृत्त हुए :

त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु ।
एवं सम्मन्त्र्य दाशार्हो दंशितौ रथिनौ पुरात् ।।१५।।
निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसावृतौ ।
शङ्खं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ।।१६।।
ततोऽभूत् परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ।

श्लोकार्थ : इस प्रकार दोनॄ भ्राताआॄने परस्पर सलाह कर, पहले [१]कवचादि धारण किए. अनन्तर अपने सुन्दर शस्त्रास्त्र लेकर रथमॄ बैठकर लड़ाई करनेकेलिए प्रवृत्त हुए. साथमॄ स्वल्प सेना भी थी. पुरसे बाहिर निकले और दारुकके सारथिवाले श्रीकृष्णने अपने शंखको बजाया. जिसकी ध्वनिसे शत्रुकी

सेनाके हृदयमॄ त्रास उत्पन्न हुआ, जिससे वह कांपने लगी ।।१५ – १६।।

१. शरीरकी रक्षाकेलिए लोहका वस्त्र

व्याख्यार्थ : पहले कवच धारण कर रथमॄ बैठे, फिर नगरसे निकले और सुन्दर शस्त्र लेके युद्धार्थ प्रवृत्त हुए, क्यॄकि दोनॄ सेवक प्रिय थे. जिस समय युद्धकेलिये प्रवृत्त हुए. उस समय सम्पूर्ण सेना आपके पास नहीं थी, कारण कि आपने राजासे सलाह न की थी. जिससे युद्धमॄ जानेकेलिये सेनाको राजाकी आज्ञा न मिली थी. अतः अल्प सेनायुक्त थे. उसमॄ भी सेनामॄ इतनी कमी, अपने स्वतन्त्र निश्चय करनेके कारण हुई थी. शत्रुके सैनिकॄके उद्यम तथा उत्साहका नाश करनेकेलिये भगवान्ने नगरके बाहर निकलकर, जिसकी ध्वनि, दानवदर्प नाश करनेवाली है, वैसे पांचजन्य शङ्खको बजाया, क्यॄकि वे दुःखहर्ता हैं. यदि वह नगरके भीतर बजाते तो नगर निवासियॄके मनमॄ शङ्का उत्पन्न हो जाती. जिससे वे यॄ भी भ्रममॄ पड़ जाते, कि विशेषरूपसे सङ्कर्षणरूपमॄ ही प्रवृत्त हुए हैं, यॄ जतानेकेलिये कि साधनप्रकरणमॄ उसका 'सङ्कर्षण'का उपयोग है. जैसे प्रमेय प्रकरणमॄ अनिरुद्धमॄ सान्त्वन है. आगे अन्य आयुधॄका भी कार्य होगा, यह बतानेकेलिये शङ्ख बजानेसे जो फल हुआ, उसका वर्णन करते हैं कि शत्रुॠके सैनिकॄका मरण निकट ही है. इसलिये पहले ही उनके हृदयमॄ ध्वनिसे भय ही उत्पन्न नहीं हो गया, किन्तु उससे शरीरमॄ कम्पन भी पैदा हो गई है ।।१५–१६।।

आभासार्थ : सेनाकी यह दशा जानकर चतुर जरासन्ध भगवान्की युद्धसे निवृत्ति करनेकेलिए 'तावाह' श्लोकमॄ कुछ कहने लगा :

तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ।। १७।।
न त्वया योद्धुमिच्छामि बालकेन विलज्जया ।
गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन्।।१८।।

श्लोकार्थ : इन दोनॄको अच्छी तरह देखकर, मागध कहने लगा, हे कृष्ण! हे पुरुषाधमॄ अधम! मैं तुमसे युद्ध करना नहीं चाहता हूं, क्यॄकि तू बालक है. बालकसे लड़ते हुए लज्जा आती है, एवं तू बन्धुकी हत्या करनेवाला तथा छिपकर रहनेवाला है. इसलिए भी हे मन्द! तुझसे लड़ना नहीं चाहता हूं।।१७–१८।।

व्याख्यार्थ : यदि सौम्यरीतिसे कहॄ, कि भगवान्के साथ युद्ध मेरेलिये उचित नहीं है, तो भगवान् युद्ध न कर और उसका अपना कार्य भी सिद्ध हो जाये,

किन्तु उसने सत् नीति छोड़, विषमरीतिसे या कहा? या विषम प्रकारसे कहनेका कारण यह है, कि इसका जन्म अधम देशमा हुआ है. इसलिये इसकी बुद्धि भी अधम ही है. उन दोनाको देखकर अपने मनोगत भावके अनुसार तेजको समझकर इस प्रकार इसलिये कहने लगा. पहले भगवान्से युद्ध करना स्वीकार नहीं करता है, क्याकि इनसे युद्ध नहीं चाहता है. इसलिये भगवान्केलिये तीन सम्बोधन करता है. अर्थात् भगवान्केलिये तीन गुण बतलाता है. (१)आनन्दगुण, (२)चैतन्यगुण, (३)सद्गुण, इन गुणाको बतलानेकेलिये तीन नाम १.कृष्ण, २.पुरुष और ३.अधम कहे हैं. १.कृष्ण नामसे कहा है, कि आप आनन्दरूप हैं. २.पुरुष नामसे कहा है कि आप चैतन्यरूप भी हैं तथा २.अधम नामसे कहा है कि आप सद्रूपसे प्रपञ्चरूप भी हैं. सदानन्दरूप, अपने उपकार करनेवाले पुरुषार्थरूप आत्मासे कोई भी युद्ध करना नहीं चाहता है. इसीलिये जरासन्ध कहता है, कि तुझसे लड़ना नहीं चाहता हूं और फिर विशेषता यह है, कि आप बालकाको भी सुख देनेवाले हैं, तथा आपके एक-एक बालमा ब्रह्मा विराजमान् हैं, अतः जिसके शरीरमा कोटिश ब्रह्माण्ड हैं, उसके साथ कार्यकेलिये भी कौन लड़नेकी सामर्थ्य रखता है? और वैसेसे लड़नेमा लज्जा भी आनी चाहिये, अतः आपसे युद्ध करना उचित नहीं है. लोक हंसेगा कि यह स्वामीसे लड़ता है, अतः विशिष्ट लज्जासे भी न लडूंगा. यदि आप कहो, कि ये मेरी शक्तियां मैं दूसरेमा स्थापित कर देता हूं, तब तो तूं लड़ेगा? तो क्या कहता है, कि तब भी नहीं लडूंगा, क्याकि तू गुप्त अर्थात् अव्यक्त है, अव्यक्तसे कौन लड़ सकता है? उसको कौन मार सकता है? पराजयपक्षमा तुझसे ही मरना योग्य है न कि दूसरेसे. अपनी कीर्ति भी हो, अतः यह भी योग्य है कि तुझसे रक्षित जो मैं हूं, उससे आपको लड़ना ही नहीं चाहिये तथा अन्य भी विशेष कारण यह है कि आप 'अमन्द' हैं अर्थात् जहां माया नहीं है, ऐसे मोक्षको देनेवाले हैं. मोक्ष देनेवाला तो आराध्य है, उससे कोई भी लड़ना नहीं चाहता है, अतः आप इस लड़ाईके कार्यको त्यागकर, जाकर, भक्ताा तथा ज्ञानियाको मोक्ष दान करो. यदि आप कहो, कि मैं तो यादव हूं, मोक्षदाता नहीं हूं, तो यह कहना मुझे भुलावेमा डालनेकेलिये कहते हो, क्याकि यदि आप यादव हो तो अपने सम्बन्धी कंस आदिको कैसे मारा? अतः यादवाको मारनेमा आप यादव नहीं हैं, किन्तु हमारे स्वामी ही हैं, जो अब आप दूसरे देखनेमा आते हो. ये वचन प्रकरणसे विरुद्ध

होनेसे उपेक्षणीय हैं, क्यूंकि ये निन्दापरायण हैं. तथा शेष भ्रमित करनेवाले वाक्य हैं ।।१८।।

आभासार्थ : जरासन्धने भगवान्को इस प्रकार युद्धसे निवृत्त होनेकी जब प्रार्थना की, तब यह विचार उसके हृदयमूं उत्पन्न हुआ, कि इस प्रार्थनासे कदाचित् बलरामजी भी निवृत्त हो जाए, अतः उनको 'त्वं तु राम' इस श्लोकसे लड़नेकेलिए आह्वान करता है :

त्वं तु राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह ।
हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ।।१९।।

श्लोकार्थ : हे राम! यदि लड़नेकी श्रद्धा हो तो लड़, धीरज धर, मेरे शरूंसे छिन्न देहको त्याग, स्वर्गको जाओ अथवा मुझे मार ।।१९।।

व्याख्यार्थ : 'तु' शब्द पहले कही हुई बातके निवारणार्थ है नहीं तो, हम दोनूंको अथवा एक बन्धुको मारना बराबर ही है, तो रामको लड़नेकेलिये क्यूं आह्वान करता है? इसका समाधान यह है कि इसको यादवूंका नाश करना है, सत्वसे व्यवहित, अतिशय कर आवेशवालूंका यह देह है, इससे सिद्ध है कि राम यादव है, इसलिये रामका आह्वान किया है. वसुदेवका वैर उसके पुत्र पर डालकर रामसे लड़ना मानूं वसुदेवसे ही लड़ना है. इसलिये कहा है, कि यदि पितामूं श्रद्धा अर्थात् भक्ति है, तो तु लड, अथवा क्षत्रियपनमूं श्रद्धा है, तो भी लड. अपने दोनूंमूं शक्ति समान है, किन्तु मेरी सेना बहुत है. यदि वह देखकर डर गये, तो डर मत, धीरज और हिम्मत धारणकर, भगवान्से जो भिन्न है, उनका धर्म अन्य होता है, बलरामजीमूं भीतर बल तो है ही जिससे धैर्य भी है, उसको बाहिर प्रकटकर, इसलिये वह धातुके आगे 'उत्' उपसर्ग लगाकर 'उद्वह' पद दिया है. लडनेसे जो होगा उसका निश्चय तो है ही नहीं. यदि किसी एककी जय वा पराजयका पूर्व ही निश्चित हो तो लडाई हो ही नहीं. अतः मेरे शरूंसे छेदी हुई देहका त्यागकर, धैर्य करनेसे स्वर्गकी प्राप्तिके आनन्दको धारण करो, अथवा मेरे शरूंसे कटी हुई देहको त्याग, विधि-निषेध विशेषणमूं ही प्रयुक्त होते हैं. इस न्यायानुसार शरूंका परदा हटाकर मुझे नष्टकर, यूं कहनेसे मागधने यह बता दिया कि पहले मैं ही प्रहार करूंगा ।।१९।।

आभासार्थ : जरासन्धने जो बलरामजीके आगे अपनी सामर्थ्यकी डींग हांकी, वह उचित नहीं है. यूं समझ, भगवान् उसका 'न वै शूरा' श्लोकमूं

प्रतिवाद करते हैं :

श्रीभगवानुवाच

न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ।

न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ।।२०।।

श्लोकार्थ : भगवान् कहने लगे कि हे राजन्! शूरवीर, बकवाद नहीं करते हैं, किन्तु अपना पराक्रम, कार्य करनेसे ही दिखाते हैं. हम आतुर तथा जिसकी मौत निकट आ गई है, उसके वचनॄ पर ध्यान नहीं देते हैं ।।२०।।

व्याख्यार्थ : जो सचमुच निश्चित शूरवीर होते हैं, वे अपनी प्रशंसा अपने आप नहीं करते हैं, परन्तु अपनी शूरवीरता दिखाते हैं. जो भी आपने कहा, कि मैं तुमसे युद्ध नहीं करूंगा, वह आपका वचन ग्रहण नहीं करते हैं, सो कहनेसे भगवान्ने बता दिया कि मागधका कहना प्रमाणरूप नहीं है. जिसको ईश्वर नहीं मानते हैं, वह प्रमाण नहीं हो सकता है. इस शङ्काद्वयसे युद्ध छोड़ा, युद्धसे मरण होगा वा मुक्ति मिलेगी, ये दोनॄ अब नहीं करने हैं. अब नहीं मरना है और न मोक्ष देना है, इस कारणसे ही भगवान्ने पहले उससे सर्वस्व अर्पण करानेके अनन्तर ही मोक्ष दी. अतः भगवान्ने ये वचन उचित ही कहे हैं कि तेरा कहा हुआ वचन ग्रहण नहीं करूंगा. किञ्च हे राजन्! शूरवीर जो क्षत्रिय राजा हैं, उनको युद्धमॄ मरनेसे ही मुक्ति होती है. जैसा कि शास्त्रमॄ कहा है ''**द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डल भेदिनौ, परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः**'' अर्थ–लोकमॄ योग युक्त संन्यासी, युद्धमॄ मरा हुआ शूरवीर, ये दोनॄ मुक्त हो जाते हैं.

इस प्रकार शास्त्रॄमॄ ब्राह्मण तथा क्षत्रियॄके मुक्तिका मार्ग निश्चित सिद्ध किया हुआ है. उन दोनॄको ही मोक्षका उपदेश है. ''यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च'' इस श्रुतिमॄ भी यही बात कही है. अतः तू मुझसे रक्षा किया हुआ है, तो तुझसे राम लड़ाई तो करॄगे ही. मैं तो तेरे साथ युद्ध न करूंगा, कारण कि तेरी इस बड़ी सेनाको तो नष्ट करना ही है. यह उपदेश आगेके कार्यकेलिये है, जो यॄ उपदेश न दॄ तो भीमसे भी न लडे. बीमारका वचन कभी नहीं मानना चाहिये, क्यॄकि वह सदैव कुपथ्य रोगमॄ हानि करनेवाली वस्तुकी ही याचना करता है, किन्तु उसको वह नहीं देनी चाहिये, क्यॄकि उस वस्तुके देनेसे उसका रोग बढ़ेगा. इसी प्रकार यहां भी यदि आपका कहा हुआ किया जाये, तो आपकी ही हानि होगी और जो मरनेके समीप है, वह भी बुद्धि शून्य हो जाता है. जिससे वह मोक्षको हटाकर

केवल मारना ही चाहता है, इसलिये उसका कहा भी नहीं करना चाहिये ।।२०।।

आभासार्थ : इस प्रकारके उपदेशसे युद्ध करनेमॄ अपना हित समझकर सारी लड़ाईकी सामग्री सहित सेनाको लेकर युद्धकेलिए आया. जिसका वर्णन 'जरासुतः' श्लोकसे श्रीशुकदेवजी करते हैं :

श्रीशुक उवाच

जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसाऽवृणोत् ।
ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्यानलो वायुरिवाभ्ररेणुभिः ।।२१।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि जरासन्धने समीप जाकर, अपनी बड़ी सेनासे राम-कृष्णको उनकी सेना, सारथि सहित रथ, ध्वजा, घोड़ॄको इस प्रकार घेर लिया, जैसे पवनसे बादलॄसे सूर्यको और रेणुसे अग्निको घेर लेता है ।।२१।।

व्याख्यार्थ : यह जरासुत, माताका पुत्र है, उसमॄ भी यह माता साधारण माता जैसी नहीं है, किन्तु जरा होनेसे सबको बदसूरत कर देती है, तो इसको कैसे छोड़ेगी ? केवल जरा नहीं, किन्तु राक्षसी भी है, जिससे वह जो दुर्बुद्धि हुआ है, यह भी बता दिया है. यदि यह नहीं बताया जाता तो उसका उपदेश लेकर, मरनेका निश्चयकर, उसके साथ युद्ध कैसे करॄ ?

जरासन्धने उन दोनॄके समीप आकर अपनी जबर्दस्त सेनासे उनको चारॄ तरफसे घेर लिया. ये दोनॄ भ्राता मधुवंशमॄ उत्पन्न हुए थे. इसलिये भगवान् अर्थात् षड्गुणसंयुक्त स्वरूपसे, अथवा लक्ष्मीके पति होनेसे धन द्रॄगे, इसलिये मागधने घेर लिया. अथवा माता-पिताको अपनी शक्ति दिखानी थी, इसलिये घेरेमॄ आ गये. जरासन्ध युद्धमॄ इसलिये तैयार हुआ कि उसकी बुद्धिमॄ यह विचार था कि मैं जीतूंगा. कारण कि मेरे पास जीतनेकेलिये साधन बहुत हैं. वे दिखाते हैं ? 'बलीयसा महाबलौघेन' अर्थात् स्वरूपसे ही उसका महत्त्व था, ऐसॄका बहुत समूह था और उनमॄ भीतर शक्ति भी थी. इस प्रकार वैसे तीन गुणॄके विद्यमान् होनेसे ही घेरा डाला था. यॄ घेरे डालनेका कारण यह था, कि भगवान्की सहायता करनेवाले सर्व साधन अपने कामकेलिये आधीन हो जाये. अर्थात् सैन्य सहित, यान सहित और ध्वजा घोड़े, सारथी सहित ये दोनॄ, मेरे शरणमॄ आ जायॄ, किन्तु वैसा हुआ नहीं. श्रीशुकदेवजी यह दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं कि जैसे पवनसे चलायमान मेघसे सूर्यका आवरण तो हो जाता है, परन्तु सूर्यका

स्पर्शमात्र भी नहीं कर सकता है और रेणु भी अग्निको आच्छादित कर देती है किन्तु अग्निको छू नहीं सकती है. सारांश यह कि मेघ और रेणु केवल देखनेवालाृकी दृष्टिको रोकनेवाले होते हैं. इसी प्रकार सैन्य सहित इसका घेरा भी उनके सैन्य स्पर्श भी नहीं कर सका, केवल मनुष्याृकी दृष्टिमृ ही यह घेरा देखनेमृ आ रहा था. उनका आवरण करना मागधकेलिये असम्भव था. वे तो कोई सैन्य व्यवस्थामृ लगे थे, कोई रथकी गतिमृ, कोई ध्वजाआृकी स्थितिमृ और कोई घोड़ाृकी तीव्रतावरोध(तेजीको रोकना)मृ लगे थे ।।२१।।

आभासार्थ : अतः जरासन्धके घेरेका फल भगवत्स्वरूपमृ होना, अनुचित होनेसे केवल देखनेमृ ही वह हुआ जिसका वर्णन 'सुपर्ण' श्लोकसे करते हैं.

सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथावलक्षयन्त्यो हरिरामयोर्मृधे ।
स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्पिताः ।।२२।।

श्लोकार्थ : गरुड़ और तालकी ध्वजासे चिह्नित राम कृष्णके रथाृको युद्धमृ न देखकर, पुरीके अट्टालिकाआृ, महत्व और नगरके बड़े दरवाजाृ पर चढ़ी हुईं नगरकी स्त्रियां शोकसे दुःखी हो मूर्च्छित हो गईं ।।२२ ।।

व्याख्यार्थ: गरुड़की ध्वजावाला भगवान्का रथ और तालकी ध्वजावाला रामका रथ ये दोनाृ रथ सेनाके मध्यमृ आ गये, तथा धूलाृसे और विजातीय ध्वजादिसे रुकावट होनेके कारण नगरकी नारियां उनको देख न सकीं एक रथ जो भगवान्का है वह दुःखहर्ता है और जो दूसरा रामका है वह आनन्द दाता है दोनाृके दर्शन अत्यावश्यक हैं, अतः उनके दर्शन न होनेसे, स्त्रियाृकी व्याकुलता होना उचित ही है, वहां देखनेवालीमृ मुख्यरूपसे स्त्रियां ही दर्शक थीं किन्तु स्त्री होनेसे युद्धका नमूना नहीं जानती थीं, इसलिये अन्य रसकी प्राप्ति होनेसे अपना यहां आना अथवा जन्म व्यर्थ समझ शोक युक्त हो गईं शहरकी अट्टालिकाआृ बहुत ऊंची होती हैं, राज महल नगरके बड़े द्वार(भीतर जानेका फाटक) भी बहुत ऊंचे होते हैं उन पर बैठी हुई भी नगरकी नारियां न देखकर बहुत मूर्च्छित हो गईं जब कुछ होशमृ आती तो शक्तिसे घिर जाती थीं, क्याृकि भगवान् कृष्ण तो स्त्रियाृकेलिये ही प्रकट हुवे हैं उन स्त्रियाृको सेनाके कारण ही भगवान्के दर्शन न हुवे इसलिये सेन्यका नाश किया गया, नहीं कि अन्यथा स्वरूपके विचारकी सिद्धिकेलिये याृ कहा है, यदि याृ न कहा जाये तो लोक समझने लगृ

कि सङ्कर्षणके कार्यमॄ भगवान् प्रविष्ट हुवे हैं और वह फिर एकादशमॄ नहीं कहा है ।।२२।।

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम्।
स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम्।।२३।।

श्लोकार्थ : शत्रुआॄकी सेनारूप बादलॄसे गिरती हुई बाण रूपी तीखी वृष्टिसे पीड़ित, अपनी सेनाको देख भगवान्ने, देव तथा दैत्यॄसे पूजित अपने शार्ङ्ग धनुषका टंकार शब्द किया ।।२३ ।।

व्याख्यार्थ : इस श्लोकमॄ कहते हैं, कि स्त्रियॄको जो न देखनेसे दुःख हुआ था उसकी निवृत्तिकेलिये भगवान्ने शत्रुकी सेनाको मारा भगवान्का नाम यहां हरि दिया है, जिससे दो आशय हैं, एक दुःखहर्ता है इसलिये स्त्रियॄके दुःखॄको मिटानेकेलिये शत्रु सेनाका नाश किया और जैसे सूर्य अन्धकारको मिटाता है वैसे ही यहां आप शत्रु सेनारूप अन्धकारको नाश करनेकेलिये सूर्य हैं, सूर्यके तापसे बादल आ जाते हैं वैसे यहां शत्रु सेनारूप बादलॄने आकर तीक्ष्ण बाणॄकी वृष्टिसे भगवान्की सेनाको पीड़ित किया, जैसे वर्षा आने पर सब डरकर अपने-अपने घरॄको भाग जाते हैं, यद्यपि वर्षा किसीको भी मारती नहीं है, कितनेक मर भी जाते हैं. वैसे बाणॄकी वर्षासे भयभीत हुवे बड़े-बड़े शूरवीर घायल न होने पर भी राजाको छोड़कर भागने लगते हैं, यहां भी इस, प्रकार होने लगा. यह उपहासकेलिये कहा गया है स्त्रियॄ पर कृपा हुई जिससे उनमॄ हास्य रस उत्पन्न हुआ. भगवान्ने दोनॄके हितकेलिये अपना शाङ्र्ग धनुष ग्रहण किया, वह धनुष देवता तथा दैत्यॄसे पूजित है, क्यॄकि इस धनुषसे देवताआॄका भय निवृत्तिरूप हित होता है और दैत्यॄको मोक्ष मिलता है भगवान्के अनेक धनुषॄमॄ 'शाङ्र्ग' धनुष उत्तम है और जोरसे उसकी टंकार की, टंकार इसलिये की, कि उससे देवॄके चित्तमॄ विश्वास हो जाये कि अब हमारा भय नष्ट होगा जैसे कि कहा है कि 'शाङ्र्ग' धनुषके टंकारसे देवता शीघ्र ही निर्भय हो जाते हैं, यॄ उत्तमता कहनेका आशय यह है, कि इस धनुषसे वज्रवत् शरॄकी तेज वर्षा होती है, यह उसका दूसरा माहात्म्य बताया है. इससे यह भी प्रकट कर दिखाया है, कि भगवान्के पास अनेक धनुष हैं. 'शरासन' पदका भाव यह है, कि यह धनुष देवतारूप नहीं है यदि देवतारूप होता तो माहात्म्य नहीं कहते ।।२३।।

गृह्णन् निषङ्गादथ सन्दधच्छरान् विकृष्य मुञ्चञ्छितबाणपूगान् ।

निघ्नन् रथान् कुञ्जरवाजिपत्तीर्निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ।।२४।।

श्लोकार्थ : शरूको तरकशसे निकाल, धनुषमू जोड़कर, धनुषको खूच, जो आप तीक्ष्ण बाणूके समूहको फूकते हैं तो उनसे रथ, हाथी, घोड़े और पैदल चलती सेनाका निरन्तर नाश हो जाता, क्यूकि उस समय धनुष अलातचक्रकी भांति कार्य करता हुआ दीखता था ।।२४ ।।

व्याख्यार्थ : अब भगवान्का युद्धमू चातुर्य कैसा है वह वर्णन करते हैं विशेष तेजस्वियूकी अपनी शक्ति अपने आगम साधनमू भी रहती है इससे भगवान्की क्रिया शक्तिकी नित्यता और व्यापकता कही है, तरकससे शरूको लेकर बादमू धनुषमू जोड़ते थे फिर उससे खूचकर फूकते हुवे उनसे चतुरङ्गिणी सेनाको मारने लगे, इस प्रकार समस्त क्रियासे आपका सम्बन्ध रहा जिससे यह भगवान्की चार प्रकारकी कृति है.

स्थानात् प्रच्यावनं पूर्वं साधने योजनं तथा ।
फलार्थं विनियोगश्च फलसिद्धिरिति क्रमात् ।।कारि.१।।

कारिकार्थ : पहले स्थानसे(तरकशसे सरूको निकालना) फिर उसी तरह साधनमू(धनुषमू उन शरूको जोड़ना) लगाना और फलकेलिए उनका(शत्रु सेनाका नाश कर विजय पाना) विनियोग करना, इस प्रकार करनेसे फलकी सिद्धि की है ।।१।।

व्याख्यार्थ: जिस समय शरूको फूका जाता है, उस समय शरूको तरकससे लेनेका कार्य भी होता था तब उसमू अपिरिच्छिन्नता रही है, यदि यू न होता तो क्रियामू पिरच्छिन्नता होती इसलिये श्लोकमू 'निरन्तरं' पद दिया है, जिस क्रियामू थोड़ा भी अन्तर न हो उसको निरन्तर की हुई क्रिया कहते हैं, इसलिये समस्त क्रियायू वर्तमान कालमू दी हुई है, यू एक ही कालमू सब होना सम्भव है, इस प्रकार किसीके मनमू शङ्का उत्पन्न हो तो उसको मिटानेकेलिये दृष्टान्त देकर समझाते हैं. 'यद्वदलातचक्रम्' जैसे अलातचक्र जब घूमता है तब चारू तरफ एक ही समय घूमता हुआ दीखता है उसी भांति यहां भी समझ लेना चाहिये. यद्यपि भगवान्की क्रियाशक्तिमू किसी प्रकार सन्देह नहीं है, तो भी अपने आप भी कहूगे, इस प्रकार निरूपण करनेमू लोकमू असम्भावना न होवे इसलिये दृष्टान्त भी कहते हैं. श्लोकमू 'निषङ्गाद्' एक वचन दिया है जिससे जाना जाता है कि तरकस एक ही था किन्तु वह अक्षय शरूका निवास था अर्थात्

उसमृ अक्षय शर थे. 'अथ' शब्द देकर यह बताया है, कि अब अलग विषयका प्रारम्भ करते हैं, इस शरसे इतनृको मारुंगा इस प्रकारका सङ्कल्प भगवान् पहले ही कर लेते थे बादमृ शर फूकते थे, फूकते ही उनका नाश उस काल ही हो जाता, यदि यृ न हो तो भगवान्की कृति भी काकतालीय न्यायके समान हो जाती, उससे कोई पराक्रम सिद्ध न होना चाहिये, किन्तु भगवान्की क्रियाकी प्रवृत्तिका फल पराक्रम तो प्रत्यक्ष प्रकट है ही, इतना आशय 'अथ' शब्दका निरूपण किया है. 'सन्दधत्' शब्दका अर्थ है, अच्छे प्रकारसे शरृको जोड़ते हुवे. 'शरात्' शब्द कहकर बताया कि अस्त्र नहीं है किन्तु शस्त्र है यदि शस्त्र नहीं अस्त्र हो, तो देवताका ही सामर्थ्य हो जाये. 'शरान्' बहुवचन देकर यह सिद्ध किया है, कि एक ही कालमृ बहुत शरृको धनुषमृ जोड़ देते हैं. 'विकृष्य मुञ्चन्' इस पदसे यह दिखाया है, कि यहां भगवान्ने मानुष क्रिया ही ग्रहण की है, कुछ भी अलौकिकता प्रकट नहीं की है, एक-एक बाण भगवान्की क्रिया शक्तिसे युक्त था, इसलिये वह एकको भी जब भगवान् फूकते थे तब उसका परिच्छेदपन निवृत्त होकर वह सहस्त्ररूप हो जाता फिर उनका समूह होता था जिससे वे अनन्त होकर शरीरृकी मुक्ति कर देते थे, अन्यथा पुनरुक्ति दोष हो जाता, क्यृकि जोड़े हुवे शरृको फूकना ही सिद्ध होनेसे. 'निघ्नन्' पदका भावार्थ है कि एक प्रहारसे ही प्राण निकल जाते और शरीरके सैकड़ृ टुकड़े हो जाते, चतुरङ्ग, जितनी भी सेना थी वह सारी नष्ट कर दी गई, यृ मालूम करनेकेलिये उसकी गणना करते हैं. रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सेना. एक बाण एक सेनाको अथवा अनेकृको मारता है यह सूचित किया है, जैसे कि कहा "**एकेभैकेरथा अश्वापतिः पञ्चपदातिका**" अर्थात् एक रथ, एक हाथी, तीन घोड़े और पांच प्यादे, इसको भी एक प्रकारकी सेना कहते हैं, शूरवीरृका सामर्थ्य केवल प्राण वियोगसे सिद्ध नहीं होता है क्यृकि मर्मस्थान भर अल्पप्रहारसे भी प्राण निकल जाते हैं ।।२४।।

आभासार्थ : अतः भगवान्की क्रियाशक्तिका बोध करानेकेलिए 'निर्भिन्नकुम्भाः' श्लोकमृ बाणृके महान कार्यका वर्णन करते हैं:

निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतुरनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः ।
रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ।।२५।।

श्लोकार्थ : फाड़े हुए गण्डस्थल वाले हस्ती, बाणृसे कटी हुई गरदनवाले अनेक घोड़े नष्ट हुए है. घोड़े, ध्वजा, सूत और नायक जिनके वैसे

रथ, टूटी हुई भुजाएं, छगनी और ग्रीवा जिनकी वैसे प्यादे, ये सब रणके मैदानमृ गिर गए थे ।।२५ ।।

व्याख्यार्थ : हस्ती अतिशय टुकड़े-टुकड़े हो गये, हालांकि फाड़े हुवे गण्डस्थलवाले 'करि' ही होते हैं, तो भी जिनकी सूंड स्वतन्त्र हो जाती है वे हस्ती साठ वर्षके होते हैं, यहां 'करि' शब्द वैसे हाथियृाकेलिये दिया है. अनेक घोड़े एक-एक शरसे नाशको प्राप्त हुवे, यहां 'कन्धरा' पद इसलिये दिया है, कि उसके ऊपर केश होते हैं, केशृ पर बाणका प्रहार असर न करेगा बाणके प्रहारका असर तो ग्रीवा पर ही होगा अतः 'कन्धरा' शब्द उचित ही है, रथ तो मरे हुवे घोड़ेवाले, नष्ट हुई ध्वजावाले और सूतनायक भी जिनके मृत हुवे हैं वैसे हो गये, यृ भी न समझना चाहिये कि एकके मरनेसे शेष देवसे मरा, रथ भी समग्र अवयवृ सहित नष्ट हो गया यृ जानना चाहिये. जो यृ नहीं माना जायेगा तो 'निपेतुः' क्रियाका सम्बन्ध सबके साथ न हो सकेगा, यदि 'निपेतुः' क्रियाका सम्बन्ध न समझा जायेगा तो दूसरी क्रिया 'जाताः'की कल्पना करनी पड़ेगी, अतः 'निपेतुः' क्रिया सबके साथ सम्बन्धवाली है यह ही युक्त है इसलिये आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि 'पदातयश्च निपेतुः' इस वाक्यमृ 'च' शब्द देकर सर्वके साथ सम्बन्ध बताया है, यदि कोई कहे, कि चोट लगनेसे भी गिर पड़ते हैं तो इसका समाधान करते हुवे कहते हैं कि यदि चोटसे गिरे होते तो उसकी भुजायृ, छातियां, ग्रीवायृ अलग-अलग छिन्न होके गिरती नहीं, युद्ध शास्त्रमृ नाभिसे नीचे शरीरमृ बाणके प्रहारका निषेध है. इससे ऊपरके भागका टूटना ही कहा है ।।२५।।

आभासार्थ : इस प्रकार चतुरंगिणी सेनाकी मृत्यु कहकर अब उसकी अधिकता दिखानेकेलिए उससे उत्पन्न रुधिरकी नदीका 'संछिद्यमान' श्लोकसे लेकर ढाई श्लोकृसे वर्णन करते हैं:

संछिद्यमानद्विपदेभवाजिना- मङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ।
भुजाहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ।।२६।।
करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरङ्गायुधगुल्मसङ्कुलाः।
अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ।।२७।।
प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ।

श्लोकार्थ : मनुष्य, हस्ती तथा घोड़ृके कटे हुए अंगृसे सैंकड़ृ रुधिरकी नदियां बहने लगीं, जिनमृ भुजाएं सांप जैसी दीखती थीं मनुष्यृके सिर कछुआृके

समान नजर आते थे, मरे हुए हाथी टापूसे और घोड़े नगरसे दृष्टिमृ आते थे हस्त ही बड़ी मछलीके समान दीखते थे अथवा हस्त तथा छाती ही मछलियां थीं, मनुष्यके केश ही शेवाल(सवार पानीकी लताएं) वे धनुष तरंग थे, शस्त्र झाड़ी थी, ढाले भंवर थे और अमूल्य बड़ी – बड़ी मणियाृके उत्तम आभूषण पत्थर तथा पंवारेसे नजर आते थे युद्धमृ बहती हुई इस रुधिरकी नदियाृ को देख डरपोक तो घबराते थे और शूरवीर परस्पर प्रसन्न होते थे ।।२६ – २७।।

व्याख्यार्थ : सेनाके चार अङ्गाृमृसे तीन रुधिरवाले हैं, एक काष्ठका होनेसे रुधिर शून्य है, अतः यहां तीन ही गिने हैं, मनुष्य, हाथी और घोड़े उन तीनाृके कटे हुवे अङ्गाृसे सृकड्डृ खूनकी नदियां निकली,इससे अर्थात् इतनी खूनकी नदियाृके निकलनेसे यह बताया कि यह सेना डरपोक नहीं थी, यदि डरपोक होती तो मरे हुवे सैन्याृसे खूनकी नदियां न निकलती थीं भयसे खून सूख जाता है, ये, विजातीय होते हुवे भी, एक सी प्रकृत्तिवाले हो गये, सेनाके टूटे हुवे अङ्गाृसे खूनकी नदियां बहीं, इस वाक्यमृ अङ्ग पद कहनेका आशय यह है, कि कोई याृ न समझे कि इनके मरने पर देवाृने रुधिरकी वृष्टि की है, अर्थात् वे रुधिरकी नदियां इनके अङ्गाृसे ही निकली हैं. 'प्रसूताः' पदमृ 'प्र' अक्षर देनेका यह आशय है कि मरनेके बाद भी इनके हृदयमृ संस्कारसे भी भय नहीं रहा है, 'शतशः' पदमृ 'शस्' प्रत्यय देनेका भाव बताते हैं कि परस्पर प्रवाहके मिलनेसे पहले दूसरे नामवाली होते हुवे भी पश्चात् नामको धारण किया है. ये नदियां जलकी नही थीं किन्तु रुधिरकी थीं, शङ्का होती है कि इस रक्त प्रवाहको नदी कैसे कहा जाता है, केवल प्रवाहसे नदी नहीं बनती है, यदि प्रवाहको नदी कहा जाता है तो वर्षा कालमृ जगत् ही नदीरूप हो जायेगा? इस शङ्काका समाधान करते हुवे कहते हैं, कि ये नदियां सहज नदियां नहीं हैं किन्तु नदी समान आकृतिवाला प्रवाह होनेसे नदियां कहलाती हैं, जिसकी सिद्धिकेलिये वर्णन करते हैं, कि नदियाृमृ जो–जो दृश्य देखे जाते वे सब इनमृ भी हैं जैसे कि भुजायृ ही सर्प हैं, पुरुषाृके मस्तक कछुवे हैं, ये सात्विक हैं, हस्ती टापू हैं, उसमृ मरे हुवे घोड़े मगरमच्छ हैं, उनसे व्याकुल हुवे हैं, टापू ही तामस हैं, वे नदीपनको प्रसिद्ध करते हैं, तो भी वहांके प्रवाहसे बहकर जाते हुवे घोड़ाृके अवयवाृका जो चढ़ना और उतरना अर्थात् नीचे ऊपर होना टापुआृकी अधिकता दिखानेकेलिये ही किया है, अतः ये नदीके जो धर्म हैं वे आगन्तुक हैं सहज नहीं हैं, नदी ये साधारण

धर्मोंका वर्णन करते हैं हस्त जिनमृ बड़े मत्स्य हैं, अथवा हस्त तथा छातियां ही बड़े मत्स्य हैं, बीचके भागको काटने पर जो शेष भाग रहता है उसको 'उरु' जानना, मनुष्यके केश सूवार हैं, मनुष्य ही तरङ्ग है, मछलियां सात्विक हैं, तरङ्ग तामस है, अथवा उरुके साथ जो तीन हैं उनको लेना चाहिये, नरकमृ तीन ही शान्त हैं, माथे आदि आयुध ही मकड़ी हैं, उनसे घिरी हुई है, इसलिये ही 'धनुस्तरङ्गायुध–गुल्मसङ्कुलाः' पदका इस प्रकार कर्मधारय समास किया है, '**धनुस्तरङ्गश्चताः आयुधगुल्मसङ्कुलाः**' ढालृ ही भंवर हैं उनसे ये नदियां भयानक दिखती हैं और इससे नदीकी अतिशय गम्भीरता भी दिखाई है, उत्तम मणियृसे युक्त आभूषण ही जिन नदियृमृ पत्थर वा पंवारे हैं यदि कोई कहे कि यह रुधिरकी नदी वैसी तब हुई है जब वह रुधिर प्राचीन नदीमृ गिरा है उस नदीके जलसे मिलने पर इतना ज्यादा हो गया है जो नदी सा प्रतीत होता है अन्यथा नहीं होता, इस शङ्काको मिटानेकेलिये श्लोकमृ 'प्रवर्तिता' पद दिया है जिसका भावार्थ है कि यह रुधिरकी नदी नवीन प्रवृत्त हुई है अर्थात् पहलेकी नदीके जलसे मिलकर प्रवृत्त नहीं हुई है, अगली प्राचीनसे इस नदीकी विलक्षणता बताते हैं, कि डरपोकृको डरानेवाली है वह पुरानी जलकी नदी डराती नहीं है, वीरृमृ तो हर्ष पैदा करती है दूसरृकेलिये तो साधारण है, जैसी वर्णन की है वैसी ही देखते हैं उनको न भय होता है और न प्रसन्नता होती है. 'परस्परं'का तात्पर्य है कि समान युद्धमृ जय होने पर आपसमृ योद्धा प्रसन्न होते ही हैं किन्तु अन्यायकी लड़ाईमृ तो जीतने बालृको बहुत करके प्रसन्नता होती है इसमृ कोई आश्चर्य नहीं है ।।२६–२७।।

आभासार्थ : इस प्रकार भगवान्केलिए हुए युद्धका सम्पूर्ण वर्णन कर अब 'विनिघ्नातारीन्' श्लोकसे बलभद्र कृत कहते हैं:

विनिघ्नातारीन्मुसलेन दुर्मदान् सङ्कर्षणेनापरिमेयतेजसा ।।२८।।

श्लोकार्थ : अमित तेजवाले बलभद्रजीने दुर्मदवाले वैरियृको मूसलसे मारकर रुधिरकी नदियां बहा दीं ।।२८ ।।

व्याख्यार्थ : शत्रुओृको कैसे ही मारना चाहिये, भगवान्के तो कोई शत्रु हैं ही नहीं इसलिये यह कार्य बलभद्रने किया, बलभद्र सङ्कर्षण हैं इसलिये उनमृ खृचनेकी शक्ति है जिससे उसने शत्रुओृको मुसलसे खृच लड़ाईमृ मारनेकेलिये खड़ा किया उस(सङ्कर्षण)के साथ भगवान् भी तरकशसे शरृको निकाल अपना

कार्य करते थे, अथवा शत्रुओंको नाश करते हुवे सङ्कर्षणने इन रुधिरकी नदियोंको बहनेमें प्रवृत्त किया, शत्रुओंके मरनेका कारण यह था, कि वे दुष्ट मदवाले हो गये थे, जिससे वे उलटे कार्य कर पृथ्वीके भार भूत हो गये थे, बलरामजीकी सामर्थ्यमें कारण कहते हैं, कि असीम तेजवाले हैं भीतर तो बल है ही किन्तु बाहर भी तेज प्रकट कर दिखाया है, किसीका भी इतना बल व तेज नहीं है इसलिये भी नापा नहीं जाता है ।।२८।।

आभासार्थ : इस प्रकार कही हुई युद्धकी समाप्ति करते हैं, जिसका वर्णन 'बलं तदंगार्णवं' श्लोकमें करते हैं:

बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं दुरन्तपालं मगधेन्द्रपालितम्।
क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ।।२९।।

श्लोकार्थ : अश्व आदि अंगरूप अर्णवोंसे दुर्गम तथा भयानक जरासन्ध से पालित अपार अन्तवाली सेनाको वसुदेवके पुत्रने क्षणमें नाश किया वह कार्य उसकी विशेष क्रीड़ा ही है, क्योंकि वे जगत्के ईश हैं ।।२९ ।।

व्याख्यार्थ : इस श्लोकमें दिखलाते हैं कि शीघ्र ही युद्धकी समाप्ति कर दिखाई, जिससे भगवान्का आगेसे भी विशेष महत्व प्रकट हुआ है, सेनाका स्वरूपसे माहात्म्य बताते हैं, कि वह बल अश्व आदि अङ्गोंसे समुद्ररूप बन गया है जिससे जानेमें कठिन और भयानक है मगधके सङ्गमें आये हुवे राजा ऐसे है जिनका कोई अन्त पा नहीं सकता है उनसे यह सेना रक्षित है उससे भी विशेष सेनाका माहात्म्य इससे है, जो जरासन्धसे पाली हुई है जरासन्धको मगध देशका इन्द्र कहकर यह प्रकट किया है, कि सेना सर्व प्रकारसे समृद्ध है वैसी सेनाको क्षणमें नष्ट कर दिया, नष्ट करनेमें वसुदेवके पुत्रको कोई परिश्रम न हुआ, क्योंकि यह तो उनकेलिये बाल क्रीड़ाकी भांति प्रयत्न भी पुत्रपनसे यह खेल ही किया है, तो भी पुत्रत्वके निर्वाहकेलिये, बाल लीलाकी भांति प्रयत्न भी प्रकट करना योग्य है तो भी प्रकट नहीं किया, किन्तु सर्वको क्रीड़ासे ही मारा है यों करनेका कारण बताते हैं, कि सारे जगत्के ईश्वर हैं, ईश्वर सदा एकरूप नहीं होते हैं, कभी खेल भी करते हैं इस प्रकार सदा ही खेल ही करेंगे. 'परं' पदसे यह बताया है कि विशेष क्रीड़ामें भी आदर नहीं है, इस कारणसे भी थोड़े समयमें सर्व क्रीड़ा कर विशेष क्रीड़ामें भी अनादर सूचित किया है ।।२९।।

आभासार्थ : यह युद्धका वर्णन विशेष रूपसे क्यों किया? साधारण

रीतिसे ही करना चाहिए था, जैसा कि जरासन्धकी लाई हुई सेनाको बहुत प्रकारसे वध किया इस प्रकार थोड़ेमॄ ही पुरुषार्थ न दिखाकर युद्धका वर्णन करना चाहिए, न कि भगवदरूपमॄ इतना विस्तार करना था, यदि यॄ कहते हो तो, सत्य है, इस प्रकारकी शंकाका समाधान 'स्थित्युद्भावन्तं' श्लोकमॄ करते हैं:

स्थित्युद्भवान्तं भुवनत्रयस्य यः समीहतेऽनन्तगुणः स्वलीलया ।
न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ।।३०।।

श्लोकार्थ : जो अनन्त गुणवाले भगवान् हैं वह लीलासे ही त्रिलोकीकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लय करते हैं उन्हॄने शत्रु पक्षको दण्ड दिया इससे कुछ भी आश्चर्य नहीं है, तो भी मनुष्यावतार धारण करनेके कारण यह कथा विस्तारसे वर्णन की गई है ।।३० ।।

व्याख्यार्थ : रूपके विचार करनेसे ज्ञात होता है, कि भगवान् चारॄ ओर परिच्छेद रहित होनेसे अनन्त हैं, तथा उनके गुणॄका विचार करनेसे भी मालूम होता है कि उनके गुण भी अनन्त हैं कोटि ब्रह्माण्डॄमॄ जितने पदार्थ हैं उतने गुणॄवाले भगवान् हैं किन्तु उनसे भी अधिक असीम गुण भगवान्के हैं यह ही मुख्य शास्त्रीय सिद्धान्त है. भगवान्, कुछ गुणॄको प्रकट करते हैं, भगवान्की क्रिया-शक्तिका विचार करते हुवे जाना जाता है कि वह अपनी लीला मात्रसे ही जगत्की उत्पति, स्थिति तथा लय करते हैं, जो इतना कार्य लीला मात्रसे कर सकते हैं, उनकेलिये यह सेना कितनीक है? अर्थात् कुछ नहीं है, अतः भगवान् इस सेनाका निग्रह करॄ, यह अचम्भेकी बात नहीं है, तो भी उनने जो शत्रु पक्षका नाश किया है, इसका इतना विशेष वर्णन भक्तिकी स्थापना करनेकेलिये किया गया है इस पर वादी कहता है कि शत्रु पक्षका नाश करनेके सिवाय भी महत्व होनेसे ईश्वरमॄ स्वतः भक्ति होगी ही, तो सेनाके मारनेके वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता है? जिसका उत्तर देते हैं कि भगवान्ने अब मनुष्य नाट्य किया है अतः मनुष्यकी भांति ही सर्व लीला कर दिखानी है यॄ करनेसे कभी भक्तका पक्षपात नहीं करना चाहिये, क्यॄकि यॄ करनेसे जन्म धर्मका अभिनिवेश होगा, वहां भी यदि पक्षपात करॄ, तब निश्चय भक्तिमार्ग प्रवृत्त होगा ही अतः विशेषरूपसे वर्णन किया है ।।३०।।

आभासार्थ : इस प्रकार विशेष वर्णन करनेमॄ जो दूषण दिए उनको मिटाकर अब जरासन्धने जो बलभद्रको कहा, बलभद्रजीने उसके कहनेसे जो कुछ

किया, उसका वर्णन 'जग्राह विरथं' श्लोकमू करते हैं:

जग्राह विरथं रामो जरासन्धं महाबलम् ।
हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ।।३१।।

श्लोकार्थ : सेना नष्ट हो जानेसे जिसके केवल प्राण ही बचे हैं ऐसे महाबली रथहीन प्यादे बने हुए जरासन्धको, जैसे सिंह अपने पराक्रमसे दूसरे सिंहको पकड़ता है वैसे ही बलरामजीने उसे हाथूसे ही पकड़ लिया ।।३१ ।।

व्याख्यार्थ : उस (जरासन्ध)का रथ भी टूट गया था अतः पैदल चल रहा था यद्यपि शरीरसे महाबलवान् था, तो भी उसको बलरामजीने पकड़ लिया. पकड़ा क्यू? मारा क्यू नहीं? इसके उत्तरमू कहते हैं कि युद्ध शास्त्रकी रीतिके अनुसार जिसका रथ नष्ट हो गया हो उसको मारना नहीं चाहिये इसलिये मारा नहीं और बान्ध कर घर ले आना था, इसलिये पकड़ा था क्यूकि वह राम होनेसे सर्वको रमण करनेकेलिये ही प्रवृत्त हुवे हैं, उसको मारना भी कठिन था, कारण कि वह महाबलवान् था अर्थात् उसमू दो बल थे. (१)देव बल और दूसरा मानुष बल, तब तो बलरामजीने भी उसे देव गतिसे पकड़ा होगा? यदि यू कहो तो, उत्तरमू कहते हैं, कि नहीं, उन्हूने अपने बलसे ही पकड़ा है तो वरुणादि पाशूके द्वारा पकड़ा होगा? इसके उत्तरमू भी कहते हैं कि नहीं, जैसे सिंह-सिंहको पकड़ता है वैसे हाथूसे ही पकड़ लिया, हलादिसे भी खींचकर नहीं पकड़ा, क्या उसको किसीने छुड़ाया भी नहीं? इसके उत्तरमू कहते हैं कि उसको छुड़ानेवाला कोई बचा ही नहीं था सारी सेना नष्ट हो गई थीं, केवल इसके ही प्राण बचे थे अर्थात् यह एक ही बचा था ।।३१।।

आभासार्थ : पकड़े जानेके अनन्तर भगवान्ने बांधनेवाले बलरामको कहा कि इसको मत बांधो क्यूकि परोपकारकेलिए आए हुयेको बांधना नहीं चाहिए इसका वर्णन 'बध्यमानं' श्लोकमू करते हैं:

बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ।
वारयामास गोविन्दस्तेन कार्यचिकीर्षया ।।३२।।

श्लोकार्थ : शत्रुआूका नाश करनेवाले जरासन्धको वरुण और मनुष्यूके पाशूसे जब बलरामजी बांधने लगे तब श्रीकृष्ण भगवान्ने निषेध किया, कारण कि उसके द्वारा अन्य कार्य भी करानेकी भगवान्की इच्छा थी ।।३२ ।।

व्याख्यार्थ: महान् पुरुषको बांधना अयोग्य है उसकी महत्ता सिद्ध

करनेकेलिये उसका बखान करते हैं, इसने बहुत शत्रुओंको मारा है इसके शत्रु बहुत हैं और वे दुष्ट हैं यदि इसको आप बांधोगे तो वे दुष्ट सुखी होंगे, अतः दुष्ट प्रसन्न न हों इसलिये इसको छोड़ दो जिससे ये दुष्ट सुखी न होवें. यह महाबली है इसको बांधनेकेलिये केवल रज्जु आदि बन्धन समर्थ नहीं है किन्तु पाशोंसे बांधना चाहिये, उनको आकर्षण करनेसे वे निग्रहके कारण बन जावेंगे, वे पाश भी वारुण तथा मानुष्य होने चाहिये. जरादिकोंको बन्धनमें पड़े रहनेकेलिये वारुण पास चाहिये और मनुष्योंकेलिये मानुष्य पाश चाहिये? ऐसे भी अपने हाथोंसे आये हुवे परम शत्रुको बन्धनसे छुड़ानेकेलिये बलरामजीको कहने लगे कि इसका बन्धन नहीं करना चाहिये. भूमिसे भार उतारनेवाले भगवान् यों उसको कैसे छुड़ाते हैं? इसके समाधानकेलिये कहते हैं कि वे 'गोविन्द' हैं, अतः 'सिंहावलोकन' मायासे आगे करनेवाली लीलाको याद करने लगे, जिससे यह विचार उत्पन्न हुआ, कि यह होगा तो आगेकी लीला 'द्वारिका लीला' सिद्ध हो सकेगी, इसलिये उसको छुड़ाया, अरे यह दुष्ट है, ऐसे ही क्यों छुड़ाते हैं, वहां कहते हैं कि उसके द्वारा आगे भी कार्य करनेकी इच्छा है, और निरोध भी करना है इसके न होनेसे, सब सात्विक राजस भगवत्परायण न होंगे इस कार्यको सिद्ध करनेकेलिये इसकी रक्षा की है और आप 'अक्लिष्टकर्मा' हैं, उसके सार्थक होनेकेलिये भी ।।३२।।

आभासार्थ : अनन्तर जो हुआ वह 'स मुक्तो' श्लोकमें कहते हैं:

स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसंमतः ।
तपसे कृतसङ्कल्पो वारितः पथि राजभिः ।।३३।।

श्लोकार्थ : बड़े ही शूरवीर जरासन्धको जब त्रैलोक्यनाथोंने मुक्त किया तब वह लज्जाके कारण घर जानेका विचार छोड़ तपस्याका संकल्प कर, उसको करनेकेलिए जब जाने लगा, तब मार्गमें राजाओंने उसे लौटाया ।।३३ ।।

व्याख्यार्थ : दूसरे यादव फिर बांध लेंगे? इस शङ्काको मिटानेकेलिये ही 'लोकनाथाभ्यां' पद दिया अर्थात् जो कार्य त्रैलोक्यनाथोंने किया है उसको कौन अन्यथा कर सकता है? तात्पर्य यह है कि जिसको इन्होंने छोड़ दिया उसको बन्धनमें कोई नहीं डाल सकता है. द्विवचनसे पृथक् करने अर्थात् युक्त करनेकी सब सामर्थ्य मुक्त करनेमें लगा दी है यह सूचित किया है, जिससे अन्य कोई भी बन्धनमें नहीं डाल सकता है, यदि वैसा छोड़ा हुआ भी मर जावे तो, कार्यकी सिद्धि कैसे होगी? यदि यों कहो तो सत्य है, क्योंकि लज्जित हुवे गण हैं, लज्जित

क्या हुआ? इसलिये, कि वीरामें मान पाया हुआ है अर्थात् बड़ा शूरवीर है अतः हार जानेसे लज्जित हुआ है. तो क्या किया? इस पर कहते हैं कि उसने सोचा कि मेरा मानुष पराक्रम नष्ट हो गया है, अब अलौकिक पराक्रम सिद्ध करना चाहिये, अतः उसकी सिद्धिकेलिये सङ्कल्पकर, तपस्याकेलिये जाने लगा तो मार्गमें राजाओंने समझाकर लौटाया. कौनसे राजा थे? तो कहते हैं जो दुष्ट राजा लोग भूमि पर भाररूप थे. इससे जाना जा सकता है, कि भगवान्के चरित्र अलौकिक हैं, जिनका उपकार करता है उन्होंने तो छोड़ दिया, जिनकी बुराई करेगा उन्होंने उसका स्वीकार किया ।।३३।।

आभासार्थ : उनको समझानेके साधन 'वाक्यैः' श्लोकसे कहते हैं:

वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि।
स्वकर्मबन्धनःप्राप्तो यदुभिस्ते पराभवः ।।३४।।

श्लोकार्थ : मार्गमें जाते हुए राजाओंने धर्म तथा नीतिके वचनोंसे समझाया कि आपकी जो यादवोंसे हार हुई है वह केवल कर्म बन्धनसे हुई है, इसमें लाज करनेका कोई कारण नहीं है ।।३४ ।।

व्याख्यार्थ: ज्ञान देनेवाले तीन प्रकारके हैं, उनमें पहले सात्विकोंके वचन ये हैं 'पवित्रार्थपदैः' पवित्र अर्थवाले पद जिनमें हों ऐसे वाक्योंसे समझाने लगे. सात्विकोंने वाक्योंमें कहा कि राम कृष्ण मनुष्य नहीं हैं किन्तु ईश्वर तथा सर्वात्मा हैं, उनसे पराजय होना कोई आश्चर्य नहीं है, समझलो कि भाग्यमें यों ही होना था.

जब दूसरे राजस 'नयनैः वाक्यैः'से नीतिवाक्योंसे समझाने लगे जहां लड़ाई की, वह अपना देश नहीं था और पूर्ण विचार भी नहीं, अचानक युद्ध कर लिया, अतः ऐसे युद्धमें पलायन करना उचित नहीं है इसमें लज्जा किस कारणकी है लज्जा करनी नहीं चाहिये अतः कोई कार्य नीति विरुद्ध नहीं करना चाहिये.

प्राकृत समझाने लगे कि पराजयमें क्या है? बड़े-बड़े राजा लोगोंकी तथा महान् शूरवीरोंकी भी पराजय हो ही जाती है इसमें लाज करनी वृथा है, इन तीन प्रकारवालोंने जो कुछ कहा वह दृष्टन्यायसे ही अर्थात् देखकर जो अनुभव किया तदनुसार ही उपदेश दिया है.

दूसरे जो अन्तरङ्ग हैं वे अदृष्टन्यायसे समझाने लगे 'स्वकर्म बन्धनः' यह सर्व अपने कर्मका ही फल है आपने भी बहुत राजाओंको जीता है उसका फल

भोगना ही चाहिये अन्यथा दूसरे प्रकारसे दुष्टाके साथ पराजय तो होवे ही, क्याकि अपने कर्मका फल ही पराभव मिला है. श्लोकमा 'अपि' शब्द कहा है जिसका भावार्थ है कि सबने पृथक् एवं मिलकर चार प्रकारसे जरासन्ध राजाको समझाया कि यादवासे पराजय होना योग्य ही है कारण कि यदुराजा बड़ा है बड़ेके वंशसे पराजय होनी ही चाहिये और उसमा लाज नहीं करनी चाहिये ।।३४।।

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा।
उपेक्षितो भगवता मागधान् दुर्मना ययौ ।।३५।।

श्लोकार्थ : सब सेनाके मरनेके अनन्तर जब भगवान्ने उपेक्षा कर दी तब जरासन्ध उदास हो मगध देश गया ।।३५ ।।

व्याख्यार्थ : उसके अनन्तर जो कुछ हुआ वह कहते हैं. सर्व सेनाके मर जाने पर भी सब राजाओाने उसका आदर किया जिससे राज चिह्न धारणकर अपने देशको जरासन्ध गया क्याकि राजा था इससे देव और मनुष्याने सहायता की यह सूचित होता है. राजाओ द्वारा समझानेसे देखा कि अब भी लड़नेकेलिये सामग्री है या समझनेके बाद देशको गया.

निकटे सम्भृतिं कृत्वा प्रगल्भवचनैः सह।
गच्छन् पुनर्भगवता निगृहीतो भविष्यति ।।कारि.१।।

कारिकार्थ : थोड़े ही समयमा सेनाका भरण – पोषण कर सेना तैयार कर ली सेनाको लेकर गर्वके वचन कहते हुए तथा युद्धकेलिए मथुरापुरी जाते हुए फिर भगवान् पकड़ लूगे.

व्याख्यार्थ : जरासन्धने यद्यपि अभिमानके ऐसे शब्द भगवान्की सीमामा ही कहे, भगवान् होनेसे वे या ही समझते हैं, तो भी भगवान्ने उन वचनाका आदर न कर उसकी उपेक्षा की, कारण कि भगवान् होनेसे आगे हमा क्या करना है उसका ही विचार करते हैं. अतः उपेक्षा की, या करना नीतिके विरुद्ध भी नहीं है, भगवान्ने उपेक्षा की, अतः अतिशय उदास होने लगा, यद्यपि इसका आशय समझा, तो भी शरण न आया, कारण कि मगध देशमा उत्पन्न होनेसे उसकी वैसी नीच बुद्धि हो गई थी और नीच बुद्धिवाला होनेसे चुप करके भी न बैठेगा. मागध होनेसे मागध देशको ही गया ।।३५।।

आभासार्थ : उसका अपने घर जानेका वर्णन कर भगवान्ने भी परम वैभवसे मथुरामा प्रवेश किया, जिसका वर्णन पांच श्लोकामा कहते हैं:

मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ।
विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ।।३६।।

श्लोकार्थ : मुक्ति देनेवाले भगवान्ने भी शत्रुओंकी सेनारूप बड़े समूहको पार कर अपनी अक्षत सेनाको साथमें लेकर, देवताओंने फूलोंकी वर्षा की थी जिससे मार्ग फूलोंसे छाया हुआ था तथा देवता अनुमोदन कर रहे थे उस समय मथुरामें प्रवेश किया ।।३६ ।।

व्याख्यार्थ: जिनकी सेनाका एक भी सैनिक घायल न हुआ था वैसे मुक्ति दाता भगवान् उनको भी मारकर मुक्ति दूँ, वा जरासन्धको छुड़ा दूँ, भगवान्को जयके कारण नहीं है, किन्तु मोक्षके कारण है, कितनेक सैनिक छिप गये होंगे, वे फिर लड़ने आ गये ? इस शङ्काका समाधान करनेकेलिये कहते हैं, कि शत्रु सेनारूप समुद्रको अतिशय पार कर लिया है, अर्थात् कोई सैनिक छिपा नहीं है क्योंकि समुद्र दूसरे स्थान पर नहीं जा सकता है अतिशय पार करनेका कहनेसे भगवान्का महत्व तथा पौरुष भी दिखा दिया, जिससे यह भी निरूपण कर दिया कि अब जो सेना आई इसमेंसे कोई शेष बचा नहीं, जो फिर आ सके. पश्चात् जिस मार्ग पर पुष्प बिखरे हुवे, उस मार्गसे पधारते हुवे देवोंसे भी अनुमोदित हुवे. यदि देवता अनुमोदन नहीं करते, तो यह शङ्का उत्पन्न होती कि अनन्त वधके कारण उनके अधिष्ठाता देवोंको दुःख हुआ है, जिससे उन्होंने अनुमोदन नहीं किया है, किन्तु अनुमोदनसे यह शङ्का भी मिट गई इससे यह भी सूचित किया, कि यह कार्य देवोंकेलिये ही किया गया है ।।३६।।

आभासार्थ : पश्चात् मनुष्योंने भी अनुमोदन किया जिसका वर्णन 'माथुरै' इन दो श्लोकोंमें करते हैं:

माथुरैरुपसङ्गम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ।
उपगीयमानविजयः सूतमागधवन्दिभिः ।। ३७।।
शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ।
वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ।। ३८ ।।

श्लोकार्थ : संताप रहित होनेसे, आनन्दित अन्तःकरणवाले मथुरा निवासी सूत, मगध और बन्दीजनोंके साथ मिलकर आपकी विजय गान गाने लगे. उस समय शंख और नौबत बजने लगीं तथा वीणा, वेणु और मृदंग बजाए जाने लगे जिस समय भगवान्ने नगरमें प्रवेश किया ।।३७ – ३८ ।।

व्याख्यार्थ : किलेका फाटक खोलकर सब आये क्यूंकि मरनेकी जो मनमूं शङ्का थी वह मिट गई, जिस शङ्कासे ही ज्वर आ गया था, शङ्का मिटते ही ज्वर भी उतर गया उनके काल और देह आदिके धर्मका तो पहले ही निवारण कर दिया था अतः शङ्काके मिटनेसे बुद्धि खिल गई, जिससे बाहर प्रसन्न अन्तःकरण देखनेमूं आने लगे पश्चात् सूत, मागध और बन्दीजनूंने भगवान्की विजयका गान गाया शङ्ख तथा नौबत बजने लगीं अनन्तर प्रभु धीरे-धीरे पधार रहे हैं, इसको सूचना देनेकेलिये वीणा, वेणु और मृदङ्ग भी बजाने लगे क्यूंकि प्रभु पुरमूं प्रवेश करते हैं यह लौकिक है यूं सूचन किया ।।३७-३८।।

आभासार्थ : मथुरापुरीके भीतरी भागका वर्णन करते हैं:

सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलङ्कृताम्
निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ।।३९।।
विकीर्यमाणो नारीभिर्माल्यदध्यक्षताङ्कुरैः ।
निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कण्ठितलोचनैः ।।४०।।

श्लोकार्थ : नगरके सर्व मार्ग सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त जलसे सींचे हुए हैं, सर्व जनता हर्षसे मग्न हो रही है, नगर पताकाओंसे सुशोभित है, वेदके मन्त्रोंकी ध्वनी जोरसे हो रही है, अद्भुत प्रकारके तोरण बन्धे हुए हैं, ऐसी पुरीमूं प्रवेश करते समय, नारियोंने दधि, अक्षत, पुष्प और अंकुर भगवान्के ऊपर बरसाए तथा प्रीतिसे प्रफुल्लित नेत्रों द्वारा स्नेह सहित उनका दर्शन किया ।।३९ - ४० ।।

व्याख्यार्थ : जिस पूरीके सर्व मार्ग सुगन्धित जलसे सिंञ्चित हैं, समस्त जन हर्षित हैं जय-जय शब्दोंसे अङ्कित पताकाओंसे अलङ्कृत पुरी है, इससे यह बताया है, कि नीचेका, मध्यका और ऊपरका तीनों भाग उसके शोभायुक्त हैं. प्रवेशके समय आशीर्वादके मन्त्र पढने चाहिये, अतः ब्राह्मण वेदके मन्त्रोंका घोष कर रहे थे.

व्यापारियोंने जो विशेष नगरको सजाया था उसका वर्णन करते हैं, उन्होंने आश्चर्यमूं डालनेवाले अजीव तोरण लगाये थे. नगरकी नारियोंने भी भगवान्का दधि, अक्षत, पुष्प अङ्कुरोंसे सत्कार किया अर्थात् पुष्प आदि सौमङ्गल्य सूचक पदार्थोंकी भगवान्के ऊपर वृष्टि की. यूं क्रिया करनेसे उन्होंने भगवान्का तीन प्रकारसे सत्कार किया. उसी प्रकार ज्ञानका भी निरूपण करते हैं, तीन प्रकारके अपने भाववाले नेत्रोंसे भगवान्के दर्शन किये. (१)बन्धुभावसे दर्शन

कर स्नेह प्रदर्शित किया, (२)पुरुष भावसे दर्शन कर प्रीति प्रकट की और (३)कामना भावसे दर्शन कर उत्कण्ठा दिखाई है, स्नेह पृथक् कहकर लौकिक दोष उसमृ नहीं है यह सिद्ध कर दिखाया है ।।३९-४०।।

आभासार्थ : लड़ाईसे प्राप्त धनको राजामृ ही विनियोग करते हुए उसकी आज्ञासे युद्धादि करना सूचित करते हैं उसके दुःखके अभावको मिटानेकेलिए जिसका वर्णन 'आयोधनगतं' श्लोकमृ करते हैं:

आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् ।
यदुराजाय तत् सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ।।४१।।

श्लोकर्थ : लड़ाईके मैदानमृ जो वीरृके आभूषणरूप अनन्त धन पड़ा था, वह सब लाकर भगवान्ने यदुराजके आगे धरा, क्यृकि प्रभु हैं ।।४१ ।।

व्याख्यार्थ: संस्कृतमृ युद्धभूमिको आयोधन कहा गया है, वहां योद्धाओृसे जो आभरणादि कारसे धन लाया गया वह असीम था, कारण कि सैनिक बहुत थे, उनके मरनेसे उनके आभूषण रणभूमिमृ पड़े थे जिससे वे आभूषण भी बहुत थे, वहां जो भी पड़े हुवे थे वे सब लाये गये थे, वे सब यदुराजको भृट किये. रक्षा आदि करनेका कार्य तो आप ही करते थे, इसलिये निवेदन मात्र ही राजाको किया, यृ निरूपण किया, प्रभु होनेसे साथमृ युद्धकेलिये जो चले थे उनको अपनी इच्छासे द्रव्यका विनियोग नहीं किया ।।४१।।

आभासार्थ : यृ एक प्रकार भगवान्की जयका वर्णन कर अन्य जयृमृ भी यही प्रकार दिखाते हैं, वैसे १७ बार युद्ध हुआ यह 'एवं सप्तदश' श्लोकमृ कहते हैं:

एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीर्बलः ।
युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ।।४२।।
अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ।

श्लोकार्थ : मगधके राजाने इसी प्रकार उतनी ही अक्षौहिणी सेना सत्रह बार लाकर कृष्णसे पालित यादवृसे युद्ध किया, यादवृने श्रीकृष्णके तेजसे सारी सेनाको मार डाला ।।४२ ।।

व्याख्यार्थ : इसके साथ भी सत्रह वार लड़े एक युद्धकी सत्रह वार आवृत्ति हुई, सब समर एक सरीखे ही थे, यह जतानेकेलिये 'कृत्वः' पद पर ''सुच्'' प्रत्यय दिया है, दूसरी लड़ाईओृमृ भी भगवान् स्वयं नहीं लड़े हैं, यृ होवे

तो, लोक प्रतीतिसे सर्वदा क्लेश ही होवे, इस प्रकारका क्लेश न हो तदर्थ ही कृष्णसे रक्षित यादवॄके साथ ही लड़ाई की है, इस कारणसे ही जरासन्धकी सेना मारी गई, यह कार्य कृष्णके तेज द्वारा ही हुआ, श्रीकृष्णका तेज यादवॄमॄ केवल रक्षाकेलिये नहीं प्रकटा है, किन्तु शत्रु बलके निराकरणकेलिये भी उत्पन्न हुआ है ।।४२।।

आभासार्थ : जरासन्ध फिर – फिर आते तो पृथक् प्रकारसे ही आते थे जैसे कि कभी विशेष बड़बड़ाता था कभी बहुत आवेशसे आता था, वह वर्णन करनेकेलिए 'हतेषु' श्लोक कहते हैं:

हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ।।४३।।

श्लोकार्थ : जब अपनी सेना मर गई तब जरासन्ध शत्रुओॄसे त्यागा हुआ चला गया ।।४३ ।।

व्याख्यार्थ : राज्य जीता जाये तो राजा भी जीता गया याॄ माना जाता है. उसको बन्दी बनाया जाता है, भगवान् याॄ नहीं करते हैं इसलिये वह लौट जाता है, क्याॄकि नृप है मनुष्याॄका पालन करता है ।।४३।।

आभासार्थ : ब्रह्माण्डका अध्यक्ष प्रजापति है, वह कालरूप तथा यज्ञरूप है, वह सत्रह प्रकारका होता है, उसका पराजय हो ही गया, इसके बाद प्रमाणरूप ब्राह्मण बचते हैं शिव वेद रूप है, इन दोनॄके बलका आश्रय लेकर अठारवीं बार आएगा, जिसका वर्णन 'अष्टादशम' श्लोकमॄ करते हैं:

अष्टादशमसंग्रामे आगामिनि तदन्तरा ।
नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ।।४४।।
रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ।
त्रैलोक्ये चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीञ्छ्रुत्वाऽऽत्मसम्मितान् ।।४५।।

श्लोकार्थ : अठारवीं बार भी जरासन्ध आनेवाला था, उसके 'बीचमॄ' पहले ही नारदजीका भेजा हुआ वीर यवन देखनेमॄ आया, उसने तीन करोड़ म्लेच्छॄके साथ आकर मथुरा पुरीको घेर लिया, तीन लोकमॄ इसका कोई प्रतिद्वन्दी नहीं था अर्थात् इसके साथ लड़नेवाला नहीं था, इसने सुना था कि मेरे जैसे शूरवीर तो यादव ही हैं अतः उनसे लड़नेकेलिए घेरा डाला ।।४४ – ४५ ।।

व्याख्यार्थ : अन्य किसी पुराणमॄ कथा है, कि अठारवीं बार हार जानेके बाद जरासन्धको बहुतॄने प्रार्थना की, कि फिर राजधानीमॄ चलकर राज्य करो

और फिर तैयारी करो, किन्तु वह प्रार्थना स्वीकार न कर तपस्या करने चला गया, वहां शिवजीकी अच्छी तरह आराधना की, जिससे शङ्कर भगवान् प्रसन्न हुवे, प्रसन्न होके जरासन्धको कहने लगे कि ब्राह्मणॄकी सेवा करो, ब्राह्मण प्रसन्न होकर जो कुछ तुझे वरदान द्गे उसको कृष्ण अन्यथा नहीं करॄगे क्यॄकि वह ब्राह्मण हैं, ये श्रीशङ्कर भगवान्के वचन शिरोधार्य कर अपनी नगरीमॄ आके जरासन्धने ब्राह्मणॄको बुलाया और उनको सिंहासन पर बैठाया, जिससे ब्राह्मणॄने प्रसन्न होकर राज्य लौटाकर इनको दिया और वर भी दिया, ''शत्रु को तू जीतेगा'' तथा 'तीन लोकमॄ तू अजय होगा' इस प्रकार जब वर प्राप्त किया, तब इसकी खबर नारदजीको पड़ गई, जिससे नारदजीने उसके आनेसे पहले ही, कालयवनको मथुराको विजय करनेकेलिये भेज दिया, क्यॄकि उसने भी यादवॄको नाश करनेकी प्रतिज्ञा की थी, यदि अब वह न आवे तो उसको यादव नाशार्थ द्वारका जाना पड़ेगा, वहां इसका निराकरण हो नहीं सकेगा, क्यॄकि वहां कृष्ण मर्यादा पालनरूपमॄ विराजॄगे, अतः अब वहां दोनॄका एक ही से कार्य पूर्ण करॄ, इस विचारसे देवताओॄके गुप्त कार्यको सिद्ध करनेवाले नारदजीने यवनको बीचमॄ ही भेज दिया. क्यॄकि वह यवन वृद्धगर्गका पुत्र है, महायवनका पुत्र नहीं था, उसने पुत्र प्राप्तिकेलिये वृद्धगर्गको प्रार्थना की उसकी स्त्रीमॄ पुत्रको धारण कराया, और यह वरदान दिया कि यह पुत्र किसीसे भी जीता नहीं जायेगा, किसी समय कालयवनको प्रार्थना की, कि ''यादव मारने योग्य हैं'' अर्थात् यादवॄका तू नाशकर, इस प्रकार कालयवनकी यादवॄसे शत्रुता हुई, नारदजी उसमॄ प्रविष्ट होकर अर्थात् उनके पास जाकर यह बीचका समय है अतः आपको उनकी पराजय करनेका अच्छा अवसर है शीघ्र जाओ, यॄ कहकर उसको रवाना किया. अठारवीं बार होनेवाली लड़ाईके बीचमॄ ही, नारदजीसे भेजा हुआ यवन शूरवीर होनेसे, युद्धके रसपान करनेकी इच्छावाला था. देखा गया कि वह प्रतिकूल होकर लड़नेकेलिये आया है वह प्रतिकूल है यह कैसे जाना? तो कहते हैं स्वयं आकर करोड़ॄ म्लेच्छॄसे मथुराको घेर लिया, कारण कि तीन लोकमॄ उसके समान कोई योद्धा नहीं है जो उससे लड़ सके. 'च' शब्दसे बताया है, कि प्रभावसे भी वह बड़ा वीर देखनेमॄ आता था, और नारदजीसे सुना था कि यादव आप जैसे शूरवीर हैं इस बातको सहन न कर सके, इसलिये भी अपना शौर्य प्रकट दिखानेकेलिये मथुरापुरीको घेर लिया ।।४४-४५।।

आभासार्थ : तब भगवान् उस स्थानका परित्याग ही हेतु, जिसका वैसे निरोधका, चिन्तन करने लगे जिसका वर्णन 'तं दृष्ट्वा' आधे श्लोकमृ कहते हैं:

तं दृष्ट्वाचिन्तयत् कृष्णः सङ्कर्षणसहायवान् ।

श्लोकार्थ : श्रीकृष्ण उसको देखकर सहायता करनेवाले संकर्षणसे मिल विचार करने लगे.

व्याख्यार्थ : यह विचार तो प्रकट रीतिसे करते हैं इस कारणसे गूढ अभिप्रायसे ही विचार करते हैं, वह अभिप्राय है मथुरापुरीसे इनको निकालना है कारण, इनका निरोध करना है जैसे निरोधार्थ बृहद्वनसे निकालना वैसे इनको यहांसे निकालना चाहिये, जो दूसरे देश नहीं जायृगे तो इनका निरोध सिद्ध न होगा, लोकमृ याृ ही देखा जाता है, अतः भगवान् इनको दूसरे स्थान पर ले जाना चाहते हैं, इसलिये विचार करते हैं. मर्मको जाननेवाले बलभद्रजीसे सलाह करने लगे, क्याृकि इनके साथ विचार करनेके सिवाय, ले जानेका पता सबको लग जायेगा, जो हितकारक नहीं है. ऐसा क्याृ करते हैं? इसके उत्तरमृ कहते हैं, यह कृष्ण निरोध करनेकेलिये ही प्रकटे हैं, निरोध न होगा तो, यह उनका सदानन्द नहीं रहेगा, अर्थात् निरोधके सिवाय भक्त सदैव आनन्दमृ मग्न नहीं रहृगे, क्याृकि उनका चित्त बाहिर इधर-उधर फिरता रहेगा, सङ्कर्षणसे परामर्श क्याृ किया? दूसरे किसीसे क्याृ नहीं किया? जिसके उत्तरमृ कहते हैं, कि वह सङ्कर्षण ही आपके सहायक हैं दूसरा कोई नहीं, अतः उसके साथ ही विचार किया.

आभासार्थ : 'अहो यदूनां' श्लोकसे ३ श्लोकाृसे परामर्शके वचन कहते हैं:

अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महान् ।।४६।।
यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ।
मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वाऽऽगमिष्यति।।४७।।
आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः ।
बन्धून् हनिष्यत्यथवा नेष्यते स्वपुरं बली ।। ४८ ।।
तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ।
तत्र ज्ञातीन् समाधाय यवनं घातयामहे ।। ४९।।

श्लोकार्थ : श्रीकृष्ण विचार कर संकर्षणजीको कहने लगे, आश्चर्य है कि यादवाृको यह दुःख दोनाृ तरफसे अचानक कैसे प्राप्त हुआ? आज तो

महाबली यवनने हमकॄ घेर लिया है और जरासन्ध भी आज, कल या परसॄ आ जायेगा उस समय हम यवनसे लड़ते रहॄगे, उसको छोड़कर जरासन्धसे लड़ना भी नहीं हो सकेगा, अतः वैसी दशामॄ आया हुआ वह चतुर मागध हमारे वासुदेवादिको मारेगा, अथवा उनको बांधकर अपने देशको ले जाएगा तो उनको छुड़ानेकेलिए फिर बहुत परिश्रम करना पडेगा, इस कारणसे आज ही ऐसा दुर्ग बनाया जाए जिसमॄ मनुष्य जा नहीं सके अपने यादवॄको लेकर ऐसे किलेमॄ आज ही पहुंचा कर आज ही यवनको मारॄगे ।।४६ – ४९ ।।

व्याख्यार्थः आश्चर्य है कैसे यह अचानक आ गया और इसको इस सन्धिकालका ज्ञान कैसे हुआ यादवॄको दोनॄ तरफसे संकट प्राप्त हुआ है, इस अपने पक्षका सङ्कर्षणके आगे निरूपण करते हैं. इस महान् यवनने हम लोगॄको आज घेर लिया है ''हम लोगॄको'' कहकर यह बताया है कि हमारा यादवॄके साथ कार्यकेलिये अभेद है. वह यवन स्वरूपसे भी महान् है और बलवान् है. 'अद्य महहाबल' कहकर यह सिद्ध किया है कि जरासन्ध तथा यवन दोनॄ महाबली हैं, कारण कि दोनॄको ब्राह्मणॄके आशीर्वादसे बल प्राप्त है, जरासन्ध नहीं आया है तो इसने ही पहले रोक लिया है अर्थात् घेरेमॄ ले लिया है, यदि यॄ है तो जरासन्धके स्थान पर इसको समझकर इससे युद्धकर इसको नाश कर दो तो पता पड़ जायेगा. कौन विशेष है? इसके उत्तरमॄ कहते हैं कि मागध भी आज ही आ जायेगा जो यॄ है तो उसकी बुद्धिमॄ ऐसी प्रेरणा कर दो जैसे आज न आ सके यॄ करॄगे तो कल वा परसॄ तो अवश्य आ जायेगा, तो उसके आनेका निश्चित समय कहिये? तो कहते हैं कि तीनसे अधिक कोई नहीं बता सकता है इसलिये 'वा' शब्द कहा है. अच्छा यदि आज, कल परसॄ वा कभी ठगीसे आयेगा इसमॄ संशय नहीं है, तो उसका उपाय ही करना चाहिये? यदि कहो कि दोनॄ मारने योग्य हैं, इस पर कहते हैं कि दोनॄ जीतने जैसे नहीं हैं, अतः मुख्यको छोड़कर केवल सेनाको मारनेमॄ समय लगता है, तथा हम यवनसे लड़ाईमॄ लगे रहे उस समय वह चतुर आ जाये और हमको यवनसे लड़ाईमॄ तत्पर देखे तो उसको हम छोड़ भी नहीं सकते, यह ऐसा अवसर देख हमको छोड़ वसुदेवादि बान्धवॄको मारेगा अथवा उनको बान्धकर अपनी नगरीमॄ ले जायेगा तो पीछे छुड़ानेमॄ बहुत परिश्रम करना पड़ेगा, जरासन्ध भी बली होनेसे मारा नहीं जा सकता है जब यॄ है तब क्या करना चाहिये? वह कर्तव्य बताते हैं, जहां मनुष्य नहीं जा सके वैसा दुर्ग बनायॄगे

जब ऐसा अलौकिक दुर्ग जो बना सकता है. तब वह उनको ही अन्यथा क्यॄ नहीं करता है? क्यॄ अपना देश छुड़ाता है? किसी प्रकारका मर्यादाका बाध नहीं होता है उनको निर्बल बनानेमॄ ब्राह्मणॄमॄ मर्यादा बाध करती है जैसा कि दी हुई आशीर्वादका उल्लङ्घन न करना पड़ेगा इसलिये ही द्वारका बनानेका सुयोग्य विचार किया है जिसमॄ ब्राह्मण वाक्य उल्लङ्घन न होगा तथा उस कार्य पर ब्राह्मणॄके वचनॄका प्रभाव भी न होगा सब ठिकाने अधिक प्रयत्न, साधारण श्रमका निराकरण करता है.

१.जरासन्ध चड़ाई करनेवाला है इसके पहले आक्रमण करुं ऐसे बीचके समयमॄ.

'बली' शब्द पहले आया है और इसलिये यहां 'द्विपद' देकर यह बताया है, कि जो भी दो पैरवाले यादवॄके नाशकेलिये आना चाहॄगे वे नहीं आ सकॄगे भले वे ब्राह्मण भी हॄवॄ, दुर्ग बताके अनन्तर उसमॄ वसुदेव आदि ज्ञातिवालॄका वहां अच्छी तरह बिठावॄगे यॄ करनेके बाद निश्चिन्त होके यवनको मारॄगे इसमॄ विलम्ब बाधक न होगा नहीं तो मुचुकुन्दकी गुफामॄ भगवान्के जाने पर वसुदेवादि डरकर दुःखी हॄगे ।।४६-४७।।

आभासार्थ : इस प्रकार परामर्श करनेसे जो सलाह निश्चित् हुई उसका वर्णन 'इति संमन्त्र्य' श्लोकॄमॄ करते हैं:

इति सम्मन्त्र्य दाशार्हो दुर्गं द्वादशयोजनम् ।
अन्तःसमुद्रे नगरं कृष्णोऽद्भुतमचीकरत् ।।५०।।

श्लोकार्थ : ऐसी सलाह कर भक्त रक्षक श्रीकृष्णने समुद्रके मध्यमॄ बारह योजनमॄ अद्भुत किलारूप नगर तैयार किया ।।५० ।।

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ।
रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ।।५१।।

श्लोकार्थ : जहां भगवान्ने सर्व प्रकारकी कारीगिरी की थी, जिसका प्रत्यक्ष दर्शन होता था, वस्तु शास्त्रॄके अनुसार राजमार्ग, चौहट, गलियां इस प्रकार बनाई थीं जो आने जानेमॄ अड़चन न होवे तथा किसी मकानकी वायु धूप आदि न रुके ।।५१।।

सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ।
हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ।।५२।।

श्लोकार्थ : जहां देवता सम्बन्धी वृक्ष-लताआॄ सहित उद्यान तथा

उपवनॄसे सुशोभित घर एवं मार्ग थे, अति ऊंची स्फाटिक मणियॄसे निर्मित अटारियां तथा दुर्गके फाटक आकाशको छूते हुए सोनेके सींगॄसे युक्त कलशॄसे सुशोभित थे ।।५२ ।।

राजतारकुटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलङ्कृतैः ।
रत्नकूटैर्गृहैर्हेमैर्महामरकतस्थलैः।।५३।।

श्लोकार्थ : चांदी और पीतलसे बने कोठे सोनेके कलशॄसे लस रहे थे, अमूल्य मरकत मणिके स्थलवाले सुवर्णसे बने घरॄके शिखर माणिक आदि रत्नॄसे बनाये गए थे ।।५३ ।।

व्याख्यार्थ : भगवान्को समुद्रके मध्यमॄ दुर्ग अर्थात् द्वारकापुरी बनानेमॄ श्रम हुआ होगा. आप अक्लिष्टकर्मा हैं फिर वैसा परिश्रमवाला कर्म क्यॄ किया? इस शङ्काको मिटानेकेलिये कहा है, कि 'दाशार्हो' भक्तरक्षक हैं अर्थात् भक्तॄकी रक्षाकेलिये आप सब कुछ करनेमॄ हिचकते नहीं हैं, उनके वास्ते जो भी कार्य चाहॄ वह क्लेशदायी हो तो भी करते हैं किन्तु इससे उनको कुछ भी क्लिष्टता मालूम नहीं होती है अतः इसके बनानेसे उनको क्लिष्ट करनेका दोष स्पर्श भी नहीं करता है जो कालादिक नहीं बनाते हैं उसको आप कैसे बनायॄगे यदि उनके सिवाय आप बनाते हैं तो कालादिक क्यॄ प्रतिबन्धक न हॄगे? इस शङ्काको मिटानेकेलिये ही 'नगर' बनाना न कहकर 'दुर्ग' हित करॄगे इसलिये कहा, कि वह दुर्ग बारह योजनका होगा, क्यॄकि 'काल' 'द्वादशात्मक' है अथवा प्रतिपक्षतासे करॄगे अलौकिक होनेसे वह चौकाना बना था, वह दुर्ग सबसे विशेष उत्तम है यह बतानेकेलिये उसके तीन गुण कहते हैं (१)समुद्रके मध्यमॄ है, जिससे यह पृथ्वी पर तैरी हुई नहीं है किन्तु पृथ्वीका भांति अन्तरिक्षमॄ अर्थात् समुद्रके मध्यमॄ जलके ऊपर है. नहीं तो नीचे चली जाये उसमॄ कुछ विलक्षणता होगी ऐसी शंका मिटानेकेलिये दुर्गको 'नगरी' भी कहा है उसमॄ भी विशेष यह है कि वह 'अद्भुत्' है, अद्भुत् क्यॄ और कैसे है? इस पर कहते हैं कि इसके निर्माता कृष्ण हैं जो सदानन्द स्वरूप हैं उनका बनाया हुआ स्थान उनसे मिलानेवाला होगा श्लोकमॄ 'अचीकरत्' पद देकर कहा है कि स्वयंने बनाया है कोई कहते हैं कि 'त्वाष्ट्रं' पदसे समझा जाता है कि यह विश्वकर्माकी बनाई हुई नगरी है सचमुच तो विश्वकर्मा जैसी इसमॄ निपुणता दीखती है जिससे यह शङ्का उत्पन्न होती है, किन्तु भगवान्ने ही यहां बनाई है क्यॄकि विश्वकर्मा जलमॄ ही बना सकता है. जो

भगवान्ने नहीं बनाई होती तो, भगवान्के पधारनेसे उनके गुण भी क्रमसे पधारने लगे जिससे ही समुद्रने सातवृ दिन उसको डूबो दिया. यदि विश्वकर्माकी बनाई हुई होती तो विश्वकर्माके विद्यमान होनेसे समुद्र न डुबोता अथवा मान लिया जावे कि विश्वकर्मा द्वारा बनाई गई है तो भी विश्वकर्मा केवल 'करण' है अर्थात् बनाई भगवान्ने है. विश्वकर्मा केवल करण था जैसे कर्ता कुम्हार है चाक आदि उपकरण होते हैं.

जिस नगरीमृ अनेक चतुराईवाला त्वष्टाका विज्ञान दीखता है जिस विज्ञानसे कारीगरीमृ निपुणताका ज्ञान होता है और जहां बड़े-बड़े मार्ग तथा चौराहे हैं, वास्तु शास्त्रके सिद्धान्तके अनुसार बनाई हुई है, वह चित्रकलाके न होते हुवे भी, सामान्य प्रकारसे बने होने पर भी उत्तमता तथा विलक्षणतासे युक्त थी उन नगरके निर्माणमृ दैविक, लौकिक तथा शास्त्रीय ज्ञान काममृ लाया गया है इस तीन प्रकारके ज्ञानसे यह बताया है, कि इससे विशेष वर्णन हो नहीं सकता है, अर्थात् इससे उत्तम नगर नहीं बन सकता है.

विशेष प्रकारसे वर्णन करते हैं, जिस नगरके उद्यानृमृ सुगन्धित पुष्पवाले पारिजात आदि देव वृक्ष लगे हैं, पुष्प ही जिसमृ विशेष हो, उसको उद्यान कहा जाता है, तथा उपवन थे जिनमृ फलृके पेड़ अधिक लगे हुवे थे, नगरीके चारृ ओर उपवन थे जिससे नगरीकी विशेष शोभा हो रही थी.

नगरके भीतर गृहृकी शोभाका वर्णन करते हैं इक्कीस भारवाले गृहृके ऊपर जो सोनेके कलश रखे गये थे उनके चारृ ओर सोनेके शृङ्ग लगाये गये थे जो आकाशको स्पर्श कर रहे थे, अब जिन पत्थरृसे अटारियां और नगरके फाटक बने थे उन पत्थरृको कहते हैं कि ''स्फाटिकैरेव निर्मिताः'' वे स्फाटिक प्रस्तरृ (विल्लोर)से बनाये गये थे.

दुर्ग था इसलिये अन्न आदि पदार्थोंके रखनेकेलिये बड़े-बड़े पात्रृकी आवश्यकता थी, उनका वर्णन करते हैं कि चांदी तथा पीतल आदि बड़े-बड़े कोठे बनाये गये थे और वे सोनेके घड़ृसे अलङ्कृत किये गये थे घृत और दधि आदि स्निग्ध पदार्थोंके रखनेकेलिये चांदीके कोठे बने हुवे थे, अन्नकेलिये पीतलके कोठे बने थे 'आर कूट' शब्द सब धातुओृको बतानेवाला शब्द समझना चाहिये, आदि और अन्तमृ चांदी तथा सोना ही उपादानसे काममृ लिया गया था, ऊपरकी शोभाका वर्णन कर बीचकी शोभाका वर्णन करते हैं. सारी नगरीमृ जो घर

बने हुवे थे वे जैसे रत्नासे जड़ित पदक सोनेका बना हुआ होता है वैसे सोनेके बने हुवे घर थे जिन पर रत्न जड़े हुवे थे. घरकी भूमि पर मरकत मणियाके फरश बांधे गये थे ।।५३।।

वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ।
चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ।।५४।।

श्लोकार्थ : चारा तरफ लोकपाल तथा दुर्गा आदि देवाके स्थान थे और मध्यमा भगवान्का मन्दिर सुशोभित था सारी नगरीके घर पर छज्जे भी लगा दिए थे. वह दुर्ग चारा वर्णोंके मनुष्यासे भरा पड़ा था ।।५४ ।।

व्याख्यार्थ : लौकिक प्रकारसे जो घर उपयोगमा आनेवाले नहीं थे तो भी वे धर्मको सिद्ध करनेवाले थे, क्याकि वे इन्द्र आदि लोकपालकाके थे. श्लोकमा 'च' शब्द इस आशयसे दिया है कि दुर्गा आदिके भी घर थे इन घराके बीचमा भगवान्का घर था ये देवाके घर भगवान्के घरके चारा तरफ थे, लोकपालाके घर इसलिये बनाये गये थे कि वे भूमिके पति हैं.

सब घराा छज्जे भी लगा दिये गये थे छज्जाका काम घरके सर्व प्रकार तैयार होनेके बाद अन्तमा किया जाता है, जिससे मालूम होता है कि निर्माणका सर्व कार्य पूर्ण हो गया है शेष कुछ भी कार्य करना रहा नहीं है यहांसे जानेवाले मनुष्यासे पहले ही उसमा चारा वर्णके जनका चारा दिशाआमे विस्तार हो रहा था, इससे सिद्ध है, कि वे जन भगवान्के ही प्रकट किये हुवे हैं, या न होता तो यहांसे जानेवाले जनाका बन्दनीयाकी भांति पात हो जावे अतः उनके सामीप्यसे सर्वता विद्यमानके तत्वसे समानता होनेके कारण वे जन निश्चयसे अब भी हैं अतः यह नगर भगवान्के धनसे विशेष शोभायमान था चारा दिशाआमा चारा वर्णोंके घर थे और नगरके मध्यमा भगवान्का घर था जैसे अनेक रङ्गासे चित्रित वस्त्र शोभा देता है वैसे ही यह नगरी अनेक प्रकारके घर तथा जनासे सुशोभित दीखती थी ।।५४।।

आभासार्थ : इस प्रकार भगवान्ने जब द्वारकाका निर्माण कर दिया, तब विशेष निर्माणकेलिए पारिजातादि वृक्षाकी विशेष प्रतिष्ठा होगी अतः सर्व लोकपाल अपनी – अपनी सम्पदाएं भेजने लगे, जिनका वर्णन 'सुधर्मा'से तीन श्लोकामा कहते हैं:

सुधर्मा पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः ।

यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ।।५५।।

श्लोकार्थ : इन्द्रने भगवान्‌केलिए सुधर्मा सभा तथा पारिजात वृक्ष भेजे, जिस सभामॄ बैठनेवालॄको मृत्युके धर्म जरा आदि किसी प्रकारका दुःख नहीं देते हैं ।।५५ ।।

श्यामैककर्णान् वरुणो हयाञ्छुक्लमनोजवान् ।
अष्टौ निधिपतिः कोशान् लोकपालो निजोदयान्। ५६।।

श्लोकार्थ : वरुणने श्वेत वर्णवाले अश्व जिनके केवल एक कान काला था, चलनेमॄ मन जैसे वेग वाले थे वे भेजे, निधिपति(कुबेर)ने आठ कोश भेजे और लोकपालॄने अपने भंडार भेज दिए ।।५६ ।।

यद् यद् भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ।
सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ।।५७।।

श्लोकार्थ : भगवान्‌ने इन्द्र आदि देवॄको जो कुछ वे अपने धर्मसे प्राप्त नहीं कर सकते वे पदार्थ कृपा कर दिए हैं, उनके पास जो कुछ पदार्थ हैं वे वास्तवमॄ भगवान्‌के ही हैं, अतः जब भगवान् भूमि पर प्रकट होते हैं तब देव वे पदार्थ भगवान्‌को समर्पण कर सदैवकेलिए अपने पास रहे, यह सिद्ध करते हैं ।।५७ ।।

व्याख्यार्थ : आगे जो पारिजात ले जानेकी कथा की है वह मतान्तर भाषासे कही है, उसको आगे विस्तारसे कहॄगे नवरत्नॄसे निर्मित जैसी भूमिरूप किसी देवताको 'सुधर्मा' नामसे कहा जाता है जहां केवल बैठनेसे ही धर्मका फल होता है, अतः 'सुधर्मा' शब्दसे 'देवसभा' समझी जाती है. 'च' कहकर यह बताया है कि पारिजातके सिवाय दूसरे भी देवद्रुम लाये गये थे.

इन्द्रने सिंहासन आदि सामान भी भेजा था अब दोनॄके माहात्म्यका वर्णन करते हैं. जिस धर्म सभामॄ पारिजात और धर्म भी है, यह 'च' शब्दसे समझा जाता है इससे क्या लाभ है, वह बताते हैं कि इनके पास रहनेसे जो निश्चयसे मरनेवाले हैं, उनको वह स्वाभाविक मर्त्य धर्म भी कुछ नहीं कर सकता है, अर्थात् मार नहीं सकता है, इससे प्रथम कहे हुवे धर्मोंके दोषका परिहार भी कह दिया है. और गुण तो 'सुधर्मा' पदसे बता दिये हैं, दूसरी सम्पत्तिका वर्णन करते हैं एक दक्षिण कर्ण श्याम था शेष सब शरीर कुन्द पुरुषके समान शुक्ल प्रकाशवाला है इन अश्वॄकी उच्चैश्रवा घोड़ेसे यह ही विलक्षणता है, स्वर्ग और कर्म दोनॄ प्रकार

काम आनेवाले ये अश्व हैं, वे अश्व सैन्धव (सिन्धु समुद्रसे उत्पन्न हुवे हैं) ही हैं इस बातको जतानेकेलिये कहा है कि ये वरुण देवने भेजे हैं, इनका वाम श्याम कर्ण प्रवृति शास्त्ररूप होनेसे स्वर्ग कहा है और दक्षिण कर्ण स्वर्गका साधनरूप कर्म है, श्याम कर्णके सिवाय अन्यत्र किसी भी दूसरे वर्णकी सम्भावना न हो इसलिये 'शुक्ल' शब्द दे दिया है अर्थात् अन्य अङ्ग श्वेत थे. 'शुक्लमनोजवान्' यह पद समास इसलिये दिया है कि होनेसे भी वे शीघ्र गामी थे निधियॄके पति होनेसे आठॄ लोकपालॄने भण्डारमॄ जो जन्म आदि वस्तुयॄ चाहिये वे भेजी थीं और अपने-अपने जो भी अभ्युदय हुवे थे वे सर्व अर्पण किये थे.

लोकपालॄने अनेक पुण्यॄसे प्राप्त भोग साधन जिनसे उनके अधिकारका पता लगता था वे क्यॄ किये? इस शङ्काका निवारण करनेकेलिये कहते हैं, कि उनने जो वस्तुयॄ दीं वे उनने अपने धर्मसे इकट्ठी नहीं की थीं, परमेश्वरने दीं थीं. अतः उन पर वास्तविक आधिपत्य परमात्माका है उनको अधिकार भी भगवान्ने ही दिया था जब मिला तब फिर लौटानेमॄ क्या कारण है? इसके उत्तरमॄ कहते हैं, कि 'स्वसिद्धये' अपनी सिद्धिकेलिये अधिकार ईश्वरकी इच्छासे ही मिलता है वह इच्छा जानी नहीं जाती, अतः वह उपाय करना चाहिये जिससे वह अधिकारादि निश्चित हो जाये, वह अक्षय तब होता है जब भगवान्को अर्पण किया जाता है अतः अपने धनका और अधिकारका अक्षयपन हो तदर्थ सर्व प्रत्यर्पण किया है, दी हुई वस्तु भगवान्ने कैसे ली? इसके उत्तरमॄ कहते हैं, कि भगवान् इसीलिये लेते हैं कि भगवान्को वे वस्तुयॄ भक्तॄको देनी हैं, भक्तॄकेलिये भगवान् सब कुछ करते हैं जैसे भगवान् स्वयं वैकुण्ठादिमॄ विराजते हैं और भूमि, ब्रह्मा तथा मनुको दे दी है, तो भी आप भक्तोद्धारकेलिये भूमिका ग्रहण कर आप भूमि पर प्रकट होते हैं, इस न्यायसे सर्व समृद्धि भक्तॄको देनेकेलिये वा दिखानेकेलिये भगवान्को अपेक्षित होती है, अतः लोकपालॄका प्रत्यर्पण उचित है, इसको जतानेकेलिये 'नृप' सम्बोधन दिया है ।।५५-५७।।

आभासार्थ : जिसकेलिए इसका निर्माण हुआ वह 'तत्र' श्लोकसे कहते हैं:

तत्र योगप्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरिः ।
प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ।
निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुधः ।।५८।।

श्लोकार्थ : प्रजापालक बलरामजीसे परामर्श कर दुःखहर्ता पद्मकी माला पहिने हुए भगवान् कृष्ण बिना शस्त्र, नगरके बाहिर निकले और सर्व मनुष्यको योग प्रभावसे लेकर द्वारकामे पहुंचा कर आप लौट आए ।।५८ ।।

व्याख्यार्थ : अणिमा आदि सिद्धियां जो योगका सहज फल है, यह जो यहां फल कहा जाता है, वह योगकी सामर्थ्यका फल है जैसे ही सोये पड़े थे वैसे ही उन सबको वहां पहुंचाकर आप लौट आये वहां ले जानेका कारण उनके दुःखका मिटाना था यहां रहनेसे वे सङ्कटसे दुःखी होते थे.

वहांकी प्रजाके दुःख निवृत्तिकेलिये बलभद्रको कहा रतिके उत्पादक, उसने वह स्वीकार किया. कृष्ण भी स्वयं सदानन्द हैं, इसके अनन्तर यहां मथुरामे रहना नहीं चाहिये मानो यो बनाते हुवे बलरामजीसे साधनकी अनुमति ले फलरूप कृष्ण मथुरासे पधारे. यद्यपि मथुरामे आपकी सदैव स्थिति है, तो भी आप पधारे किन्तु नित्य क्रियारूपसे तो यहां विराजते हैं. अतः इसमे किसी प्रकार अनुपति(असङ्गत) नहीं है नगरके द्वारसे बाहिर जाना प्रसिद्ध ही है, भगवान्ने पधारते समय दो बात बताई (१)पद्ममाकी माला धारणकर, पधारे, जिससे यह बताया कि हमने साथ कीर्ति भी ली है. और (२)शस्त्रके बिना जाते हुवे भी [१]रक्षा की है. इस प्रकार निकलनेका प्रयोजन आगे स्पष्ट होगा ।।५८।।

१.इस प्रकरणकी लीला प्रद्युम्न स्वरूपसे की है, अतः बन्धुकी रक्षाकेलिये शस्त्र ग्रहण किये हैं, किन्तु जब जो रक्षा की है, वह 'स्थानदानसे' की है अर्थात् द्वारकामे पहुंचकर रक्षा की है अतः आप बिना शस्त्रके पधारे हैं.

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कंध (उत्तरार्ध) अध्याय ४७ की श्रीवल्लभाचायचरण विरचित श्रीसुबोधिनी टीकाके राजस साधन अवान्तर प्रकरणके प्रथम अध्यायका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण

अध्याय ४८

कालयवनका भस्म होना तथा मुचुकुन्दकी कथा

निग्रहं प्रथमेऽध्याये निरूप्य हरिणा कृतम् ।
द्वितीयेऽनुग्रहं प्राह मुचुकुन्दाय यत्कृतम् ।।कारि. १।।

कारिकार्थ : पहले अध्यायमृ हरिने जो निग्रह किया उसका निरूपण कर, दूसरे अध्यायमृ मुचुकुन्द पर किए हुए अनुग्रहको कहते हैं ।।१ ।।

तामसी हननाख्या हि राजसी नगरोद्यमा ।
सात्त्विकी नयनाख्या च निर्गुणा निर्गमस्तथा ।।कारि. २।।

कारिकार्थ : हननरूप लीला तामसी है, नगर रचनारूप उद्यम लीला राजसी है, मथुरा वासियृको लेजानेकी लीला सात्विकी है और मथुरासे निर्गमनकी लीला निर्गुण है ।।२ ।।

निर्गुणस्य निमित्तत्वं न तु कर्तृत्वमीर्यते ।
प्रबोधो मरणं चैव संवादश्च यथाक्रमात् ।।कारि. ३।।
स्तुतिश्च निर्गुणा प्रोक्ता तदग्रे हि फलिष्यति ।
अतो निर्गुणलीलात्र द्वितीये विनिरूप्यते ।
क्रिया भगवतो द्वेधा गुणेषु स्वे यतः स्थिता ।।कारि. ४।।

कारिकार्थ : निर्गुण स्वरूप निमित्त मात्र है न कि कर्ता है, [१]जगना, [२]मरण, [३]संवाद तथा [४]स्तुति है, वह निर्गुण है जिसका फल पीछे[५] होगा इस कारणसे[६] दूसरे अध्यायमृ[७] निर्गुण लीलाका विशेष निरूपण है, भगवान्‌की क्रिया लीला दो प्रकारकी है क्यृकि लीला गुणृमृ[८] रहती अर्थात् गुणृ द्वारा होती है, लीला अपने स्वरूपमृ[९] स्थिति है अर्थात् धर्मी स्वरूपसे की जाती है ।।३ – ४ ।।

१. मुचुकुन्दका जागना, २. यवनका मरण, ३. भगवान् और मुचुकुन्दका वार्तालाप, ४. मुचुकुन्दकी की हुई भगवान्‌की स्तुति, ५. मुचुकुन्दकी मुक्ति जन्मान्तरमृ होगी, ६. विशेष लीला न होनेसे पहले अध्यायका अर्थ चारृ लीलामृ है, ७. दूसरे अध्यायका अर्थ निर्गुण लीला है क्यृकि मोक्ष लक्षण फल मिलेगा, ८. सगुण लीला, ९. निर्गुण लीला.

कारिकार्थ पूर्ण.

आभासार्थ : प्रथम अध्यायके अन्तमृ कहा गया कि भगवान् बिना

आयुधॄ(हथियारॄ)के केवल कमल माला धारण कर मथुरासे पधारे, यॄ भगवान्ने किया, उसका भावार्थ यह है कि भगवान्के आयुध तत्त्वरूप हैं, अतः वे यहां ही छोड़ गए, जिससे वह मोहित हो, कि यह ऐसे निर्भय हैं, जो बिना आयुधॄके गमन कर रहे हैं और इससे भगवान्की कीर्ति सम्पादित की, जिसका चिह्न कमल माला धारण की थी, नारदसे उपदिष्ट कालयवनको मोक्ष देनेकेलिए उसे दर्शन दिया, पश्चात् उसका अनुसरण करना, अनन्तर दृष्टिसे एवं ज्ञानरूप ज्ञानाग्निसे उसके संघातके नाशका निरूपण किया गया है. निर्गुण – क्रियाका फल मोक्ष होता है, किन्तु वह फल उसको समय आने पर प्राप्त होगा इसका निरूपण 'तं विलोक्य' श्लोकमॄ करते हैं:

श्रीशुक उवाच

तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ।
दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ।।१।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि, अतिशय सुन्दर श्याम स्वरूप पीले रेशमी वस्त्रॄवाले उन श्रीकृष्णको विशेष प्रकारवाले दूजके चन्द्रके समान बाहिर निकलते हुए देखकर उन्हॄ पकड़नेकी इच्छासे पीछे दौड़ने लगा, छठे श्लोकसे अन्वय है ।।१ ।।

व्याख्यार्थ : उसको देखकर यह निश्चय किया कि यह वासुदेव है, उनको पकड़नेकेलिये पीछे दौड़ने लगा. देखे हुवे स्वरूपका तीनसे वर्णन करते हैं, पन्द्रह कलाओॄसे पूर्णकी तरह, उतने ही विशेषण देकर वर्णन करॄगे. अतः पहले चन्द्रमाके दृष्टान्तसे वर्णन करते हैं, जैसे राहुके मुखसे वा बादलॄसे नहीं, किन्तु उदयाचलसे जो चन्द्रमा उदय होता है वह सर्वका आनन्द देता है, वैसे ही भगवान् भी मारनेकेलिये नहीं, न भय पैदा करनेकेलिये और न स्वयं भयसे प्रकट हुवे हैं, किन्तु आनन्ददानार्थ आविर्भूत हुवे हैं इसलिये 'उज्जिहानं' पद दिया है. चन्द्रमा पहले दिनसे दूसरे दिन विशेष प्रकाशवाला प्रतीत होता है, विशेष प्रकाश किसलिये? इसका उत्तर देते हैं, कि चन्द्रमा नक्षत्रॄका रक्षक है, यदि प्रत्येक नक्षत्रके प्रकाश द्वारा न पहुंचे और उस प्रकाशसे उनको प्रकाशित न करे, स्वरूप और फलसे विमुख कर दे, तो नक्षत्रॄका जन्म ही व्यर्थ हो जावे, वैसे ही भगवान् नारद आदि भक्तॄकी बात रखनेकेलिये उन्होॄने जिसको उपदेश दिया है उसके आगे अपना प्रभाव प्रकट करनेकेलिये हरेक क्षणमॄ अपने रूपकी विशेषता प्रकट

करने लगे. उनके देखने पर युद्धकेलिये आये हुवे शत्रुआृका, कदाचित् क्रोध आ जाये तो असन्मति होनेसे, मोक्ष रुक जायेगा, इसीलिये भगवान्ने अपना स्वरूप अतीव सुन्दर बनाके दर्शन दिया, जिससे उनको न क्रोध आवे और न उनको असन्मति हो, तथा अपने विशेष सौन्दर्यसे शत्रुको बहुत आश्चर्यमृ डाल देते हैं, अपनेको भी बार-बार देखने योग्य होता है क्यृाकि वैसा ही आपका (श्याम) स्वरूप है, श्याम शब्दसे अपने स्वरूपकी रसात्मकता बताई, जैसे श्याम मेघ रसपूर्ण होते हैं, 'पीत कौशेयवाससं' पदसे यह बताया कि वेद, यज्ञ और देव ये तीनृा मेरे भीतर हैं, कारण कि श्रुति कहती हैं कि ''**आद्यन्तमध्ये बद्धो**'' ''**वेदेनामृतम् अश्नुत**'' जो मनुष्य ऊपर, मध्य और नीचे वस्त्रयुक्त है वह वेदसे अमृत पान कर सकता है, जो नग्न है उनका मोक्ष नहीं होता है, जैसे कि वेदमृ कहा है ''**कच्छाशिखोपवीतानि बन्धनान्याह वेदतः**'' नीचेका वस्त्र शिखा और उपवीत ये तीन बन्धन हैं, ये जिनको हैं उनको वेद-वचनानुसार मोक्ष होता है, अतः भगवान्ने पीत रङ्गसे वेदको, पटवस्त्रसे यज्ञको और निम्न वस्त्र बान्धनेसे देवताआृको धारण कर रखा है, यदि इन तीनृाको धारण न किया हो तो 'पीताम्बर' धारण किया है यृा कहते थे, भगवदीय पदार्थ भी प्राकृतिक प्रकृतिके नहीं होते हैं यह ही विशेषणका सामर्थ्य है ।।१।।

आभासार्थ : इस प्रकार भगवान्के धर्मरूपताका वर्णन कर अब अर्थरूपताका वर्णन 'श्रीवत्स' श्लोकसे करते हैं:

श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ।।२।।

श्लोकार्थ : छाती पर श्रीवत्सका चिह्न धारण किए हुए देदीप्यमान कौस्तुभ मणिको कण्ठमृ धारण किए हुवे, मोटी और लम्बी चार भुजाआृ वाले और नवीन कमल जैसे लाल नेत्र वाले उन (भगवान्)को देखकर ।।२ ।।

व्याख्यार्थ : अङ्गमृ दक्षिण तरफवाली रोमाृकी रेखामृ जो सुवर्णकी रेखा सकल विशेष तेज दृग्गोचर होती है उसको 'श्रीवत्स' कहते हैं वह जिसकी छाती पर शोभायमान है, जीव छातीके निकट स्थित हैं, अतः भगवान्ने 'अर्थ' अतिशय कर वहां ही पर धारण किया है दक्षिण स्तन धर्म है, इसलिये धर्ममृ स्थित ही अर्थ भगवान्ने ग्रहण किया है अतएव वहां जीवकी स्थिति कहते हैं, देदीप्यमान कौस्तुभमणिको कण्ठमृ धारण कर यह दिखाया है कि मैंने 'काम'को भी धारण

किया है, कारण कि श्रुति कहती है, कि ''पुरुषः काममयः'' इस श्रुतिको चरितार्थ कर दिखाया है, मोक्ष तो अपने आप ही देते हैं शेष अन्य दान भी प्रसङ्ग आने पर देते हैं जिसको चतुर्भुज होनेसे जतानेकेलिये कहा है, कि आपके नेत्र नवीन कमल सदृश लाल हैं, नेत्राृकी नवीनतासे यह कहा है कि जिस पर आपकी कृपा दृष्टि पड़ती है उसको, काल अपना ग्रास नहीं बना सकता है, कमलपनसे सात्विकता प्रकट की है, अरुणपनसे राजसता आविर्भूत की है, इससे यह कहा है, कि रस और दयासे युक्त भगवान्की ज्ञान दृष्टि जिस पर पड़ती है, उसकी भक्ति सिद्ध हो जाती है अर्थात् वह जीव भक्त बन जाता है, इस प्रकार पांचवा पुरुषार्थ भी निरूपण किया है ।।२।।

आभासार्थ : यह प्रार्थनाका अवसर है यह 'नित्यप्रमुदितं' श्लोकसे प्रकट करते हैं:

नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ।
मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।।३।।

श्लोकार्थ : नित्य आनन्दयुक्त, शोभायुक्त, सुन्दर कपोलवाले, मनोहर मन्द मुसक्यान वाले, चमकीले मकर कुण्डलाृ वाले मुखारविन्दको धारण किए हुए उनको देखकर ।।३ ।।

व्याख्यार्थ : इस प्रकार सर्व पुरुषार्थोंके देनेवाले भगवान्का निरूपणकर, पांच विशेषणाृसे युक्त पञ्चपर्वा विद्यारूप मुखारविन्दको भी स्वतन्त्र भक्तिमार्गपनेसे निरूपण करते हुवे कहते हैं, कि वह स्वतन्त्र भक्तिमार्ग भगवान् ही स्थापन करते हैं, इस बातको प्रसिद्ध करनेकेलिये कहा जाता है कि भगवान्का स्वतन्त्र भक्तिरूप मुखारविन्द भगवान् जैसा ही परम सुन्दर है उस मुखारविन्दके कपोल ऐसे सुन्दर हैं, जिनसे प्रवृत्ति निवृत्ति प्रकारसे भी रसके आस्वादनका अनुभव किया जाता है, और उसको शुद्ध मनोहर मुसक्यान भगवत्सेवनकेलिये उपयोगी मोह उत्पन्न करती है अन्य प्रकारका मोह नहीं करती है, उस मुखारविन्दके कर्णस्थानाृमृ भगवान्ने मकराकृति कुण्डल धारण किये हैं जो चमक रहे हैं जिसका आशय यह है, कि जो भक्तिमार्गसे बाहर निकलृगे अर्थात् भक्तिमार्गका त्याग करृगे उनको यह वेदरुप मकर ग्रस लृगे अर्थात् वे कालके आधीन हो जायृग, भगवान् मोक्षार्थ पधारते हुवे भगवन्मार्ग तथा भक्तिमार्गकी भी स्थापना करते हैं, याृ निरूपण किया है ।।३।।

आभासार्थ : इस प्रकारके तो भगवान् ही होते हैं यॄ नारदकी शिक्षासे समझ लिया, जिसका वर्णन 'वासुदेवो' श्लोकमॄ करते है:

वासुदेवो ह्ययमिति पुमाञ्छ्रीवत्सलाञ्छनः ।
चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ।।४।।

श्लोकार्थ : श्रीवत्सके चिह्नवाले हैं, चतुर्भुजरूप हैं, कमल जैसे नेत्रवाले हैं, वनमाला भी धारण की है और अत्यन्त रमणीय हैं तथा पुरुष हैं अतः यह ही वासुदेव हैं ।।४ ।।

व्याख्यार्थ : सतोगुणमॄ आविर्भूत अथवा मोक्ष दाता यह ही वासुदेव हैं, यॄ निश्चय किया, निश्चय कैसे किया ? वह बताते हैं कि असाधारण जो छः गुण हैं उनको सिद्ध करनेकेलिये छः विशेषण कहते हैं. 'इति' पद यहां निश्चय अर्थमॄ दिया है, क्यॄकि पुरुष हैं, न कि प्रकृति हैं. दिव्य दृष्टिसे देखा, कि सारा जगत् प्राकृत है, एक यह भगवान् ही अप्राकृत पुरुषरूप हैं, यॄ कहकर भगवान्का 'ऐश्वर्य' धर्म प्रकट किया है. "**विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि**" अर्थ विष्णुके तीनरूप हैं, इस श्रुतिके अनुसार उनके पुरुषरूपमॄ किसी प्रकार वाद्य नहीं है, बल्कि मूलमॄ पुरुषरूप होनेसे इनका पुरुषरूप बन सकता है, यॄ साधकता है ही, जिसको श्रीवत्सका चिह्न है, जिससे पूर्ण क्रिया शक्ति दिखाई और इससे 'वीर्य' धर्म कहा क्यॄकि वह क्रिया शक्ति भगवान्मॄ ही है, अनन्तर सर्व पुरुषार्थ दातापन होनेसे ही 'यश' होता है उसका निरूपण करते हुवे कहते हैं कि चतुर्भुज हैं अतः चारभुजाओंसे चार पुरुषार्थ सिद्ध करते हैं स्वस्वरूपसे पांचवां भक्ति पुरुषार्थका भी कृपया दान करते हैं. अनन्तर 'अरविन्दाक्ष' कमल नेत्र कहनेसे यह बताया है कि आपकी दृष्टिसे कमलवत् विरह तापका नाश कर भक्ति प्रद है, इससे आपका (श्री) गुण दर्शाया है, अरविन्दाक्षका अन्य प्रकारसे अर्थ करते हैं, कि आपके नेत्र रविके सिवाय सर्वको खण्डन करनेवाले हैं. महातेजस्वीका ही स्थापन करते हैं, यॄ कहकर यह बताया है, कि नेत्र 'श्री' और भक्ति देनेवाले हैं वन माला धारण कर यह बताया है, कि आप ज्ञानकी भांति अन्तःकरणमॄ प्रविष्ट होकर स्थिति करते हैं, इससे आपकी पूर्णता प्रकट की है, अति सुन्दर हैं, इससे आपमॄ किसी प्रकारका कल्मष नहीं है, यह सिद्ध किया है देशका परित्याग ही 'वैराग्य' है. इस प्रकार षड़ गुण संयुक्त होनेसे निश्चय है कि ये ही वासुदेव हैं ।।४।।

लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ।

निरायुधश्चलन् पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ।।५।।

श्लोकार्थ : नारदजीने जो लक्षण कहे थे वे इसमृ ही(इनमृ) हैं, अतः, यह कोई दूसरे नहीं हैं, बिना आयुधाृके पैदल जा रहे हैं इसलिए मैं भी इनसे बिना आयुध लिए लडूंगा ।।५ ।।

व्याख्यार्थ : नारदजीके कहे हुवे लक्षणाृसे निश्चित है कि यह ही वासुदेव हैं, अन्य हो नहीं सकते हैं, दूसरे किसी पुराणकी कथा यहां विचारमृ लानी चाहिये, नारदने आकर कालयवनको कहा, कि यद्यपि यादव तेरे समान हैं, किन्तु उनका रक्षक कृष्ण है और वह पहचानना कठिन है तब जय कैसे होगी? वह क्याृ नहीं पहचाना जाता है? इसके उत्तरमृ कहते हैं, कि वह अनेक नवीनरूप धारण करते हैं, अतः तू उनको जान नहीं सकेगा तब कालयवनने उनके जाननेकी विशेष इच्छा प्रकट की तब नारदजीने भगवान्के लक्षणाृको कहा, कि वे अकेले बिना आयुध लिये पैदल जाते हाृगे और सर्व आभरणाृसे भूषित हाृगे तथा लड़ाई भी नहीं करते हाृगे, जो घोड़े पर चढ़ हथियारसे उनके पीछे जायेगा, उसको पाप लगेगा यह सुनकर कालयवनको भी अपने आपसे ही भय था, न दूसरेसे, यह कथा वहां कही है, अतः इनमृ नारदजीके कहे हुवे लक्षण हैं, जैसे बिना आयुध सर्वाभरण भूषित हैं और उड़ते भी नहीं हैं तथा पैदल जा रहे हैं तब क्या करना चाहिये यह विचार कर निश्चय किया, कि जब ये निरायुध पैदल जा रहे हैं तो मैं भी बिना आयुधाृके पैदल जाके इनके साथ मल्ल युद्धसे लडूंगा, क्याृकि मैं इनके साथ लड़नेकेलिये ही आया हूं. मैं भी बिना आयुधाृके हूं और ये भी वैसे ही हैं ।।५।।

इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् ।
अन्वधावजिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ।।६।।

श्लोकार्थ : कालयवन इस प्रकार निश्चयकर, विमुख होकर भागते हुए उन कृष्णको पकड़नेकेलिए पीछे दौड़ने लगा जिनको योगी भी नहीं पकड़ सकते हैं ।।६ ।।

व्याख्यार्थ : इस प्रकार निश्चय कर विमुख भी भगवान्के पीछे तेज दौड़ने लगा, नारदजीने तो इसको कल्याण होनेका मार्ग बताया था कि जैसे भगवान् कराृ वैसे तू भी करना तब तेरी जय होगी तथा जीवन भी होगा, वह उनका कहना उसने अन्य प्रकार समझा, भगवान् विमुख थे और यह भगवान्के सम्मुख

होकर दौड़ने लगा नारदजीका कथन इसने यवन जाति दोष होनेसे, पूरा न समझा, भगवान्के जाने पर यह चुप होकर खड़ा रह जाता उनके पीछे दौड़ता नहीं, तो अथवा बलभद्रजीसे युद्ध करता तो इसकी जीत भी होती और भगवान् सम्मुख भी आ जाते हैं, वैसे जानेकेलिये कोई प्रयोजन नहीं था, विमुख भगवान्के भी पीछे दौड़ा, क्यूंकि उनको पकड़नेकी इसकी इच्छा थी, पकड़नेकेलिये पीछे तेजीसे जाना तो योग्य ही था इस पर कहते हैं, योग्य नहीं था, कारण कि जिनको पकड़नेकेलिये शीघ्रतासे जा रह था, उनको योगी भी नहीं पहुंचते हैं तो इसकी क्या शक्ति है, कि उनको पकड़ ले इसमूं प्रमाण क्या? इसलिये श्लोकमूं 'तं' शब्द देकर यह बताया है कि यह तो प्रसिद्ध ही है ।।६।।

आभासार्थ : कितनीक दूर जाने पर लौटकर क्यूं न आया? इसका उत्तर 'हस्तप्राप्तमिव' श्लोकमूं देते हैं:

हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदे पदे।
नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ।।७।।

श्लोकार्थ : भगवान् पद – पद पर यूं दिखाते थे कि अभी पकड़मूं आया, यूं करते हुए उसको ऐसे दूर ले गए जैसे वह यवनेश पर्वतकी कन्दरामूं पहुंच गया ।।७।।

व्याख्यार्थ : कालयवन लौटा क्यूं नहीं? इसके उत्तरमूं कहते हैं, कि उसको निश्चय हरि स्वयं ले गये, उसने क्यूं नहीं समझा, कि मुझे ठगते हैं इस पर इसको यह ठगनेकी बात समझमूं ही नहीं आई, क्यूंकि इसने देखा कि दूर नहीं है, अभी पकड़ लेता हूं, यूं समझकर जाने लगा, कोई भी इस प्रकार समझे कि केवल हाथ जितना फासला है, तो कोई उदासीन होकर लौटता नहीं है, इसलिये चाह मिटी नहीं, जब मनुष्य समझता है, कि यूं क्रिया करनेसे भगवान्को पा लूंगा तब समझना चाहिये ऐसा समझनेवाला बिलकुल भूला हुआ है, भला भगवान् इसको क्यूं ले जा रहे थे? इसके उत्तरमूं कहते हैं, कि वे सबकी अविद्याका हरण करनेवाले हैं, जिससे आपका नाम यहां 'हरि' कहा है इसको भी अविद्या नष्ट करनी है और मुचुकुन्दकी निद्रा भी हरण करनी थी, आप भगवान् हैं, अतः जो आपके पीछे चलता है उसकी उपेक्षा नहीं करते हैं, इस प्रकार पद-पदमूं उसमूं ज्ञान पैदा करने लगे, कैसे? तो कहते हैं कि पद-पदमूं अपनेको हाथमूं आया यूं दिखाकर ज्ञान देने लगे, यह वाक्य दोनूं तरफ लग सकता है, अतः यवन

पकड़नेकी इच्छासे पीछे जा रहा था उसकी इच्छा थी, कि मैं इनको पकड़ लूं वह इच्छा इसकी पूर्ण नहीं हुई थी, वैसे ले जानेवाले भगवान्‌की, इच्छा थी कि इसको उसके द्वारमॄ ले चलूं जहां मुचुकुन्द सोया हुआ है, इस प्रकार दोनॄकी इच्छायॄ पूरी नहीं हुईं थीं इसलिये भगवान् इसको दूर ले जा रहे थे, अतः वह पर्वतकी गुफा जहां इसका स्थान था वहां वे गये इतनी दूर ले जाने पर भी जब पकड़मॄ नहीं आये तब नीति शास्त्रके 'शिथिल और सुबुद्ध' इस न्यायानुसार क्यॄ नहीं लौटाया? इस शङ्काका समाधान करते हुवे कहते हैं कि 'यवनेशः' दुष्टॄका स्वामी है, अतः नीति नहीं जानता है. मथुरासे चालीस कोस पर, अब प्रसिद्ध धवल 'धोल'पुर नगर जहां है वहां पहले मुचुकुन्दकी गुफा थी ।।७।।

आभासार्थ : जब पीछे जानेकी क्रियासे भगवान् नहीं प्राप्त हुए तब जय आदि की भांति वचनॄसे भगवान्‌को प्राप्त करना चाहिए यॄ मानकर, बीच – बीचमॄ वचन भी कहने लगा वे वचन 'पलायनं' श्लोकमॄ कहते हैं:

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ।
इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ।।८।।

श्लोकार्थ : यदुकुलमॄ आविर्भूत आपको इस प्रकार भागना योग्य नहीं है, ऐसे तिरस्कारके वचन कहता हुआ पीछे जा रहा था, परन्तु उनको पा न सका, कारण कि इसके पाप अभी तक नाश नहीं हुए हैं ।।८ ।।

व्याख्यार्थ : यदु धर्मात्मा थे, यदि धर्मात्मा न हुवे होते तो, हमारे सरीखे उनको श्रेष्ठ कैसे कहॄ, वैसे धर्मिष्टवंशमॄ पैदा हुवे और सबसे अगम्यका भी अवतार धर्मका अनुसरण करना योग्य है किन्तु भागना अयोग्य है, जब यवनने यह वचन कहे तब भगवान्‌ने इन वचनॄको क्यॄ नहीं माने? इसके उत्तरमॄ कहते हैं, कि वह यवन यह वचन बोलता हुआ पीछे जा रहा था, भगवान्‌ने इसलिये नहीं माना, कि ये वचन तिरस्कार करनेकेलिये बोल रहा था, अतः वे वचन माननेके योग्य नहीं थे, उसकी यदुकुलमॄ श्रद्धा नहीं थी, इसलिये उसके आगे यदुकुलकी प्रतिष्ठा रखनेसे क्या लाभ? अतः भगवान्‌ने उसके वचन अङ्गीकार नहीं किये वह योग्य ही किया है, इसलिये वह भगवान्‌को पा न सका, नहीं तो भगवान्‌के अनुसरण करनेसे, भगवान् मिल ही जावे उस वचनसे इसको पाप भी लगा. इसलिये कहा कि 'आहताशुभः' इसके पाप नष्ट नहीं हुवे जिससे, भगवान्‌को प्राप्त न कर सका, कोई कहते हैं कि अगले अशुभ थे इसलिये प्राप्त नहीं कर सका, यदि वे

पाप पूर्वजन्मके होते तो भगवान्के दर्शन और अनुगमन करनेसे मिट जाते अतः इस सिद्धान्तकी उपेक्षा करनी चाहिये अथवा अशुभसे नष्ट हुआ यॄ अर्थ करना चाहिये, कहे हुवे वचनॄसे उत्पन्न पापसे पीछेसे ताड़ित हुवा इसलिये ही भगवान्को प्राप्त हुआ ।।८।।

आभासार्थ : फिर वराहावतारमॄ हिरण्याक्षके वाक्यॄकी भांति यहां सर्व समर्थ होते हुए भी भगवान् कार्य गौरव मानते हुए न लौटे जिसका वर्णन 'एवं क्षिप्तोऽपि' श्लोकमॄ कहते हैं:

एवं क्षिप्तोऽपि भगवान् प्राविशद् गिरिकन्दरम् ।
सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ।। ९ ।।

श्लोकार्थ : ऐसे तिरस्कृत होते हुए भी भगवान् गिरिकी कन्दरामॄ प्रविष्ट हुए वह भी अन्दर गया, वहां दूसरे सोए हुए पुरुषको देखा ।।९ ।।

व्याख्यार्थ : यदि कोई भक्तका द्रोह करे, तो उसको वध जैसा सामान्य दण्ड देना चाहिये, यदि भगवान्का द्रोह करे तो वधका दण्ड देना चाहिये अथवा भगवान्का द्रोह करे तो वध जैसा सामान्य दण्ड देना चाहिये और भक्तका द्रोह करे तो वधका दण्ड देना चाहिये इस वाक्यके अनुसार ''वधानुकल्पः'' वधसे कुछ कम दण्ड ही करनेकेलिये पर्वतकी गुफामॄ प्रवेश कर गये, इस प्रकार ही निर्गुण भगवान्की क्रिया फलमॄ निमित्त कारण है, यॄ जतानेकेलिये निरूपण किया है, अर्थात् भगवान् गुफामॄ गये उसका फल जो वध होना था, वह फल यवनको मिला क्यॄकि यवन भी गुफामॄ गया, जानेके बाद उसको भ्रम हुआ, क्या भ्रम हुआ ? भ्रम यह हुआ, कि उसने वहां एक दूसरे पुरुषको सोया हुआ देखा, उसको वहां केवल पुरुषपनेकी ही प्रतीति हुई. उसमॄ जो विलक्षणता थी उसको प्रतीत न हुई, यद्यपि वह पुरुष सकल सामग्री सहित सो रहा था किन्तु इसकी बुद्धि यॄ हुई कि अपनी सकल सामग्री पहले ही भेज दी है क्यॄकि इनको सोना था ऐसा उसकी बुद्धिमॄ भ्रम हुआ ।।९।।

आभासार्थ : यदि भगवान् सोनेकेलिए ही आए हैं तो तेरा आना योग्य नहीं है, इसलिए अतिक्रम करना अयोग्य है ऐसी शंका कर उस भूले हुएका अभिप्राय 'नन्वसौ' श्लोकमॄ करते हैं:

नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ।
इति मत्वाच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ।।१०।।

श्लोकार्थ : कालयवन मनमॄ कहने लगा, कि यह मुझे इतना दूर लाकर आप साधुकी भांति सो रहे हैं अच्युतको यॄ समझ उस पुरुषको लात मारी ।।१० ।।

व्याख्यार्थ : यवन कहने लगा, आप आ जाते, मुझे क्यॄ ले आये ? कह देते, कि मैं सोनेकेलिये जा रहा हूं और लडूगा नहीं, जो कोई किसीके पीछे दौड़ता है तो उसको आनेकेलिये यदि रोका न जाये तो समझा जाता है, कि इसको आनेमॄ सम्मति है, यह वहां दूर चलकर लड़ाई करेगा ऐसा इसका अभिप्राय है यॄ समझा जाता है, क्यॄकि वहां निकटमॄ वह शत्रु बलवान् और उसकी सहायता करनेवाले भी हैं दूर कोई नहीं होगा इस प्रकार भ्रम पैदा कर इतना दूर लाकर अब आप युद्ध भी न कर, साधुकी भांति सो रहे हैं जो इस प्रकार ठगते हैं वह साधु नहीं हैं, असाधुको और जो नींदमॄ नहीं है, उसको जगानेमॄ कोई दोष नहीं है, इस प्रकारकी दुर्बुद्धिसे उस सोये हुवेको भगवान् समझकर लात लगा दी, पादॄके लगनेसे व्यथा हुई और महान् अतिक्रम है, सोये हुवेको जगाना, लात मारना, अतिक्रमकेलिये, अच्युतकी बुद्धि, ये तीनॄ ही दोष हैं यह कालयवन महान् है और महान् नारदजीका इसको उपदेश मिला है फिर इसकी बुद्धि ऐसी कैसे हुई ? इसके उत्तरमॄ कहा है, कि 'मूढ' स्वभावसे मूर्ख है, यह अच्युत है इस बुद्धिसे लात मारी जिससे राजाका कुछ भी उपकार न हुआ ।।१०।।

आभासार्थ : पश्चात् जो कुछ हुआ वह 'स उत्थाय' श्लोकमॄ कहते हैं:

स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ।
दिशो विलोकयन् पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ।।११।।

श्लोकार्थ : बहुत दिनॄसे सोया हुआ, वह उठकर धीरे – धीरे आंखॄको खोलकर चारॄ तरफ देखते हुए बाजुमॄ खड़े हुएको देखा ।।११ ।।

व्याख्यार्थ : बहुत समयसे सोया हुआ भी लात मारनेसे जगकर सब दिशाओॄको देखते हुवे समीपमॄ उस कालयवनको देखा वह तो पहले ही उसके प्रतिकूल दिशाको देख रहा था, पश्चात् क्रमसे दृष्टिको फैलाते हुवे दूसरी तरफ जैसे स्थित था, वैसे उसको पश्चात् उठा हुआ देखा ।।११।।

आभासार्थ : पश्चात् वह कौन है ? इस प्रकार पूछनेसे पहले ही केवल दर्शन होते ही यवन भस्म हो गया इसका वर्णन 'स तावत्' श्लोकसे कहते हैं:

स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ।

देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत् क्षणात् ।।१२।।

श्लोकार्थ : हे भारत! क्रोधित हुए उसकी दृष्टि पड़नेसे, उस कालयवन की देहसे अग्नि प्रकट हुई जिससे जल कर वह क्षणमृ भस्म हो गया ।।१२ ।।

व्याख्यार्थ : बिना अपराधके उस सोये हुवेको लात मारी, इसलिये वह क्रुद्ध हुआ, क्रोधित हुवे उसकी दृष्टि पड़नेसे कालयवनकी देहमृ ही स्थित अग्नि जैसे काष्ठमृ स्थिति अग्निके स्पर्शसे प्रकट होती है, वैसे ही प्रकट हो गई, पश्चात् देहसे उद्भूत अग्निसे जलकर क्षणमृ राख हो गया, बाहिरकी अग्नि वनकी अग्निकी भांति थोड़ा ही जलावे, वा भाग जावे, भीतरकी अग्निने तो सर्व प्रकारके व्यापारको दूर कर भस्म ही कर दिया ।।१२।।

आभासार्थ : चालू प्रसंगमृ भगवान्ने इस यवनको किस प्रकार मारा, याृ विवक्षित होते हुए भी विशेष न कहृगे याृ शंकित होकर और सावधानतासे सुनता है इसको प्रसिद्ध करनेकेलिए राजा उसका प्रश्न 'को नाम' श्लोकसे करता है:

राजोवाच

को नाम स पुमान् ब्रह्मन् कस्य किं वीर्य एव च ।

कस्माद् गुहां गतः शिश्ये किन्तेजो यवनार्दनः ।।१३।।

श्लोकार्थ : राजा परीक्षित कहने लगा कि ब्रह्मन् उस पुरुषका नाम क्या था? किस वंशका था? उसका पराक्रम कैसा था? जिससे कालयवनको भस्म कर डाला, वह गुफामृ किसलिए जाकर सो रहा था? ।।१३ ।।

व्याख्यार्थ : प्रसिद्धिसे अज्ञानका निवारण करते हैं, नव श्लोकमृ 'अन्यं' शब्द पुल्लिंग देकर बता दिया कि यह पुरुष है, याृ तो जान लिया है, शेष पांच अर्थ जानने हैं,वे पांच अर्थ कारिकामृ कहते हैं.

नामसम्बन्धरूपाणि निमित्तं शयने तथा ।

दाहकत्वं दृष्टिमात्राद्ब्रह्मविज्ज्ञास्यते परः ।।कारि.१।।

कारिकार्थ : १. नाम २. सम्बन्ध ३. रूप ४. सोनेका कारण और ५. देखने से ही जलना, ये पांच अर्थ जानने हैं. श्लोकमृ 'ब्रह्मन्' विशेषण देकर यह कहा है कि पूर्ण ब्रह्म मानी सब जानते हैं अतः परीक्षित शुकदेवजीको कहता है, कि आप यह सब मुझे बताओ ।।१ ।।

व्याख्यार्थ : किसका यह सम्बन्धी है? इसका पराक्रम क्या है? यदि विशेष पराक्रम न होता तो अकेला जिस प्रदेशमृ सिंह आदि हिंसक पशुआृके

आनेकी सम्भावना है, वैसे प्रदेशमृ कैसे आकर सोवे ? अथवा उत्तम स्थानृसे होते हुवे भी गुफामृ किस कारणसे सोता है ? उसका तेज कैसा है ? कैसे तेजवाला है ? जिस तेजसे यवन जलकर भस्म हो गया अग्नि सूर्य आदिका तेज भी ऐसा नहीं होता है, और जिसको जलाया है वह भी 'महान्' है इसलिये ही उसको 'यवन' कहा है इसलिये यह कथा मुझे विशेषरूपसे कहनी चाहिये ।।१३।।

आभासार्थ : भगवान् इसीलिए ही आए हैं इससे उसका विशेष वर्णन 'स इक्ष्वाकुकुले' श्लोकमृ करते हैं:

श्रीशुक उवाच

स इक्ष्वाकुकुले जातो मान्धातृतनयो महान् ।
मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ।।१४।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि वह इक्ष्वाकुकुलमृ उत्पन्न, मान्धाता राजाका पुत्र था, ब्राह्मणृका भक्त और सत्य ही जिसकी लड़ाई है वैसा मुचुकुन्द नामवाला बड़ा प्रसिद्ध हुआ था ।।१४ ।।

व्याख्यार्थ : यह भगवत्कथा ही है यह जतानेकेलिये कहा है कि उसका भगवत्व आगे प्रकट होगा, यदि यृ न कहते तो श्रोता समझते कि यह भगवत्कथा नहीं है तो इससे उसकी विरक्ति हो जाती, इक्ष्वाकुके कुलमृ जन्मा है, मनुके पुत्रृमृ मुख्य इक्ष्वाकु है, मान्धाता तो योनिसे उत्पन्न नहीं केवल पुंसवनके संस्कृत जलसे उत्पन्न हुआ है, अलौकिक बीजसे जन्म होनेके कारणसे भी तथा स्वरूपसे महान् हैं, कुल, पिता और स्वरूप इन तीनृसे मान्धाता महान् होनेसे ही विशेष उत्कर्षवाला है. अब चौथा उसके नामका उत्कर्ष कहते हैं कि वह मुचुकुन्द नामसे प्रसिद्ध हुआ.उसमृ वैदिक धर्म स्वाभाविक था वह कहते हैं कि 'ब्रह्मण्यः', ब्राह्मणृका हितकारी था, उनका हित हुआ तो सम्पूर्ण वैदिक धर्म सिद्ध होगा, 'सत्यसङ्गरः' सत्य ही जिसका युद्ध है, अर्थात् सत्यकार्योंकी रक्षाकेलिये लड़ाई करता था ।।१४।।

स याचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे ।
असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ।।१५।।

श्लोकार्थ : दैत्यृसे डरे हुए, इन्द्र आदि देवृने अपनी रक्षाकेलिए उससे प्रार्थना की थी अतः उसने उनकी रक्षा बहुत समय तक की ।।१५ ।।

व्याख्यार्थ : इस प्रकार वह षड्गुण युक्त था, अतः इन्द्र आदि देवृने

अपनी रक्षाकेलिये उसको प्रार्थना की, इससे उसकी भगवान्से समानता दिखाई, स्वरूपसे, लोकसे, और कार्यसे गुणाका उत्कर्ष दिखाया, संसारसे भयभीत मनुष्य जैसे पुरुषोत्तमको प्रार्थना करते हैं, वैसे ही देवाने भी की होगी इस पर कहते हैं कि नहीं, वे तो असुरासे डरे हुवे थे, जो असुर, देवाको भी मारते हैं उनको भी मारकर देवाकी रक्षा की, दैत्य हारकर भाग गये किन्तु फिर न आ जावे, इस शङ्कासे, बहुत समय तक उनकी रक्षा करता रहा, तब तक रक्षा की, जब तक इन्द्रादि देव शक्तिमान् न बने थे उनके शक्तिमान् हो जानेके अनन्तर अपने स्थान पर लौट आया, क्षत्रियाका रक्षा करना ही धर्म है यज्ञादिसे विशेष है ।।१५।।

आभासार्थ : वह रक्षा हदवाली – समाप्तिवाली हुई, या रक्षाकी अवधि का निरूपण 'लब्ध्वा गुहं' श्लोकमा करते हैं:

लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् ।
राजन् विरमतां कृच्छ्राद् भवान् नः परिपालनात् ।।१६।।

श्लोकार्थ : वे देवता अपनी रक्षा करनेवाले कार्तिकेयको प्राप्त कर मुचुकुन्दको कहने लगे कि हे राजन्! आप हमारे पालनरूप कष्टसे अब विराम करिए ।।१६ ।।

व्याख्यार्थ : कार्तिकेय उत्पन्न हुवे, पश्चात् तारक आदि मारे, तब वे सेनापति हो गये, या होनेके अनन्तर, देवता राजाको विराम करनेकी प्रार्थना करने लगे इससे इसका 'रजिन्यायसे' स्वार्थका अभाव सूचित किया, पश्चात् स्वस्थ अर्थात् शक्तिमान् एवं सन्तुष्ट होने पर अन्य प्रकारसे राजाको कहने लगे, पहले डरे हुवे थे, अब प्रसन्न हैं, अतः यह कहनेका पृथक् नमूना है, उनके वचन कहते हैं, हे राजन्! हमारे पालनरूप कष्टसे अब विराम पाओ यह कहकर पहले यह बताया, कि आप जो अब तक हमारी रक्षाकेलिये कष्ट कर रहे हो उस कष्टका त्याग कर अब आराम कीजिये, यदि कहो, कि मैं तो स्वर्गमा बैठा हूं जो सुखका स्थान है, तो उसकेलिये कहते हैं, कि यद्यपि स्वर्गमा स्थित हो तो आप भोग तो भोगते नहीं क्याकि सर्वदा युद्ध करनेसे कष्ट ही उठा रहे हो ।।१६।।

आभासार्थ : आपको हमारी रक्षा करनेसे केवल देहका क्लेश नहीं हुआ है, किन्तु आपका सर्वस्व भी नाश हो गया है, जिसका वर्णन 'नरलोक परित्यज्य' दो श्लोकोमा करते है:

नरलोके परित्यज्य राज्यं निर्हतकण्टकम् ।

अस्मान् पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ।। १७।।
सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः ।
प्रजाश्च तुल्यकालीना नाधुना सन्ति कालिताः।।१८।।

श्लोकार्थ : हे वीर! पृथ्वीका निष्कंटक राज्य छोड़, हमारी रक्षा करने हेतु आपने सर्व कामनाएं छोड़ दी ।।१७ ।।

श्लोकार्थ : इतना समय आप हमारी रक्षा करते रहे, पीछे पृथ्वी पर आपके पुत्र, रानियां, बन्धु, हाथी, मन्त्री और उस समयकी जो प्रजा थी वे सब कालके ग्रास हो गए है अब एक भी शेष नहीं रहा है ।।१८ ।।

व्याख्यार्थ : भोग और भागके सर्व साधन गये, जन्मभूमि सबको स्वाभाविक सुख देनेवाली है, अतः उस भूमिका त्याग भी दुःखका कारण है, तथा राज्य त्याग भी दुःखदायी है, फिर भी निष्कटण्टक होनेसे विशेष दुःखद है, शूरवीर होनेसे बड़ा नहीं था, तो भी राज्य इसके आधीन था जिससे उसका भोग यही करता था, जिसका निषेध नहीं है वैसे राज्यृके भोग सर्व प्रकार त्याग कर हमारा ही पालन करते हुवे आपको सर्व ही कामनायृ छूट गई. क्यृ छोड़ी? क्यृकि 'वीरः' वीर था, वीर पुरुषको युद्धमृ जो रस प्राप्त होता है उसकी ही वह कामना करता है, अन्य सब कामनायृ सुखरूप नहीं समझता है, यृ कहनेका तात्पर्य यह है, कि आपने हमारे ऊपर महान् उपकार किया है. आपके देह सम्बन्धी सुख भी इस कारणसे गये हैं, आपको कालका ज्ञान हुआ ही नहीं, क्यृकि स्वर्गमृ एक दिन (यहांके) एक वर्षके समान होता है, जैसे ब्रह्म सभामृ गये हुवे रेवतको कालका ज्ञान नहीं हुआ था, वैसे ही आपकी भी युद्ध रसमृ मग्न होनेसे, कालका ज्ञान न हुआ, इतने समयमृ हमारे राज्यमृ क्या हुआ? उसका पता नहीं है, अब देवता बताते हैं, स्त्रियां, भाई बन्धु, अमात्यसे लेकर सर्व सेवक और मन्त्री गण तथा प्रजा एवं मित्र, ये सब राज्य सम्बन्धी सामान कालके थे, अर्थात् जब आप यहां आये तब ये सब थे, अब वे वहां नहीं हैं, क्यृकि कालने उनका भक्षण कर लिया है, इससे यह मनमृ विचार लाना व्यर्थ है, कि अब मैं अपने राज्यको जाऊं ।।१७-१८।।

आभासार्थ : यदि यृ हुआ तो आपने उनकी रक्षा क्यृ नहीं की? देव आयु देनेवाले होते हैं, यदि यृ शंका करते तो उसका उत्तर 'कालो' इस श्लोकमृ देते हैं:

कालो बलीयान् बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ।

प्रजाः कालयते क्रीडन् पशुपालो यथा पशून् ।।१९।।

श्लोकार्थ : जैसे ग्वाल, पशुआृको खेलाता हुआ ले जाता है वैसे ही बलियाृमृ बलवान् ईश्वर, अव्यय, भगवान् काल भी क्रीड़ा करते हुए प्रजाआृको ग्रस लेते हैं ।।१९ ।।

व्याख्यार्थ : वायु और आसन्य प्राण जो बलवान् गुणवाले हैं उनसे भी यह काल बलवान् है, उसमृ कारण बताते हैं १.भगवान् है, धर्मका कार्य करते हुवे भी अक्लिष्टकर्मा भगवान्ने हमारे जनृका कैसे भक्षण किया? इसके उत्तरमृ कहते हैं कि 'ईश्वरः', ईश्वर है, इसलिये उसकेलिये कोई नियम नहीं है, तो भी भगवान्के भक्तकी यह दशा कैसे की है? जिसके उत्तरमृ कहते हैं कि 'अव्ययः' अक्षर स्वरूप है, जिससे वह दया नहीं करता है, दया करना पुरुषोत्तम स्वरूपका कार्य है, इससे अक्षर स्वरूप भक्तका पक्षपात नहीं करता है, यदि पक्षपात करेगा, तो अन्य प्रकारसे करेगा, जैसे कि पुत्र आदिकृका झंझट छुड़ाकर अव्यय पद देगा, उस अक्षर स्वरूपका यह ही स्वभाव है, खेलते हुवे, प्रजाआृको निगल जाते हैं, वह जहां-तहांसे विक्षिप्तृको अपनेमृ लाकर अपने घरमृ रहते हैं, याृ करनेसे उनमृ दोष बुद्धि होगी, इसके उत्तरमृ कहते हैं कि जैसे ग्वाला अपने पशुआृको व्याघ्रादि पशुआृसे बचानेकेलिये ले जाकर, गोष्ठमृ रखता है, वैसे ही काल भी. क्याृकि वह समझता है, कि संसारमृ बहुत रहनेसे विपरीत पथ पर चलने लगृगे, इसलिये इनको बाहिर संसारमृ रहना अच्छा नहीं है, अतः उनका कोई उपाय नहीं था, इसलिये वह ले गया ।।१९।।

आभासार्थ : उसके मनके सन्तोषार्थ कहते हैं कि 'वरं वरय' वर मांग लो:

वरं वरय भद्रं ते ऋते कैवल्यमात्मनः।

एक एवेश्वरस्तस्य भगवान् विष्णुरव्ययः ।।२०।।

श्लोकार्थ : आपका कल्याण हो, हमसे मोक्षके सिवाय अन्य वर मांग लो क्याृकि मोक्ष देनेमृ एक ही भगवान् अव्यय विष्णु समर्थ है ।।२० ।।

व्याख्यार्थ : यदि काल वैसा समर्थ है, तो वह मुझे भी ले लेगा, तो फिर वर लेनेसे क्या लाभ? यद्यपि आप मांगते नहीं हो, तो भी हम आपको वर दृगे जिससे काल आपको ले न सके, इसकी सूचना देनेकेलिये पहले कहते हैं कि, आपका भला हो, अर्थात् इच्छाके बिना आपको काल नहीं लेगा यदि याृ

कालकी जय करली है, तो अब मोक्ष दीजिये, इस प्रकार मुचुकुन्द कहे, तो प्रथम ही कह देते हैं, कि मोक्षके सिवाय अन्य वर मांग लो, कारण कि, हम देवता तत्वान्श हैं, अतः सङ्घात(देह)के स्वामी हैं, इसलिये हमारा आत्मा(जीव) पर अधिकार नहीं है, मोक्ष तो जीवका होता है, देहादिक मोक्ष तो पुरुषार्थ नहीं है, अतः उसकेलिये प्रार्थना नहीं करनी चाहिये यद्यपि सब आधिदैविक जब निवृत्त हो जावे, तब मोक्ष सिद्ध होता है, इसलिये मोक्ष भी देवाधीन है, इससे प्राणियोंको दुःखकी निवृत्ति अभिलषित होती है, परमानन्द अभिप्रेत नहीं होता है, ''**आत्मा–लाभाद् न परं विद्यते**'' इत्यादि श्रुतियोंसे यह सिद्ध है कि आत्माका, प्राप्त, अप्राप्त विवेकसे तथा स्मृति न्यायसे कैवल्य भी देवाधीन है, तो भी भगवान्की आज्ञासे, ये देवता प्रवृत्ति स्वभाववाले हैं प्रवृत्ति मार्गकी कोई भी इच्छित वस्तु देनेमें समर्थ हैं, न कि अपने आप निवृत्तमें समर्थ हैं, यदि यों करें तो भगवान्के अपराधी बनेंगे.

अतः भगवदानन्द अथवा रुढिसे कैवल्य, अर्थात् आनन्दकी अभिव्यक्ति 'प्राकट्य' इसके अतिरिक्त जो चाहिये वह मांगिए. 'आत्म' पदसे यह सूचित किया है, कि आत्माके हितके सिवाय अर्थात् मुक्तिके सिवाय अन्य मांगिए, आप देव भी यदि यों कहते हो, तो फिर मोक्षकी प्राप्ति कैसे होगी? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि, उस मोक्षको देनेवाला एक ही भगवान् है अन्य सब देनेकी शक्ति अन्योंको दे दी है, किन्तु केवल मोक्ष देना अपने हाथमें रखा है, क्योंकि वे भगवान् हैं, उनके सर्व ऐश्वर्य आदि षड्गुण स्वतः सिद्ध हैं, पुरुषोत्तम तो तमस्से परे हैं, अनधिकारित्वसे वह अपने पास कैसे रख लिये? यदि मोक्ष उनके हाथमें है, तो फिर मोक्ष किसीका भी न होगा, कारण कि, वहां तक कोई पहुंच न सकेगा, इस शङ्काका समाधान करते हैं कि 'विष्णु' वह ही यहां मोक्ष देनेकेलिये 'विष्णु' स्वरूप तथा नामसे प्रसिद्ध हैं, उससे विष्णुका भगवत्व तथा मोक्षाधिकारत्व दोनों कहा गया है, अर्थात् विष्णु मोक्षदाता तथा षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न भगवान् भी हैं, इससे कालका अतिक्रम भी होता है, इसकी सूचना देनेकेलिए 'अव्यय' कहा है अर्थात् वय व्यय रहित हैं, इससे उनकी निरपेक्षता भी बताई है और यह भी बता दिया कि पालन करनेके अधिकार समयमें मोक्ष भी करायेंगे, इससे देवता 'कैवल्य' नहीं दे सकते हैं और विष्णु मोक्ष दे सकते हैं उसका हेतु भी कह दिया जो कुछ नहीं कहा है, वह भी यदि अपेक्षित हो तो समझ लेना चाहिये कि वह भी कहा गया है ।।२०।।

आभासार्थ : मुचुकुन्दने यह शंका की, कि वह विष्णु कैसे प्राप्त करना चाहिए जिसके उत्तरमॄ देवताआॅने कहा कि वह मोक्ष देनेकेलिए अवतार लॄगे जब आप उनकी आज्ञा पालन करोगे, वा उनका अनुसरण करोगे तब मुक्ति होगी, याॅ जब देवॄाने कहा, तब पूछा कि कब अवतार लॄगे ? जिसके जवाबमॄ कहा कि २८ युगमॄ अवतार लॄगे, यह सुनकर अचम्भेमॄ पड़ कर कहा कि तब तक चुप कर बैठने पर काम आदि तथा क्षुधा और प्यास बाधा करेगी, समाधिमॄ यह दुःख होता है. सुषुप्ति और समाधि का आनन्द समान है फलका देनेवाले तो विष्णु हैं. योग आदि तो अप्रयोजक हैं, विशेष प्रयत्न करनेमॄ क्लेश अधिक होता है, यह विचारकर देवॄाको 'सुषुप्ति' देनेकी प्रार्थना की, पश्चात् देवॄाने अपनी निद्रा इसको दे दी, वे देवता स्वप्न रहित होते हैं, अर्थात् वह निद्रा स्वप्न रहित होनेसे 'सुषुप्ति' है, इस प्रकार वैसी निद्राको वरमॄ प्राप्तकर दूसरा वर भी उसके साथ यह प्राप्त किया कि यदि कोई निद्रामॄ रूकावट करेगा, तो केवल आपकी दृष्टि पड़ने पर वह भस्म हो जाएगा इस प्रकार वर प्राप्त कर २८ युग तक निद्रा लेने लगे जिनका वर्णन 'एवमुक्तः' श्लोकमॄ करते हैं:

एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः ।
अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ।।२१।।

श्लोकार्थ : इस प्रकार जब देवॄाने कहा तब उनको नमस्कार कर गुफामॄ जाकर नींदमॄ सो गया ।।२१ ।।

व्याख्यार्थ : ठण्ड तथा वायुका उपद्रव गुफामॄ नहीं होगा, इसलिये गुफामॄ जाकर नीन्द लेने लगा ।।२१।।

आभासार्थ : इस प्रकार प्रासंगिक कह कर, अब प्रारम्भ किए हुए विषयको 'यवने' श्लोकमॄ कहते हैं:

यवने भस्मसान्नीते भगवान् सात्वतर्षभः ।
आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ।।२२।।

श्लोकार्थ : कालयवनके भस्म हो जानेके अनन्तर, सात्वताॄ(भक्ताॄ)के स्वामी भगवान्ने बुद्धिमान् मुचुकुन्दको दर्शन दिया ।।२२ ।।

व्याख्यार्थ : देवॄाका अभिवादन, उनके प्रति आशासे स्थित रहता और भगवान्के माहात्म्य श्रवणसे उत्पन्न हुई श्रद्धा, उसके ये तीन गुण देखकर और प्रसङ्गसे उसका किया हुआ भक्ताॄका कार्य भी जानकर, तथा यवन भी भस्म हो

गया. सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, भक्तॄके स्वामी भगवान् ऐसे पर भी यदि कृपा न करॄ तो भक्त दुःखी होने लगे, इसलिये भगवान्ने भक्त हितकारीपन तथा स्वतन्त्रताका आश्रय लिया, इस आशयको प्रकट करनेकेलिये आपको यहां 'सात्वतर्षभ' कहा है, इनमॄसे जो प्रथम हित किया उसका वर्णन करते हैं. 'आत्मानं दर्शयामास' अपने दर्शन दिये, शङ्का होती है, कि प्राकृत पुरुषको जिसने कोई साधन दर्शनकेलिये नहीं किये हैं केवल नींद ले रहा है, वैसेको कैसे दर्शन दिये? इस शङ्काका समाधान करनेकेलिये कहते हैं, कि वह 'मुचुकुन्द' है, जिसके नाममॄ जो सर्वत्र उपकार है, वह प्रकट करता है कि वह निर्दोष है, पहला अक्षर 'मु' आनन्द प्रकट है, तथा मुसे द जोडनेसे 'मुद' होता है अर्थात् परमानन्द है 'चु' शब्दसे जताता है कि दोष रहित चैतन्य है और 'कु' शब्दसे बताया है, कि सदंश भी निर्दोष है, पहले इसने सच्चिदानन्द-रूप ज्ञान आदि द्वारा लोकॄको दिया है अतः ऐसेको अपना स्वरूप दिखाना ही चाहिये यहां केवल ज्ञापनकी अपेक्षा नहीं है यॄ भी नहीं है कि वह इस दर्शनसे विरुद्ध मानेगा क्यॄकि बुद्धिमान् है, पहला मिला हुआ उपदेश भी इसको स्मरण है, बुद्धिमान् कहकर सूचित किया है ।।२२।।

आभासार्थ : पश्चात् जो हुआ वह 'तमालोक्य' श्लोकसे ४ श्लोकॄमॄ करते हैं:

तम् आलोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ।।२३।।
चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया ।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।।२४।।
प्रेक्षणीयं त्रिलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ।
अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ।।२५।।

श्लोकार्थ : मेघके समान श्यामवर्ण, पीले रेशमी वस्त्र धारण किए हुए, छाती पर श्रीवत्स धारण किए हुए देदीप्यमान कौस्तुभमणिसे विराजित, चतुर्भुज वैजयन्ती मालासे सुन्दर, मनोहर, प्रसन्न मुखारविन्द चमकते मकराकृति कुण्डलॄसे युक्त त्रिलोकीको देख योग्य स्नेह युक्त मन्दहास सहित ईक्षण करनेवाले अति मनोहर अवस्थावाले मत्तसिंहके समान उदार पराक्रमवाले, उनको देखकर (पूछने लगा) ।।२३ – २५ ।।

व्याख्यार्थ : उनको देखकर पूछने लगा, यॄ चतुर्भुज श्लोकसे सम्बन्ध है, उसके कालके अतिक्रमणसे मोक्षकी सिद्धिकेलिये तेरह प्रकारसे भगवान्का वर्णन करता है अतः तेरह विशेषण हैं १.मेघके समान श्याम केवल श्याम न कह करके मेघके समान श्याम कहनेका आशय यह है, कि वह ही तापको मिटाते हैं क्रियाके फलको देनेवाले हैं और आनन्दसे तृप्ति करनेवाले हैं, यॄ कहकर जताया कि यह तीन गुण सहित रसरूप भगवान्, फलरूप हैं केवल रसात्मक दुःख सहित सुखरूप होनेसे, पुरुषार्थ नहीं है, अतः घनश्याम कहा है, तथा भगवान्ने पीले रेशमी वस्त्र पहिने हैं जिसका भाव है, कि आप १.संसारसे निवृत्त करते हैं, २.कर्म सफल करते हैं और ३.परमानन्द देते हैं, इस प्रकार इन विशेषणॄसे प्रमाण तथा प्रमेयका निरूपणकर, उससे ही मोक्ष तथा धर्मको सूचित किया है. अब दो विशेषणॄसे 'अर्थ' और 'काम' कहते हैं, जिसका वक्षस्थल श्रीवत्सयुक्त है, इससे, 'अर्थ' कहा और चमकती कौस्तुभमणिसे विराजित हैं इससे 'काम' कहा ।।२३।।

व्याख्यार्थ : इस प्रकार चतुर्विध पुरुषार्थोंका निरूपण कर उनके दाता भी आप हैं इसका वर्णन ''चतुर्भुज'' श्लोकसे करते हैं.

जो भक्त आपकी सेवा करते हैं, उनको वे पुरुषार्थ देते हैं, पहले प्रवृत्तिकी सिद्धिकेलिये आप वैजयन्ती मालासे सुन्दर हुवे हैं यह माला कीर्तिरूप है, जिस कीर्तिसे अपनेमॄ भक्तॄके रुचि(प्रेम) बढ़ाते हैं, वैजयन्ती पदसे कीर्तिका सानुभावपन[१] कहा है, इस प्रकार इस विशेषणसे हेतु पूर्वक मुक्तिसे सर्व पुरुषार्थ दाता भगवान् हैं. निरूपण कर अब पञ्चम पुरुषार्थ भक्तिके दाता भी आप हैं. इसलिये 'चारु' 'प्रसन्नवदनं' विशेषण दिये हैं, मनोहर और प्रसन्नवदनवाले हैं, 'मनोहर'से साधना बताई और 'प्रसन्न वदन'से फलरूप कृपा बताई है अर्थात् आप साधन फल सहित भक्तिदाता हैं, कर्णमॄ मकराकृति कुण्डल चमक रहे हैं जिनसे बताया कि प्रवृत्ति और निवृत्ति शास्त्र पूर्वकी भांति भक्तिके अङ्गभूत है ।।२४।।

१.मनोगत भावॄको प्रकट करनेवाले भावको 'अनुभाव' कहते हैं वैसे भावसे युक्त भाव, 'सानुभाव' है अर्थात् भगवान् वैजयन्ती माला पहन कीर्ति द्वारा अपने भावके प्रति प्रकट करते हैं.

इस प्रकार नव विशेषणॄसे दो श्लोकॄमॄ शास्त्रीय उत्कर्ष कहकर अब 'प्रेक्षणीयं' श्लोकमॄ लौकिक उत्कर्ष बताते हैं.

लोक तो प्रत्यक्ष देखे हुवेको ही मानते हैं, वह लौकिक है तीन लोकामृ यदि कोई सबसे सुन्दररूप देखने योग्य है तो यह एक ही है, कोई दूसरा भी दर्शनीय है, वैसा कोई भी स्वीकार नहीं कर सकता है. उनकी दृष्टिसे ही प्रवृत्तिमृ फलकी सिद्धि होती है इसको बतानेकेलिये 'सानुरागस्मितेक्षणं' विशेषण दिया है, अनुराग और मन्द मुसक्यानवाला ईक्षण(अवलोकन) है, इससे यह सिद्ध किया, कि अनुरागसे काम्यकर्मकी सफलता करते हैं, मन्दमुसक्यानसे अल्प मोहवाली भक्ति देते हैं और ईक्षणसे ज्ञान प्रदान करते हैं, इससे यह बताया कि तीन ''कर्म, ज्ञान और भक्ति''का दान भी भगवान् ही करते हैं इस प्रकार पुरुषाृका साधन और फल भगवान् ही हैं यह कहकर अब स्त्रियाृके भी आप ही हैं वह बताते हैं. क्याृकि आपके शरीरकी अवस्था अत्यन्त सुन्दर होनेसे परम प्रीतिका विषय है, इससे उनकी प्रवृत्ति कही, अर्थात् इस प्रकारकी सुन्दरता देख स्त्रियाृके मनकी प्रवृत्ति भी भगवान्की तरफ होती है, मद युक्त सिंह जैसे उदार पराक्रमवाले हैं, सिंह जिस गुहामृ बैठ जाता है उसमृ अन्य कोई जा नहीं सकता है, किन्तु आपका पराक्रम उदार है, जिससे आप केवल सम्बन्ध मात्रसे पालन नहीं करते हैं, किञ्च जब तक उनके मनकी इच्छाकी पूर्ति हो तब तक वह पराक्रम करते ही रहते हैं यह ही स्त्रियाृको अभीष्ट है, उदार कहनेसे यह बताया है कि मोक्षकी कामना हो तो वह भी आप पूर्ण करते हैं ।।२५।।

आभासार्थ:इस प्रकार सब वैदिक लौकिक उपायाृसे, फल तथा साधनरूप एक ही भगवान्को विशेष प्रकारसे खोजना चाहिए वैसे भगवान्के दर्शनकर, उनकी शरण लेनेकेलिए संवाद द्वारा परिचय प्राप्त कर अनन्तर भजन करना चाहिए इसलिए पहले 'पर्यपृच्छत्' इस श्लोकमृ पूछता है:

पर्यपृच्छन् महाबुद्धिः तेजसा तस्य धर्षितः।
शङ्कितः शनकै राजा दुर्धर्षमिव तेजसा ।।२६।।

श्लोकार्थ:उनके तेजसे पराभूत, महाबुद्धि मुचुकुन्द शङ्कित होनेसे, तेजसे मानो पहचाननेमृ जो नहीं आते हैं, वैसाृसे पूछने लगा ।।२६ ।।

व्याख्यार्थ : इस प्रकारका भाव कैसे वर्णन किया जाता है? जैसे लोकमृ अनजान बनकर सामनेवालेसे उसकी पहचानकेलिये पूछते हैं वैसे क्याृ नहीं पूछा? इस शङ्काका समाधान करते हुवे कहते हैं, कि यह बुद्धिमान् है अर्थात् बहुत चतुर है, इस कारणसे सुषुप्तिको सिद्ध कर इतना समय स्थित रहा है, परन्तु

भगवान्के तेजसे परास्त हो गया है, इन्द्र आदि देवॄसे भी अधिक तेजवाले परमात्माको जानता है, यदि वह उसके तेजसे तिरस्कृत हो गया है, तो कैसे न जाने, कि यह पुरुषोत्तम है, फिर भी शङ्कित होनेसे प्रश्न करने लगा. भगवान्से प्रश्न करना यह भी ढीटाई है, अतः पुरुषोत्तमसे पूछता है, आप कौन हैं? यॄ पूछना बन ही नहीं सकता है, इस पर कहते हैं कि हिचकिचाता हुआ धीरे-धीरे पूछने लगा, भगवान् पधारॄ हैं, इसलिये थोड़ी ढीटाई कर धीरे-धीरे पूछा और राजनीति भी जानता है, आप राजा होनेसे महान् हैं, इसलिये उसकी ढीटाई करनेमॄ राजस गुणॄने भी सहायता की है. इस प्रकारका आशय कोई कहते हैं. भगवान्का दर्शन कर राजा होते भी उनके तेजसे दब गया अतः धीरे-धीरे विनय पूर्वक प्रार्थनारूपसे पूछने लगा, आयुध, सेवक एवं अन्य सामग्री कुछ नहीं देखा मुचुकुन्द स्वयं भी राजा है, इसलिये श्लोकमॄ 'इव' पद दिया है. यदि राजा न होता तो भगवान्के चरणॄमॄ पड़ता, अथवा 'इव'का भावार्थ यह है, कि भगवान्ने अपनेको सन्देहका विषय बनाके प्रकाशित किया है ।।२६।।

आभासार्थ : 'को भवान्' श्लोकसे आठ श्लोकॄमॄ प्रश्न कहते हैं:

मुचुकुन्द उवाच

को भवानिह सम्प्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ।

पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ।।२७।।

श्लोकार्थ : आप कौन हैं? पर्वतॄसे गहरे अरण्यॄमॄ कैसे आए हैं? कमलके पत्तॄके समान कोमल पांवॄसे, जबर्दस्त कांटॄमॄ क्यॄ घूम रहे हैं? ।।२७।।

व्याख्यार्थ : प्रश्न क्यॄ करता हूं, उन कारणॄको कहता है, यदि कारण न कहे, तो कृत्रिमताको शङ्का होवे, भगवान् भी अपना वृत्तान्त कहॄ, इसलिये मुचुकुन्द अपना वृत्तान्त भी कहता है, आठ ऐश्वर्य भगवान्मॄ सिद्ध हैं यॄ होने पर विशेष अज्ञानमॄ हेतु पूर्वक युक्ति देना उचित नहीं है और वह स्वयं फलकी चाहनावाला नहीं है इसीलिये आठ श्लोकॄसे प्रश्न करता है. उनमॄसे यहां तीन प्रश्नॄको कहता है १.स्वरूपका, २.क्रियाका और ३.प्रकारका. 'नमूनेका' वहां विरोध प्रसिद्ध करनेकेलिये वैसा रूप स्वाभाविक होता ही है, कृत्रिम(बनावटी) दूसरॄका भी होता है, इसलिये पूछना पड़ा, कि आप कौन हैं? यह स्वरूप सम्बन्धी प्रश्न है अथवा विशेष हो, पर्वतॄके सम्बन्धसे गहरे वनमॄ कैसे आये हैं?

यह क्रियाके प्रयोजनका प्रश्न है, तथा तीसरा नमूनेका प्रश्न है, कि कमलके पत्ते जैसे कोमल पांवॄसे, बहुत कांटॄवाली भूमि पर घूम रहे हैं, यह आपका क्या प्रकार है? यह भूमि साफ नहीं की गई है जिससे यहां बड़े-बड़े कांटे बिखरे पड़े हैं उन पर ऐसे कोमल पांवॄसे घूमना, यह कोई घूमनेका ढङ्ग है? कमलके पत्तॄसे भी कोमल पांवॄसे ऐसे विकट दुःख देनेवाली भूमि पर सिवाय किसी महान् कार्यके नहीं चला जाता है, तो बताईए वैसा कौनसा महान् कार्य आपको यहां करना है? यॄ प्रकारके प्रयोजनका प्रश्न किया है ।।२७।।

आभासार्थ : यदि कहो कि इस बातको तर्कसे जानलो, तो इसलिए 'किं स्वित्तेजस्विनां' दो श्लोकॄसे वर्णन करते हैं:

किं स्वित्तेजस्विनां तेजो भगवांस्त्वं विभावसुः ।
सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालोऽपरोऽपि वा ।।२८।।
मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम्।
यद् बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ।।२९।।

श्लोकार्थ : क्या आप तेजस्विॐका तेज भगवान् अग्नि हैं अथवा सूर्य चन्द्रमा महेन्द्र वा कोई लोकपाल हैं? जैसे दीपक अपनी प्रभासे गुहाके अन्धकारको नाश करता है वैसे ही हृदयरूप गुहाके अज्ञानरूप अन्धकारको नाश करते हैं, अतः तीन देवोत्तमॄमॄ आप श्रेष्ठ पुरुष हैं ।।२८ - २९ ।।

व्याख्यार्थ: आदिमॄ, मैं ही आश्चर्यमॄ पड़ गया हूं, इसलिये तर्कसे प्रश्न कर रहा हूं, क्या यह सर्व तेजस्विॐका तेज एकत्रित हुआ है? अथवा "**तत्तेजोऽसृजते**" इस श्रुतिमॄ कहे हुवे प्रथम कारणरूपसे उत्पन्न तेज है? अथवा यह तेज भगवान् है, कारण कि, वह जगत्के कारण होनेसे उसमॄ भगवत्व है, उससे भी 'आप' 'जल' उत्पन्न हुवे अथवा आप मूर्तिमान अग्नि हैं, सर्व तेजके एकीभाव होनेमॄ जो कारण है उसके अज्ञानसे दूसरा पक्ष कहा है, मूलभूत स्वरूपका यहां पधारना असम्भव है अतः उसके अधिष्ठाता देवका प्रश्न करता है, आधिभौतिक आदि भेदसे तीन विकल्प होते हैं, ये तीन भी राजस हैं, अब सात्विक तीन कहते हैं, सूर्य, सोम वा महेन्द्र हो? एक ही सूर्य देवता है जैसा कि श्रुति भगवती कहती है कि "**सूर्य आत्मा जगतः**[१] **तस्थुषश्च ध्येयः**" "**सदा**[२] **सवितृमण्डल-मध्यवर्ती नारायणः**" इसलिये आप सूर्य हो सकते हैं, कारण कि आपकी किरणॄ शीत एवं अमृतमय हैं, इससे आप सोम हो अथवा उससे भी

ऐश्वर्यके दर्शन होनेसे आप महेन्द्र हूगे, इस प्रकार सात्विक भेदूको कहकर आपकी मनुष्य जैसी आकृति देख तीसरे गुणकी मानू कल्पना कर कहता है कि मनुष्यूमू भी उत्तम मनुष्यकी सम्भावना होनेसे लोकपाल हो वा वायुवरुणादि लोकपालूमूसे कोई एक हो, कारण कि वे लोक रक्षाकेलिये फिरते रहते हैं, 'वा' पदसे इस पक्षमू भी अरुचि प्रकट करता है, इस प्रकार कार्य कारणरूपूको बनाकर कहा और उनको पूर्व पक्षमू धरकर परम कारणरूप उस पुरुषोत्तमकी सम्भावना करता हुआ कहता है, कि देवूके भी जो देव ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं उनमूसे आपको विष्णु समझता हूं, अथवा उनमूसे भी श्रेष्ठ नारायण वा उस स्वराट् नारायणसे भी उत्तम पुरुषोत्तम हो, यू समझता हूं.

१.चेतना और जडकी आत्मा सूर्य है. २.सवितुमण्डलके मध्यमू विराजमान सदा ध्यान करने योग्य हैं.

यदि कोई कहे कि यह आपकी कल्पना केवल श्रद्धाके कारण है, तो उसके उत्तरमू कहता है कि नहीं, मैंने जो कहा है वह केवल श्रद्धासे नहीं कहा है, किन्तु उपपत्तिसे कहा है, जैसे कि अन्तःकरणरूप गुहाका अज्ञानान्धकार इनके सिवाय अन्य कोई भी दूर करनेमू समर्थ नहीं है, क्यूकि वह अज्ञानान्धकार संसारको बढानेवाला है, अतः जिसको कोई आच्छादन नहीं कर सकता है वह ही इस अन्धकारको दूर कर सकता है, इस कारणसे, भगवान्के तेजवाले भी जो आगे कहे गये हैं, उनका पराक्रम भी यहां काम नहीं करता है, बहुधा जो मूर्तिमान् होकर आते हैं, वे तो इस गुहाके अज्ञानान्धकारको नाश करते हैं, ऐसा देखनेमू नहीं आया है, अतः जो हमने पहले कभी नहीं देखा है वह 'भगवान्' ही हो सकते हैं यू निश्चय किया जाता है. और विशेषता यह है कि, जलती हुई एवं भगवत्तेजसहित अग्नि भी इस प्रकारकी प्रभासे युक्त नहीं होती है, अग्निमू एक ही भगवत् शक्ति है, और दीपमू दो शक्तियां हैं. दीपकी प्रभा विशेष है कारण कि घृत वर्तिका(दीवेकी बत्ती) और अग्नि इन तीनूका संयोग होनेसे यू श्रुतियूमू भी कहा है इस दीपकी पतली सील पटकी प्रभा समस्त गृहमू प्रकाश फैलाती है वैसे ही आप(भगवान्)का तेज अन्तःकरणरूप गुहामू जो कभी नहीं देखा, अब देखा वह बताया है, कि आप पुरुषोत्तम ही हैं, उत्तम प्रभा व्यवहार योग्य है, दृष्टान्तसे सिद्ध करनेकेलिये दीपका दृष्टान्त दिया है, किन्तु आप ही सबसे उत्तम दीप हैं जो अपनी प्रभासे अज्ञानका बाध करते हो, प्रथम कभी दर्शन नहीं हुवे हैं इसलिये

आप पुरुषोत्तम ही हैं, यह निश्चयसे सिद्ध है ।।२९।।

आभासार्थ : जानकर भी प्रश्न क्यॄ करते हो? यदि यॄ कहते हो तो 'शुश्रुषतां' श्लोकमॄ इसका उत्तर देते हैं:

शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव ।
स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ।।३०।।

श्लोकार्थ : हे नरश्रेष्ठ! सुननेकी इच्छावाले हमको अपना जन्म, कर्म और गोत्र कहना यदि पसंद हो तो कहिए, हम इसलिए सुनना चाहते हैं कि हमने जैसा समझा है, वैसा तो झूठा नहीं है ।।३० ।।

व्याख्यार्थ : आपका जन्म, कर्म और गोत्र जैसा सत्य है वैसा सुननेकी हमारी इच्छा है, यॄ आप न समझना कि मैं असमान होनेसे भाषणके योग्य नहीं हूं, आप मनुष्यॄमॄ श्रेष्ठ हो, क्यॄकि आपकी आकृति नरके समान दीखती है, मनुष्य–मनुष्यसे ही सम्भाषणके व्यवहारके योग्य है, अतः हम मनुष्य हैं, इसलिये हमसे आप भाषण कर सकते हैं, आपका मनुष्यत्व हेतुवाला भासता है इसलिये प्रकारॄको पूछा जाता है? आपका जन्म, अर्थात् क्या रूप है और कैसे प्रकटे, यह कारण प्रश्न है, कर्म, इससे प्रयोजन प्रश्न किया है, अर्थात् 'किसलिये प्रकटे हैं, 'गोत्रं' किस वंशमॄ प्रकट हुवे हो, यह वंश ज्ञानका प्रश्न है, 'वा' शब्दसे यह सूचित किया है कि अन्य भी कहने योग्य हो तो वह भी कहना, इस प्रकार तीन गुणसे स्वभावकी भांति पूछकर, बताते हैं कि मैं आपका नियोजक नहीं हूं अर्थात् आपको आज्ञा करनेवाला नहीं हूं अतः आपकी रुचि हो तो कहिए ।।३०।।

आभासार्थ : मनुष्य होने पर समानॄसे ही भाषण किया जाता है, इसका उत्तर देते हुए अपना जन्म, कर्म तथा गोत्र 'वयं च' श्लोकसे तीन श्लोकॄसे कहते हैं:

वयं च पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः ।
मुचुकुन्द इति ख्यातो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ।।३१।।
चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयोपहतेन्द्रियः ।
शयेऽस्मिन् विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना।।३२।।
सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ।
अनन्तरं भवाञ्छ्रीमान् लक्षितोऽमित्रशासनः ।।३३।।

श्लोकार्थ : हे पुरुषसिंह! हम इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय हैं, प्रभु! मैं

यौवनाश्वका पुत्र और मुचुकुन्द नामसे प्रसिद्ध हूं ।।३१ ।।

श्लोकार्थ : बहुत जागरणसे मैं थक गया था और निद्रासे इन्द्रियां शिथिल हो गईं थीं, जिस कारणसे इस निर्जन वनमॄ खूब सोया, किन्तु किसीने अब मुझे जगा दिया ।।३२ ।।

श्लोकार्थ : उसके अपने पापने ही उसको निश्चय भस्म कर छोड़ा, इसके पश्चात् शत्रुआॅको नाश करनेवाले आप श्रीमान्के दर्शन हुए ।।३३ ।।

व्याख्यार्थ : 'च' शब्द अर्थ विशेषमॄ है, हम भी अत्यन्तहीन नहीं हैं जो भाषणके योग्य न होवॄ, किन्तु इक्ष्वाकुके देश तथा कुलमॄ उत्पन्न हुवे हैं, इस इक्ष्वाकुवंशके क्षेत्रिय नामसे प्रसिद्ध हैं, आप पुरुषसिंह अर्थात् पुरुष श्रेष्ठ हैं अतः लौकिक न्यायसे भी आप विश्वास करोगे. 'क्षत्रबन्धवः' पद देनेका भाव यह है, कि मुचुकुन्दने अपनी नम्रता दिखाई, कुल वा क्षत्रियत्वका गर्व प्रकट न किया. पिता, पितामह और अपना नाम कहा, युवताश्व पिताका नाम, मान्धाता पितामहका और मुचुकुन्द अपना नाम बताया. तथा 'ख्यातः' प्रसिद्ध है याॄ कहनेसे सत्कीर्तिवाले हम हैं यह दिखा दिया क्याॄकि प्रसिद्धि सत्कीर्तिसे ही होती है 'आत्मजः' पदसे 'औरस' पुत्र हूं यह कहा है. 'प्रभो!' सम्बोधन देनेसे यह बताया कि नियन्ता अर्थात् स्वामीके सामने कभी झूठ नहीं बोला जाता है, वैसे मैं किस कारण यहां आया हूं वह भी बताता हूं कि मैंने कितना पुरुषार्थ किया है उसका भी इस कहनेसे आप समझ जायॄगे, देवताआॅकी रक्षा बहुत दिन-रात करते हुवे अतिशय जागरण भी करना पड़ा जिससे थकावट भी हुई तथा नींदसे आंखॄ भी भर गईं इसलिये नींद लेनेकेलिये इस शून्य स्थानमॄ आकर सो गया जिससे कोई उठावे नहीं, यह बात नहीं कही कि निद्रा देवाॄने दी है जिससे इतनी नींद ली है. याॄ प्रकट करॄ तो यह उपालम्भ मिले, कि ध्यान, तप आदि त्याग कर यह तामसी अवस्था क्याॄ ली? इसलिये वह कहीं नहीं, इस वास्ते अपना खेद ही प्रकट करता है कि इतनी मन पसन्द नींद लेली, किन्तु न जाने ऐसी नींदसे किसीने आके अब जगा दिया, मेरा उसने अपराध किया किन्तु मुझे गुस्सा नहीं आया क्याॄकि मैंने समझा इसने यह कार्य अज्ञानसे किया है, इसलिये मैंने उसे दण्ड नहीं दिया, किन्तु अपने पाससे ही वह स्वयं भस्म हो गया. वह कौनसा पाप था जिससे भस्म हुआ? शास्त्रमॄ कहा है ''शयानं न प्रबोधयेत्'' सोये हुवेको जगाना नहीं चाहिये इस शास्त्रोज्ञोल्लङ्घनरूप पापसे भस्म हुआ है, इसमॄ मेरा कोई भी

अपराध नहीं है, मेरा दोष होता तो आपके दर्शन न होते, इसलिये भगवान्का वर्णन करता है, कि आप समस्त सौन्दर्यसे युक्त और लक्ष्मीवान् हो तथा शत्रुओंको मारनेवाले आप ही हैं इसलिये आपने ही बहुत करके इसको मारा है ।।३१-३३।।

आभासार्थ : तो जैसे इतना निर्णय किया वैसा जन्म और कर्मोंका भी योग बलसे क्यों नहीं निर्णय करते हैं? इसका उत्तर 'तेजसा तेऽविषह्येण' श्लोकसे देते हैं:

तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ।
हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ।।३४।।

श्लोकार्थ : आपके असह्य तेजसे विशेष समय वा अच्छे प्रकारसे बार - बार आपको देख नहीं सकते हैं, कारण कि आपके इस तेजसे हमारा बल नष्ट हो गया है, आप देहधारियोंमें मान देने योग्य हो ।।३४ ।।

व्याख्यार्थ : आपका ऐसा असह्य तेज है, जिसके पासभी खड़ा रहना भी जब अशक्य है, तब बार-बार कैसे देखा जा सकेगा? अर्थात् ऐसे तेजके कारण जब हम आपको देख नहीं सकते हैं, तो आप कौन हो? इत्यादिका कारण कैसे जान सकेंगे, यदि यों नहीं देख सकते हो तो अन्तरकी दृष्टिसे देखिये, इसके उत्तरभी कहते हैं, कि हे महाभाग! आपके तेजसे जब मनकी शक्ति नष्ट हो गई है तब योगसे उसका चिन्तन करना तो दूर ही रह गया. दूसरा कुछ जानता नहीं, किन्तु दो बात जो जानी हैं. १.देहधारियोंसे तो आप मान देने योग्य हो, अर्थात् देहधारी आपका सन्मान करें यह उनका कर्तव्य है, २.आपका 'भाग्य' तीन लोकोंसे अधिक है, अतएव केवल देहके ग्रहणसे ही, यह समझभी आता है, कि अवश्य कुछ 'इष्ट'की अपेक्षा है, सबकी इष्टपूर्ति करनेवाले आपको ही सब मान देते हैं, पूजते हैं तथा सेवन करते हैं, क्योंकि आप ही मान्य, पूज्य और सेव्य हैं ।।३४।।

आभासार्थ : इस प्रकार उसकी प्रार्थना सुनकर इसलिए ही आया हूं, यों उत्तर दिया जिसका वर्णन 'एवं संभाषितो' श्लोकभी कहते हैं:

एवं सम्भाषितो राज्ञा भगवान् भूतभावनः ।
प्रत्याह प्रहसन् वाण्या मेघनादगभीरया ।।३५।।

श्लोकार्थ : भूतभावन भगवान्से जब राजाने इस प्रकार प्रश्न किए तब

हंसते हुए भगवान् मेघनादके समान गम्भीर आवाजसे कहने लगे ।।३५ ।।

व्याख्यार्थ : राजाने श्रेष्ठ रीतिसे प्रश्न किये वह भी महान् है, अतः राजाके प्रश्नॄका उत्तर अवश्य देना चाहिये, इससे यह निरूपण किया. मुचुकुन्दने भगवान्के जन्मादिका तो निरूपण किया ही है किन्तु भगवान् इसका उत्तर देकर समर्थन करॄगे तब उसकी सफलता होगी, यॄ वह समझता है. अतः वैसा उत्तर दिया यद्यपि अन्य ढङ्गसे भी उद्धारके करनेमॄ प्रभु समर्थ हैं, तो भी उस पर कृपा है इसलिये वैसे कहा, क्यॄकि आप भूतभावन हैं. हंसनेका कारण मुचुकुन्दको विशेष मोहित करना था, यदि मोहित करते हैं तो शत्रु हुवे, क्यॄकि हंसकर अहित कर रहे हैं, इसके उत्तरमॄ कहते हैं, कि नहीं, उसके तापको नाश करनेवाले हैं, इसलिये मेघॄके नादके समान गम्भीर वाणीसे बोले हैं. अर्थात् जैसे मेघ गर्जते हुवे मेघ ताप नाश करते हैं वैसे ही आप भी इस वाणी मात्रसे ताप नाश करते हैं ।।३५।।

आभासार्थ : भगवान्के वचन 'जन्मकर्म' श्लोकसे आठ श्लोकॄमॄ कहते हैं:

श्रीभगवानुवाच

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ।
न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ।।३६।।

श्लोकार्थ : श्रीभगवान् कहने लगे कि – हे अङ्ग! मेरे जन्म, कर्म और नाम हजारॄ हैं अर्थात् अनन्त हैं इसलिए इनकी गिनती मैं भी करनेमॄ समर्थ नहीं हूं यह निश्चय है ।।३६ ।।

व्याख्यार्थ : भगवान्ने ८ श्लोकॄमॄ आठ प्रश्नॄका उत्तर देकर फल दान करनेकेलिये आधा श्लोक कहा, जिसका तात्पर्य यह है, कि भगवान्ने जता दिया, कि उसको आधा ही फल दूंगा. पहले जो यत्नसे पूछा कि अपने जन्म, कर्म और नाम कहो, वहां कौनसे कहने चाहिये ऐसी आशङ्का होने पर प्रथम उनके सङ्ख्याके विषयमॄ कहते हैं कि मेरे जन्म, कर्म और नाम हजारॄ हैं अर्थात् अगणित हैं, आपके जन्म आदि पूछे हैं फिर आप उल्टा क्रम विरुद्ध उत्तर क्यॄ देते हैं? इससे तो यॄ समझमॄ आयेगा कि यह छली हैं, भगवान् तो नहीं हैं, इसके उत्तरमॄ कहते हैं कि, सत्य है पहले भगवान् स्वरूपका ज्ञान होने पर, जन्म, कर्म और नाम जानने चाहिये, ऐसा मानते हैं, अतः स्वरूपका वर्णन करते हुवे, [१]स्वभाव प्रकट करनेकेलिये [२]जन्म कहते हैं. 'ब्रह्म' हैं, यह स्वरूप कहना चाहिये,

यदि ब्रह्म हैं तो, उनके जन्म कैसे हृागे? इस शङ्काके समाधानकेलिये कहते हैं कि, भक्तिका प्रतिपादन करनेवाले भी वे ही हैं, अतः भक्तिकी सिद्धि करनेकेलिये कर्म करते हुवे और भक्तृाको पालनाके वास्ते कर्म करते हुवे बहुत ही अवतार धारण करते हैं इस प्रकार कहना चाहिये. यृा यदि न कहा जायेगा तो उनके ज्ञानकेलिये कहा हुआ भी न कहनेके समान होगा. अतः सुन्दर कहा है, कि मेरे जन्म,कर्म आदि अनेक हैं. 'अङ्ग!' यह सम्बोधन देकर उसको [3]कहा है कि तुमसे कपट नहीं करता हूं.'सन्ति' क्रिया देकर यह सिद्ध किया है, मेरे सर्व अवतार अब ही विद्यमान हैं, सब द्वीपृामृ विराजमान हैं, वे अनेक ही हैं, यदि हैं तो वे भक्तिको सिद्ध करनेवाले होनेसे कहने चाहिये, उनको कहिये, जिसके उत्तरमृा कहते हैं, कि उनकी गणना असम्भव है, पूरी गणना मैं भी नहीं कर सकता हूं ।।३६।।

१.अनन्तरूपसे प्रकट होना. २.जन्म भी अनेक. ३.मुचुकुन्दको.

आभासार्थ : अज्ञान मिटानेकेलिए 'क्वचिद्रजांसि' श्लोकसे अज्ञान मिटानेकेलिए उसका असंख्यापन प्रतिपादन करते हैं:

क्वचिद् रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ।
गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ।।३७।।

श्लोकार्थ : बहुत जन्म लेकर कदाचित् पृथ्वीके रजःकण गिने जा सकृ किन्तु मेरे गुण, कर्म, नाम और जन्म कोई नहीं गिन सकता है ।।३७ ।।

व्याख्यार्थ : किसी समय कोई, अथवा मैं पृथ्वीके रजःकण गिन सकूं बहुत जन्म लेकर भी उसकी गणना सम्भव हो सकती है, यदि एक ही भगवान्, ब्रह्मके पर्यायसे सब ब्रह्माण्डृामृ अवतार लेते हैं, तब वहांकी रचनाके योग्य परमाणुओृाकी गणना करते हैं, यदि न करृ तो व्यवस्था नष्ट हो जावे, इस कारणसे ब्रह्म उनको गिन सकते हैं तथा मैं भी आदिमृ सृष्टिकी ज्ञान पूर्वक रचना करता हूं इसलिये वे गिने जा सकते ही हैं, कारण कि, एक ही जन्ममृ, करोड़ कर्म तथा नाम बताते हैं एक ही दिनमृ करोड़ो ब्रह्माण्डृामृ विशेष अलग-अलग द्वीपृाके देशृामृ करोड़ृा जन्म होते हैं, अतः अनगिनत होनेसे उनकी गिनती नहीं हो सकती है ।।३७।।

आभासार्थ : बहुत मिलकर गणना कर लृगृ, जिसका उत्तर 'कालत्रयोप-पन्नानि' श्लोकमृा कहते हैं:

कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप।
अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ।। ३८ ।।

श्लोकार्थ : हे नृप! तीन कालमॄ युक्ति युक्त मेरे जन्म और कर्म गिनते हुए बड़े – बड़े ऋषि भी अन्त पा नहीं सकते हैं ।।३८ ।।

व्याख्यार्थ : भूत बहुत ही हैं और बहुत ह्मगे. 'मॄ' पदका तात्पर्य है ब्रह्मके, क्यॄकि जीव परिच्छिन्न हैं अतः एक ही काल तथा देशमॄ एक देह धारण कर सकता है, वह देह सौ वर्ष तक रहती है, भगवान् तो देह रहित होनेसे इच्छानुकूल सुखपूर्वक स्वरूप दिखाते हैं, एक ही क्षणमॄ बहुत प्रकारसे दर्शन करते हैं, इस प्रकार अनेकरूप होते हैं आपकी मायारूप परदेके चलते रहनेसे दूसरे स्थलमॄ उत्पन्न होनेकी भिन्नतासे केवल चलनेसे ही अनेक हो जाते हैं. उनका(भगवान्का) शरीर आकाश है, सब स्थान पर उनके पाणिपाद प्राप्त हैं, अतः मूर्तिकी अनन्तता होनेसे आपका अनन्तरूप होना योग्य ही है, इसलिये कहा है, कि 'भगवान्' हैं. मेरे ये जन्म तीन कालमॄ उपयोगी हैं, आदिसे लेकर यदि गणना की जाये तो अन्त ही न आवे, हे नृप! यह सम्बोधन दो बात प्रकट करनेकेलिये दिया है. आप महान् हैं, यह बतानेकेलिये, दूसरा आपसे हम वञ्चना करते हैं यह जतानेके वास्ते, इसमॄ भी मेरे कर्म तीनॄ कालॄके योग्य हैं इससे कर्मोंकी अनन्तता सिद्ध की है. मेरे नाम तीनॄ कालॄका उपमर्दन करनेमॄ समर्थ हैं, इसलिये तीनॄ कालॄमॄ योग्य हैं और अनन्त ही हैं ।।३८।।

आभासार्थ : इस प्रकार तीन श्लोकॄसे अपने ब्रह्मत्वका निरूपणकर, और धर्म भी ब्रह्मरूप होते हुए अनन्त हैं, यॄ भी कहकर यह बताया कि वे बताने नहीं चाहिए तो भी राजा पर कृपा है अतः जो दुर्ज्ञेय है वह भी राजाको कहूंगा इस अभिप्रायसे 'तथापि' श्लोक कहते हैं:

तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम।
विज्ञापितो विरञ्चेन पुराहं धर्मगुप्तये।
भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ।।३९।।

श्लोकार्थ : हे अङ्ग! तो भी अबके जन्म नाम आदि मैं कह रहा हूं वे सुन, पहले ब्रह्माने धर्मकी रक्षा और पृथ्वी पर भाररूप असुरॄके नाशकेलिए मुझे प्रार्थना की थी ।।३९ ।।

व्याख्यार्थ : अबके मेरे जन्म, कर्म और नाम सुन ले यद्यपि तुमको नहीं

कह रहा हूं, तो भी कहते हुवे मुझे, तू सावधान होकर सुन ले, प्रथम जन्मका कारण कहते हैं, क्यूंकि वह ही पूछा है, पहले ब्रह्माने प्रार्थना की थी, कि आपको धर्मकी रक्षा करनी चाहिये, और पृथ्वी पर भार बने हुवे असुरोंके नाशकेलिये भी प्रार्थना की थी, इससे हमने दोनों प्रार्थनायें स्वीकार करलीं. (१)भूमिका भार उतारना और (२)असुरोंका नाश करना, यों करनेसे धर्मकी रक्षा हो जायेगी. तथा 'च'से यह बताया कि भक्तिकी सिद्धिकेलिये भी जन्म धारण किया है ।।३९।।

अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः ।
वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ।।४०।।

श्लोकार्थ : यदुकुलमें आनक दुन्दुभिके गृहमें, मैं प्रकट हुआ हूं, मुझे वसुदेवका पुत्र होनेसे 'वासुदेव' नामसे बुलाते हैं ।।४० ।।

व्याख्यार्थ : यदुकुलमें जन्म कहनेसे अपना गोत्र बताया है, आनक-दुन्दुभिके घरमें कहकर गोत्रमें भी विशेष घर बता दिया है, अब नाम कहते हैं, कि मुझे 'वासुदेव' कहते हैं, बहुत नाम हैं एक ही नामके बहुत अर्थ होते हैं, तो भी लोक एक नाम और उस एक ही अर्थको कहते हैं. 'वासुदेव' यह नाम, इसका अर्थ करते हैं कि वसुदेवका पुत्र है, इसलिये वासुदेव है. 'हि' शब्दका तात्पर्य है, कि यह अर्थ योग्य ही है, जिससे मुझे वासुदेव कहते हैं, मैंने भी यों ही किया अतः वसुदेवका पुत्र हुआ हूं ।।४०।।

आभासार्थ : कर्मका वर्णन करते हैं 'कालनेमिर्हतः' श्लोकसे:

कालनेमिर्हतः कंसः प्रलम्बाद्याश्च सद्विषः ।
अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ।।४१।।

श्लोकार्थ : कालनेमि होनेसे मामा कंसको भी मारा, सत्पुरुषोंके द्वेषी होनेसे प्रलम्ब आदि दैत्य नष्ट किए, इससे सत्पुरुषोंकी रक्षा हुई, हे राजन्!, तेरे तेज नेत्रसे[१] ।।४१ ।।

१. यह वाक्य ४२ वें श्लोकके श्लोकार्थ में पूरा होगा.

व्याख्यार्थ : कंस मामा है इसलिये उनके मारनेका शास्त्रोंमें निषेध है, किन्तु वह पूर्व जन्ममें कालनेमि था कालनेमिका अवतार होनेके कारण इसको मारा है. सत्पुरुषोंके द्वेषी प्रलम्ब आदिका वध सत्पुरुषोंकी रक्षाकेलिये किया है, उनके मारनेकेलिये अन्य कोई कारण नहीं था, चालू कृत्य दो तरहका है यद्यपि देखनेमें यवन तुम्हारे तेज चक्षुसे दग्ध हुआ है वास्तवमें उसको मैंने ही भस्म किया

है तुम्हारा नेत्र तो केवल कारण है, जैसे योधेका बाण साधन होता है. 'च'से कर्ताका समुच्चय दिखाया है, हे राजन्! यह सम्बोधन वैसी ही सम्मतिकेलिये है ।।४१।।

आभासार्थ : आनेका दूसरा प्रयोजन भक्तिका व धर्म लक्षणका है. वह 'सोऽहं' श्लोकमॄ कहते हैं:

सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ।
प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाहं भक्तवत्सलः ।।४२।।

श्लोकार्थ : जिस मुझ भक्त वत्सलको तुमने बहुत पहले प्रार्थना की थी, वह मैं तुम पर कृपा करनेकेलिए इस गुफामॄ आया हूं ।।४२ ।।

व्याख्यार्थ : जिससेमॄ अनेकॄकेलिये प्रकट हुआ हूं अतः तुम पर भी अनुग्रह करना चाहिये, इसलिये इस गुफामॄ आया हूं, अन्य प्रकार भ्रम पैदा कर कालयवनको ही यहां लाया जावे, पश्चात् वह स्वयं भष्म हो जावे, अतः तेरेलिये ही इस कष्टवाले देशमॄ आया हूं, ऐसे देशमॄ तेरेलिये आनेका कारण यह है कि तुमने बहुत बार पूर्व जन्मॄमॄ मुझे प्रार्थना की थी, यॄ कहकर यह भी मुचुकुन्दको सूचित किया है कि तुमसे जो यह सामर्थ्य इस समय देखनेमॄ आती है वह मेरा ही प्रभाव है. यहां आनेमॄ जो कष्ट हुआ है, वह सहन कर भी जो आया हूं उसका कारण मेरा असाधारण धर्म, भक्त वत्सलता है मैं स्वभावसे ही भक्त वत्सल हूं, अर्थात् भक्तॄसे प्यार करनेवाला हूं ।।४२।।

आभासार्थ : अपने आनेका प्रयोजन 'वरान् वृणीष्व' श्लोकमॄ कहते हैं:

वरान् वृणीष्व राजर्षे सर्वान् कामान् ददामि ते।
मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ।।४३।।

श्लोकार्थ : हे राजर्षि! वरॄको मांग, हम तुझे सर्व कामनाएं देते हैं, मेरी शरण आया हुआ कोई भी फिर शोक नहीं करता है, अन्य जन्ममॄ मोक्ष भी पाता है ।।४३ ।।

व्याख्यार्थ: जो तुमको वर लेने हॄ,वे बहुतसे हॄ तो भी मांग लो, क्यॄकि तुम राजा और ऋषि दोनॄ हो. राजधर्म और वैदिकधर्म दोनॄ धर्म पाले हैं, मैं इस जन्ममॄ सब कामनाएं जो भी तेरी हॄगी वे पूर्ण करूंगा, किन्तु मोक्षके सिवाय. यदि मोक्ष नहीं देना चाहते है,तो वर लेनेसे लाभ क्या? इसके उत्तरमॄ कहते हैं कि जो मेरी शरण आया है वह कभी भी फिर शोक नहीं करता है, अर्थात् वह सर्व

प्रकारके शोकासे छूट जाता है जिस जन्मसे शरण लेता है उस जन्मसे कोई-कोई शोक करता है सब नहीं करते अतः सबका शोक शरण मात्रसे निवृत्त हो जाता है वह मुक्त हो जाता है, यदि मेरी इच्छासे उसकी मुक्ति न भी होवे, तो भी वह शोकाकुल तो हो नहीं सकता है, यह विकल्प भी राजाके वास्ते ही है, अतः कामनाएं तो सब दूंगा, शेष मुक्ति भी एक जन्मकी रुकावटसे दूंगा।।४३।।

आभासार्थ : इस प्रकार गर्वके वचन मानकर, जिसकेलिए मैं यहां स्थित हूं, वह ही यह है यह निश्चयकर, स्तुति करनेकी इच्छा करने लगा, जिसका वर्णन श्रीशुकदेवजी 'इत्युक्तः' श्लोकसे करते हैं:

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः ।
ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ।।४४।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि इस प्रकार जब भगवान्ने कहा तब प्रसन्न होकर मुचुकुन्दने गर्गजीके वाक्य स्मरण कर उनको नारायणदेव जान और उनको प्रणाम कर कहने लगा अर्थात् स्तुति करने लगा ।।४४ ।।

व्याख्यार्थ : भगवान्ने वरको मांग, इतना कहा, यह सुनकर राजाने विचार किया कि पहले स्तुति कर पश्चात् वरकी याचना करनी चाहिये इस निश्चयसे, उनको प्रणाम कर स्तुति करने लगा, जिससे यह मुचुकुन्द प्रसिद्ध है. अन्तःकरणसे प्रसन्नतासे युक्त हुआ अतः ये नारायण हैं यह निश्चय कर स्तुति करने लगा, इससे नारायणको पुरुष ही जाना, पुरुषोत्तम नहीं समझा, अथवा पुरुषको ही पुरुषोत्तम मानता है, मुचुकुन्दको फलकी(मोक्षकी) सिद्धि न हुई जिसका कारण यह है, कि इसने भगवान्के वचनका फल गर्गके वाक्यका स्मरण ही समझ लिया, इसी अभिप्रायको ध्यानसे रख कर भगवान्ने भी 'कामान् दास्यामि' कहा कि कामनाओंको दूंगा न कि मोक्षको ।।४४।।

आभासार्थ : तेरह श्लोकों से भगवान्की स्तुति करता है:

मुचुकुन्द उवाच

विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः ।।४५।।

श्लोकार्थ : मुचुकुन्द कहने लगा, हे ईश! आपकी इस मायाने यह मनुष्य, स्त्री अथवा पुरुषको ठग लिया है इसलिए अनर्थ संसारसे ही ध्यान हो

जानेसे आपको नहीं भजता है, दुःख देनेवाले घरमें सुखकेलिए आसक्त है ।।४५ ।।

व्याख्यार्थ : मुचुकुन्द १३ श्लोकसे स्तुति करता है, जिसका कारण यह है, कि द्वादश प्रकारका काल है जिसका १२ श्लोकोसे स्तुति कर अतिक्रमण करता है, और एक श्लोकसे भगवान्की शरणागति कहनी है, कालने सबको मुग्ध बना लिया है, इसलिये प्रथम तीन श्लोकसे तामस, राजस और सात्विक मूढकी गिनती करता है, उसमें भी प्रथम श्लोकसे तामस मोहका निरूपण किया जाता है, यह मनुष्य आपकी मायासे विशेष प्रकारसे मुग्ध हो गया है. मेरी मायासे क्या कहते हो? यह तो इस कालके कारण मोहित हुआ है, इसके उत्तरमें कहता है, कि आप ईश हैं, इसलिये कालरूप बन कर उनको मोहमें फंसाते हो, आपके सिवाय दूसरा कोई भी या करनेमें समर्थ नहीं है, दूसरा कोई भगवद्भजनसे विमुख नहीं कर सकता है, यदि करें तो अपराधी बनें, दूसरे मोह अर्थात् धन, स्त्री पुत्रादिका का मोह भले कालकृत हो किन्तु भगवान्के भजन न करनेमें कालरूप आप भगवान् ही हैं, जिससे आपका भजन नहीं करते हैं, यदि कहो कि विचार करनेवालाकी परमानन्दमें प्रवृत्ति क्यों नहीं होती है? तो इसके समाधानमें कहा है, कि उनकी दृष्टि केवल संसारमें ही है, इसलिये, वे संसारको ही जानते हैं, नियम है, कि जिसको देखा जाता है उसका ही ज्ञान होता है, जो संसार और परमार्थ दोनोंको देखें तो दोनोंमें तारतम्य(भेद) क्या है? कौन श्रैष्ठ है, और कौन हीन है? यह तो अनर्थ(संसार)को देख रहा है, फिर शङ्का होती है, कि सब मनुष्य दुःखसे निवृत्ति चाहते हैं और सुखमें प्रवृत्त होते हैं. सुख क्या है? वा किसमें है और दुःख क्या है? एवं किसमें है? यह अनुभवसे जाना जाता है, अतः अनर्थमें ही दृष्टि कैसे? इनका समाधान करते हुवे कहते हैं कि सुखकी प्राप्तिकेलिये उन पदार्थोंमें आसक्त होता है, जिन पदार्थोंसे दुःख पैदा होता है, मनुष्यकी प्रवृत्ति तो अपने समान प्रकारवाले ज्ञान द्वारा होती है किन्तु वह ज्ञान भ्रमपूर्ण होता है जिससे उसका फल उल्टा होता है, जो दुःखका स्थान है, वहांसे दुःख ही प्राप्त होगा. किन्तु भ्रमसे समझता है कि सुख मिलेगा, जिस कारणसे उसमें प्रवृत्त होता है और उसमें आसक्त हो जाता है वैसा स्थान बताना है. 'गृहेषु' घरमें सुख समझता है किन्तु मिलता दुःख है, जिसको हेतु पूर्वक युक्तिसे सिद्ध करता है 'योषित पुरुषश्च' स्त्री और पुरुष ये दो ही घरमें रहते हैं दोनों एक दूसरेसे सुख चाहते हैं, जब एक दूसरेको

प्रसन्न कर (तथा) बहुत सुख देवू, तब दूसरा उस सुख देनेवालेको सुख देवे, इस प्रकार सुखका कार्य एक दूसरे पर आश्रित है, जिससे वह कार्य पूर्णतया सिद्ध नहीं होता है, अतः दोनूको दुःख ही, बहुत कर सरलतासे प्राप्त होता है. निश्चय है कि नदीमू जैसे अग्निकी प्राप्ति नहीं होती है, वैसे ही गृह्यमू सुखकी प्राप्ति भी नहीं होती है, यदि कहो कि अनुभव कैसे होता है? उस पर कहते हैं कि 'वञ्चितः' किसीसे ठगा जानेसे समझता है, कि मैं सुख पाता हैं वास्तवमू वैसा सुख शायद ही मिलता है जिसका युक्ति व प्रमाणसे बोध नहीं होता है. आप यू कैसे कहते हो? वह सुख नहीं है, सुखका तो अनुभव होता है. इस पर कहते हैं कि वह भ्रान्त अनुभव जैसा है, सत्य अनुभव नहीं है. अतः लौकिकमू तो युक्तिसे बाधित है वह प्रमाण नहीं माना जाता है और वैदिकमू श्रुति ही प्रमाण है, परस्पर एक दूसरेसे सुखकी प्राप्तिको अपेक्षासे जो सुखार्थ प्रवृत्ति की जाती है, उससे सुखका अभाव अर्थात् दुःखकी प्राप्ति ही सिद्ध समझनी चाहिये. ''**पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते**'' इस वाक्यसे पुरुष शब्दसे नरकका लक्ष्य किया है, 'योषित्' शब्द तो 'सुतरां' नरक है ही, जिसमू प्रमाण देते हैं, ''**शालावृकाणां हृदयानि एताः**'' स्त्रियां शालावृको (गीदड़, कुत्ता आदि)का हृदय हैं ''**स सोमो नातिष्ठते**'' इत्यादि श्रुतियूमू स्त्रियूकी निन्दा सुनी जाती है. ''**प्रजापतिरमृतम् आनन्द इत्युपस्थ**'' इस श्रुतिसे जननेन्द्रियकी उपासना बताई है अथवा लोकमू माने हुवेको दृष्टान्तरूपसे बतानेकेलिये अथवा रसके आविर्भूत होने पर वह होता है, गृह होनेसे परिच्छिन्न है अतः रसका आविर्भाव नहीं होता है, दोनूकी परिगणना करनेसे दूसरेका अभाव सिद्ध है, जिससे दोनूको सुख होवे. 'च' शब्दसे उनकी सन्तान भी, उन दोनू स्त्री पुरुषू (माता-पिता)से व्याघ्रकी तरह पुरुषकी चाहना करती है अतः युक्ति तथा प्रमाणसे बाधित होनेके कारण परस्पर प्रवृत्तिमू ठगे हुवे ही हैं, समुदायमू उसका निराकरण करनेकेलिये 'वञ्चितः' यह एक वचन कहा है ।।४५।।

आभासार्थ : इस प्रकार गृहमू आसक्त तामस जनकी वंचना कहकर अब 'लब्ध्वाजनो' श्लोकमू शास्त्रसे दूसरे विवेककी राजसके वञ्चना प्रकार कहते हैं:

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथञ्चिदव्यङ्गमयत्न तोऽनघ
पादारविन्दं न भजत्यसन्मतिः गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ।।४७।।

श्लोकार्थ : हे निष्पापी! मनुष्य इस लोकमू बिना प्रयत्न किए किसी तरह सब इन्द्रियां और अंग सहित दुर्लभ, यह मनुष्यदेह प्राप्त करता है, तो भी जो

भगवान्के चरणारविन्दका भजन नहीं करता है, वह असत्य बुद्धिवाला है और पशुकी तरह घरके अन्धकूपमॄ गिरा हुआ है यॄ समझना चाहिए ।।४६ ।।

व्याख्यार्थ : महान् कष्टसे एक-एक शास्त्रके प्रयाससे, विवेकवाली मनुष्य देहको भी प्राप्त किया है, फिर भी कैसी? जिससे सर्व अङ्गपूर्ण, सर्व इन्द्रियां पुष्ट और सर्व प्रकारकी बुद्धिवाली है. एवं 'जनः' शब्दसे यह बताया है, कि सर्वदा जन्मता है, किन्तु विशेष प्रकारसे तो कभी प्राप्त करता है वैसी उत्तम प्रकारकी देह भी प्राप्त कर यदि भगवत् भजन नहीं करता है तो समझना चाहिये कि वह असत् बुद्धिवाला ही है, क्यॄकि यह सामग्री भगवान्को भजनेकेलिये मिली है वह सामग्री भगवान्के उपयोगमॄ न लाकर, लौकिकमॄ लाना, असत् बुद्धि ही है. इस सामग्रीका दूसरेमॄ उपयोग नहीं होना चाहिये. इन्द्रियॄका उपयोग कहां करना चाहिये तथा कहां न करना चाहिये वह पहले निरूपण किया है, जैसे कि कहा गया है, कि "**बिले बतोरुक्रमविक्रमान्ये**" "**सावाग्यया तस्य गुणान् गृणीत**" जो मनुष्य भगवान्के गुण नहीं सुनते हैं उनके कर्ण सर्पके बिल हैं, जिससे भगवान्के गुण गाये जाते हैं वह वाणी है, जो मनुष्य इस प्रकार भगवान्के गुणॄका श्रवण और स्मरण नहीं करता है, वह असत् बुद्धि है, अर्थात् असत् बुद्धि होनेसे वह भजन नहीं करता है. इस कारणसे घरके अन्धेरे कूवॄ गिरा हुआ है. वह कूआ ऐसा है जिसमॄसे उपर निकल आनेका ही अभाव है, क्यॄकि अन्धेरे कूप कहनेका तात्पर्य ही यह है कि वहां कुछ भी पदार्थ देखनेमॄ नहीं आता है, कूपमॄ जो गिरता है वह यदि विवेकी होता है, तो निकल आता है किन्तु यह तो पशु है अर्थात् इसमॄ विवेक नहीं है, वहां व्याकुल होते हुवे अधिक दुःखी होता है, कारण कि अविवेकी होनेसे उसे बाहिर निकलनेका उपाय नहीं आता है ।।४६।।

आभासार्थ : राजसी मनुष्यॄके दूषण कहकर अब सात्विकॄका भी दूषण अपने दृष्टान्तसे 'ममैष काल' इस श्लोकमॄ कहते हैं:

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ।
मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ।।४७।।

श्लोकार्थ : हे अजित! मेरा इतना काल व्यर्थ ही गया कारण कि मैं राजा हूं जिससे राजलक्ष्मीके मदसे उन्मत हूं और इस देहको आत्मा समझकर इसके सम्बन्धी पुत्र, स्त्री आदिकी चिन्तासे युक्त हूं ।।४७ ।।

व्याख्यार्थ : जिस कालका मैंने अनुभव कर लिया है वह भी समस्त

काल तो शोकसे सामने ही खड़ा है अर्थात् इस कालमॅ मैं शोकसे ही घिरा हुआ हूं, हे प्रभो! आप अजित हैं, अतः आपको काल जीत नहीं सकता है, हम तो कालसे सर्वथा जीते गये हैं, यॅ कहकर अपना दुःख भी सुना दिया. पुरुषके पुरुषार्थको सिद्ध करनेमॅ काल ही हेतु है, उसके अभावमॅ वह निष्फल हो गया. आप तो विवेकवाले हैं (तो) यॅ क्यॅ कहते हो? इसके उत्तरमॅ कहा है कि विशेष मदको पैदा करनेवाली, राजलक्ष्मीसे मेरा मद विशेष बढ गया है, कारण कि ''मैं राजा हूं'' वैसी बुद्धि हो जानेसे मद बढा है, जितने भी दोष हैं, वे सब पृथ्वी पर होते हैं. न स्वर्गमॅ और न पातालमॅ भी होते हैं, उस भूमिका पति उसके दोषॅसे दूषित होगा ही, अतः दोषके सम्बन्धके कारण लक्ष्मीसे भी बुद्धिका नाश वैसे ही होता है, जैसे ज्वरवाला मनुष्य अन्न(भोजन)रूप अपथ्य करे, तो उसका नाश होता है, और विशेष यह है, कि मेरी इस मरनेवाली देहमॅ अज्ञानसे, आत्म बुद्धि है वह बुद्धि महापाप है. यद्यपि राजापनसे भी पाप होता है, किन्तु वह पाप है यह अज्ञान तो महापाप है, जैसा कि शास्त्रमॅ कहा है, कि जो आत्माका जैसा स्वरूप है वैसा न समझ अन्यथा समझता है, उस आत्माकी चोरी करनेवालेने कौनसा पाप न किया? अर्थात् उसने सर्वपाप किये. 'मर्त्य' पदसे यह भी सूचित किया है, कि वह बुद्धिसे नित्य आत्माका वध करता है, इससे उसको 'वध' दोष भी लगता है, देहमॅ अपनी आत्मबुद्धि करनेसे उसके सम्बन्धी पुत्र, स्त्री, धन और पृथ्वीमॅ पूर्ण आसक्तिवान् हुआ हूं. जो समय भगवद्भक्तॅमॅ करनी चाहिये उनमॅ न कर इन चारॅमॅ किया है. न केवल साधारण ममता की है, किन्तु आसक्ति करली है, उसमॅ भी उन सम्बन्धियॅकी और अपनी सहस्र चिन्ताओंसे युक्त हूं, इनको और इनके सम्बन्धियॅको पा लूंगा और इनके शत्रुओंका नाश करुंगा इत्यादिसे अनन्त चिन्तायॅ हैं जिसका अन्तिम फल नरकमॅ गिरना है. इस प्रकार त्रिदोषमॅ भी डूबा हुआ हूं आयु व्यर्थ गई. नाशवान् शरीरमॅ आत्माकी बुद्धि पुत्रादिकॅमॅ आसक्ति, एक-एक भी अनर्थ देनेवाली है (फिर) यहां तो चार हैं ।।४७।।

आभासार्थ: यॅ तीनॅका मोह कहकर विशेष रूपसे 'कलेवरेऽअस्मिन्' ३ श्लोकॅमॅ अपने तीनॅ दोष कहते हैं:

कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्यसन्निभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ।
वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैः गां पर्यटंस्त्वाऽगणयन्सुदुर्मदः ।।४८।।

श्लोकार्थ: घड़े और घरके समान साधनभूत इस शरीरमॅ, मैं राजा हूं

ऐसा अभिमान कर आपको भी न गिन कर, रथ, हस्ती, घोड़े, प्यादे आदिकी सेनासे घिरा हुआ मदोन्मत्त होके पृथ्वी पर घूम रहा हूं।।४८।।

प्रमत्तमुच्चैरिति कृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम्।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ।।४९।।

श्लोकार्थ : ये – ये कार्य अवश्य करने है, इस चिन्तनसे प्रसन्न हुए प्रतिदिन विशेष लोभवाले, विषयामृ लालसा वालेको जैसे सुधासे गलाफाृको चाटता हुआ सर्प चूहेको झपट लेता है वैसे (ही) कालरूप आप भी तुरन्त पकड़ लेते हैं।।४९।।

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन् मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः।
स एव कालेन दुरत्ययेन वै कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञकः।।५०।।

श्लोकार्थ : प्रथम राजा ऐसा नाम धारणकर, जो देह सोनेके रथमृ बैठ एवं हस्तियामृ पर चढकर फिरती है, वह ही देह, टालने पर भी जो न टले ऐसे काल मूर्ति, आपके पकड़ने पर तीन अवस्था वाली हो जाती है, जो खाई जाए तो 'विष्ठा' होती है, जो याृ ही पड़ी रहे तो 'कीड़ा' हो जाती है और जो जल जाए तो भस्म बन जाती है।।५०।।

व्याख्यार्थ : यहां यह देह कालका ग्रास होती है इसका निरूपण है ग्रासमृ कालका दोष नहीं है, याृ सिद्ध करनेकेलिये अपने दोष उसके कारण हैं यह निरूपण करते हैं. इस शरीरमृ बैठा हुआ बहुत अभिमानी बननेसे जब मैं आपको भी नहीं गिनता हूं तब आप काल बनकर पकड़ लेते हैं, इस देहको भगवान् पकड़ लेते हैं इसमृ हमारे छः दोष कारण हैं, पहला तो पृथ्वी पर जितने पाषाण आदि हैं उन सबसे यह शरीर, कालको भक्षणमृ श्रेष्ठ लगता है, इसलिये काल पहले इसे ही भक्षण करता है यही कारण है कि पत्थराृकी आयु बड़ी होती है और शरीर शीघ्र नाश हो जाते हैं, क्याृकि कालके भक्षण करने पर वह तत्व 'परमेश्वर'ने ही किया है इससे अपना किया हुआ मद सुखदाता नहीं है. और विशेष कहते हैं कि 'अस्मिन्' पदसे अपनी देह सोई हुई दिखाई है अर्थात् असंस्कृत होनेसे 'जिसका कोई संस्कार नहीं हुआ हो' मरी हुई जैसी है, इससे अपने आप दोष कहा है. यह देह परिच्छेदवाली और अचेतन(जड़) है वह निरूपण करता है. जैसे घड़ा जल लानेका साधन मात्र है, किन्तु वह जल दूसराृके काम आता है वैसे ही इस देहसे केवल वह कर्म किये जाते हैं, फिर वे कर्म जहां तहां जोड़े जाते हैं. केवल कर्मोंकी

साधनभूत ऐसी देहको 'आत्मा'रूप मान लेना कुमतिका ही फल है, यह देह घरके समान है अर्थात् जैसे मनुष्य घरमृ कुछ समय रहता है वैसे ही यह देह भी रहनेकेलिये भगवान्ने बनाई है इस प्रकार यह देह रहनेके कारण अधिकरण है और कर्म करनेके साधन होनेसे करण है इस प्रकार आत्मासे भेद प्रतीत होने पर भी, फिर उसमृ जो यह अभिमान है, कि 'मैं हूं' वह ही एक प्रकारका [१]पञ्चपर्वात्मक महान् दोष है. यहां तक एक देहाध्यास दोषके कारण दोष बताया, अब दूसरा दोष मद बताते हैं. मैं नरदेव हूं अर्थात् जहां मनुष्यत्व ही सन्देहवाला है, वहां अपवित्र पात्र(देह)का देवपन कैसे हो सकेगा? नरृका देव पूज्य राजा है, 'इति' शब्दसे इसका निश्चय बताया है. 'अहं' शब्दसे अपना अनुभव प्रमाणरूप कहा है, अतः यहां अविद्याके तीन पर्व बताये हैं इस प्रकार दूसरा दोष कहकर अब तीसरा दोष कहते हैं. रथ, गज, अश्व और प्यादे इस प्रकारकी चतुरङ्गिणी सेनाके रक्षक सेनापतियृसे घिरे हुए हैं वे दुष्ट हैं, मारनेवाले क्रूर हैं, इससे बताया है कि मुझे इस प्रकार दसङ्ग भी है. अब भूभाररूप चौथा दोष कहते हैं, पृथ्वी पर आकर कोई पुरुषार्थ सिद्ध नहीं किया है, केवल पृथ्वी पर चारृ ओर घूमा है. अब पांचवां बडा दोष कहते हैं, आपको भी अपने ध्यानमृ नहीं लाता हूं अर्थात् आपका भी तिरस्कार करता हूं. देखिये, जिसके आधीन सकल जगत् है, उसकी गणना नहीं करता है, ऐसा मुझे विशेष मद है और अपने स्वरूपका अज्ञान भी है इस प्रकार छः दोषृसे घिरे हुवेको काल भक्षण करता है, क्यृकि 'प्रमन्तं' प्रमन्त है इसलिये काल उसका भक्षण करता है. ऊपर दिखाये हुवे छः दोष सहज हैं और छः दोष जब एक स्थान पर मिल जाते हैं अर्थात् एक किसी मनुष्यमृ छः ही दोष आविर्भूत हो जाते हैं तब शीघ्र फल देनेवाले त्रिदोषको उत्पन्न कर देते हैं यह निरूपण किया जाता है. 'उच्चैः' पदसे इस प्रकार कृत्य करना है ऐसी चिन्ताआृसे [२]प्रमाद होता है, लोभ बढ़ता है, विषयृकी बहुत चाहना होती है, अपने दोष बतलाकर भगवान्से तुल्यता[३] नहीं होनेसे उसमृ तीन दोषृका अभाव निरूपण करते हैं 'अप्रमत्तः'[४] आप प्रमन्त नहीं हैं, अतः अपने कर्तव्यको पूरी तरह जानते हैं और वैसे ही करते हैं. २.लोभसे रहित हो जिनमृ विषयृकी बहुत चाहना नहीं हैं, वे ही कार्य शीघ्र कर सकते हैं. विषय कार्य करनेमृ शिथिल होते हैं, अतः आप झटपट प्राप्त हो जाते हैं, विषय तो भोगमृ आसक्त होनेसे कार्य शीघ्र नहीं कर सकता है कारण कि कार्य और भोगका परस्पर विरोध है.

१.अविद्या पांच पर्ववाली है जिससे पांच दोष उत्पन्न होते हैं: १.देहाध्यास, २.प्राणाध्यास, ३.अन्तःकरणाध्यास, ४.इन्द्रियाध्यास, ५.स्वरूप विस्मृति.
२.कर्त्तव्यको अकर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको कर्त्तव्य समझकर करना इस प्रकार बेपरवाही है. ३.बराबरी.

तो भी दूसरा दोष कहते हैं कि यह इतना तो अवश्य करना है, अथवा इस प्रकार करना चाहिये और यह कार्य तो सबकी अपेक्षा विशेष अधिक है. उसमॄ भी यदि कार्य आ पड़े तब तो दोष नहीं होवे वह भी नहीं है तो भी केवल चिन्ता ही है, इससे अन्तःकरण उसमॄ ही व्यावृत हो गया है. भगवान्ने जिस अन्तःकरणको अपने ध्यान व भक्तिकेलिये भीतर बिठाया उसको बाहिर लौकिक कामॄमॄ लगा दिया, इस प्रकार महान् ही अपराध किया है, यह निरूपण कर बताया है यह महान् अपराध असिद्ध अर्थका साधनरूप है, इसलिये सिद्ध अर्थमॄ जो भिन्न दोष है वह कहते हैं. बहुत लोभ जैसे कि उपभोगकेलिये धन कमाके इकट्ठा कर रखता है उपभोगमॄ नहीं लाता है और विशेष भोग कर यह जान लेता है कि इसमॄ कुछ रस नहीं है तो भी फिर उसकी चाहना करता है, विषयॄका स्वरूप वर्णन करते हैं कि विष मारनेवाली मृत्युका मुख है, उसमॄ स्वयं जाते हुवे दूसरॄको भी ले जाते हैं एक विषय ही ले जा सकता है, तो बहुतॄका क्या कहना? इसलिये बहुवचन दिया है. यद्यपि भगवान्की इस कृत्यकी चिन्ता है इसलिये मारते हैं, नहीं तो नहीं मारे तो भी प्रमन्त(मतवाले) नहीं हैं, अतएव कारण है इसलिये साध्य(फल) की प्राप्तिमॄ निषेध है, जब ही तीन दोषॄका उद्भव हो जाता है तब ही उपाय करनेसे पहले ही कहीं भी भाग जानेके अभावकेलिये अभय है, सर्व कालका रूप है और वहां खेलनेवाला है दूसरेका शरीर अपना भक्ष्य समझकर सदा ही सर्वके अपकारार्थ व्यावृत रहता है, यह तो राजाका धर्म है वह तो उसको पालन करना चाहिये ही इस धर्मके प्राणियॄके कल्याणकेलिये 'कर' द्वारा धन भी ग्रहण करना चाहिये और कर्मोंके फल भोगनेकेलिये विषयॄकी चाहना भी करनी योग्य है ये सब तो गुणरूप हैं, इनको दोषरूप कैसे गिना जाता है? जिसके उत्तरमॄ कहते हैं. कि 'पुरारथैः' यदि यह देह सचमुच दैव होवे तो इस प्रकार आपका कहना सत्य हो सके किन्तु यह देह पहले रथादिमॄ घूमती हुई, राजापनेसे सन्मानित होकर भी विष्ठा, कीड़े और भस्मी ही बनती है. मरी हुई देह तीन तरह काममॄ आती है, जब उसे कौवे आदि पक्षी खाते हैं तब विष्ठा हो जाती है यॄ ही पड़ी रहती है, तो उससे छोटे-छोटे कीड़े बन जाते हैं, जलने पर भस्म बनती है, इस

प्रकार तामस, राजस और सात्विक भावॄका निरूपण किया, अतः अन्तमॄ दुष्ट होनेसे झूठा अभिमान दोषकेलिये ही है, इस प्रकार तात्पर्य ।।५०।।

आभासार्थ : इस प्रकार फलसे दोषॄको कहकर क्रियासे भी 'निर्जित्य दिक्चक्रम'से लेकर तीन श्लोकॄसे तीन प्रकार बताते हैं:

निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवन्दितः ।
गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पुरुष ईश ईयते ।।५१।।

श्लोकार्थ : हे ईश! सर्व दिशाओॄके राज्योॄको जीतकर जो युद्धसे स्वतन्त्र हो गया है, उच्च सिंहासन पर बैठ सब समान राजाओॄसे जो पूजित हो रहा है वह पुरुष भी मैथुन ही जिनमॄ सुख है. ऐसे स्त्रियोॄके घरोॄमॄ क्रीड़ा मृगके समान जहां – तहां ले जाया जाता है अर्थात् बन्दरकी तरह नचाया जाता है।।५१।।

करोति कर्माणि तपस्सु निष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् ।
पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ।।५२।।

श्लोकार्थ : यह मनुष्य तपस्यामॄ विश्वास रखकर सर्व भोगोॄसे निवृत्त होकर राज्य मिलनेकी अपेक्षासे जो उसके पास होता है वह सब देता हुआ फिर मैं चक्रवर्ती हो जाऊं इस प्रकार तृष्णाके बढ़नेसे सुखी हो नहीं सकता है।।५२।।

भवापवर्गो भ्रमतो यदां भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ।।५३।।

श्लोकार्थ : हे अच्युत! भटकते हुए मनुष्यके जन्मका जब अन्त होता है तब सत्पुरुषोॄका संग मिलता है, इस प्रकार जब सत्पुरुष भक्तोॄका पूर्ण मिलाप होता है तब काल तथा कर्म आदिके ईश, आपमॄ बुद्धि लगती है।।५३।।

व्याख्यार्थ: राज धर्मोंका तामसपन, कर्मोंका राजसपन, सत्सङ्गका सात्विकपनका विवेचन कर अब कर्मके स्वरूपके कहनेमॄ वस्तुके विवेकका निरूपण ही किया जाता है, ये तीनोॄ साधनोॄका निरूपण करनेवाले हैं, इनमॄ राजापनमॄ स्त्रीका सेवक बनना पड़ता है, जिसका फल अधोगति है, साधारण मनुष्योॄकी स्त्री तो दासी बनकर सेवा करती है, राजाओॄका इस प्रकार होना असम्भव है किन्तु वे स्वयं दास बनते हैं इस प्रकार दोनोॄकी बराबरी भी नहीं है. पहले सात द्वीपोॄवाली समग्र भूमिको भी जीतकर उसके राजाओॄको अपने आधीन किया, इस कार्यमॄ जब बहुत परिश्रम किया तब उसको साध सके, पश्चात् बहुत समय तक जब युद्ध होनेका कोई भय नहीं रहता है, तब निश्चिन्त होके सुन्दर

सिंहासन पर बैठता है, तब समान राजाओंसे सत्कार पाता है. इस प्रकार चार तरहसे उत्कर्ष पाकर फिर चार प्रकारसे अपकर्ष पाता है. स्त्रियोंके घरोंमें स्त्रियां बहुत होती हैं आप एक हैं किन्तु सबका दास बनकर वहां रहता है, जिससे वह व्याकुल होता है. विषय भोगसे भीतरकी शक्तिकी भी समाप्ति होती है. उन स्त्रियोंके पास खेलका मृग हो जाता है जिससे बाहिरका सब कुछ उनको भेट करता है, क्योंकि मृग हुआ है, जो पदार्थ विद्यमान है उनसे भी विशेष पदार्थोंका साधकपना उसमें आता है जिससे उसका परलोक भी नाश हो जाता है. अपने आप पुरुष सर्व समर्थ है. 'ईश!' यह सम्बोधन निवेदन करनेकेलिये दिया है. 'ईर्यते' क्रियासे यह बताया है कि इसमें कोई प्रमाण छिपा हुआ नहीं है ।।५१।।

व्याख्यार्थ : इस प्रकार लौकिकका व्यर्थपना कहकर वैदिककी व्यर्थता कहते हैं. जो राज्य प्राप्त कर विषयोंका भोग करता है वह अधम(नीच) निन्दाके योग्य ही है उससे भी अधम वह है, जो तपस्या करता है यदि वह कामनाकेलिये तपस्या है. इस तपस्यासे फिर वैसा ही राज्य प्राप्त करता है यह जानता भी है, कि जो राज्य मिला है वह उत्तम नहीं है क्योंकि नाशवान् है तो भी उसकी पुनः प्राप्तिकेलिये तप करता है, जो कि उस कर्मसे वह प्राप्त होता है, जब वह वैसा ही है तब प्राप्त राज्यको छोड़कर कष्टसे भी उसको प्राप्त करनेकेलिये कर्म करनेवाला भ्रान्व (भूला हुवा) ही है, अनेक प्रकारके कर्म उसकेलिये करता है, बहुत समय तक तपस्यामें ही स्थित रहता है और उसकेलिये सब भोग छोड़ देता है, ये सब कर्म इससे भी विशेष मिलनेकी इच्छासे तथा उत्कर्ष होनेकेलिये यह करता है यदि यों है तो, उसकी अपेक्षा कोई अधिक है, न सुना है और न देखा है, उसमें कोई रस भी उत्पन्न नहीं होता है. यदि कहो उसकेलिये ही करता है और उसकी प्राप्तिकेलिये जो है वह भी दे दिया, एक बार भूले हुवेका भ्रम दूसरी बार अनुभव होनेसे वह भ्रम मिट जायेगा इसलिये फिर-फिर राजा बनूंगा, तब भ्रम मिट जायेगा, इस प्रकार जिसकी कामना निश्चित हो गई है, वह सुखकी प्राप्ति करनेमें समर्थ नहीं होता है, सजातीय उत्कर्ष तो सबको चाहिये वह कैसे दे दिया? इसके उत्तरमें कहते हैं बहुत प्राप्तिकेलिये अल्पका त्याग किया जाता है, अतः इसने चक्रवर्ती बननेकी इच्छासे यह भोग छोड़े हैं, किन्तु यह भूल ही है. ब्रह्माण्डका भी स्वामीपन चाहे और वह मिल भी जाये तो भी तृष्णा बढती ही जायेगी, जब तक तृष्णा है, तब तक सुख नहीं है, आशा ही दुःखरूप है, अतः कितने ही उच्च

पदकी इच्छा कोई करे, किन्तु वह सुखके उपभोगकेलिये समर्थ नहीं होता है जब तककी तृष्णाका नाश न हुआ हो ।।५२।।

व्याख्यार्थ : इस प्रकार कर्म फलकी व्यर्थता दिखाते हुवे उसकी निन्दाकर, सात्विक कर्म ही करने चाहिये इसलिये कामनाॠके अभावकी स्तुति करते हैं. जब भगवान्‌की इच्छासे जन्मका अन्त होवे तब साधन करनेकी इच्छा उत्पन्न होते ही सत्पुरुषॠका समागम होता है. वह समागम भी परस्पर मिलकर शङ्का निवृत्ति पूर्वक ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाला होता है.

मनुष्य अनेक प्रकारकी योनियॠमॄ घूमनेसे जो क्लेश पाता है वह क्लेश भगवान्‌की कृपा होनेमॄ हेतु है, अर्थात् भगवान्, मनुष्यने घूमते हुवे बहुत क्लेश पाये हैं, यह देख, दयाद्र चित्त हो जाते हैं जिससे वे कृपा करते हैं. जो जन्मका अन्त करनेवाले भी कितने ही स्थान हैं, जैसे कि, योगियॠके अथवा महत्पुरुषॠके कुलमॄ जन्म होना, ऐसे कुलमॄ जन्म होने पर भी स्वतः ही मुक्ति नहीं होती है, किन्तु सत्सङ्ग मिलनेसे ही, जैसे उत्तम कुलमॄ उत्पन्न मनुष्य देह, मुक्तिका द्वार वा हेतु है, वैसे ही शरीरमॄ भी जो शरीर सत्सङ्गके समय बनता है वह मोक्ष शब्दका प्रयोजन है अर्थात् सत्सङ्गी शरीर ही मुक्त होता है. इसकी व्याख्या 'दुर्लभो मानुषो देह' इस श्लोकमॄ होगी अतः जब अन्तिम जन्म होता है तब ही सन्तोषका समागम मिलता है अथवा योग्यता होने पर सत्सङ्ग प्राप्त होता है. 'अच्युत!' इस सम्बोधनसे यह कहा, कि जैसे आप अच्युत हैं, वैसे सत्पुरुष भी हैं जिससे उनका अभाव नहीं है, अतः मिलनेमॄ भी देरी नहीं है. उस सत्सङ्गसे प्रत्यक्ष ही पुरुषार्थ प्राप्ति देखी जाती है. जैसा कि जब सत्सङ्ग होता है, तब आपमॄ चाह होती है. भगवान् अक्लिष्टकर्मा हैं अतः किसीको अपनेलिये प्रवृत्त नहीं करते हैं, काल और कर्म आदि बाधक हैं ही अतः भक्तके बिना अन्य कोई भी भगवत्सम्बन्धी बुद्धि नहीं देता है, उनका यॄ करना आवश्यक है क्यॄकि सन्तॄकी वे ही गति हैं, वे सत्पुरुष साध्य, साधन और फल भगवान्‌को ही जानते हैं इसलिये उनके पास होनेसे ही भगवान्‌मॄ चाह हो जाती है. चाह होनेसे क्या होता है? इसके उत्तरमॄ कहते हैं, कि काल और कर्म आदिको भी फल दान करनेमॄ ये ही नियामक हैं अतः सर्व फल इनसे मिलता है ।।५३।।

आभासार्थ : इससे यह कहा कि हमारे सब साधन सिद्ध हुए इसलिए साधनॄमॄ अब प्रवृत्त होना नहीं है, कहनेका यॄ तात्पर्य है. अतः गर्गजीके वचनॄसे

भी अब कृपा करनी चाहिए, यह साधन प्रकरणमॄ निरूपण किया, अब तीन श्लोकॉसे फलका निरूपण करते हैं:

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया।
यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया वनं विवक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ।।५४।।

श्लोकार्थ : हे ईश! यह जो अचानक मेरा, राज्यका बन्धन स्वतः छूट गया है, वह मेरे पर आपका ही अनुग्रह हुआ है, तबसे अलग हो, वनमॄ जानेकी इच्छावाले साधुवृत्ति वाले चक्रवर्ती भी स्वतः इसका त्याग नहीं कर सकते हैं किन्तु प्रार्थना ही करते हैं।।५४।।

न कामयेऽन्यत् तव पादसेवनादकिञ्चनप्रार्थ्यतमाद् वरं विभो।
आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ।।५५।।

श्लोकार्थ : हे विभु! मैं तो, निष्किञ्चन भक्त जिस आपके चरणारविन्दके सेवनकी प्रार्थना करते हैं उससे उत्तम, किसीकी भी कामना नहीं करता हूं. हे हरि! कौन ऐसा आर्य है, जो मोक्षदाता आपकी आराधना कर, आत्माको बन्धनमॄ डालनेवाले पदार्थोंका वर मांगेगा।।५५।।

तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः।
निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ।।५६।।

श्लोकार्थ : हे ईश! इस कारणसे रज, तम और सत गुणॉसे बन्धी हुई सब कामनाओंको पूर्णतया त्यागकर, निरञ्जन, निर्गुण, अद्वय, ज्ञानस्वरूप, पर पुरुष आपकी शरण आया हूं।।५६।।

व्याख्यार्थ: फल तीन प्रकारके होते हैं १.राज्य २.कामनायॄ ३.भगवान्. इनमॄ दो फलोंका निषेध करते हैं, उनमॄ भी राज्य दोषरूप है यह अपने अनुभवसे समझ लिया है उससे निवृत्ति देवसे हो गई है, अतः इसका अभिनन्दन करते हैं. जो कुछ जगत्मॄ होता है, उसका कारण वह भगवान् ही हैं, कारणके बिना आप ही छूट जाना, इससे निश्चय है कि यह भगवान्ने ही किया है. भगवान् जो कुछ करते हैं वह हितकेलिये ही करते हैं यह शास्त्रादिसे निश्चित निर्णय किया हुआ है जिससे इच्छित सुख मिलते हैं, वैसे राज्यका छूट जाना फल कैसे कहते हो? राज्य अनिषोंके बन्धनोंमॄ डालता है, यह कहना युक्त नहीं है, वह अपने दोषोंसे होता है न कि राज्य अपने आप अनिष्टका कारण है, ज्वर वालेको जैसे अन्नका भोजन अनिष्ट करनेवाला है, यों स्वतः अन्नका भोजन अनिष्ट नहीं करता है,

वैसे ही राज्य भी. इस पर कहते हैं, कि यदि आप यॄ कहते हो कि तामस स्वभावसे उद्धत राजाको ही राज्य अनिष्ट कारक है, तो यह कहना सत्य नहीं है, कारण कि, साधु राजा भी राज्यका त्याग करते हैं, इससे जाना जाता है कि राज्य ही स्वभावसे दुष्ट है, यॄ नहीं होता तो उन सत्पुरुष राजाओंको तो राज्य भगवान्‌के भजनका साधन भी हो सकता था, इसलिये उसके त्यागकी इच्छा नहीं होनी चाहिये, किन्तु होती है जिससे, उससे छूटनेकी भगवान्‌को प्रार्थना करते हैं. साधुजन राज्यका त्याग कर्मद्वारा भी नहीं कर सकते हैं, उनके पास और भी कोई उपाय नहीं है, इसलिये भगवान्‌को ही प्रार्थना करते हैं. प्रार्थना भी केवल वाणी एवं मनसे नहीं करते किन्तु हम निर्जन वनमॄ जाकर रहॄ, (कार्यको) ऐसी प्रार्थना भी करते हैं, सब त्यागकर, अकेले जाकर वनमॄ रहते हुवे भी राज्यसे डरते हैं, राज्यसे सम्बन्ध था इस कारणसे भी शत्रु तथा परलोकके अधिकारी दुःख द्वॄगे यदि यह शङ्का होवे कि छोटा राज्य होनेसे कोई महत्व नहीं इसलिये छोड़ते हॄगे तो कहते हैं, कि नहीं, सात द्वीपोंके स्वामी होते हुवे भी छोड़ना चाहते हैं, अतः यह जो आपकी कृपासे राज्यसे सम्बन्ध छूट गया है वह मुझे पसन्द ही है.

'न कामयेऽन्यम्' इस पदसे कहते हैं, कि मुझे दूसरी कोई कामना नहीं है केवल एक आपके चरणके सेवनकी कामना है तथा वह जिससे सिद्ध हो उसकी कामना है इसके सिवाय एवं इसको सिद्ध न करनेवालेकी कामना नहीं है. इस आपकी युक्तिमॄ क्या विशेषता है दोनॄ ही हैं, तो कामनायॄ एककी शास्त्रने श्रुति की है और दूसरी लोकके प्रतीतिसे सिद्ध है अतः दोनॄ तुल्य होते हुवे भी विशेष आग्रहसे दूसरॄका निषेध करनेमॄ क्या कारण है? इसके उत्तरमॄ कहते हैं कि 'अकिञ्चन प्रार्थ्य तमात्' धनवानॄको धन होनेसे, कभी अन्य विषय-पुत्र राज्य आदिकी भी इच्छा होती है, किन्तु अकिञ्चनॄको तो दोनॄ प्रकारकी इच्छा नहीं है धनकी अपेक्षा लौकिक और नियत होनेसे, उसका त्यागकर केवल चरणॄकी सेवा प्राप्त हो, वैसी प्रार्थना करते हैं. उन अपने प्रिय अकिञ्चनॄको अन्य धन, राज्य आदि प्रभु देते हैं तो भी उसको ग्रहण न कर जो सेवा प्राप्त होनी कठिन है उसको बार-बार प्रार्थनामें तो क्लेश होगा, इस पर कहते हैं उसमॄ कुछ भी क्लेश नहीं है, किन्तु वह वररूप है, 'हे विभो!' सम्बोधनसे भी यह सूचना देते हैं कि दाता सामर्थ्यवान् है अतः कोई क्लेश नहीं है. वे भ्रान्त होवे अथवा उनकी वैसी रुचि है तो भी विषयमॄ कौनसा दोष है? यदि यॄ कहते हो तो उत्तर देते हैं, आपकी

सेवा पाकर ऐसा कौन अभागा होगा जो 'वर' मांगे? यदि कर्म वशसे जिसकी चाहना नहीं है, वह भी प्राप्त हो जावे तो भोगना नहीं पड़ता है, भगवान्की आराधना करके तो जो दुर्लभ है उसकी ही प्रार्थना करनी चाहिये. वहां भी विरुद्धकी प्रार्थना कैसे की जाये दोनॄ प्रकार विरोध कहते हैं, मोक्ष दाता आपसे वर मांगना आत्म बन्धन हैं. जो जिसकी सेवा करता है वह दोनॄ लोकॄमॄ उसका सम्बन्ध प्राप्त करता है उसमॄ भगवान् मोक्षरूप हैं दूसरा सब संसाररूप है. यदि यॄ है तो मोक्ष वा ज्ञानकी प्राप्तिकेलिये प्रार्थना करनी चाहिये न कि पादसेवनकी प्रार्थना करनी चाहिये. सत्य है, ज्ञान केवल सिद्ध करता है यदि मोक्ष भी कैवल्यरूप है तो भी पुरुषार्थ नहीं है. यदि मोक्ष भगवत्प्राप्तिरूप होवे तो एकरसताको प्राप्त होके भगवान् ही हो जाता है फिर उसका पृथक् अनुभव नहीं होता है. अतः परमानन्द होकर जो अनुभव किया जाता है वह एक चरणोपासन ही है. जो साधना नहीं है, वह साध्यको सिद्ध नहीं कर सकता है इसलिये साधनपनसे प्रार्थना करनी, इस प्रकार कोई कहते हैं ।।५५।।

व्याख्यार्थ : अतः श्रेष्ठ प्रार्थनाकेलिये पहिले शरण जाता हूं यह ''तस्माद् विसृज्य'' श्लोकमॄ कहते हैं:

हे समर्थ! अन्दर और बाहिर सर्व प्रकारकी कामनाओॄका त्यागकर ज्ञप्ति मात्र आपके शरण जाता हूं सर्वके परित्यागकेलिये इसका त्रिगुणपन कहते हैं, रज प्रभृतिके बन्धकत्वकेलिये गुणॄका बन्धनपन कहा है, अनु पदका प्रयोग इसीलिये किया है, कि इच्छा न करनेवालेके भी बन्धनके कारण है, केवल उनके सम्बन्धसे बन्धन हो जाता है. स्मार्तोंके मतमॄ भगवान् भी उपाधिवाला है, इससे वहां भी रजकी प्राप्ति ही है ऐसी शङ्का कर उसका समाधान करते हैं, कि भगवान् निरञ्जन अर्थात् प्रकृति आदि उपाधियॄसे रहित हैं. उससे क्या हुआ? तो कहते हैं कि निर्गुण है जो उपाधिवाला होता है, न कि बिना उपाधिवाला सगुण होता है.

भगवान्ने पहिले केवल अपने भोगकेलिये ही अपनी इच्छासे प्रकृति और गुणॄको पैदा किया है. इस कारणसे, तेरेलिये ही वैसा कैसे नहीं करॄगे? इसके उत्तरमॄ कहते हैं कि 'अद्वयं' भेद रहित हैं जो भेदकेलिये प्रयत्न करता है, उसके प्रति वैसा करते हैं, मैं तो वैसा नहीं हूं, इसलिये मेरे प्रति यॄ नहीं करॄगे, यह कहनेका भाव है. वे स्वतन्त्र हैं, इसलिये कहा है, कि सबसे पर उत्तम हैं, वह कोई दूसरा पर नहीं है किन्तु आप ही हैं इसलिये 'त्वां' कहा है. वे पर हैं किन्तु तू तो

गुणवाला है, अतः मेरे अधिकारके अनुसार वैसा ही करूंगे यदि यूं कहो तो जिसका उत्तर है, कि आप 'ज्ञप्तिमात्र' हैं. अर्थात् आपको केवल जानना ही है जो ऐसा, उसके शरण जाना नहीं बन सकता इसका समाधान करते हैं, कि आप पुरुषरूप हैं. 'शरणद्' पाठसे यह कहा है कि आप पुरुषरूप हैं. 'त्वां' पदसे कहा कि आप ही जानने योग्य हैं इस प्रकार जानना चहिये ।।५६।।

आभासार्थ: इस प्रकार शरण आया हुआ अपनी रक्षाकी प्रार्थना 'चिरमिह' श्लोकसे करता है:

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापै रवितृषषडमित्रो लब्धशान्तिः कथञ्चित् ।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश ।।५७।।

श्लोकार्थ: इस संसारमूं दुःखासे पीड़ित बहुत समयसे अपने किए पश्चातापसे जल रहा हूं जिनकी तृष्णा मिटी नहीं है, ऐसे इन्द्रिय स्वरूप छः शत्रु घेर रहे हैं तो भी शरण देनेवाले प्रभु आपके चरणारविन्दोंमूं आकर पड़ा हूं जिससे कठिनाईसे शान्ति मिली है अब हे परमात्मा! हे ईश! शरण आए हुए मेरी रक्षा करो, क्योंकि आपके चरणारविन्द अभय अशोक और अमृत देनेवाले हैं।।५७।।

व्याख्यार्थ : सङ्घातसे पीड़ित और असमर्थ उस पीड़ाके मिटानेकेलिये भगवान्से रक्षाकी प्रार्थना करते हैं न कि दूसरोंसे, उनकेलिये जो बाधक है, उनको गिनता है. बहुत समयसे दुःखोंसे पीड़ित हुआ हूं और नियत हुवे आध्यात्मिक तापोंसे भी तप्त हो रहा हूं इससे आगे भी ताप उत्पन्न करनेवाले दोषोंका वर्णन करते हैं, कि जिनकी तृष्णा अब तक मिटी नहीं है वैसे इन्द्रियरूप शत्रुओंसे भी पीड़ित हो रहा हूं वे शत्रु खा जायूंगे इस शङ्कासे प्रार्थना करते हैं. जब तक इन्द्रियोंमें शिथिलता नहीं आई है तब तक सब व्यर्थ है यदि यूं कहो तो और यदि रक्षा करनेमें भी इन्द्रियोंका हितकर तो उस रक्षासे क्या लाभ? इस कारणसे कहते हैं 'लब्धशान्तिः' किसी न किसी प्रकार अन्तःकरण विषयोंसे हट जानेसे शान्ति प्राप्त हो गई है आप शरण देनेवाले हैं और मैं अच्छी भांति शरण आया हूं शरण भी आपके चरण कमलोंका सेवक बनकर ली है आप परमात्मा हैं अर्थात् जीवोंका स्वामी भगवान् हैं अतः आपकी शरण लेना अनुचित नहीं है यह भाव है. जो तीन गुणोंसे पीड़ित है, उसकी पीड़ाके निवारक तीन गुण भगवान्में हैं, वे कहते हैं. १.अभय, २.अमृत, ३.अशोक–सतोगुणके अभावसे भयका भी अभाव है इस कारणसे ही दूसरोंको पालन करनेमें समर्थ है. सत्यरूप होनेसे रजोगुणका

अभाव है जिससे अमृतरूप ही सबको शुद्ध करनेमृ शक्त हैं. तमोगुणके अभावसे आप शोक रहित हो अर्थात् आनन्दरूप हैं, जिससे सबको आनन्द दे सकते हैं आप रक्षा करते हैं जिसका कारण शरणागति ही है, आप ईश हैं इसलिये आपमृ सर्व सामर्थ्य है ।।५७।।

आभासार्थ : पश्चात्, भगवान्ने वृथा शयन किया? उसको तपस्यामृ प्रवृत्त करनेकेलिए और मर्यादाकी रक्षाके वास्ते, प्रार्थित दानको 'सार्वभौम' श्लोकसे लेकर छः श्लोकामृ वर्णन करते हैं:

श्रीभगवानुवाच

सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ।
वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ।।५८।।

श्लोकार्थ : श्री भगवान् कहने लगे कि हे चक्रवर्ती! हे बड़भागी! तुम्हारी बुद्धि निर्मल तथा बड़ी उच्च है क्यृकि वरृके दानसे ललचाये हुएकी भांति वह बुद्धि कामनाओृसे विचलित नहीं हुई है।।५८।।

व्याख्यार्थ : चक्रवर्ती होनेसे सबके भाग्यकी सहराहना की है और 'महाभाग' पदसे आगेका भी उसका मनोरथ सिद्ध होगा जिससे भी भाग्यवान् है तेरी बुद्धि शुद्ध तथा बहुत उच्च है तेरी बुद्धिमृसे संसारके धर्म सब निवृत्त हो गये हैं, इसलिये मल रहित होकर शुद्ध हो गई है. भगवान्के परायण होनेसे उच्च है जिससे भगवान्की आज्ञाका उल्लङ्घन किया है उस पर भगवान् कैसे प्रसन्न हुवे? इस शङ्काको मिटानेकेलिये अपनी प्रसन्नताका हेतु बताते हैं कि वरृसे उसको लोभमृ फंसाना चाहा तो भी फंसे नहीं. भगवान्ने तो वर मांगो कहा था वह केवल लोभ दिखाकर परीक्षा लेनेकेलिये, उन लौकिक पदार्थोंमृ तेरी रुचि है या नहीं? वह जब जाननेमृ आ गया कि नहीं है क्यृकि कामनाओृसे बुद्धि बदली नहीं, इस कारणसे ही बुद्धिका निर्मलपन उच्चपन है इस प्रकार इनका यह सम्बन्ध है ।।५८।।

आभासार्थ : स्वामी होकर ऐसे कैसे प्रलोभन देते हैं? वहां कहते हैं कि 'प्रलोभित' अर्थात् इस श्लोकमृ यह स्पष्टीकरण करते हैं कि प्रलोभन क्यृ दिया? और उससे क्या हुआ?:

प्रलोभितो वरैर्यत्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ।
न धीर्मय्यैकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ।।५९।।

श्लोकार्थ : मैंने जो तुझे वरूका लालच दिया वह परीक्षाकेलिए ही दिया था, यू समझ, मेरे ही जो एक भक्त है उनकी कभी भी वरूसे बुद्धि मेरे चरणूसे हटती नहीं है।।५९।।

व्याख्यार्थ : यद्यपि तुमको जो वरू द्वारा लालच दिया, वह भी अप्रमाद केलिये ही दिया या भगवदीयको कदाचित् किसी कामकी इच्छा होती है तो वह इच्छा वर द्वारा पूर्ण करके सन्तोष करू, किन्तु उनमू विषय है ही नहीं अथवा उन्हूने विषय कैसे होवे हैं ये देखे ही नहीं है, इससे दूसरूको दी हुई अथवा स्वाभाविक विषयूसे उनका मन प्रसन्न नहीं होता है इसलिये मैं ही देता हूं उन विषयूसे वे विषय सुख भोगते हुवे भी उनमू विषय मदका अभाव रहता है. इसमू सन्देह मत जान, इस विषयकी सिद्धिमू दूसरा कारण देते हैं, मेरे जो अनन्य भक्त हैं, अर्थात् जो दूसरे मार्गकी चाहवाले नहीं हैं किन्तु भक्त ही हैं, वरूसे प्राप्त आशीर्वादूसे, बुद्धि बदलती नहीं है, क्यूकि वह भगवान्की दी हुई होती है 'क्वचित्' शब्दसे इस पदका अव्यभिचार होना बतलाया है अर्थात् यह पक्ष निश्चित है इसलिये इस पक्षमू बुद्धि एक मार्गको त्याग दूसरे मार्गमू नहीं जाती है जैसे कुलटा स्त्री एक पतिसे सङ्ग करती है वैसे भक्तूकी बुद्धि अपने इष्टके सिवाय दूसरे देवू अथवा कामनाओूसे प्रेम नहीं करती है ।।५९।।

आभासार्थ : इस प्रकार भगवन्मार्गमू ही भोग तथा मोक्ष विरुद्ध नहीं है दूसरे मार्गमू यू नहीं है अर्थात् अन्य मार्गमू तो दोनू परस्पर विरुद्ध हैं यू कहते हैं 'युञ्जानानाम्' इस श्लोकसे दूसरे पक्षको दूषित करते हैं:

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ।
अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते क्वचिदुत्थितम् ।।६०।।

श्लोकार्थ : हे राजन्! जो मेरे भक्त नहीं हैं, वे अपने मनको प्राणायाम आदिसे मुझमू निरोध करना चाहे तो भी वह रुकता नहीं फिर भी वासनाओूमू फंस जाता है क्यूकि उनकी वासनाएं पूर्ण रीतिसे नष्ट नहीं हुई हैं।।६०।।

व्याख्यार्थ : भक्तिमार्गके सिवाय जो दूसरे मार्गवाले हैं, अर्थात् भक्त नहीं हैं, वे यदि प्राणायाम साधनूसे मनको रोकनेका प्रयत्न करते हैं तो भी उनका मन नहीं रुकता है, जैसे सौभरि प्रभतियूका नहीं रुका था, उसमू कारण यह है कि उनकी वासनायू क्षीण नहीं हुई हैं 'राजन्!' सम्बोधनसे यह बताया कि आपको यह अनुभव है वासनाओूका क्षय नहीं होता है, जब तक कि भगवान्की भक्ति नहीं

की है, भक्तिसे ही वासनाका क्षय होता है. अन्य मार्गोंमॄ अलौकिक प्रकारको मिटानेकेलिये कामनायॄ प्राप्त होती हैं उन कामनाओंसे जो उपद्रव उत्पन्न होते हैं उनका अभाव अन्य कोई नहीं कर सकता है केवल भक्ति ही उन उपद्रवोंको और वासनाओंको मिटानेमॄ समर्थ है, अतः भगवान्‌ने भक्तिमार्गकी बड़ाई की है ।।६०।।

आभासार्थ : इस प्रकार प्रशंसा कर उस मार्गमॄ प्रविष्ट हुएको कोई भय नहीं है, यह सिद्ध ही है, यॉ कहते हुए 'विचरस्व' श्लोकसे इच्छा विहारका बोध कराते हैं:

विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः।
अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ।।६१।।

श्लोकार्थ : मुझमॄ मनको लगाकर अपनी इच्छाके अनुसार पृथ्वी पर विचरण करो, मुझमॄ तुझको अविचल भक्ति नित्य ही रहेगी।।६१।।

व्याख्यार्थ : मुझमॄ मनको लगाकर पृथ्वी पर विहार करती रही, क्योंकि तुम महान् हो अतः अन्य प्रकारसे विहार करना तो तुम्हारा आप ही निवृत्त हो गया है. भगवान्‌ने जगत्‌मॄ किस प्रकार और कैसे लीला की है इसके जाननेकी इच्छा करनेवालेकी भांति चरण सेवाकी ही मैं प्रार्थना करता हूं इसके सिवाय अन्य कुछ नहीं मांगता हूं, इस प्रकार जो कहा है वह वैसे ही है अर्थात् तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर आशीर्वाद देते कि यह इच्छा पूर्ण होगी. तुम्हारी प्रार्थनामॄ भक्तिदानकी अपेक्षा नहीं है कारण कि तुम्हारेमॄ भक्ति सहज ही है भक्तिका उत्कर्ष भी स्वाभाविक ही है. इसलिये कहा है कि 'अनपायिनी' यॄ कहनेसे देश, काल और वस्तुके परिच्छेद मिटा दिये हैं, और अपने आप देशसे विपत्ति अथक बुराईयां भी मिटादी हैं यद्यपि कालका निषेध भी आता है, तो भी केवल निषेध पर न होनेसे निमित्तभूत जो कहा है वह तेरी भक्तिके अनुकूल है, यह जतानेकेलिये 'नित्यदा' पद दिया है. 'तुभ्यं' चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदान कारकमॄ देकर यह सूचित किया है कि पहले ही भक्तिका दान कर दिया है. 'मय्यनपायिनीति वा' अथवा मेरेमॄ रुकावटके बिना निश्चल भक्ति हो, अथवा मेरी कृपासे मेरे विषयकी ही भक्ति होवे, यह भक्ति आगे भी निवृत्त न होगी, इस प्रकारका यह वरदान है ।।६१।।

आभासार्थ : सायुज्य क्योंॄ नहीं देते हो? यह शंकाकर 'क्षात्रधर्मस्थितो'

श्लोकमृ समाधान करते हैं:

क्षात्रधर्मस्थितो जन्तून्न्यवधीर्मृगयादिभिः।
समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदपाश्रयः।।६२।।

श्लोकार्थ : क्षात्र धर्ममृ स्थित होकर, शिकार आदिमृ जीवृाको मारा है उससे उत्पन्न पापको तपस्यासे एकाग्रचित होके, मेरा आश्रय लेकर नष्ट कर।।६२।।

व्याख्यार्थ : जातिसे मिलित क्षत्रियृाका धर्म दोनृ प्रकारका घोर है, १.युद्धमृ भाईको मारना, २.शिकार खेलते समय भाग जाते हुवे भी मृगृाको मारना इसलिये ये दो दोष मिटे वैसा उपाय करो. 'जन्तून्' पदसे बताया है कि उनका कोई अपराध नहीं है, निर्दोष प्राणियृाका वध किया है. और 'आदि' पद देकर यह भी सूचित किया है कि तुमने उनको विश्वास देकर मारा है अथवा पास आदिसे मारा है अब उस पापके निवृत्तिका उपाय बताते हैं. 'समाहितः' इन्द्रिय आदिसे हित अन्तःकरणको जीतकर उस पापको तपस्यासे नाश कर शङ्का करते हैं, कि सुना जाता है, कि तमस्यामृ भी पाप होता है जिसमृ अपना और परका द्रोह करनेवाला कर्म करना पड़ता है वैसी तपस्यासे क्या है? जैसा कि कहा है कि 'मां चैवान्तः शरीरस्थं' मुझे और अन्तःशरीरस्थको दुःख होवे वैसी तपस्या कैसे की जाये? इसका उत्तर देते हैं कि 'मदपाश्रयः' मेरा आश्रय लेकर तपस्या करनेसे भीतर मुझे कोई क्लेश न होगा तथा न तपस्यासे किसी प्रकारका दोष होगा ।।६२।।

आभासार्थ : पश्चात् जो होनेवाला है वह 'जन्मन्यनन्तरे' श्लोकमृ कहते है:

जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः।
भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मापुपैष्यसि केवलम्।।६३।।

श्लोकार्थ : हे राजा! दूसरे जन्ममृ तुम सर्व भूतृाका बहुत सुहृद उत्तम ब्राह्मण होकर निश्चय तुम केवल मुझे ही पाओगे।।६३।।

व्याख्यार्थ : दूसरे जन्ममृ तुम उत्तम ब्राह्मण होओगे, उच्च कुलमृ जन्म पाओगे वहां भी सब प्राणियृाके विशेष हितकारी बनोगे, प्रवृत्तिके परायण नहीं हृागे, पश्चात् केवल मुझे पाओगे, यदि मुझे नहीं पाओगे तो पुरुषृामृ वा कालमृ, लय होवोगे, लीला सहितमृ उसमृ लीलाकेलिये फिर आने पर जन्म भी लेना पड़े. यदि केवल पुरुषोत्तमकी प्राप्ति हो गई तो फिर लौट आनेकी शङ्का ही नहीं है

इसके प्रमाणमृ बहुत श्रद्धा है इसलिये पुष्टिमार्गमृ नहीं जोड़ा है मर्यादामृ तो ब्राह्मणकी ही युक्ति होती है उसमृ भी केवल **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते'**[१] गीतामृ कहे हुवे इस सिद्धान्तके अनुसार कोई भी दोष नहीं है ।।६३।।

१.जो मनुष्य जिस प्रकार मेरी शरण लेता है उसको मैं उसी प्रकार भजता हूं ।।गीता।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कंध (उत्तरार्ध) अध्याय ४८ की श्रीवल्लभाचायचरण विरचित श्रीसुबोधिनी टीकाके राजस साधन अवान्तर प्रकरणके दूसरे अध्यायका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण

अध्याय ४९

द्वारका गमन, श्रीबलरामजीका विवाह तथा रुक्मिणीजीका सन्देश

पुरुषानुग्रहं पूर्वम् उक्त्वा भगवता कृतम्।
स्त्रीषु तं विस्तरेणाह रूपत्रयविभेदतः।।कारि.१।।

कारिकार्थ : इस तीसरे अध्यामृ पहले पुरुषृ पर किए हुए भगवान्के अनुग्रहका वर्णन कर पश्चात् तीन(रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा)रूपसे भेदवाली स्त्रियृ पर किये अनुग्रहका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।।१।।

अनुग्रहः कालतुल्यस्ततो द्वादशधोदितः।
तत्र मुख्या तु लक्ष्मीः स्यात्तस्यां त्रेधा हरेः कृपा।।कारि.२।।

कारिकार्थ : [१]अनुग्रह कालके समान है इससे द्वादश प्रकारसे कहा है, स्त्रियृमृ लक्ष्मी मुख्य है उस पर हरिकी कृपा तीन प्रकारसे हुई है।।२।।

१. यह अनुग्रह कालकी अपेक्षावाला है इसलिए मुचुकुन्दने १२ श्लोकृसे प्रार्थना की है, १३ श्लोकृमृ पूर्ण गमन कर अपनी रक्षा चाही है.

मानसेनाथ कायेन वेदेनेति निरूप्यते।
गान्धर्वो मानसः प्रोक्तो दूरत्वाद्वचनाभिधा।।कारि.३।।

कारिकार्थ : १. मानसिक, २. कायिक और ३. वाचिक यृ तीन प्रकारसे निरूपण किये जाते हैं, मानसिक गान्धर्व कहा है, दूर होनेसे वाणीसे है।।३।।

कृष्णानुग्रहयुक्तानां कृतार्थत्वे ततः परम्।
स्त्रीणां मुक्तिनिरूप्येति मुचुकुन्दतपःकथा।।कारि.४।।

कारिकार्थ : कृष्णकी जिन पर कृपा हुई है, उनके कृतार्थ हो जानेके अनन्तर स्त्रियृकी मुक्ति और मुचुकुन्दके तपस्याकी कथा निरूपणकर।।४।।

प्रसङ्ग तामसानां हि वधो देवहिताय हि।
पलायनं लीलयैव सोऽप्यनुग्रह ईर्यते।।कारि.५।।

कारिकार्थ : प्रसंगसे तामसृका वध किया है, देवृके हितार्थ लीलासे ही भाग जाना वह भी अनुग्रह ही कहा जाता है।।५।।

सात्त्विके राजसे चैव तामसे च हरेः कृपा।
इति दर्शयितुं राज्ञो वृत्तं लक्ष्म्याः शिवस्य च।।कारि.६।।

कारिकार्थ : सात्विक, राजस और तामस पर भगवान्‌की कृपा हुई है यह दिखानेकेलिए राजा, लक्ष्मी और शिवके चरित्रका वर्णन किया हुआ है।।६।।

आभासार्थ : तीसरे अध्यायमॄ अनुग्रहके निरूपण करनेके प्रकरणमॄ, मुचुकुन्द, शिव और लक्ष्मीका कायिक, वाचिक और मानसिक भेदसे हित किया है.

पहिले भगवान्‌ने सात्विक मुचुकुन्द पर कृपा की है, इसलिए भगवान्‌के वचनॄसे तपस्या करने लगा, जिसका वर्णन 'इत्थं' श्लोकसे चार श्लोकॄमॄ श्रीशुकदेवजी करते हैं:

श्रीशुक उवाच

इत्थं सोऽनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णनेक्ष्वाकुनन्दनः ।
तं परिक्रम्य सन्नम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ।। १ ।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे अङ्ग! श्रीकृष्ण भगवान्‌ने इस प्रकार इक्ष्वाकुके वंशमॄ उत्पन्न हुवे मचुकुन्द पर जब कृपा की तब वह उनको साष्टांग प्रणाम तथा परिक्रमा कर गुफासे बाहिर निकला।।१।।

व्याख्यार्थ : इसी भांति भगवान्‌ने मुचुकुन्द पर अनुग्रह किया जिससे वह तपस्याकेलिए गुफासे बाहिर निकला. भगवान्‌के वचनॄसे मुचुकुन्दकी श्रद्धा होनेका कारण भगवान्‌का अनुग्रह ही है, क्यॄकि भगवदनुग्रह होनेके सिवाय उनके वचनॄमॄ श्रद्धा नहीं होती है. भगवान्‌ने उस पर कृपा क्यॄ की? इस शंकाको मिटानेकेलिए करते हैं, कि इक्ष्वाकु बडा भक्त था उसके वंशमॄ यह पैदा हुवा है, इसलिए उसके नातेके कारण इस पर भी कृपाकी है. गुफासे बाहिर आनेके बाद भगवान् कृष्णको परिक्रमा कर अनन्तर साष्टांग प्रणाम कर जहां प्रकाश वाले गुहाके मुख पर शयन स्थानसे उठकर आके खड़ा हुवा था फिर वहांसे भी बाहिर निकल आया।।१।।

आभासार्थ : पश्चात् तपस्या किस स्थान पर करनी चाहिए यह विचार कर भरत खण्डमॄ चारॄ युगॄके धर्म प्रवृत्त होते हैं इसलिए जहां तपस्यासे विरुद्ध काम युक्त देश हो वहां तपस्या नहीं करनी चाहिए इस कारणसे दूसरे भागमॄ जानेकेलिए उत्तर दिशामॄ गया:

स वीक्ष्य क्षुल्लकान् मर्त्यान् पशून् वीरुद्वनस्पतीन् ।
मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ।। २ ।।

श्लोकार्थ : उसने देखा कि सब मनुष्य, पशु, लता, और वनस्पति छोटे-छोटे हो गए हैं जिससे जान गए कि कलियुग आ गया है, अतः उत्तर दिशामॄ चला गया।।२।।

व्याख्यार्थ : उसने सतयुगमॄ सोना आरम्भ किया था और कलियुगमॄ जगा, जब ही भगवान्ने मथुराका त्याग किया तब ही कलिका प्रारम्भ हुआ यॄ मुख्य सिद्धान्त है. पच्चीस वर्षके अनन्तर कलियुग आवेगा इस प्रकार ही निश्चय कर भरत खण्डको छोड़ कर भगवान् समुद्रके मध्य द्वारकामॄ जा कर विराजे. भगवान्के वहां जानेके पश्चात् कलियुगने अच्छी तरह प्रवेश किया, कालका अभिमानी देवता तो भगवान् जब अपने धाम पधार जाएंगे तब आएगा. इसका विचार द्वादश अध्यायमॄ किया जाएगा. कलि तो अब प्रविष्ट हो गया है अथवा यह सन्धीका समय है अर्थात् मध्य काल ही है, आगे निर्णय करने योग्य है इस प्रकार कालकी प्रवृतिमॄ जो निश्चित हेतु देखे उनको कहता है. वह मुचुकुन्द कलिकालसे छोटे मनुष्यॄको देख समझ गया कि ये मॄगे भी जल्दी ही. लता और झाड़ी आदि वनस्पतियॄको तथा चारॄ प्रकारके वृक्षॄको अल्प आयु प्रमाण वाले एवं जल्दी गिरने वाले हैं देखकर साधारण तरह यह कलियुगका ही धर्म है यॄ निश्चयकर उत्तर दिशाकी तरफ गया।।२।।

आभासार्थ : पश्चात् विधिके अनुसार इस देशका उल्लंघन कर गया, इसका वर्णन 'तपःश्रद्धा' श्लोकमॄ करते हैं:

तपःश्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः।
समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद् गन्धमादनम् ।।३।।

श्लोकार्थ : तपस्या और श्रद्धासे युक्त धैर्यवाला संगरहित एवं संशयॄसे मुक्त होकर श्रीकृष्णमॄ मनको अच्छे प्रकार स्थिरकर गन्धमादन पर्वत पर गया।।३।।

व्याख्यार्थ : तपस्या अर्थात् सब इन्द्रियॄको अपने वशमॄ कर लेना और भगवान्के वचनॄमॄ विश्वास करना इन दोनॄ गुणॄसे युक्त था, और विघ्न डालने वाले विषयॄको देखकर भी उनके वश नहीं हुआ और उनसे डरता था अतः धैर्यवान था. जाते हुवे राजाके जो कुछ पीछे लगे रहते थे उनको भी त्यागकर संगरहित होकर जाने लगा. शरीरकी रक्षा आदि कौन करेगा? वैसी शंकाॲसे जिसका अन्तःकरण मुक्त हो गया है और यहां वहां दर्शन आदिके कारण विक्षिप्त

मनको कृष्णमृ जोड़कर गन्धमादन पर्वतमृ प्रवेश किया, गरुड गंगाके उत्तर भागमृ बदरिकाश्रम तक सारा पर्वत गन्धमादन है।।३।।

आभासार्थ : पश्चात् वहांसे भी बदरिकाश्रम पहुंचकर तपस्या करने लगा, जहां श्रीनर-नारायण प्रभुका मन्दिर है वहां तो शीत आदिकी बाधा जबर्दस्त है उनके मिटानेकी कोशिश करनेमृ मन लगानेसे तो तपस्या हो न सकेगी इस शंकाके निवारणकेलिए 'सर्वद्वन्द्वसहः' कहा है अर्थात् सर्व प्रकारके शीत आदिके दुःखाृको सहन करनेमृ समर्थ है:

बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम्।
सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाऽऽराधयद्धरिम् ।। ४ ।।

श्लोकार्थ : बदरिकाश्रममृ जाकर नर-नरायणके स्थानसे सब प्रकारके सुख दुःख आदि द्वन्द्वाृको सहन करता हुआ शान्त हो तपस्यासे हरिकी आराधना करने लगा।।४।।

व्याख्यार्थ : अन्तःकरण भी शान्त था, तपस्यासे हरिकी आराधना करने लगा. हरि पदसे जिस प्रकार ही उसकी तपस्यासे आराधना सिद्ध होती है वैसे करने लगा याृ जाना जाता है. अर्थात् तपस्यामृ आने वाली रुकावटाृको भगवान् हरणकर ऐसी प्रेरणा करते थे जिससे उसकी आराधना सिद्ध हो जाती थी।।४।।

आभासार्थ : इस प्रकार उसकी अवस्था कहकर भगवान्के भी द्वारका गमनका वर्णन 'भगवान्' इस श्लोकसे दश श्लोकाृमृ करते हैं:

भगवान् पुनरावृज्य पुरीं यवनवेष्टिताम्।
हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ।। ५ ।।

श्लोकार्थ : भगवान् फिर यवनाृसे वेष्टित मथुरापुरीमृ आकर म्लेच्छोंकी सेनाको नष्टकर उसका धन द्वारका ले गए।।५।।

व्याख्यार्थ : बीचमृ तातस शिवके ब्राह्मणाृका वचन किए, यह निरूपण किया जाता है. यवनाृके नाश हो जानेके बाद भगवान् मथुरापुरी आके उसको यवनाृसे घिरा देख मथुरा लेनेकेलिए आए हुवे म्लेच्छाृकी सेनाका नाशकर मरे हुवाृके मुकुट आदि रूप धनको द्वारका लेजाने लगे।।५।।

नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः।
आजगाम जरासन्धस्त्रयोविंशत्यनीकपः ।। ६ ।।

श्लोकार्थ : भगवान्से प्रेरित मनुष्य तथा बैल सब धन ले जा रहे थे तब

तेवीस अक्षौहिणी सेनाको लेकर जरासन्ध आ गया।।६।।

व्याख्यार्थ : धनको फिजूल छोड़ना नहीं चाहिए फिजूल जावे उससे वह राजाको देना चाहिए अर्थात् यॄ ही पड़ा हुआ धन राजाका है और यह धन यवनका है वह ग्रहण करनेके योग्य नहीं है. अब भगवान्को दोनॄ बात सिद्ध करनी हैं इसलिए वह धन लेकर कुछ दूर गए भार उठाने वाले प्यादे और बैल उसकी सेनामॄ ही स्थित थे वे सब जरासन्धके सुखकेलिए भगवान्के भेजे हुवे थे जीत होने पर कुछ मिलता ही है वह मिला हुआ धन उन भेजे हुवेको देनेकेलिए ही ले आए थे. इस वक्त ही भगवदिच्छासे तेवीस अक्षौहिणी सेनाको साथ लेकर जरासन्ध आ गया. तेवीस ही क्यॄ लाया? इसलिए इतनी लाया, जो विशेष लाता तो समग्र प्रजा नष्ट हो जाती अतः प्रजाको न लाकर केवल प्राकृत ही लाए. अतः सर्वत्र तेवीस अक्षौहिणी ही कहा है।।६।।

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ।
मनुष्यचेष्टामापन्नो राजन् दुद्रुवतुर्द्रुतम् ।। ७ ।।

श्लोकार्थ : राम – कृष्ण शत्रुआॄकी सेना बड़ी वेगसे जा रही है यह देख हे राजन्! मनुष्य नाट्य किए हुवे वे दोनॄ जल्दी भागने लगे।।७।।

व्याख्यार्थ : सेनामॄ जो सैनिक आदि आ रहे थे उन सबको वर मिला था इसलिए पहिलेकी अपेक्षा अब वेगसे आ रहे थे, जिसको देखकर दोनॄ जल्दी भाग गए कारण कि आप मनुष्य चेष्टा करनेको उद्यत हुए हो और मनुष्य नाट्य स्वीकार करने पर देवताआॄका वाक्य मनुष्याॄको पालना चाहिए. मनुष्यको ब्राह्मणके एवं शिवके वचन मान देने योग्य हैं. लोकको मोहमॄ डालनेकेलिए भागवतमॄ इसका कथन नहीं है. 'राजन्!' यह संबोधन स्नेहसे इसलिए दिया है कि इसमॄ राजाको भ्रम उत्पन्न न होवे जिससे जल्दी ही वैसे दोनॄ भागे।।७।।

विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत्।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेरतुर्बहुयोजनम् ।। ८ ।।

श्लोकार्थ : बहुत मिले हुए धनको छोड़कर निर्भय होते भी डरपोकाॄसे भी डरे हुए की भांति कमलके समान कोमल चरणाॄसे बहुत योजन जाने लगे।।८।।

व्याख्यार्थ : भार ढोने वाले तो जल्दी जानेमॄ समर्थ नहीं होते थे इससे उनको छोड़कर ही, बहुत धन भी त्यागकर स्वयं डरे तो नहीं थे किन्तु डरपोकाॄसे भी डरे हुए जैसे ही, यवनाॄके वधसे प्राप्त रथ और अश्व आदि भी वहीं छोड़कर

भूमिको सुख देनेकेलिए कमलके पत्तृके समान कोमल चरणृसे बहुत योजन चित्रकूटके रास्तेसे जाने लगे।।८।।

आभासार्थ : पश्चात् मगध भी भगवान्की लीलाको न जानकर वर प्राप्त करनेसे घमंडी हुआ था अतः पीछे जाने लगे जिसका वर्णन 'पलायमानौ' श्लोकमृ करते हैं:

पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन् बली।
अन्वधावद् रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ।।९।।

श्लोकार्थ : उनको भागते हुवे देख सेना सहित वह हंसता हुवा शीघ्र जानेवाले रथृमृ बैठ उनके पीछे दौड़ा. क्यृकि उन दोनृ ईशृमृ कितनी शक्ति है इसको वही जानता था।।९।।

व्याख्यार्थ : उसने राम और कृष्णकी शक्तिको क्यृ नहीं जाना, जब कि कई बार उन्हृने उसे पकड़ कर छोड़ दिया है? इस शंकाके मिटानेकेलिए जरासन्ध न कहकर 'मागध' कहा है, जिसका भाव यह है कि मागध देशवासी होनेसे इसकी बुद्धि नष्ट हो गई है इस कारणसे हंसता हुआ सेना सहित पीछे दौड़ने लगा. रथ और सेना सहित, जो रथ शीघ्र चलने वाले थे उनमृ बैठ सेनाके साथ गया इससे यह बताया कि रथ तथा सेनाको बहुत कष्ट हुआ, क्या वह कष्ट सफल होगा? इस शंकाका निवारण करते हुवे कहते हैं कि 'ईशयोरप्रमाणवित्', राम कृष्णके सामर्थ्य अथवा उनके आदरणीयपनको नहीं जानता है, भगवान् क्यृ जा रहे हैं? भगवान् अशक्त हैं इसलिए डरकर नहीं जा रहे हैं किन्तु ब्राह्मणके वचनृको सत्य करनेकेलिए ही जारहे हैं. इस रहस्यको उसने समझा नहीं 'ईशयोः' दोनृमृ पूर्ण शक्ति विभक्त है इसको सिद्ध करनेकेलिए दोनृ गए, यदि एक जाते तो ब्राह्मण आदिके वाक्य पूर्ण प्रमाणित नहीं होते इसलिए दोनृने जाकर उनके वचन सत्य प्रमाण किए।।९।।

आभासार्थ : इसके बाद रामकृष्ण दोनृ प्रवर्षण नामवाले ऊंचे पर्वत पर उसके प्रिय मनोरथ पूर्ण करनेकेलिए चढ़ गए, उस पर्वत पर सदैव ठण्ड रहती है उसने भगवान्को शीत मिटानेकेलिए प्रार्थना की थी उस पर्वतसे कभी भी सूर्य अथवा अग्नि का सम्बन्ध नहीं होता था क्यृकि वह बादलृका बहुत प्रिय स्थान है. अतः मेघृसे ढका हुआ रहता है जिससे सूर्यका सम्बन्ध नहीं होता है और सदैव वहां वर्षा होती रहती है इसलिए अग्निका सम्बन्ध नहीं होता है, इस

कारणसे पहिले पर्वतने भगवान्‌को शीत मिटानेकेलिए प्रार्थना की थी. भगवान्‌ने भी वर दिया था कि मैं आकर तेरा शीत निवारण करूंगा इस कारणसे भगवान् अद्‌भुत कर्मा हैं इसका प्रतिपादन करनेकेलिए मुझे थकावट हुई है यॢ दिखाकर उसको मिटानेकेलिए पर्वत पर चढ़ गए जिसका वर्णन 'प्रद्रुत्य' श्लोकमॄ करते हैं:

प्रद्रुत्य दूरं संभ्रान्तौ तुङ्गमारुहतां गिरिम्।
प्रवर्षणाख्यं भगवान् नित्यदा यत्र वर्षति ।। १० ।।

श्लोकार्थ : बहुत दूर तक दौड़नेसे मानो थक गए तब प्रवर्षण नामवाले ऊंचे पर्वत पर चढ़ गए जहां भगवान् स्वयं सदा ही वर्षते रहते हैं।।१०।।

व्याख्यार्थ : कोई भी बहुत दूर दौड़नेके बाद थका हुआ ऊंचे पर्वत पर नहीं चढ़ सकता है, थका हुआ नहीं है उसको भी ऊंचे स्थानमॄ चढ़नेमॄ श्रम होता है. भगवान् तो छिपकर रहने वास्ते हजारॄ उपायॢको जानते हैं, उच्च स्थान पर्वत पर चढ़नेकी क्या आवश्यकता थी बल्कि उच्च स्थान पर बैठे हुवेको सब देख सकते हैं यॢ है किन्तु यहां तो भगवान्‌की अद्भुत् लीला कहनी है, इसलिए विरोधी तरीकेसे कहते हैं.

दूर दौड़नेसे बहुत थक गए हालांकि जो ईश हैं सर्व समर्थ हैं उनकेलिए शीघ्र जाना वा श्रम कुछ भी नहीं है, उसमॄ भी गुप्त रीतिसे बहुत ऊंचे पर्वत पर चढ़ गए, पर्वत पर चढ़नेका प्रयोजन वा प्रकार कहते हैं. जिस पर्वत पर हमेशा वर्षा होती है जिससे उसका नाम प्रवर्षण है, वर्षा तो सब पर्वतॢ पर पड़ती है यह रूढि ही है यहां भी पड़ती है इसमॄ विशेषता क्या है? इस रूढ़िके भ्रमको मिटानेकेलिए कहते हैं कि इस पर्वत पर भगवान् स्वयं वर्षते हैं अन्य स्थानॢ पर मेघ वर्षा करते हैं, वे कभी करते हैं कभी नहीं करते, उनका पर्वतॢका अधिष्ठातादेव विष्णु भगवान् है जैसा कि श्रुतिमॄ ''पर्वतानामधिपतिः'' कहा है, अतः स्वयं विष्णु वहां वर्षते हैं. यदि भगवान् आप वर्षा न करॄ तो लोकमॄ वर्षाकी प्रवृति ही न होवे।।१०।।

आभासार्थ : पश्चात् भ्रमित हुवे जरासन्धने कुछ किया वह 'गिरौ' श्लोकमॄ कहते हैं:

गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप।
ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ।। ११।।

श्लोकार्थ : हे नृप! उनको पर्वतमॄ छिपे हुवे जानकर वहांसे आगे पद

चिह्न नहीं गए हैं यॄ समझकर काष्ठॄसे पर्वतके चारॄ तरफ आग लगाई जिससे वह पर्वत आगसे जलने लगा।।११।।

व्याख्यार्थ : पर्वत पर चढ़ते हुए किन्हॄने देखा ही किन्तु वहांसे आगे नहीं गए इस विषयमॄ विचार भी किए उससे ढूंडनेसे पता लगा कि पर्वतसे आगे इनके चरण चिन्ह भी नहीं हैं, इस पर्वतको अग्नि जलावे जिसका हेतु तो भगवान्ने ही बताया है वह हेतु सत्य हुआ, यॄ तो यहां ही छिप गए हैं यों कहनेकेलिए इसको वैसा ज्ञान कराया. इस प्रकार ज्ञान होनेके बाद दाहकेलिए ही प्रयत्न किया. सत्य संकल्प भगवान्की इच्छासे काष्ठॄसे पर्वतको जलाया, वृक्षॄको तोड़कर सब जगह चारॄ तरफ तृण आदिसे आग लगा दी।।११।।

आभासार्थ : अनन्तर पर्वतकी प्रार्थनाको पूर्णकर भगवान् आगे गए जिसका वर्णन 'ततः' श्लोकमॄ करते हैं:

तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ।
दशैकयोजनोत्तुङ्गान् निपेततुरधो भुवि ।।१२।।

श्लोकार्थ : आग लगाई, किन्तु उस आगसे पर्वतके किनारे सिलगना शुरू होते ही दोनॄ शीघ्र ही ११ योजनकी बड़ी छलांगसे कूदकर पर्वतसे दूर पृथ्वी पर ठहरे।।१२।।

व्याख्यार्थ : अग्नि जले इससे पहिले ही शीघ्र दोनॄने ११ योजनकी बड़ी छलांग मारी, जिससे वे पर्वतके पत्थरके भागसे दूर पृथ्वी पर खड़े हो गए इतनी जल्दी भगवान्ने इसलिएकी कि भगवान्की विद्यमानतामॄ अग्नि पर्वतको जला न सकती अर्थात् तापयुक्त न कर सकती, उन्हॄने जल जानेके भयसे जल्दी नहीं की थी, अभी तो उसके किनारे किनारे अग्नि सिलगने लगी थी, जब वह सर्वत्र प्रकट होने लगी तब पर्वतका मनोरथ पूर्ण देख आप इस प्रकार पधार गए.

आचार्य आज्ञा करते हैं, कोई इस प्रकार भी कहते हैं, कि जब अग्नि जोरसे जलने लगी तब पर्वतने पुनः प्रार्थनाकी जिससे ऊपर उठकर पैरॄके दबाबसे उसको पृथ्वीमॄ प्रवेश कराते हुवे आप दूर हो गए।।१२।।

अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ।
स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ।।१३।।

श्लोकार्थ : हे नृप! यादवॄमॄ श्रेष्ठ वे दोनॄ शत्रुआॄसे न देखे गए अपंग अनुचरॄ सहित समुद्रकी खाईवाली अपनी पुरीमॄ फिर आए।।१३।।

व्याख्यार्थ : पहिले भी उसने अपनी इच्छासे ही प्रवृत्तिकी थी, फिर भी वह प्रवृति करे यों जानते हुवे उसके लक्ष्यमॄ न आवे इस प्रकार ही आप द्वारका गए, जानेमॄ भगवान्ने कोई अधिक परिश्रम नहीं किया, वह न देखे केवल इतना ही. लेकिन उसने तो अपने दोषसे ही न देखा इसको प्रकट करनेकेलिए कहते है, कि 'रिपुणा' शत्रुसे अर्थात् शत्रु था इसलिए उसको दुष्ट बुद्धि हो गई थी जिससे ही उसने न देखा, इसका आशय यह है कि जो दुष्ट बुद्धि होता है वह ही भगवान्का शत्रु होता है, अथवा भगवान्के शत्रु आसुरी संपत वाले होते हैं उनकी बुद्धि इसलिए दुष्ट ही होती है. उस स्वयंने तो न देखा किन्तु उसके अनुचरॄने भी न देखा क्यॄकि इस दुष्ट बुद्धिके संगसे उनकी बुद्धि भी वैसी हो गई थी. जब भगवान्ने सब कार्य पूरे कर लिए तब श्वेतद्वीप आदिमॄ क्यॄ न पधारके गए? द्वारकामॄ जानेका क्या कारण था यदि यॄ कहते हैं तो उसका उत्तर देते हैं, कि 'यदूत्तमौ' यादवॄमॄ उत्तम है इसलिए उनकी रक्षाके वास्ते अपनी द्वारकापुरीमॄ गए, यॄ नहीं करते तो यदुकुलमॄ अवतार क्यॄ लिया? अर्थात् यादवॄमॄ अवतार लेकर उनका हित ही करना था इसलिए द्वारका पधारे, फिर आए यॄ कहनेका भाव यह है कि इनको द्वारकामॄ पहिले स्थापित भी आपने ही किया था यह सिद्ध कर दिखाया है. आप द्वारकाको भारतसे जुदा द्वीप कहते हैं क्यॄकि उसके चारॄ तरफ समुद्ररूप खाईंया हैं, अतः भिन्न द्वीप है जिससे वहां कलिका प्रवेश नहीं हो सकता है इससे उसका विस्तार भी दिखाया है. 'नृप!' सम्बोधन भुलावेमॄ आपको नहीं डालता है इसलिए दिया है।।१३।।

आभासार्थ : 'सोऽपि' श्लोकमॄ उसकी दुबुर्द्धिका वर्णन करते हैं:

सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ।
बलमाकृष्य सुमहन्मगधान् मागधो ययौ ।।१४।।

श्लोकार्थ : वह मागध भी उनको जला हुआ मान अपनी बड़ी सेनाको खींचकर मगध देश ले आया।।१४।।

व्याख्यार्थ : शब्दमॄ उत्पन्न हुए दोषको मिटानेकेलिए यहां 'दग्धि'[१] शब्दको सप्तमी विभक्ति भी माननी चाहिए, यॄ मानकर इसका अर्थ करना कि वह जरासन्ध भी परम सन्तापमॄ बैसे प्रविष्ट हुआ जैसे भगवान् द्वारकामॄ प्रविष्ट हुए, यह उसका परितापमॄ प्रवेश ज्ञानसे हुवा है, न कि क्रियासे दाह हुआ है. नहीं तो आगे पाण्डवॄका यश नहीं बढ़ता वलरामजी और कृष्णचन्द्रको न देख कर जल

गये, ऐसा जो उसने समझा वह उसका समझना झूठा था क्यूंकि शक्तिमान् होनेसे जो ब्रह्मा और शिवके अधिपति हैं जैसे आगसे जल नहीं सकते हैं इसलिए इसने यह जलना झूठ ही समझा, अथवा वह[२] स्वयं तो जला ही है. इसके अनन्तर वह झूठा चिल्लाना सीताकी तरह पाण्डवोंके कीर्तिके वास्ते है, इसके बाद जरासन्धने इनका 'बलपना' और 'केशवपना' झूठा समझा यूं मान लिया कि इनका सर्व तरह नाश हो गया है, अतः अपनी सेनाको लेकर मगधको गया जरासन्ध स्वयं तो सन्तापसे जला किन्तु सेनाको जलानेसे क्या? इस शंकाका निवारण करते हैं कि वह सेना बलशाली तथा महत्व वाली थी, इसलिए उसको भी सन्ताप हुआ जिससे वह भी स्वयं सन्तापसे जलने लगी, जरासन्ध मगध देशको क्यूं गया? मथुरा क्यूं न आया और आकर लड़ाईसे उस पुरीको नाश क्यूं नहीं किया? इस शंकाका निवारण करते हैं कि भगवदिच्छासे उसकी बुद्धी ऐसी हो गई कि यह मथुरा भगवान्का रहनेका स्थान है, वह कायम ही रहे और यहां भगवान् पधारे नहीं इसलिए मगध देशको चला गया. क्यूंकि वह भी मागध है उसमूं देशका ही मात्र दोष रहा है. ''मत्वा तौ बलकेशवौ'' यदि श्लोकमूं पाठ लिया जावे तो भी यही अर्थ होगा।।१४।।

१.'दग्धौ' दग्धि शब्द सप्तमी और क्रिया पद दोनूं हो सकते हैं. २. जरासन्ध संतापसे जल गया.

आभासार्थ:इस प्रकार तामस रुद्र आदिके वाक्यका पालन अथवा निग्रहकर स्त्रियूंका उद्धार करनेकेलिए कृपाकर विवाह आदि किए, यह कहनेकेलिए पहिले बड़े भ्राता बलदेवजीका विवाह 'आनर्त' श्लोकमूं कहते हैं:

आनर्त्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतो रेवतीं सुताम्।
ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद् बलायेति पुरोदितम् ।। १५।।

श्लोकार्थ : आनर्त देशके स्वामी, श्रीमान् रैवतने अपनी रेवती नामवाली कन्याको बलरामजीको दी क्यूंकि ब्रह्माने पहिले ही इसको आज्ञा की थी।।१५।।

व्याख्यार्थ : द्वारकाके समीप वाले देशको आनर्त देश कहा जाता है, उसका स्वामी रैवत था. 'श्रीमान्'से बताया कि वह अमृत ही था उसकी कन्या रेवती नाम वाली थी. वह पहिले ब्रह्मासे पूछने गया कि मैं अपनी कन्या किसको दूं? तब ब्रह्माने कहा कि यह बलरामजीको दो इसलिए छोटा होते भी रामको दी यह आगे नवम स्कन्धमूं निरूपण हुआ है इसका विचार वहां ही किया है।।१५।।

आभासार्थ : 'भगवानपि' इस श्लोकमॄ भगवान्का विवाह कहते है:

भगवानपि गोविन्द उपयेमे कुरूद्वह।

वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे।।१६।।

श्लोकार्थ : हे कुरुद्वह! गोविन्द भगवान्ने भी स्वयंवरमॄ लक्ष्मीकी अंशरूप विदर्भ देशमॄ उत्पन्न भीष्मककी कन्यासे विवाह किया।।१६।।

व्याख्यार्थ : जिसके यहां लक्ष्मी स्वतः ही सिद्ध है और जो स्वयं इन्द्रियॉसे रहित है उसको विवाह करनेका कोई प्रयोजन नहीं, फिर उन्होंने विवाह क्यॉ किया? हालांकि भगवान् हैं तो भी गोविन्द हैं, क्योंकि इन्द्र आदिने आपका इन्द्रपनसे अभिषेक किया है उनका वाक्य सत्य होने इसलिए विवाह किया है, नहीं कि गोपिकाओंकी तरह केवल परिग्रह अंगीकार ही किया है. राजाको 'कुरुद्वह!' सम्बोधनसे यह जताया कि आपको भगवान्के स्वरूपका ज्ञान है यह कर्मसे उत्पन्न हुई है कर्मोंका फलरूप यह है, इसलिए इसका विवाह भी वैसे कर्म करनेवालेके साथ ही होना चाहिए. भगवान्से इसका विवाह कैसे? यदि यॉ कहते हो तो इसका उत्तर यह है, कि वह विदर्भ देशमॄ उत्पन्न हुई है अतः इसका जन्म कर्मसे नहीं हुआ है और भीष्मककी कन्या है और भीष्मकरूपमॄ प्रलय कर्ता महादेवने ही अवतार लिया है, उसकी यह कन्या है. सीता पूर्व जन्ममॄ महादेवकी कन्या थी वह ही अब भीष्मककी कन्या हुई, अतः विवाह करना चाहिए और विशेष यह भी है कि यह लक्ष्मीका अंश भी है इसलिए इसको दूसरा कोई ले नहीं सकता है, जैसे भगवान् अवतार लेते हैं वैसे ही यह भी अवतार लेती है. ''**राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनी**'' जब भगवान् राम रूपसे प्रकट होते हैं तब यह सीता रूपसे प्रकट होती है और जब भगवान् कृष्ण रूपसे प्रादुर्भूत होते हैं तब यह रुक्मिणी होती है, उसमॄ भी स्वयंवरके समयमॄ जब सब राजा जैसे बुलाए गए वैसे भगवान् भी बुलाए गए वहां भगवान्को रुक्मिणीने स्वयं वरा. अनन्तर उसकी इच्छासे विवाह किया।।१६।।

प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान्।

पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव।।१७।।

श्लोकार्थ : शिशुपाल और उसके पक्षपाती शाल्व आदि राजाओंका वधकर जैसे गरुड़ने सुध ली वैसे आप सर्व लोकॉके देखते हुए रुक्मिणीको ले आए।।१७।।

व्याख्यार्थ : और विशेष 'प्रमथ्य तरसा राज्ञः' श्लोकमॄ कहते हैं कि शिशुपालसे लेकर सबको मारकर जीतकर प्राप्त की हुई वस्तुकी भांति उसको ले गए, शाल्व आदि राजा बहुत विरोधी तथा बलिष्ट भी थे उनके साथ लड़ाई करनेमॄ विशेष कारण है वह कहते हैं. 'चैद्यपक्षगान्' वे शाल्व आदि शिशुपालके पक्षपाती थे, स्वयंवरके समयमॄ भी शिशुपालकेलिए जैसा योग्य होगा वैसे करना योग्य है अर्थात् करना चाहिए. रुक्मीके कहनेसे शिशुपाल वरकी भांति आया अतः उसके हित करनेकेलिए भी शाल्व आदि प्रवृत्त हुए है.

भगवान्का मुख्य शत्रु शिशुपाल है, दूसरे विरोधो भी भगवान्से कुछ विरोध करनेकेलिए उसके पक्षपाती बने हैं और विशेष यह है कि भगवान्को प्रद्यम्न आदिको उत्पन्न करना है इस कारणसे तथा काम संकटमॄ है उसके संकटको नष्ट करनेकेलिए उसकी उत्पत्ति करनी थी, इसलिए भी आपने विवाह किया. वह विवाह सर्व लोगॄके देखते हुए किया, जैसे माताकी आपदा मिटाने केलिए गरुड़ने अयोग्यॄको भी अमृत पिलाया, वैसे भगवान्ने कामकी पीड़ाको काटनेके वास्ते अयोग्य भी वैदर्भीको आपने स्वीकार किया और दूसरॄको मारा, जो यह अयोग्य हो तो ये सर्व लोक साक्षी हैं उनको साक्षी बनाकर विवाह किया है, यॄ कहनेका आशय यह है कि विवाह अयोग्य नहीं यदि अयोग्य होता तो जनता उसकी निन्दा करती अथवा रुकावट डालती यॄ नहीं किया जिससे सिद्ध है कि विवाह अयुक्त नहीं है यों सर्व प्रकार भगवान्के विवाहका निरूपण किया है ।।१७।।

आभासार्थ:इस प्रसंगमॄ राजा, भगवान्ने जो विशेष पौरुष दिखाया उसको सुननेकेलिए 'भगवान् भीष्मकसुतां' श्लोकमॄ पूछता है:

राजोवाच

भगवान् भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम्।
राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम्।।१८।।

श्लोकार्थ : भगवान्ने सुन्दर मुखवाली भीष्मककी कन्या रुक्मिणीसे राक्षस नियमानुसार विवाह किया ऐसा सुना है।।१८।।

व्याख्यार्थ : पुराणॄमॄ सुना है कि भगवान्ने अनेक प्रकारसे विवाह किए हैं इस कारणसे राजाने जिससे स्वयंवरमॄ विवाह हुवा उससे दूसरे नमूनेके विवाह सुने हैं उसमॄ पराक्रम अधिक सुना, वह हुवा है वा नहीं हुवा है इस सन्देहको

मिटानेकेलिए राजा पूछता है षड्गुण सम्पन्न होनेसे भगवान्मृ अज्ञान भी नहीं है भीष्मककी कन्या है इसलिए पिता भी बलिष्ट है, रूक्मिणी भगवान्की भार्याआमृ से मुख्य भार्या है पहिला विवाह है तो धर्मानुसार करना चाहिए इस कारणसे भगवान्ने पहिला विवाह अपना धर्मीपना सिद्ध करनेकेलिए धर्मानुसार ही किया है यह ही आप मुझे बताना कि वह धर्म्य विवाह जो राक्षस विधिके अनुसार किया वह किस प्रकार किया, क्षत्रीकेलिए गान्धर्व और राक्षस विवाह धर्मानुकूल है. जैसा कि कहा है गान्धर्व राक्षस व 'धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ' रुक्मिणीका विशेषण 'रुचिराननां' देकर उसका मुग्द भाव प्रकट किया है राक्षस विवाहमृ वह निर्भय होकर कैसे आ गई? यह भी सन्देह है. '**प्रसह्य कन्या हरणं राक्षसो विधिरुच्यते**' जबरदस्तीसे कन्याको हरण कर ले आना राक्षसमृकी विधि है, दूसरेका धन वा स्त्री हरण कर लाना तो दोष है फिर भगवान्ने यह दोष कैसे किया? इसके उत्तरमृ कहते हैं, कि दोष नहीं है क्यूकि क्षत्रियमृकेलिए इस प्रकार कन्या हरण कर ले आना दोष नहीं है, क्यूकि क्षत्रियमृकेलिए वह विधि है, विधि होनेसे दोष नहीं है. जैसे पराई कन्यासे जो विवाह किया जाता है वह इसलिए दोष रहित है जो माता पिता विधिनुसार अपनी कन्या वरको दान कर देता है इस प्रकार हरणमृ भी क्षत्रियको दोष नहीं है. 'श्रुतं' सुना है यह प्रमाण पुराणमृ दिया है।।१८।।

आभासार्थ: अब राजा उस प्रकार 'भगवन् श्रोतुमिच्छामि' श्लोकमृ पूछता है:

भगवन् श्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः।
यथा मागधशाल्वादीन् जित्वैकः पुरमभ्यगात्।।१९।।

श्लोकार्थ: हे भगवान्! जिनके तेजका अन्दाजा कोई नहीं लगा सकता वैसे श्रीकृष्णके उस चरित्रको सुनना चाहता हूं जिसमृ मगध, शाल्व आदिको जीतकर जैसे कन्याको वे ले आए।।१९।।

व्याख्यार्थ : यो कहकर यह बता दिया कि आगे तीन अध्यायमृ जो कथा आने वाली है वह समाधि भाषा नहीं है, क्यूकि प्रश्न ही इस प्रकार किया है. हुई दूसरी जगह सुनी हुई दूसरे कल्पकी भी योगके अभावसे कहिए, यदि या न होता तो स्वतन्त्र कहने वालेको यह कह देनेकी आवश्यकता ही नहीं थी कि पूर्ण सुने हुवे प्रकारसे कहिए, अतः सुननेवालेके आग्रहसे दूसरे कल्पको भी गान्धर्व, राक्षस और वैदिक विधिके भेदसे तीन प्रकार तीन अध्यायमृसे कहमृगे उससे यहां

दिए हुए तीन दूषणाृका भी परिहार हो जाएगा. १.भगवान् कपटसे जाकर जो पिता आदिने दी न थी उसका हरण कर लाए, २.बलभद्रके समझानेसे उसके भाईका मुण्डन किया, ३.और रुक्मिणीने लज्जा त्यागकर बिना पहचानवाले भगवान्को पत्र द्वारा प्रार्थना की. इस प्रकार होनेसे विवाह रसरूप नहीं होता है, भक्ति रस, शृंगार रस आदि रसाृका उपमर्दन करने वाला है अतः समाधि भाषा विवाह स्वयंवर ही है. दूसरे प्रकारका विवाह अन्य मतके हैं यह निश्चय है. जिसका प्रसंग ही नहीं है वह क्याृ कहा जाएगा? यदि ऐसा कहो तो उत्तरमृ कहते हैं कि सुननेवालेकी वैसी इच्छा है. सुननेवालेकी इच्छा पूर्ण करनी चाहिए इसीलिए कहृगे, विशेषमृ यह कथा भी श्रीकृष्णकी ही है, अधिक पराक्रमके कार्य होनेसे वह कहना चाहिए, क्षत्रिय प्रकारानुसार वर्णन करनेसे भगवान्के क्षत्रिय चरित्र मनको हरण करनेवाले होते हैं. शिशुपालने बहुत युद्धाृमृ जय पाई है, शाल्व और सात्विक भी महान् है, इस प्रकार जो जयसे और स्वभावसे आदिमृ ही जैसे वीर हैं उनको जीतना यह भगवान्का किया हुआ चरित्र श्रवण योग्य है, इसलिए निरूपण किया है, इसमृ भी आप अकेले वे बहुत उनको जीतकर आप कुशल पूर्वक अपने पुर द्वारकामृ आ गए वह भी एक ही कल्पमृ वह सब था. विरुद्ध जानकर शुकदेवजीने नहीं कहा तभी तो भगवान् भी बुलाए हुवे गए थे, वरणसे पहिले ही बल पूर्वक उसका हरणकर सबको जीतकर अकेले आप ही घर गए यों कथा बनती है, यद्यपि इसमृ भगवान्का महान् पौरुष दिखता है किन्तु तो भी अत्यन्त क्लिष्ट कर्म होनेके कारण शुकदेवजीने सही कहा है यह ऐसी कथा तामस कल्पमृ हुई है, इस कारणसे ही जितना वह योग्य बन सकता है जितना ही कहना चाहिए इसलिए राक्षस विवाह कहा नहीं, कि अकेले हर ले जाना इससे इस प्रकार प्रसिद्ध किया, जो मैंने पूछा वह योग्य न हो तो मत कहिए।।१६।।

आभासार्थ : भगवान्की कथा तो वह कहनी चाहिए जो उत्तम होवे और जो अति आवश्यक सुनने जैसी हो वह ही सुननी चाहिए यदि याृ कहो तो उसका उत्तर 'ब्रह्मन् कृष्णकथाः' श्लोकमृ देते है:

ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः।
को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः।।२०।।

श्लोकार्थ :हे ब्रह्मन्! भगवान् श्रीकृष्णकी कथाएं पवित्र मधुर और जगत्के मलको दूर करनेवाली हैं तथा नित्य नवीन हैं इसलिए जो सुनकर उसके

तत्वको जान लेता है वह सुनते हुवे तृप्त नहीं होता है अर्थात् कथाके साररूप रसको जाननेवाला कौन ऐसा है वो तृप्त होवे ? कोई नहीं।।२०।।

व्याख्यार्थ : हे ब्रह्मन्! इस सम्बोधनसे यह बताया कि आप ज्ञानवान् हो इस तत्वको जानते हैं, कि यह कथा ज्ञानरूप है, श्रीकृष्णकी कथा होनेसे इसके कीर्तनमॄ और श्रवणमॄ किसीको भी वैराग्य नहीं होता है, अर्थात् सब प्रकारके दैवी जीव सुननेकी इच्छा करते हैं, क्यॄकि प्राणो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थकी अभिलाषा वाले होते हैं और कृष्णकी कथाएं चारॄ पुरुषार्थोंकी ही मूर्ति हैं. 'पुण्याः' विशेषणसे उसका धर्मरूप कहा है, 'माध्वी' विशेषणसे कामरूप है जैसे अर्थ दरिद्रता मिटाता है, जैसे ये कथाएं लोकॄके कश्मलरूप दारिद्र्यको मिटाती है, अतः अर्थरूप है. इस प्रकार त्रिवर्गरूप है, इनकी इच्छावाला कोन ऐसा है जो तृप्त होगा अर्थात् कोई भी इससे विरक्त न होगा, यदि यॄ है तो सब क्यॄ नहीं इसमॄ प्रवृत्त होते हैं ? एक बार सुनकर निवृत्त हो जाते हैं यदि यॄ कहते हो तो इसका उत्तर यह है कि वे निवृत्त हो जाते हैं जो सुने हुवे चरित्रके रसको नहीं समझते और जो समझते हैं वे विरक्त नहीं होते हैं उनकी ही इसमॄ प्रवृत्ति बनी रहती है. इसलिए कहा है 'श्रुतज्ञः' वर्तमान प्रयोग देकर यह बताया है कि यदि निरन्तर श्रवणका अवसर प्राप्त होते हुवे भी वह श्रवणका रस जानने वाले ही मुख्य श्रोता होता है, इन कथाओॄको काल अपना ग्रास नहीं बना सकता इसलिए मोक्षरूप भी है।।२०।।

आभासार्थ : इस प्रकार राजाको श्रवणकी उत्सुकता देखकर अपने योगबलसे ही जो देखा वही कथा प्रारम्भ करते हैं दूसरेसे सुनी हुई नहीं कहते हैं 'राजसीत्' श्लोकसे प्रारम्भ करते है:

श्रीशुक उवाच

राजासीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान्।

तस्य पञ्चाभवन् पुत्राः कन्यैका च वरानना।।२१।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि विदर्भ देशका महान् राजा भीष्मक नामवाला था जिसके पांच पुत्र और एक सुन्दर कन्या थी।।२१।।

व्यायार्स्थ : 'आसीत्' क्रिया पदसे बताया कि यह पूर्व समयकी कथा है भीष्मक नाम प्रसिद्धिकेलिए दिया है, वह दूसरे स्थान[१] पर नहीं रहते थे उसके साथवाले सर्व तुल्य धर्मा हैं, इसलिए विदर्भ देशका स्वामी कहा है. 'महान्'

विशेषणसे यहां दिखाया है कि इसमृ सत्य आदि ४१ गुण हैं यह [२]अर्थ पहिलेसे विलक्षण है, ''अभ्रातृमती न विवाह्ये'' जिसको भाई न हो उससे विवाह नहीं करना चाहिए इस कारणसे भगवान्के पञ्चपर्वात्मक अविद्याके माया कार्यरूप पांच देव लक्ष्मीसे प्रथम उत्पन्न हुए, यों उनका निरूपण करते हैं. उसको पांच पुत्र हुए. ''**मायया मे विनिर्मिताः**'' इस वाक्यके अनुसार रमाने भी मानो दूसरा रूप धारण किया जिसको माया कहते हैं, इस प्रकार लक्ष्मी मायारूप है और मायाका कार्य अविद्या है, उस समेत माया वहां प्रकट हुई है, इस कारणसे ही वह जीवको पकड़ती है, इसलिए रुक्मिने मायारूपका जीवसे सम्बन्ध करानेका विचार किया अतः रुक्मिणीका रुक्मी आदिमृ पक्षपात था और भगवान्केलिए सन्तोष नहीं था जब रुक्मिणीको अपने स्वरूपका अज्ञान मिटाकर ज्ञान होगा तब निरोध फलेगा, भगवदीयामृ रुक्मिकी प्रतिष्ठाका अभाव हो इसलिए उसका मुण्डन किया उस भीष्मकको पांच पुत्र हुए और एक कन्या हुई वह ऐसी सुन्दर थी जो लोकमृ उसके सुन्दरताकी प्रशंसा करते थे. तथा 'दया'[३] पदसे उसके मुग्ध भावका भी निरूपण किया है।।२१।।

१. भीष्मक महादेवका अवतार है जिससे उसका कर्मसे सम्बन्ध नहीं है तथा उसके साथी भी कर्म सम्बन्ध रहित हैं इसलिए वह अन्यत्र नहीं रहता है.

२. पहलेका विवाह समाधि भाषा है या कहकर वहां वैदर्भी नाम देनेसे बताया कि उसके पिता भीष्मकका कर्मसे सम्बन्ध नहीं है यह उसकी महानता विशेष रूपसे दिखाई है.

३. बहिन दयाकी मूर्ति है इस उक्तिके अनुसार भ्राताआमृके निरूपणके साथ बहिनका निरूपण करनेसे उसका दयारूप कहा.

आभासार्थ : उन पांचो पुत्रामृके नाम 'रुक्म्यग्रजो' श्लोकसे कहते हैं:

रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः।
रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती।।२२।।

श्लोकार्थ : सबसे बड़े भाईका नाम रुक्मी फिर रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और पांचवा रुक्ममाली था इनकी बहिन सती रुक्मिणी थी।।२२।।

व्याख्यार्थ : कलिके रहनेका स्थान स्वर्ण है, वह पञ्च रूप होता है, अतः ये पांच भी उसके नाम वाले हैं इसलिए भगवान् आगे कहृगे कि 'तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति' इसी कारणसे बहुत कर धनवान् मेरा भजन नहीं करते हैं.

प्रथम जन्मा हुआ बड़ा रुक्मी सुवर्णके समान है, सचमुच जैसा नाम है

वैसे योगकी अपेक्षा नहीं करता है, रुक्मरथ यह दूसरा, रुक्मबाहु तीसरा ये तीन ही एक प्रकृति वाले हैं, शेष दो दूसरी प्रकृति वाले हैं इसीलिए 'अनन्तरः' पद दिया है. उन एक प्रकृति वाले तीनूके नाम देनेके बाद इन दोका और रुक्मिणीका प्रथक् नाम कहकर बताया है, कि इनकी दूसरी प्रकृति है, रुक्मकेश चौथा और रुक्ममाली पांचवा था. इनका योगके अनुसार अर्थ आप ही समझ लेना चाहिए, इनकी प्यारी बहिन रुक्मिणी भी एक ही मातासे उत्पन्न हुई है, अतः वह भी उन जैसी दुष्ट होगी? इस शंकाको मिटानेकेलिए इसका विशेषण 'सत' देकर इसको दुष्टताका निषेध किया है।।२२।।

आभासार्थ: इस प्रकार रुक्मिणीकी उत्पत्ति कहकर अब दो श्लोकूसे भगवान्का उसमू स्नेह है, उसका भगवान्मू स्नेह है, इसको गान्धर्व विवाह करनेमू हेतु वर्णन करते हैं:

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्ययशश्रियः।
गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम्।।२३।।
तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणान्विताम्।
कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे।।२४।।

श्लोकार्थ: वह रुक्मिणी घरमू आये हुए विद्वान् ब्राह्मण आदिसे गाए हुए श्रीकृष्णके रूप, वीर्य, गुण और वैभवूको सुन उनको ही अपने योग्य पति समझा ।।२३।।

श्लोकार्थ: इस प्रकार भगवान्ने भी उसको 'रुक्मिणीको' बुद्धिके लक्षण, उदारता, सुन्दररूप और शील तथा गुणूसे युक्त जान अपने योग्य समझा, उससे विवाह करनेका मनमू निश्चय कर लिया।।२४।।

व्याख्यार्थ : वह रुक्मिणी, मैं फिर जन्मके चक्करमू न फसूं, इस इच्छासे मोक्षदाता भगवान्के गुणूको ही सुनती है वरमू जो गुण कन्या चाहती है, वे सर्व श्रीकृष्णमू हैं ऐसा उसने सुना. १-कन्याको वर पसन्द है जिसका रूप सुन्दर होके यदि क्षत्री होवे तो वीर्य चाहिए, विद्याके स्थान पर यश चाहिए, और कुलके स्थान पर श्रीलक्ष्मी चाहिए, इससे बहुत धन तथा सर्व प्रकारकी समृद्धिकी सूचना दी इस प्रकार वरमू जो पांच रूप चाहिए वे इनमू हैं यह भी बता दिया. कन्या तो अन्तःपुरमू भीतर ही रहती है उसने श्रीकृष्णके गुण कहांसे और कैसे सुने? इस शंकाको मिटानेकेलिए कहा कि 'गृहागतैर्गीयमानाः' घरमू जो ब्राह्मण विद्यासे

आजीविका करनेवाले आते थे और साधु तथा वृद्ध आते थे, क्यूंकि उनको कहीं भी चले जानेकी रुकावट नहीं थी और वे श्रीकृष्णके गुण गान करते थे उनसे सुनती थी, गुणूके सुननेसे उसने भगवान्‌को ही अपने योग्य पति समझा.

भगवान्‌ने भी उसको अपने योग्य पत्नी समझा इसी कारणसे उससे विवाह करनेमूं मन लगाया उसमूं भी पांच गुण थे यदि इन पांचूसे एक भी कम हो तो वह कन्या ग्रहण करने योग्य नहीं है, पहिले बुद्धि वाली चाहिए, यदि सयानी नहीं हो तो घरका नाश हो जाता है स्त्री लक्षणूसे जो रहित है वह सामुद्रिक शास्त्रमूं कहे हुए गुणूसे रहित होनेसे भाग्यहीन ही होती है, स्त्रीमूं उदारताका गुण भी चाहिए, यदि वह गुण उसमूं नहीं है तो लोभिन होनेसे सर्व पुरुषार्थोंको नाश करेगी, यदि रूप नहीं है तो विवाह व्यर्थ है, यदि चरित्र अच्छा नहीं है तो अधर्मको उत्पन्न करेगी, अतः ये पांच गुण जो लोकमूं प्रसिद्ध हैं वे उसमूं हूं तो उससे विवाह करना चाहिए, जिसमें उपरोक्त पांच गुण मिले हुए हैं उसमूं किसी प्रकार व्यभिचारि सम्बन्ध नहीं होगा. 'च' पदका भावार्थ यह है कि कृष्ण भी पांचूं गुणूसे युक्त होनेसे वैसा ही योग्य है अतः यह भी समान ही है, उस विवाहको उत्तम विवाह कहा जायगा कन्याका पिता बुलाकर कन्यादान कर देवे वह ही शोभा बढ़ाने वाला विवाह है।।२४।।

आभासार्थ : बान्धवूकी इच्छा थी कि बहिन, कृष्णको दी जावे किन्तु वैसा नहीं हुआ जिसका वर्णन 'बन्धूनामिच्छतां दातुं' श्लोकमूं करते हैं:

बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप।
ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यममन्यत।।२५।।

श्लोकार्थ : हे राजा! सब भाई तो अपनी बहिन कृष्णको देनी चाहते थे, किन्तु कृष्णके बैरी रुक्मीने उससे फेरकर चैद्य राजाको देनी मंजूर की।।२५।।

व्याख्यार्थ : पिता आदिसे लेकर सब कुलके सम्बन्धी भी कृष्णको देनेकी इच्छा वाले थे क्यूंकि कृष्ण सदानन्द है दूसरे गुण फलूको सिद्ध करने वाले हैं ये तो साक्षात् ही फल रूप हैं, वहां रुक्मीने भगवान् वर हूं यह न मानकर शिशुपालको वररूप मान लिया, स्वरूपके अज्ञानसे ही अपना कार्य सिद्ध करना चाहिए वहां पूर्व जन्ममूं सीताकेलिए ही रावणको मारा था, उसमूं पूर्ण रीतिसे आसक्त चित्त होनेसे ही रावण मरा अतः लोक विचारसे उसको देनी चाहिए यूं होता है. रुक्मिणीका बड़ा भाई है इसलिए उसकी प्रबलता है. 'हे नृप!'

सम्बोधनसे यह सूचित किया है कि राजाकी कन्या राजाको देनी चाहिए यह इसका अभिप्राय आप जानते ही हैं, इस कारणसे रुक्मीने कृष्णसे सगाई टालकर शिशुपालकी सगाई स्वीकार करली क्यूंकि रुक्मी कृष्णका द्वेषी था उसके स्वरूपका नाश करने वाले भगवान् मित्र नहीं हो सकते हैं अतः शत्रुअूमृ यह मुख्य है यूं समझकर चैद्यको वरपनसे स्वीकार किया. इस प्रकार कहनेसे सर्वको इसमृ सम्मति हो गई यह भी सूचित कर दिया कि राजा कुलीन तथा महान् है।।२५।।

आभासार्थ : शिशुपाल मेरा वर हो, यह रुक्मिणीको पसन्द नहीं था इसलिए अपनेको भगवान् ग्रहण करू ऐसी मनमृ इच्छा की और उसकेलिए प्रयत्न किया जिसका वर्णन 'तदवेत्यासितापाङ्गी' श्लोकमृ करते हैं:

तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम्।
विचिन्त्याप्तं द्विजं कञ्चित्कृष्णाय प्राहिणोद् द्रुतम्।।२६।।

श्लोकार्थ : जब रुक्मिणीने यह जान लिया तब वह श्याम कटाक्षवाली रुक्मिणी बहुत उदास हुई, विचारकर किसी विश्वासपात्र ब्राह्मणको कृष्णके पास जल्दी भेज दिया।।२६।।

व्याख्यार्थ : पहिले सुनी हुई बातका पूर्ण रीतिसे निश्चयकर बहुत उदास मन वाली हो गई, उदास क्यूं हुई? भगवान्के प्राप्तिको सिद्ध करनेवाले कर्मकर भगवान्को वर बना लेगी चित्तकी व्याकुलता करनेसे क्या? इसके उत्तरमृ कहते हैं, कि 'वैदर्भी' है, अर्थात् विदर्भ देशमृ उत्पन्न होनेसे जैसे उस देशमृ दर्भ उत्पन्न नहीं होते हैं, वैसे इसमृ कार्य उत्पन्न नहीं होते हैं, और विशेष यह परम सुन्दरी है, इसलिए जो परम सुन्दर हो उससे ही विवाह करना योग्य है, कि कुरूप जीवके साथ योग्य है अतः पहले उदास हुई पश्चात् विचार करने लगी कि क्या उपाय करू? उपायका विचार करते ध्यानमृ आया कि यह कार्य तो मित्र ही कर सकेगा उससे ही कराना चाहिए यूं निश्चयकर मित्रको ढूंढने लगी, सबके मित्र तीन होते हैं. गौ, ब्राह्मण और देव. इनमृ गौ तो अज्ञ है और साधारण है, भगवान्को बेहद पक्षपात करने वाली नहीं है इस कारणसे इस कार्यमृ सत्यवक्ता विश्वासपात्र ब्राह्मण ही इस कार्य करनेमृ सहायक होगा, क्यूंकि ब्राह्मण भगवान्के बेहद पक्षपाती हैं यूं पूर्ण विचारकर किसी आप्त गुप्त कार्यको सिद्ध कर देनेवाले ब्राह्मणको शीघ्र ही भगवान्के पास भेजा अर्थात् सन्देश देकर अथवा पत्र देकर उस ब्राह्मणकी रवानगी की।।२६।।

आभासार्थ : उस ब्राह्मणका बाहिरके कार्यका वर्णन 'द्वारकां स' श्लोकमॄ करते हैं:

द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः।
अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं काञ्चनासने।।२७।।

श्लोकार्थ : वह ब्राह्मण द्वारकामॄ पहुंचा और दरवानॄसे अन्दर भेजा गया वहां सोनेके सिंहासन पर विराजमान आद्य पुरुषके उसके दर्शन किए।।२७।।

व्याख्यार्थ : उस ब्राह्मणने सगुण तथा निर्गुण दोनॄ कार्य किए, वह जल्दी ही द्वारकामॄ पहुंचकर पहिले ही भगवान्‌की आज्ञा प्राप्तकर ड्यौढी वालॄसे अन्दर भेजा गया, क्यॄकि कार्य सिद्ध करनेकेलिए आया है. बीचमॄ अपने पुरुषार्थ भी सिद्ध करने लगा, प्रथम जाते ही दर्शन किए, दर्शन करना बीचका कार्य क्यॄ न समझाया जाय? इसके उत्तरमॄ कहते हैं, कि 'आद्य पुरुषं' दर्शन आद्य पुरुषका किया, वह सर्वके पति हैं, पतिका दर्शन सबकेलिए पुरुषार्थ है उसमॄ भी मुख्य पति भगवान् ही हैं, अन्य सर्व प्रकृति रूप हैं यॄ आगे कह दिया है, वैसे भगवान् तो कार्यकेलिए आए हैं इसलिए कार्यमॄ बहुत फंसे ह्यॄगे, तो दोनॄ कार्य कैसे सिद्ध ह्यॄगे इसके उत्तरमॄमॄ कहते हैं कि वे कार्यमॄ व्यग्र नहीं हैं, इसलिए स्वर्णके सिंहासन पर विराजमान हैं, सोनेके सिंहासन पर विराजमानसे यह भी सूचित किया है कि सर्व विषयॄको भी स्वीकार किए हैं, इससे दोनॄ कार्यकी सिद्धि होगी।।२७।।

आभासार्थ : अनन्तर उसके आतिथ्य सत्कारको 'दृष्ट्वा' श्लोकसे कहते हैं:

दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात्।
उपवेश्यार्हयाञ्चक्रे यथात्मानं दिवौकसः।।२८।।

श्लोकार्थ : भगवान् ब्राह्मणको देखकर अपने आसन परसे स्वयं नीचे उतरकर उसको बिठाकर वैसे उसकी पूजा करने लगे जैसे देव लोग आपकी करते हैं।।२८।।

व्याख्यार्थ : यदि ब्राह्मणसे आनेका कारण पूछ पीछे सत्कार करते तो वह सम्मान स्त्रीके कारण समझा जाता, यदि आर्ष ज्ञानसे जानकर पूजाकी होती तो वह कृत्रिम पूजा बनती इन दोषॄको मिटानेकेलिए दूसरा धर्म बताते हैं, कि भगवान् ब्राह्मण देव हैं इसलिए भगवान् ब्राह्मणको घरमॄ पधारते देख आसनसे नीचे उतरकर देवके समान उसकी पूजा करने लगे, वह प्रकार बताते हैं. जब

ब्राह्मण आया तब भगवान् स्वर्णके सिंहासन पर विराजमान थे, उसको देखते ही आसन परसे उठे और ब्राह्मणके पास जाकर उसको लेके अपने आसन पर बिठाया, बादमृ उसकी पूजा की, विशेष जाननेकी इच्छामृ धर्म प्रकट कर दिखाते हैं 'दिवौकसो देवा यथा भगवन्तं' देव जैसे भगवान्की पूजा करते हैं जैसे कि जब भगवान् स्वर्गमृ पधारते हैं तब इन्द्र भगवान्को अपने घर पधारते देख अपने आसन पर भगवान्को विराजमान कर जितनी अपनी समृद्धि पास है उससे भगवान्की पूजा करता है, इस प्रकार भगवान्ने भी सर्व समृद्धिसे ब्राह्मणका पूजन किया।।२।।

आभासार्थ : उसके राज्यमृ बहुत करके धर्म नहीं है इसलिए उसको अपने दर्शनका फल, ज्ञानका उपदेश कर देते हैं:

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तम् उपगम्य सतां गतिः।
पाणिनाभिमृशन् पादावव्यग्रस्तम् अपृच्छत।।२६।।

श्लोकार्थ : जब उसने भोजन कर लिया और मार्गकी थकावट दूर हुई तब सत्पुरुषृकी गति भगवान् उसके पास जाके हाथसे पांवृको चांपते हुए धैर्यसे पूछने लगे।।२९।।

व्याख्यार्थ : भोजन पर्यन्त सब प्रकारकी सेवा की, ब्राह्मणको सबसे प्रिय भोजन है भोजनके श्रमके निवृत होजानेके पश्चात् समीप जाकर हाथसे पादृको चांपते हुवे क्षुब्ध न होके धीरजसे पूछने लगे, भगवान् होकर भी साधारण ब्राह्मणका भी वैसा सत्कार क्यृ करते हैं? इसके समाधानमृ कहते हैं, कि भगवान् सत्पुरुषृकी गति हैं, और लोगृको शिक्षा देनेकेलिए यृ करते हैं।।२६।।

आभासार्थ : 'कच्चिद् द्विजवर' श्लोकसे पांच श्लोकृमृ ज्ञानका उपदेश करते हैं:

श्रीभगवानुवाच
कच्चिद् द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसंमतः।
वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा।।३०।।

श्लोकार्थ : श्रीभगवान् कहने लगे कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ!, वृद्ध पुरुषृके समान धर्म पर तू चल रहा है उसमृ कोई रुकावट तो नहीं है सदा संतोषयुक्त मनसे उसमृ प्रवृत्त हो रहे हो न?।।३०।।

व्याख्यार्थ : चार श्लोकृसे ब्राह्मणका, एकसे राजाका धर्म कहते हैं. ब्राह्मणृकेलिए चारृ ही पुरुषार्थ हैं, राजाकेलिए दो अर्थ–'अर्थ और काम' मोक्ष

नहीं है और धर्म सन्देहवाला है. अर्थात् होवे वा न भी होवे अतः ब्राह्मण ही पूछा जाता है, प्रारम्भमृ उसका धर्म पूछते हैं, आप ब्राह्मणृमृ श्रेष्ठ हैं क्यृकि आप वेदज्ञ विप्रृसे मेत्री करते हैं, इस कारणसे वह प्राणीमात्रके मित्र हैं, जिससे वैसा सम्बोधन दिया है, यद्यपि यह धर्म तो होता ही है तो भी वह वृद्धृकी रायके अनुसार परम्परासे चलता आया श्रौत और स्मार्त भी कुछ होता रहता है कि नहीं? जिस धर्ममृ अपनेको वा दूसरेको पीड़ा होवे वह किया हुआ धर्म शुद्ध नहीं होता है उत्तर काण्डके अनुरोधको भी अंगीकार कर कहते हैं, कि 'नातिकृच्छ्रेण' बहुत कलेश देने वाला धर्म भी धर्म नहीं है अर्थात् जिस धर्मके करनेसे अपनेको तथा दूसरृको क्लेश होवे वह धर्म नहीं है. उसमृ भी जो शुद्ध मनसे अर्थात् शान्त तथा सन्तुष्ट मनसे किया हुआ धर्म ही धर्म है. ब्राह्मणृके मनको शुद्धिका लक्षण सन्तोष ही है इसलिए उससे पूछते हैं कि आप सदैव संतोष युक्त मनसे धर्म पालन करते हो कि नहीं?।।३०।।

आभासार्थ : 'संतुष्टो यर्हि' श्लोकमृ दूसरे पुरुषार्थ 'अर्थ'को पूछते हैं:

संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित्।
अहीयमानः स्वधर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक्।।३१।।

श्लोकार्थ : ब्राह्मण जो कुछ प्राप्त हो उसमृ ही संतोष रखे, संतोषकेलिए अपने धर्मसे न डिगने पर वह सन्तोष ही इसकी सर्व कामनाआृको पूर्ण करता है।।३१।।

व्याख्यार्थ : सन्तोष ही ब्राह्मणृका कामधेनुके समान धन है लोकमृ प्रसिद्ध जो धन है वह ब्राह्मणृका धन नहीं है, कर्मके अनुसार जीवनकेलिए अवश्य जिस किसीसे प्राप्त होता ही है. उससे जो सन्तुष्ट रहता है तो उस पर कर्म फल देनेवाला परमेश्वर उस पर प्रसन्न होता है यदि ब्राह्मण असन्तोष प्रकट करेगा तो भी विशेष तो नहीं द्रृगे, किन्तु वह परमात्मा उस पर अप्रसन्न ह्रृगे इसलिए उस सन्तोषकेलिए अपने धर्मसे न डिगकर यदि समस्त अपना धर्म पालन करता रहे तो वह सन्तोष ही उसकी समस्त कामनाएं पूर्ण करता है, इस प्रकार सन्तोष रखकर अपना धर्म पालन न करना, ऐसी स्थिति दुर्लभ है यह भी इससे सूचित किया है।।३१।।

आभासार्थ : 'असंतुष्टः' श्लोकसे तीसरा पुरुषार्थ 'काम' पूछते हैं:

असंतुष्टोऽसकृत्क्लेशान् आप्नोत्यपि सुरेश्वरः।

अकिञ्चनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः।।३२।।

श्लोकार्थ : जो असन्तोषी है वह इन्द्र भी बन जावे तो भी सदैव क्लेशाृको प्राप्त होता है, जो गरीब होते भी सन्तोषी है तो उसको किसी प्रकारका क्लेश नहीं होता है वह सुखसे नींद लेता है।।३२।।

व्याख्यार्थ : ब्राह्मणाृकी सच्ची उन्नति एवं सत्य आनन्द प्राप्तिमृ काम ही बाधा डालने वाला है तृष्णाका अभावरूप काम ही पुरुषार्थरूप है, ऐसा होनेमृ हेतु कहते हैं, कि जिसको सन्तोष नहीं वह निरन्तर क्लेशाृको ही पाता है यदि कहो कि धनादि न होनेसे सन्तोष नही होता है तो कहते हैं, कि ऐसा नहीं है यदि तृष्णा बनी रहती है तो इन्द्र हो जावे अर्थात इन्द्र जितनी वा इन्द्रकी भी सम्पति प्राप्त हो जावे तो भी असन्तोषी ही रहता है, जिससे क्लेशाृको ही पाता है इसमृ अनुभव प्रमाण है. ''प्रजापत आशया वै श्राम्यसि इति'' अन्वय और व्यतिरेक दोनाृसे व्यभिचार कहते हुए, व्यतिरेकमृ अनुभव करते हैं कुछ भी पास न होवे तो भी यदि सन्तोषी है तो वह अत्यन्त सुखी है वह कैसे सुखी है? इसका समाधान करते हुए कहते हैं, कि निद्रा सुखरूप है इसलिए उसे वह सुखरूप निद्रा आ जाती है जिससे वह आनन्दसे नींद लेता है दोनाृ प्रकारके वादियाृसे सिद्ध हेतु कहना चाहिए इस पर कहते हैं, कि जो सन्तोषी है वह नींद लेता है और जिसको सन्तोष नहीं है उसको राज्य भी मिल जाय तो भी शान्ति न होनेसे सुखकी नींद नहीं आती है, प्रायः वह जागता ही रहता है. वह क्याृ जागता रहता है? इसमृ कारण बताते हैं कि नींद उसको आती है जिसके अंगाृमृ ताप नहीं होता है असन्तोष होने पर चिन्ता होनेसे सब शरीरमृ ताप रहता है जिससे नींद नहीं आती है।।३२।।

आभासार्थ : संतोषसे ही ब्राह्मणाृको सहज मोक्ष मिल जाता है यह कैमुतिकन्यायसे 'विप्रान्स्वलाभ सन्तुष्टान्' श्लोकमृ कहते हैं:

विप्रान्स्वलाभ सन्तुष्टान्साधून् भूतसुहृत्तमान्।
निरहङ्कारिणः शान्तान्नमस्ये शिरसा सकृत्।।३३।।

श्लोकार्थ : जो ब्राह्मण स्वयं जो कुछ मिल जावे उसमृ ही सन्तुष्ट प्रसन्न होकर रहते हैं, सदाचारवाले हैं, जीवाृका हित ही चाहते हैं, अहंकार रहित हैं, शान्ताचित्त हैं, वैसे ब्राह्मणाृको मैं बार – बार सिरसे प्रणाम करता हूं।।३३।।

व्याख्यार्थ : मोक्षमृ सबसे विशेष ज्ञानात्मक आत्माका लाभ है, सदाचारी ब्राह्मणाृका स्वाभाविक आन्तर धर्म सर्व भूताृसे सौहार्द है, अधिक

अहंकारका अभाव चित्तवृतिमृ शान्ति इस प्रकारसे पांच धर्मोंसे युक्त ब्राह्मणृको मैं सिरसे बार-बार सदा ही नमस्कार करता हूं. व्यवहारमृ उनको गुरूपनसे मानता हूं, कुछ पढ़कर वैसे करते हैं इस पक्षका निवारण करते कहते हैं, कि एक बार नहीं किन्तु बार-बार नमन करता हूं. जहां मोक्ष देनेवाले ब्राह्मणृको इस प्रकार मानते हैं वहां उनके मोक्ष प्राप्तिमृ कौनसा संदेह है? कोई नहीं है. उनमृ विशेषकर पूरक छः गुण कहे हैं अथवा ये छः गुण उनकी भगवान्से समानता बतलानेकेलिए कहे हैं, ऐश्वर्यमृ तो नियमसे सर्वत्र विशेष पूरकत्व नहीं है, वीर्यमृ अपना लाभ नहीं है, यशमृ समान दृष्टि नहीं होती है, श्री होने पर सर्व प्रकार भूतृमृ सौहार्द नहीं होता है, ज्ञानमृ कभी अहंकार भी हो जाता है, वैराग्यमृ कुछ विशेष भी कभी होता है, ये छः गुण उत्तम होनेसे अपने आप ही भगवत्व सिद्ध होता है, अतः मैं नमस्कार करता हूं, इसमृ कुछ भी विरुद्ध नहीं है।।३३।।

आभासार्थ : 'कच्चिद्वः कुशलं' श्लोकमृ राजासे तो आपको कोई तपलीफ नहीं है उसकी तरफसे सब कुशल है यह पूछते हैं:

कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन् राजतो यस्य हि प्रजाः।
सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः।।३४।।

श्लोकार्थ : हे ब्रह्मन्, आप राजाकी तरफसे प्रसन्न हैं? जिस राजाकी प्रजा अपने राज्यमृ सुखसे रहती है और अच्छी तरह जिस राजासे पाली जाती है, वह राजा मुझे प्यारा लगता है।।३४।।

व्याख्यार्थ : तुम लोगृका राजाकी तरफसे तो कुशल है न? 'हे ब्रह्मन्!' संबोधन अपकार होने पर भी चुप रहते हो इस गुणको दिखानेकेलिए अथवा उलटा कार्य होने पर नाशकेलिए दिया है, यदि राजा प्रजाको सुखी करे तो क्या होता है? ऐसे राजाको जो जो फल मिलता है और उससे प्रजा अच्छी तरह पाली जाती है, वह राजा मुझे प्यारा है, इससे उसका सर्व प्रकारका हित सिद्ध होता है यृ कह बतलाया है।।३४।।

आभासार्थ : इस प्रकार कुशलता पूछकर, जो आप कार्य कहोगे वह हम करृगे इस अभिप्रायसे उसको 'यतस्त्वमागतो' श्लोकसे सान्त्वना देते हैं:

यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया।
सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत् किं कार्यं करवाम ते।।३५।।

श्लोकार्थ : जिस कारणसे और जिस इच्छासे आप इस दुर्गको पार

उतरकर यहां आए हैं, वह यदि गुप्त न हो तो सर्व कहिए जो कार्य करना हो वह कहदो तो आपका वह कार्य हम करू।।३५।।

व्याख्यार्थ : सारे दुर्गका उलंघनकर जिस हेतुसे आप आए हैं वह यदि गुप्त न होवे तो सब कहो, यदि कुछ कार्य करना है तो वह कौन सा कार्य है? यदि समस्त जगत्को मोक्ष देना है तो भी आपका कार्य हम करूगे, आपका सर्व कार्य करूगे दूसरेका नहीं।।३५।।

आभासार्थ : इस प्रकार पूछने पर अपना अभिप्राय कहता है यह इस 'एवं' श्लोकमू कहते हैं:

एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना।
लीला गृहीत देहेन तस्मै सर्वमवर्णयत्।।३६।।

श्लोकार्थ : लीलासे वपुधारी भगवान्ने जब इस प्रकार ब्राह्मणसे प्रश्न किया तब ब्राह्मणने भगवान्को सर्व वर्णनकर बताया।।३६।।

व्याख्यार्थ : जिस ब्राह्मणसे वैसे प्रश्न किए हैं वह निष्कपट है, अतः ब्राह्मणने जो ब्रह्माका भी पिता है और जिसने लीलासे यह देहाकार दिखाया है तथा जिसने आनेका सब कारण जान ही लिया है. उनको वहांका सारा समाचार वर्णनकर बताने लगा।।३६।।

आभासार्थ : योग्य सब समाचार कहकर रुक्मिणीके वाक्य अपने मुखसे अथवा पत्र द्वारा निरूपण करता है 'श्रुत्वा गुणान्' इस श्लोकसे सात श्लोकामू:

रुक्मिण्युवाच

श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ।।३७।।

श्लोकार्थ : हे भुवनसुन्दर! सुननेवालाके कानाके छिद्रासे भीतर जाके अंगाके तापको हरण करनेवाले आपके गुणाको और नेत्र वालाके नेत्राको सर्व प्रकारके अर्थ लाभ देनेवाले रूपको सुनकर हे अच्युत! आपमू यह मेरा निर्लज्ज चित्त प्रवेश करता है।।३७।।

व्याख्यार्थ : बिना रुकावट सर्व कार्य तब सिद्ध होते हैं, जब छः गुणा और सातवू गुणी भगवान्की प्रार्थनाकी जाती है इसलिए सातासे प्रार्थना करनी है, पहिले धर्मी भगवान्को प्रार्थना करती है कि आपके गुणाको सुनकर आपमू चित्तने प्रवेश किया है, याू कहनेसे बताया, कि मनकी वृत्ति आपमू आसक्त हो गई है,

आत्मा तो आप हैं ही, यदि इन्द्रियां, अन्तःकरण अथवा शरीर अन्यके परायण हो जाय तो सर्व नाश हो जावे, यों निश्चय कर, इन्द्रियां आपके परायण होने पर मन भी आपमॄ प्रवृत्त हुआ है शेष रहा हुआ शरीर भी आपमॄ रत करूं इसलिए यह मेरा उद्यम है यह ही सबको मिला देनेवाला कहनेका तात्पर्य है, अब कमसे गुणॄका निरूपण किया जाता है यह तो भगवान्का ऐश्वर्य सूचित किया है, गुणॄके द्वारा अपने आप भी चितका वशीकरण हो जाता है वह ऐश्वर्यसे भी ऐश्वर्य है, भगवान्के कान्ति,गुण और स्वरूपॄका माहात्म्य निरूपण किया जाता है. हे भुवनसुन्दर! सर्व भुवनॄमॄ एक आप ही सुन्दर हैं इससे यह बताया है कि आपको विशेष शोभासे स्त्रियॄके चित्तकी वृत्ति आप ही आपमॄ प्रविष्ट हो जाती है, श्रोताओॄके कानॄके छिद्रॄसे भीतर प्रवेशकर अंगॄके तापॄको मिटानेवाले आपके गुण हैं. और नेत्र वालॄके समस्त अर्थोंका लाभ करानेवाला आपका रूप है, यह सुनकर आपमॄ मेरा चित्त प्रवेश कर गया है बाहिर दो इन्द्रियां ही नियामक हैं, अन्दर इन्द्रियॄका श्रोत्र और चक्षु ''अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः'' श्रुतिमॄ भी इन दोनॄको ही वैसा कहा है दोनॄका उपकार आपके गुण तथा रूप करते हैं, उनमॄसे एक अन्दरके तापको हरण करते हैं और एक बाहरके सर्व पुरुषार्थोंको देता है, कुछ भी प्रयत्न नकर केवल श्रवण करनेसे भी आपके गुण आप ही भीतर अन्तःकरणमॄ प्रवेश कर जाते हैं, गुणॄको भीतर प्रविष्ट होनेमॄ कोई प्रतिबन्ध नहीं है क्यॄकि कानके छिद्र खुले हुए हैं यदि खुले न होते तो प्रविष्ट न हो सकते इतना पुरुषका कर्त्तव्य कहा, अतः पातालकी भांति प्रसिद्ध कणॄके विवरॄसे आपके गुण स्वतः भीतर जाकर अगॄके तापको हरण करते हैं. 'अङ्ग!' यह सम्बोधन आत्मपनसे भी कहा है. जो देख सकते हैं उनके नेत्रॄका कार्य रूप देख रूपके भेद 'काला, गोरा आदिको' जानना पहिली कक्षा है, सर्व प्रकार देखे हुए पदार्थके गुणॄको जानना अन्तिम कक्षा है उनके नेत्रॄको सकल अर्थोंका लाभ जिससे हो वैसा आपका रूप है, चारॄ प्रकारके पुरुषार्थ नेत्रॄको सिद्ध होते हैं नेत्रका सूर्यभाव मोक्ष है, रूपका पान काम है, रूपका ग्रहण अर्थ है, उसमॄ अवगाहन न करना धर्म है, फलवान् इन्द्रॄके फल भी ढूंढने योग्य हैं, वहां भी पुरुषार्थ सम्पादन करने योग्य नहीं है, किन्तु अचानक प्राप्त निधिकी भांति मिलते हैं जहां इस प्रकार इन्द्रियॄका उपकार आपके धर्म करते हैं वहां मेरा चित्त भी वैसा होगा इसलिए आपमॄ प्रविष्ट होता है आपमॄ प्रवेशकेलिए चितको दो प्रतिबन्ध हैं. १.लोक, २.वेद इन दोनॄमॄसे मेरा चित्त

लोकका उलंघनकर आपमृ प्रवृत्त हुआ है इसलिए लोक लज्जा छोड़ दी है लोकमृ लाज भी आपमृ प्रवेश करानेमृ रुकावट है।।३७।।

आभासार्थ : 'का त्वा मुकुन्द' श्लोकसे वैदिक दोषको मिटाती है:

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूपविद्याययोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम्।
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोक मनोभिरामम्।।३८।।

श्लोकार्थ : हे मुकुन्द! महत्त्वको प्राप्त कुलवाली धैर्यवाली कौनसी कन्या है जो कुल, शील, रूप, विद्या, आयु, द्रव्य और ग्रह इन सातृ गुणृसे अपने समान पति मिले तो उसको स्वीकार न करे, हे नृसिंह! वह भी पूरे समय पर मिल जाय तो भी उसका परित्यागकर दूसरेकी इच्छा हो बादमृ मनुष्यलोकमृ सबके मनको हरण करनेवाले उसकी प्राप्तिकेलिए प्रयत्न युक्ति युक्त नहीं है।।३६।।

व्याख्यार्थ : वेद भी लोकके अनुसार आज्ञा करते हैं अतः जो लोकसे सर्व प्रकार विरुद्ध नहीं है और जिसकी लोकमृ निन्दा नहीं है वह वेदसे भी विरुद्ध नहीं है यृ भी आप मत समझनाकी यह अर्थ मैंने ही किया है? यदि मैंने किया हो तो वेदसे विरुद्ध हो जाय किन्तु सर्व इस प्रकार अर्थ सिद्ध करते हैं, इसलिए इस अर्थको व्यतिरेकसे सिद्ध किया जाता है, कौनसी कन्या है जो आपको पतित्त्वसे वरण न करे, यद्यपि सबको मोक्ष प्राप्तिकी इच्छा है तो भी स्त्री योनि विशेष दोषृ वाली है इसलिए उस योनिसे छूटनेकेलिए स्त्री जातीको मोक्षकी विशेष अपेक्षा है, यदि कहो कि लोकमृ मोक्षके साधन हैं फिर पतित्त्वस्वीकार क्यृ? इसके उत्तरमृ कहते हैं, कि 'महती' अर्थात् महत्त्वको जो प्राप्त हुए हैं सर्वका त्याग करनेमृ असमर्थ होते हैं, जैसे मजबूत बंधे हुए कठिनतासे छुड़ाए जा सकते हैं अतः ऐसेको जब ग्रह ही मोक्ष देनेवाला बने तब उसका मोक्ष हो सकता है. और विशेष बात यह भी है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थोंकी प्राप्तिकेलिए भी आपका ही भजन करने योग्य है, जिसकेलिए कहती है कि जिसमृ सात धर्म समान होवृ उनका ही परस्पर विवाह और संवाद होना योग्य है, पहिले कुल समान चाहिए वा सोमवंशी होनेसे अपन दोनृका समान कुल है, वैसे रूप भी समान है आपने मेरे लिए ही रूप धारण किया है जिससे वह आपका रूप ही मेरे योग्य है, मैंने भी आपकेलिए देह धारणकी है, इसलिए यह रूप भी आपकेलिए योग्य है और आयु समान होनेसे योग्य ही है, गृह, पिताका घर भी सदृश ही है क्यृकि

आप जिसके पुत्र हैं वह प्रसिद्ध है तो मैं जिसकी पुत्री हूं वह भी प्रसिद्ध है, इस प्रकार ये चार बिना विवादके समान हैं लोककी प्रतीतिसे धन भी तुल्य है, विद्या माता वह चिद्रूपा है, इसलिए विद्यामृ भी समानता है, भगवान्मृ बड़ी श्रद्धा है 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः' इस वाक्यके अनुसार ऐक्यसे वा अनुरोधसे स्वभाव भी समान है, अर्थात् शील, शान्त, उग्र आदि अथवा आचार विचार भी तुल्य है, यहां बाहिर भीतर दोनृ प्रकार समानता है यों समझना चाहिए. आपका यह कहना ठीक नहीं है क्यृकि भगवान् शान्त होनेसे कार्य विलम्बसे करते हैं, माया तो जल्दी कार्य करती है यह दोनृमृ प्रत्यक्ष होनेसे दोनृमृ विरुद्ध धर्म तो है ही, इसके उत्तरमृ कहती है, कि 'धीरा'मृ भी भगवान्के कार्यके अनुरोधसे धीरज धारण करती हूं, भजन करनेमृ भगवान्के गुणृमृ समानताकी आवश्यकता नहीं चाहिए बल्कि भगवान्के गुणृको विशेष श्रवण करनेसे ही उनमृ प्रवृत्ति होती है फिर आप तुल्यताका निरूपण क्यृ करते हैं? इसके उत्तरमृ कहती है कि उनको पतिरूपसे स्वीकार करनेमृ समानता आवश्यक है, नहीं तो दासीपन हो जाता है दासीपन हो जावे तो क्या हानि है? इसके उत्तरमृ कहती है कि कुलवती बड़े कुलकी यदि दासी बन जाय तो खेदको प्राप्त होती है, और विशेष कन्या है. कन्याको अवश्य किसीको अपना पति स्वीकार करना है, यदि कन्या स्वीकार न करे वर ग्रहण नहीं कर सकता है, अथवा मुख्यमृ विनियोगकेलिए यदि अन्यके आधीन कर दे, लेकिन उत्पत्ति होने पर उस स्वीकार की हुईका परित्याग दूसरेके आधीन करनेका कोई कारण नहीं है, हे नृसिंह! मोका मिलने पर उस योगका त्यागकर पश्चात् फिर अन्यकी उच्छिष्ट होके भगवान्केलिए प्रयत्न करना असंगत है, भगवान्मृ अयोग्यता और असमर्थता नहीं है इसलिए नृसिंह नाम दिया है, नर होनेसे योग्यता दिखाई है और शेर होनेसे सामर्थ्य प्रकट किया है मनुष्य लोकमृ मनका यही आनन्द है अतः स्वीकार करनेमृ आनन्द ही वरण करना है इसमृ योग्यत्व आदिका विचार ही नहीं करना चाहिए, आप आनन्द रूपसे वरण करनेके योग्य हैं।।३८।।

आभासार्थ: इस प्रकार योग्यताका निरूपणकर 'तन् मे भवान्' श्लोकसे प्रार्थना करती है:

तन् मे भवान् खलु वृतः पतिरङ्ग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि।
मा वीरभागममिमर्शतु चैद्य आरद् गोमा युवन् मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष।।३९।।

श्लोकार्थ: हे अङ्ग! मैंने आपको पति स्वीकार किया और अपनी

आत्मा आपको अर्पण की है, अतः यहां आकर अपनी भार्या बनाइए. हे कमलनयन! मैं जो आप शेरका भाग हूं उसको चैद्य, जैसे शेरके भागको सियार दूरसे भी स्पर्श नहीं करता है, वैसे चैद्य स्पर्श भी न कर सके।।३९।।

व्याख्यार्थ : यहां घरमॄ भी मैं हमेशा बोलती हूं, कि कृष्ण ही मेरे पति हैं न कोई दूसरा. यह बात सब जानते ही हैं, तो भी जबर्दस्तीसे दूसरी ओर प्रवृत्त हो रहे हैं, यह भाव 'खलु' पदसे प्रकट किया है और विशेषमॄ तो आपको मालूम ही है, कि लक्ष्मी स्वयंवरके समय अमृत मंथन होने पर मैंने आपको ही बरा था यॄ कहनेका आशय है कि वह ही मैं हूं, इसमॄ किसी प्रकार कोई उपाधि नहीं है क्यॄकि आप ही पति हैं, इस प्रकार अपना किया हुआ कहकर भगवान्‌को प्रार्थना करती है 'जायां विधेहि' कि मुझे अपनी भार्या बनाओ इसलिए 'अङ्ग' यह स्नेहकी सूचना करनेवाला सम्बोधन दिया है, यॄ स्नेह सूचक सम्बोधन न देते तो 'मुझे भार्या बनाओ' ऐसे धृष्टताके वाक्य कहना अनुचित होता, अथवा अंगकी भार्या करो, अन्य प्रकार विचार करनेसे भी भगवान् सर्वके पति हैं ही, जिससे भी जायापन सिद्ध ही है, 'जाया' पदसे जितना भी अर्थ होता है वह सब समझकर उसी प्रकार करना चाहिए, यदि कहो कि भगवान् शास्त्रसे विरुद्ध पदार्थोंको ग्रहण नहीं करते हैं तो कहती है कि मैंने अपनी आत्मा आपको अर्पण कर छोड़ी है, अतः इच्छानुसार उसको कार्यमॄ लानेकेलिए कोई चिन्ता नहीं करती है. श्लोकमॄ दिए हुए 'च' पदका भाव है कि मैंने देहार्पणके साथ जो कुछ मेरा सम्बन्धी पदार्थ मात्र है वह सर्व समर्पण किया है, इसलिए सर्व पदार्थोंमॄ आप जैसे चाहो वैसा कर सकते हैं अतः उसकेलिए किसीको अपेक्षा अथवा उसमॄ किसी प्रकार कोई प्रतिबन्ध नहीं है, इसलिए यॄ कह दिया है कारण कि यह आत्मा आपकी है इसलिए आपको ही अर्पण की है, इससे मैंने कोई अलौकिक अर्थात् कोई विशेष कार्य नहीं किया है, अंगीकार कर फिर आनेमॄ देरी भी नहीं करनी चाहिए क्यॄकि देरी करनेसे बहुत बाधाएं होंगी वह कहती है, मैं शूरवीरकी ही भाग हूं, लक्ष्मी शूरवीरतासे ही प्राप्त होती है दूसरेसे दी हुई नहीं मिलती है इस कारणसे हो जो शूरवीर ही है वह ही राज्यका उपयोग कर सकता है, ऐसा होते हुए भी शिशुपाल शूरवीर न होते भी तथा भोग करनेके योग्य न होते भी केवल काककी तरह स्पर्श होगा तब महान्‌के भोगके भी अभावसे जन्मकी व्यर्थता हो जाएगी, ऐसा होनेसे बड़ी आपदा प्राप्त होगी, इसलिए कहीं भी वाक्यमॄ दूषण नहीं मानना चाहिए. 'आरात्' पदका भावार्थ है दूरसे भी अथवा अभिमान्‌से भी

दानके बाद हरण करनेमॄ अभिमान ही होगा. वाग्दान तो ''**अनृतं वै वाचावदति**'' इस श्रुतिके अनुसार अप्रमाण ही है, दूसरी तरह पुण्य और पापका प्रबन्धमॄ बाणी तथा मनको अप्रमाणिकता न होवे, इसलिए ही श्रुति कहती है, कि ''**वाङ्मनसयोः अनृतत्वं**'' वाणी और मनमॄ असत्पन है, यदि वह जानता है, कि तू मेरा है अथवा तुझे कहना चाहिए, मैं उनकी हूं, इसके बाद वह कैसे स्पर्श करेगा? इस प्रश्नके उत्तरमॄ कहती है कि सियारकी तरह आपके न आने पर मुझे मरी हुई वा मरनेवाली समझ देवने यह भाग मुझे दिया है, यॄ जानकर स्पर्श करेगा, यॄ होने दो इसमॄ क्या दोष है? इस पर कहती है, कि हालांकि मरनेमॄ कोई भी अनुपपत्ति नहीं है, तो भी मरनेके बाद भी स्पर्श होनेमॄ बड़ी अयोग्यता है, शेरके भक्त जो खाद्य लाकर शेरको देवे उसको शृगाल खावे यह योग्य नहीं है. 'हे अम्बुजाक्ष!' इस विशेषणसे यह बताया कि आप तो दृष्टिसे ही तापको नाश करनेवाले हैं, इससे करण भी अयुक्त है. यह भाव है।।३९।।

आभासार्थ : इस प्रकार प्रत्यक्ष की हुई सामग्रीसे भगवान्‌की प्रार्थनाकर अपने सब किए हुए धर्मकी सौगन्ध भी लेती हुई प्रार्थना करती है 'पूर्तेष्ट' श्लोकसे:

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः।
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ।।४०।।

श्लोकार्थ : जो मैंने कूप, बावड़ी आदि बनवाए, याग आदि किए, दान दिए, नियम व्रत किए, देव, ब्राह्मण, गुरू, आदिका पूजन किया इस सब साधनॄ के द्वारा भगवान्‌की आराधना की है, जिसके फलस्वरूप आप आकर इस प्रकार मेरा पाणिग्रहण कीजिए जैसे दमघोसका पुत्र अथवा दूसरा मुझे कोई न ले सके।।४०।।

व्याख्यार्थ : याग आदिसे पहिले 'पूर्त' शब्द देनेका कारण यह है, कि तलाव, बावड़ी आदि छोटी आयुमॄ भी बनवाई जा सकती हैं, अतः पहिले 'पूर्त' शब्द कहा है. याग आदि तुला, पुरुषादि दान, विषय आदिका त्यागरूप नियम, एकादशी आदि व्रत ग्रहण, देव, ब्राह्मण और गुरुआॄका पूजन इस प्रकार आठ तरहके धर्मोंका उद्देश्यकर तीनॄ काण्डॄका भी ग्रहण किया. तथा 'आदि' शब्दसे स्मार्त और पौराणिक धर्मोंका भी संग्रहण किया है, यॄ सर्व धर्मोंसे जो मैंने भगवान्‌का ही आराधन किया है तथा उसमॄ किसी प्रकारकी अन्य कामना नहीं की

हो तो भगवान् स्वयं पधारकर मेरा पाणिग्रहण करू, मैंने केवल भगवान्की ही प्राप्तिकेलिए आराधनाकी है, इसलिए शिशुपाल आदि मुझे स्पर्श करनेकेलिए भी योग्य नहीं हैं. 'गदाग्रज' नाम देनेसे यह बताया कि वंशवृद्धिका विषय आपको प्रिय है, भगवान्ने पधारकर कंसको मारा, पश्चात् गद उत्पन्न हुआ है इस, प्रकार पितृ वंशकी वृद्धिकर यह दिखाया है, कि मुझे वंशवृद्धि करनेकी इच्छा है, इस कारणसे ही आप स्वयं पधारकर पाणिग्रहण कीजिए, ऐसा करनेसे अपने किए हुए धर्मोंमृ सर्व शास्त्रामृ कहे हुए धर्मोंके सारका आरोपण हो जाएगा, अर्थात् सर्व धर्म सिद्ध हो जायूगे, मेरी पूजासे मेरे भक्तामृकी पूजा मैं अधिक मानता हूं, तो यदि आपको भगवद्भक्त ग्रहण करे तो क्या दोष है? इसके उत्तरमृ कहती है, कि 'अन्ये' वे भगवद्भक्त नहीं हैं, बल्कि भगवान्के शत्रु हैं नहीं तो दास दासी भावसे भी भजन हो सकता है, इसमृ अत्यन्त आग्रह नहीं होना चाहिए, दूसरी भांति बुरी तरह मरना ही हो तो यम आदि न लिए जाते, इससे दूसरामृके पाणिग्रहणका निषेध किया है।।४०।।

आभासार्थ : उपरोक्त श्लोकमृ केवल पाणिग्रहणकी प्रार्थनाकर अब 'श्वो भाविनी' श्लोकमृ प्रकार भी बताती है:

श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान् गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः।
निर्मथ्य चैद्यमगधेशबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम्।।४१।।

श्लोकार्थ : हे अजित! कल मेरा विवाह होनेवाला है आप सेनापतियामृके साथ यहां विदर्भ देशामृ आकर, शिशुपाल जरासन्धकी सेनाको जीतकर, पराक्रम ही मूल्यवाली मुझसे बलात्कार पूर्वक राक्षस विवाह विधिसे विवाह करो।।४१।।

व्याख्यार्थ : यदि आप प्रकट होकर पधारूगे तो कदाचित् छिपा दें, अथवा लग्नसे पूर्व ही शिशुपालके पास भेज देवृ वा बिना विधिके ही उसको दे देवें, अतः जिस प्रकार आपके आनेकी खबर उनको न पड़े, उसी भांति आप पधारकर लेजाना, नहीं तो उपक्रमसे लेकर फल पर्यन्त मध्यमृ काल विलम्ब होने पर शरीरका नाश भी हो जाय, इसलिए जल्दी आनेकी प्रार्थना की है, देशके भीतर भी पहले नहीं आना. कल विवाह होने वाला है, अतः देशमृ पहले आप अकेले ही गुप्त आजाना सेना जुदी लाना, वह सेना भी यादवामृकी ही होनी चाहिए, दूसरी जातिकी सेना नहीं लाना, क्यामृकि दूसरी जातिकी सेना सेकी हुई गुप्त सलाहका भेद खुल जायगा, पीछे जब शहरके अन्दर प्रवेश करो तब सेनापतियामृके साथ पधारना, नहीं तो अपने सम्बन्धियामृको चिन्ता होगी, हालांकि आपको कोई भी

जीत नहीं सकता है, अथवा अजित होनेसे ही दूसरी कोई पक्ष नहीं है. अतः शिशुपाल और जरासन्धकी सेनाको जीतकर बीचमॅू जो रुकावट आएं उनको मिटाकर, इसलिए बलात्कार भी कर मुझसे विवाह करो, यदि कहो कि यॅू करनेसे वह विवाह कामार्थ अथवा भक्तिकेलिए होगा, न धर्मार्थ विवाह होगा? इसके उत्तरमॅू कहती है, कि राक्षस विधिसे विवाह कर लो, क्षत्रीका राक्षस विधिसे विवाह भी धर्म विवाह है. 'तन्मे भवान् खलु वृतः' इस श्लोकमॅू गान्धर्व विवाह तो पहिले कह दिया है. अतः मेरा विवाह दोनो प्रकार होगा, यदि कहो कि यॅू बलात्कारसे लेना एक प्रकारसे दूसरेका धन चुराना है? इस शंकाका समाधान करती है, कि मूल्य देकर जो वस्तु ली जाती है, वह चुराई वा छीनी हुई नहीं कही जाती है. क्षत्रियॅूके पास सब वस्तु लेनेकेलिए पराक्रम ही कीमत है, जो वीर पराक्रमसे मारके वा जीतके जिस वस्तुको ले जाता है वह वस्तु उसकी ही होती है, इसलिए क्षत्रिय धर्मके अनुसार हरण कर लानेमॅू पराया धन चुराया नहीं है।।४१।।

आभासार्थ: उपरोक्त श्लोकमॅू रुकावट ह्यॅूगी इस शंकाके निवृत्तिका प्रकार बताया, फिर उसमॅू भी बाधाकी स्फूर्ति समझ उस बाधाके निवारणका उपाय 'अन्तः पुरान्तर' श्लोकमॅू बताते हैं:

अन्तःपुरान्तरचरामनिहत्य बन्धूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ।
पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिशामुपेयात्।।४२।।

श्लोकार्थ: यदि आप कहो कि जनानेखानेमॅू रहनेवाली तुमको, तेरे बान्धवॅूको मारनेके सिवाय, कैसे तेरे साथ व्याह कर सकॅूगे इसका भी उपाय बता देती हूं, विवाहके पहिले दिन कुलदेवीके दर्शनको जानेकेलिए शोभायात्रा निकलेगी जिसमॅू जो नववधु हो वह देवीके दर्शनको जावे, यह हमारे कुलकी रीति है, अतः मैं शोभायात्रामॅू जानेकेलिए बाहिर निकलूंगी।।४२।।

ब्याख्यार्थ : मैं जनानेखानेमॅू भीतर रहती हूं, उसको मेरे सम्बन्धियॅूको मारनेके सिवाय मुझसे विवाह कैसे कर सकोगे, यदि वैसी शंका हो तो उसकेलिए बहुत उपाय हैं, किन्तु मैं वह उपाय बतलाती हूं, जो विरुद्ध नहीं है, साधारण उपाय नहीं बताती हूं किन्तु उत्तम उपाय कहती हूं, उपायॅूके प्रकार बताती है . १.किसी भी बहाने अन्तःपुरसे बाहिर आना, २.भगवान् वेश बदलकर आवें, ३.पकड़कर ले जावें, ४.बुद्धिसे प्रेरणा करॅू, ५.अथवा इस सबॅूसे किसी अन्य तरीकेसे आकर ले जावें इन सब तरीकॅूमॅू दुःख है और बहादुरी भी नहीं है, इसी कारणसे दूसरा कुछ भी

नकर गौरी पूजनकेलिए गई हुईका ही वहांसे हरण कर लेना, यह मेरी प्रार्थना है, वहां जाना आवश्यक है विवाहके पहिले दिन बड़ी शोभायात्रा होती है, वह रोकी नहीं जाती है, कुल देवताकी बड़ी यात्रा है, इससे यह प्रकट किया कि दूर जाना पड़ता है, जो या है तो इससे क्या ? इसका उत्तर देती है कि नवीन बहू बहुत प्रकारसे रक्षा की हुई भी लोकमें प्रसिद्धकेलिए पतिसे हस्तग्राह करनेसे पहिले जो नवीन वधु होती है, वह पार्वती देवीके दर्शनकेलिए जावे, यह विधि है. आप भी पर्वतकी ईशभूता है, इसलिए अकारान्तसे 'टाप्' प्रत्यय है, अथवा संज्ञा एवं छन्दमें ''टाप्'' प्रत्यय होता है, इसलिए 'टाप्' प्रत्यय है. पश्चात् मैं बाहिर ही रहूंगी वहांसे ले लेना, इस प्रकार पहिले दिन यात्राके समय हरणकर चलोगे तो दूसरे विवाहके दिन तो द्वारकामें विवाह भी हो जायगा, जिसमें ज्योतिष शास्त्र भी प्रमाणरूप होगा, अर्थात् शास्त्रानुसार मुहूर्तके दिन विवाह भी हो जायगा।।४२।।

आभासार्थ : प्रार्थना इसी भांति स्वरूप और प्रकारकी प्रार्थनाकर उसके न करनेसे महती हानि होगी, जिसका वर्णन 'यस्यांघ्रिपंकज' श्लोकमें करती है:

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो वाञ्छत्युमापतिरिवात्मतमोपहत्यै ।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकृशा शतजन्मभिःस्यात्।।४३।।

श्लोकार्थ : हे कमलके समान नेत्रवाले! महादेवकी भांति अन्य महात्मा भी अपनी अज्ञानान्धताको मिटानेकेलिए आपके चरणकमलकी रजमें स्नान करना चाहते हैं, जो मैं आपका प्रसाद न पाऊंगी तो अब प्राणोंका त्याग करूंगी और आपकी कृपा सम्पादन करनेकेलिए सैंकड़ों जन्मोंसे व्रत रखकर तब तक कृश बनती जाऊंगी जब तक आपका अनुग्रह प्राप्त न हो।।४३।।

व्याख्यार्थ : जो आपका प्रसाद न पाऊंगी तो प्राणोंका त्याग करूंगी, तेरा इस प्रकारका यह कौनसा हठ है? इसके उत्तरमें कहती है कि आप सब फलोंसे उत्तम फल हैं, यह ही है, उसकी सिद्धि करनी है, जिस भगवान्के चरण कमलोंकी रजसे स्नान करना महान् सिद्ध भी चाहते हैं, जिसमें प्रमाण महादेव हैं, वह केवल रजसे स्नान न प्राप्त होनेसे रजयुक्त जलसे स्नान करता है, न केवल महादेव किन्तु पार्वतीको भी यह स्नान पसन्द है, वह भी महादेवकी भांति रजोयुक्त जलसे स्नान करती है, इसलिए यहां शिवका 'उमापति' नाम दिया है, वह भी उत्तम फल है, उससे स्नान करनेका कारण तमोगुणका नाश करना है. मैं भी त्रिगुणरूप माया हूं और विशेषमें रुक्मि प्रभृति अविद्या पर्वात्मकोंके साथ जन्मी हूं मेरेमें भी इसलिए

तमोगुण प्रधान है, यदि आप मुझे स्वीकारकर, इस तमका नाश करोगे तो फिर मुझे ऐसी नीच योनि न मिलेगी इसलिए वह न मिले, आपका प्रसाद प्राप्त हो जिसकेलिए प्रयत्न अवश्य करना चाहिए, इसलिए मेरा बताया हुआ यह उपाय सरल तथा उत्तम है. आप ऐसा न करोगे तो शरीर छोड़ दूंगी, जिससे यह सम्बन्ध जाता रहे और विशेषमृ व्रतमृ कृश हो एक जन्ममृ नहीं किन्तु सैकड़ृ जन्म उत्तरोत्तर कृश होती रहूंगी, जिससे यह मेरा मनोरथ कभी भी हो जावे. जैसा कहा कि 'स्वधर्म निष्ठः शत जन्मभिः' सौ जन्ममृ कर्म करनेवाला स्वधर्मनिष्ठ होता है. 'अम्बुजाक्ष' विशेषणसे यह बताया है कि आप दृष्टिसे तापको बुझाने वाले हैं, वे आप ऐसे कैसे करोगे अर्थात् अवश्य मेरी प्रार्थना स्वीकार करोगे।।।४३।।

आभासार्थ : इसी भांति रुक्मिणीके वचन कहकर विषयका उपसंहार 'इत्येते' श्लोकसे करते हैं:

ब्राह्मण उवाच

इत्येते गुह्यसन्देशा यदुदेव मयाहृताः।
विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम्।।४४।।

श्लोकार्थ : ब्राह्मण कहने लगा कि हे वसुदेव! ये गुप्त सन्देश मैं ले आया हूं आप विचारकर बादमृ इस विषयमृ करना हो वह कीजिए।।४४।।

व्याख्यार्थ : ये सन्देश गुप्त है. 'यदुदेव' संबोधन देनेका आशय है कि आपको विवाह करना चाहिए, यह सन्देश मैं ही लाया हूं, इसलिए विशेष गोपनीय है, किसी कारणसे भी आपको यह शंका हो कि यह पत्र दूसरेका कापट्यसे भेजा हुआ है तो इसलिए कहता है कि आप पूरी तरह विचार कीजिए, विचारके बाद जो कुछ योग्य जचे वही कीजिये. 'च' पदसे यह बताया है कि विचार करनेके अनन्तर जो कुछ करनेका निश्रय करो और मुझे जो कहना हो वह कहिए।।४४।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कंध (उत्तरार्ध) अध्याय ४९ की
श्रीवल्लभाचायचरण विरचित श्रीसुबोधिनी टीकाके राजस साधन अवान्तर
प्रकरणके तीसरे अध्यायका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण

अध्याय ५०

रुक्मिणीका हरण

शतार्धे वा चतुर्थे वा भगवान् भार्ययार्थितम्।
विप्रार्थितं च कृतवानिति सम्यङ् निरूप्यते।।कारि.१।।

कारिकार्थ : पचासवृ अध्यायमृ अथवा राजस साधनके चौथे अध्यायमृ भगवान्ने जिस कार्यकी स्त्रीने तथा ब्राह्मणने प्रार्थना की और उनका जो कार्य किया उसका अच्छे प्रकारसे वर्णन किया जाता है।।१।।

प्रसह्य कन्याहरणमुद्योगावधि वर्ण्यते।
कायवाङ्मनसामत्र ह्यैकमत्यं निरूप्यते।।कारि.२।।

कारिकार्थ : उद्योग पूर्वक जबर्दस्ती जो कन्याका हरण किया है, वह वर्णन किया जाता है, इस प्रसंगमृ काया, वाणी तथा मनका एक ही मत है, यह निरूपण किया जाता है।।२।।

आभासार्थ : पूर्व अध्यायके अन्तमृ ब्राह्मणने प्रार्थना पूर्वक कहा कि अब जो आपको करना है, वह करिये और जो कहना है कहिए, पश्चात् भगवान् उसके सन्तोषकेलिए अपने मनका विचार और वाक्य निरूपण करनेकेलिए 'वैदर्भ्या' श्लोकसे प्रारम्भ करते हैं :

श्रीशुक उवाच
वैदर्भ्याः स तु सन्देशं निशम्य यदुनन्दनः।
प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत्।।१।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजीने कहा कि उन यदुनन्दनने रुक्मिणीका संदेश सुनकर, हंसते हुए अपने हाथसे ब्राह्मणके हाथको पकड़कर यह वचन कहने लगे।।१।।

व्याख्यार्थ : वह निश्चय ही अत्यन्त कुलीन एवं जिसमृ भक्ति ही मुख्य है, वैसी है. यदु भी भक्तिप्रधान है. 'तु' शब्द शंकाकी निवृतिकेलिए है. इसमृ किसी प्रकारकी शंका नहीं है, क्यृकि मैंने भी जन्म लिया है. यृ कहेगा और यह सन्देश अवश्य सुनने योग्य है और यह भी आदर सहित विचारपूर्वक सुनना है, फिर, ब्राह्मण गुह्यकार्य करने वाला है, अत: इसके साथ मानो मैत्री करते हुएकी तरह अपने हाथसे उसके हाथको पकड़कर, यह ब्राह्मण, भार्याका सम्बन्धी है,

इसलिए उदासीनता छोड़, हंसते हुए कहने योग्यको याॄ कहने लगे।।१।।

आभासार्थ : पहिले अपने मनके भावको 'तथाहमपि' श्लोकमॄ कहते हैं:

श्रीभगवानुवाच

तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि।

वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान् ममोद्वाहो निवारितः।।२।।

श्लोकार्थ : जैसे उसका मन मुझमॄ लगा हुआ है, वैसे ही मेरा मन भी उसमॄ आसक्त है, जिससे रात्रिमॄ नींद भी नहीं आती है, मैं जानता हूं कि रुक्मीने द्वेषके कारण मेरे विवाहका निवारण किया है।।२।।

व्याख्यार्थ : जैसे वह मुझमॄ आसक्त है, वैसे ही मैं भी उसमॄ आसक्त हूं. याॄ कहनेसे यह सूचित किया है, कि जो उसने वचन कहे हैं, वे मेरे वचनॄके समान ही हैं. विशेष कहते हैं, कि मुझे तो नींद भी नहीं आती है. रात्रिके समय निद्रा लेना आवश्यक है, किन्तु उसका चिन्तन होनेसे वह भी नहीं आती है. अथवा स्त्रीकी इच्छासे वैसी चिन्ता करनेका क्या कारण है? इसके उत्तरमॄ कहते हैं कि मैं जो जानता हूं, उसमॄ किसी प्रकारका सन्देह नहीं है क्यॄकि मैं वास्तविक जानता हूं. मुझमॄ वरके योग्य सर्व गुणॄकी सम्पत्ति होते हुए भी केवल द्वेषके कारण एक रुक्मीने ही मेरे विवाहका, प्रयत्नकर, निवारण किया है।।२।।

आभासार्थ : इस प्रकार प्रमाणपूर्वक मनका भाव कहकर, अब 'तामानयिष्य' इस श्लोकमॄ कहते हैं कि मैं इसको ले आऊंगा :

तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे।

मत्परामनवद्याङ्गीमेधसोऽग्निशिखामिव।।३।।

श्लोकार्थ : युद्धमॄ अधम राजाओॄका मथनकर, उसको ले आऊंगा और जलती हुई अग्निकी शिलाकी तरह जो मेरेमॄ यह परायण है, उसको निर्दोष कान्ति युक्त करूंगा।।३।।

व्याख्यार्थ : भगवान्ने नाम न लेकर 'भार्या' शब्द कहा है. जिसका तात्पर्य यह है, कि आपने उसको अपनी निश्चित पत्नी मनसे बना ली थी, कि मैं इसको लाकर इसका पाणिग्रहण अवश्य करूंगा, ये राजा अधम होनेसे राजाओॄ की सभामॄ गणनाके योग्य नहीं हैं, वे बिल्कुल तुच्छ हैं, इसलिए मारने योग्य नहीं हैं, किन्तु इनका मथनकर, इनको नष्ट कर देना चाहिये. वह भी अलौकिक प्रकारसे नहीं, किन्तु युद्धमॄ ही उनको नष्टकर, अपनी भार्याको ले आऊंगा. यों ले

आनेमृ कारण बताते हैं, कि वह मेरेमृ परायण है, अर्थात्, अत्यन्त आसक्त चित्तवाली है, वैसीको लाना मेरेलिए अत्यन्त आवश्यक है, क्यृकि मेरी प्रतिज्ञा है कि '**अहं भक्तपराधीनः**' 'स्वतन्त्र होते हुए भी मैं भक्तृके आधीन हूं. इसलिए भक्तिमार्गके अनुसार भी इसको लाऊंगा. भगवान् निर्दोष वस्तु ग्रहण करते हैं, यह भी निर्दोष है. यह भाव 'अंग' पद देकर प्रकट किया है, क्यृकि वह दी हुई है, यह, धर्मकार्यके उपयोगमृ आएगी, इसलिए इसके साथ राक्षसविधिके अनुसार विवाह करूंगा. जिस समय लकड़ी जलती रहती है, उस समय अग्निकी शिखा विशेष प्रकाश नहीं करती है. वही अग्नि जो दीपककी बत्तीमृ हो, तो दीप रूप होनेसे विशेष प्रकाश करती है, वैसे ही उसको मैं विशेष कान्तिवाली करूंगा ।।३।।

आभासार्थ : इस प्रकार वाणीसे जो बताना था वह कहकर, अब 'उद्वाहर्क्षं' श्लोकमृ कायिककेलिए जो प्रयत्न करते हैं, वह कहते हैं :

श्रीशुक उवाच

उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः।
रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम्।।४।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि मधुसूदन भगवान् रुक्मिणीके विवाह होनेके योग्य नक्षत्र जानकर, सारथीको यृ कहने लगे कि हे दारुक! शीघ्र रथ तैयार करो।।४।।

व्याख्यार्थ : विवाहमृ नक्षत्र ही मुख्य है. 'भार्याप्रधानं' पदसे यह सूचित किया है कि चन्द्र, ग्रहृके अनुगुणृका परित्यागकर, शास्त्रृमृ नक्षत्रृकी ही मुख्यता कही है, ब्राह्मणके मुखसे विवाहके नक्षत्रका ज्ञान प्राप्तकर, सारथिको आज्ञा दी, कि रथ तैयार कर. 'सम्' शब्दका योग देकर यह सूचना की है, कि रथ इसी प्रकार तैयार कर, जैसे युद्धका कार्य कर सके. युद्धकेलिए कहनेका कारण यह है कि जिसको ले आना है, वह मेरे शत्रु रुक्मिीकी बहिन रुक्मिणी है, अतः अवश्य वहां युद्ध होगा. यदि यह निश्चय है तो सेनाको इकट्ठीकर, क्यृ नहीं ले जाते हैं? इसके उत्तरमृ कहते हैं कि 'मधुसूदनः', आप मधु जैसे जबर्दस्त दैत्यको मारनेवाले होनेसे स्वयं एक ही समर्थ हैं. शीघ्र तैयार करो, कहनेका भाव यह है कि समय थोड़ा है, विवाहका मुहूर्त निकट है. 'दारुक' सम्बोधन देकर वह बता दिया है कि यह वैकुण्ठसे आया हुआ सारथि है, जिससे यह भी दिखाया कि यह

चतुर और निर्भय भी है।।४।।

आभासार्थ : दारुकका कार्य शीघ्र ही 'स चाश्वैः' श्लोकसे कहते हैं :

स चाश्वैः सैन्य–सुग्रीव–मेघपुष्प–बलाहकैः।
युक्तं रथम् उपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः।।५।।

श्लोकार्थ : वह सैन्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले घोड़ासे युक्त रथको लेकर और हाथ जोड़, भगवान्‌के आगे खड़ा हुआ।।५।।

व्याख्यार्थ : यद्यपि भगवान्‌के पास रथ और घोड़े बहुत हैं, तो भी 'सारथि' पदसे यह सूचना दी है कि इस समय गरुड़की ध्वजावाला रथ ही तैयार करना है. वैसे उस रथमा चार घोड़े भी उसी प्रकारके सैन्य आदि नामवाले चार घोडे जोड़ने हैं. जो उनके नाम हैं, वे उनके कार्यके समान ही हैं. जैसा कि पहिला अश्व सैन्य नामवाला इतना काम कर सकता है कि वह अगण्य सेना पार कर सकता है. दूसरा सुग्रीव नामका अश्व, सुग्रीववाला होनेसे, वह कभी भी पराजित होकर नहीं लौटता है. वह जैसे रामावतारमा वानराके अधिपति सुग्रीवने, सीताके लानेमा सहायता दी थी, वैसे यह भी सहायता देगा. तीसरा, मेघपुष्प नामवाला अश्व, वृष्टिकी भांति सब पर व्यापकरूपसे गिरता है. चौथा, बलाहक नामवाला अश्व, मेघाकी भांति वा पक्षीकी तरह क्षणमात्रमा आता और जाता है. इस प्रकार इन घोड़ासे युक्त, अच्छी तरह सजाया हुआ रथ लाकर, सारथि हाथ जोड़े हुए आगे खड़ा हो गया ।।५।।

आभासार्थ : इसी भांति ब्राह्मणको अपने वाक्यकी सामर्थ्य दिखाई. पश्चात् कुण्डिनपुर गए, जिसका वर्णन 'आरुह्यस्यन्दनं' श्लोकमा करते हैं :

आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः।
आनर्तादेक रात्रेण विदर्भानगमद्धयैः।।६।।

श्लोकार्थ : भगवान् ब्राह्मणको रथमा बिठाकर और आप भी विराजकर शीघ्र गमन करनेवाले घोड़ासे एक ही रात्रिमा आनर्तदेशसे विदर्भको पहुंचे।।६।।

व्याख्यार्थ : स्यन्दन शब्दसे बताया कि यह रथ वेगसे जाने वाला है. अर्थात् यह शीघ्रगामी है . आपका 'शौरि' नाम देकर, यह सूचना दी है कि इस समय आपको अलौकिक सामर्थ्य प्रकट नहीं करना है. उस ब्राह्मणको भी उसमा ही बिठाकर एक ही रात्रिमा अपने देशसे उस देशमा वैसे प्रविष्ट हो गऐ जैसे कि बीचमा आए हुए देशाको पता न पड़ा. यदि वहां वालाको पता पड़ जाता तो रुक्मी

ब्राह्मणका अथवा बहिनका अनिष्ट करता, रुक्मिणीने भी वैसी ही प्रार्थना की थी।।६।।

आभासार्थ : भगवान्का नगरमृ प्रवेश कहनेकेलिए नगरका वर्णन करते हुए भ्रमसे राजाकी प्रवृत्ति-निमित्तसे 'राजा स' श्लोकसे वर्णन करते है :

राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः।
शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन्कर्माण्यकारयत्।।७।।

श्लोकार्थ : कुण्डिनपुरका वह राजा, पुत्रके स्नेहवश ही शिशुपालको अपनी कन्या देते हुए उसके निमित्त, नगरको सजानेका कार्य कराने लगा।।७।।

व्याख्यार्थ : 'राजा'पदसे भीष्मको बताया है. 'कुण्डिन' पदसे दिखाया है कि वह छोटा सा नगर है, जिसका वह स्वामी है. पुत्रस्नेहके वश होकर जो बाल बुद्धि की, उसका अब तक पालन करता है. इसलिए उस दुर्बुद्धिको कन्या देनेके लिए नगरके सजानेके कार्य सेवकृसे कराने लगा. इससे देशमृ भगवान्के पधारने पर उसको किसी प्रकारसे मनमृ सन्देह उत्पन्न नहीं हुआ, याृ निरूपण किया है।।७।।

आभासार्थ : भगवान्के प्रवेशकेलिए पुरीका वर्णन दो श्लोकृमृ करते हैं:

पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम्।
चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम्।।८।।
स्रग्गन्धमाल्या भरणैर्विरजाम्बरभूषणैः।
जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगरुधूपितैः।।९।।

श्लोकार्थ : प्रथम, नगरके राजमार्ग, गली और चौराहेको झार-बुहार, साफ कराया, फिर छिड़काव कराया, विचित्र ध्वजा, पताका और तोरण बंधवा कर नगरको सुशोभित किया।।८।।

श्लोकार्थ : नगरके नर-नारी, माला, सुगन्धीपुष्प और आभूषण तथा स्वच्छ वस्त्रृसे अलंकृत हो रहे थे. एवं घर-घरमृ अगरकी सुगन्धियां जाती थीं।।९।।

व्याख्यार्थ : पहिले नगरकी धूलि आदि निकालकर, उसे खूब उज्ज्वल और साफ किया. बादमृ चन्दन आदिके सुगन्धित जलसे राजमार्ग, बाजार, गलियां, रथके जाने योग्य सड़के, और चौराहाृ पर छिड़काव किया. इस प्रकार नीचे भागकी शोभाका वर्णन करके अब ऊपरकी शोभाका वर्णन करते हैं कि

विचित्र ध्वजा पताका और तोरणसे अच्छे ढंगसे उसे सजाया. बीचका श्रृंगार कहते हैं कि नगरकी स्त्री और पुरुषसे तथा गृहसे वह नगर सुशोभित हैं, इससे नगरमे कोई भी बिना अलंकारके नहीं है, जो बहुत कर अमंगलरूप हैं, वे भी अलंकृत किए हुए हैं. पुरुष और स्त्रियां माला, चन्दन, पुष्पके आभरणसे युक्त हैं, तथा स्वच्छ वस्त्र तथा अनेक आभूषणसे सुन्दर रूपवाले बने हुए हैं, इससे घरकी सर्व प्रकारकी सम्पत्तिका निरूपण किया है. घरमे विशेष सम्पत्ति विवाहोत्सवमे लगने वाली भी है. अगरु, धूप आदिसे समस्त घर सुगन्धिसे युक्त थे।।८-९।।

आभासार्थ : इस प्रकार लौकिक समृद्धि कहकर, अब वैदिककेलिए जो समृद्धि होती है, वह 'पितन् देवान्' श्लोकमे कहते हैं :

पितन् देवान् समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन् नृपः।
भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम्।।१०।।

श्लोकार्थ : राजा, पितर और देवका पूजन करके ब्राह्मणका भी विधिके अनुसार पूजन किया. सबको उचित रूपसे भोजन कराके, बादमे पुण्याहवाचन कराया।।१०।।

व्याख्यार्थ : पितर और देवता जो नान्दीमुखदेव हैं, उनका अच्छे प्रकारसे पूजन किया. या नहीं करते तो, पहले ही कन्याहरण करनेमे विवाह, गुणरहित हो जाता. इसी कारणसे जो विवाहमे प्रथम कर्तव्य है, वह किया. पुण्याह वाचनमे प्रथम, ब्राह्मणका विधिपूर्वक वस्त्र, अलंकार आदि दानके साथ पूजन किया. 'नृप' कहनेसे या करनेका सामर्थ्य प्रकट किया है. ब्राह्मणका सन्तोष भोजनसे होता है, अतः नान्दीमुखमे विधिका उचितरीतिसे भोजन कराके, मंगलरूप पुण्याह वाचन कराया।।१०।।

आभासार्थ : जिसको लेनेकेलिए भगवान् आए हैं, उसको देनेके हेतु सुशोभित करने लगे, जिसका वर्णन 'सुस्नातां' श्लोकसे करते हैं :

सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम्।
अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः।।११।।

श्लोकार्थ : अच्छी तरह स्नान की हुई, सुन्दर दांतोवाली, किए हुए विवाहके चिह्नवाली और नवीन हलदीके रंगवाले दो वस्त्र धारण की हुई उत्तम आभूषणसे भूषित कन्याको।।११।।

व्याख्यार्थ : प्रथम मंगल स्नान कराया, पश्चात् दांतूको भी साफ किया. साफ किए हुए कन्याके दांत नहीं देखने चाहिए, यह कहींका देशाचार है. उस कन्याको जो अब तक दी हुई नहीं है, बहुत करके यह शिशुपालको सूचनाभी की थी. वाणीसे देनेका निश्चय भी आगे ही होगा. वे दाक्षिणात्य हैं, इसलिए विवाहसे आगे क्षणभू ही कन्याका वाणीसे वरण करते हैं. जिसके कौतुकरूप मंगल चिह्न किए हुए हैं, वे चिह्न कपोलू पर हलदीसे रेखाओंसे किए जाते हैं. वे चिह्न विवाहभू ही किए जाते हैं दूसरे समय नहीं. वस्त्र भी वैसे पीले पहनाए गए हैं, वे कपड़े पट्टके हू और फटे हुए नहीं हू. कई कहते हैं कि 'अहत'का अर्थ है नवीन वस्त्र. उनके मतभू वस्त्रको पाषाण पर जो प्रहार होता है, जिससे उसकी नवीनता नहीं जाती है. दूसरे कहते हैं कि वह कपड़ा जो काममू नहीं लाया गया हो, दो वस्त्रोंसे एक पहिने और दूसरा ऊपरसे ओढ़ ले. आभूषणोंसे भूषित, (''सत्कृत्या-लङ्कृतां कन्यां यो ददाति स कूकुद'') इस प्रकार कन्याका सत्कारकर, जो देता है, वह 'कूकुद' है. कूकुद होनेकेलिए कन्याको अलंकृत करना है. इस प्रकार कन्याका दान पृथ्वी और स्वर्गके दानसे भी उत्तम है यों प्रकट किया है. 'कू' स्वर्ग और पृथ्वी; 'कु' कुत्सिते यस्याः जिससे कम हैं।।११।।

आभासार्थ : उसका 'रुक्मिणीका' विवाह देवताकी समीपताका वर्णन 'चक्रुः' श्लोकसे करते हैं:

चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्बध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः।
पुरोहितोऽथर्ववित्तद्वै जुहाव ग्रहशान्तये।।१२।।

श्लोकार्थ : उत्तम ब्राह्मण साम, ऋग् और यजुर्वेदके मन्त्रोंसे वधूकी रक्षा करने लगे और अथर्ववेद जाननेवाला पुरोहित, ग्रह शान्तिकेलिए होम करने लगा।।१२।।

व्याख्यार्थ : मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके समान ब्राह्मणोत्तम साम, ऋग् और यजुः इन तीनों वेदोंके मन्त्रोंसे वधूके रक्षासूत्र बांध, भगवान्केलिए ही इसी प्रकार रक्षा करने लगे. जैसे कोई भी दृष्ट अथवा अदृष्ट प्रकारसे स्पर्श न कर सके. देव दो प्रकारके हैं, एक होम द्वारा प्रसन्न होकर तृप्त होने वाले 'हुताद' हैं और दूसरे केवल मन्त्रोंके श्रवणसे ही तृप्त हो जाते हैं, वे 'अहुताद' हैं. वे मन्त्रोंसे प्रसन्न होके तृप्त हो गए, अब दूसरोंकी होम द्वारा प्रसन्नताका वर्णन करते हैं. होममू पुरोहित मुख्य है, वह हितका हो विचार करता है. वेदमू कर्म करानेकी दो प्रकारकी विधि हैं. एक

नक्षत्र कल्प, दूसरा शान्तिकल्प. अथर्ववेद जाननेवाला शान्तिकल्प ही जानता है, जो होम द्वारा होता है. ग्रह, कन्याका भगवान्‌से सम्बन्ध छुड़ाके नीचसे सम्बन्ध करानेकेलिए तैयार हुए थे, उन ग्रहोंकी शान्तिकेलिए वे अथर्ववेद पुरोहित होम कराने लगे. नहीं तो ग्रहों द्वारा रुकावट हो जाय और भगवान् तो इस कार्यमें अपना अलौकिक प्रकट करना नहीं चाहते हैं।।१२।।

आभासार्थ : दान करनेसे सब दोष मिट जाते हैं, इसलिए दान भी किए, जिसका वर्णन 'हिरण्य' श्लोकमें करते हैं :

हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान्।
प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदांवरः।।१३।।

श्लोकार्थ : विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ राजाने सुवर्ण, चांदी और वस्त्र तथा गुड़ मिलाए हुए तिल एवं धेनु, ब्राह्मणोंको दान कर दिए।।१३।।

व्याख्यार्थ : सुवर्ण अग्नि देववाला है, अतः वह दान करनेसे सर्व कामनाएं पूर्ण करता है. चांदीका देवता सोम है, वस्त्रोंके सर्वदेव हैं, अथवा गन्धर्व देव हैं. इस प्रकार दानकी वस्तुओंका स्वरूप कहनेसे यह बताया है कि कन्याके भोगके भाग वाले जो तीन देव हैं, वे इसका भोग नहीं कर सकेंगे. तिलोंके मोदकोंका दान सर्व दोषोंका हरण करने वाला है. 'च' पदसे यह भाव भी प्रकट किया है, कि केवल तिलोंका दान भी सर्व दोषोंको मिटाता है. कन्याके पास सर्व प्रकारकी समृद्धि होवे, इसलिए ब्राह्मणोंको गाय दानमें दी. वे ही विशेषकर, पूर्णता देने वाले हैं. राजा बहुत सम्पदावाला है. विधिसे दिया हुआ दान ही सफल होता है, इस कारणसे कहा कि राजा स्वयं विधिज्ञोंमें उत्तम है, अर्थात् उसने जो दान दिए, वे विधिके अनुसार ही दिए।।१३।।

आभासार्थ : इस प्रकार नगर और कन्या निर्दोष है, ऐसा निरूपणकर, बीचमें सामने पक्षवालोंका वृत्तान्त ६ श्लोकोंसे करते हैं :

एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै।
कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम्।।१४।।

श्लोकार्थ : इसी भांति चेदिदेशके राजा, दमघोषने अपने पुत्र शिशुपालके लिए मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणोंसे अभ्युदयके उचित मंगल कर्म करवाए।।१४।।

व्याख्यार्थ : उनका निराकरण भगवद्धर्मोंसे ही किया. पहले विवाहके संस्कार पिता ही कराता है, जैसे रुक्मिणीके विवाहके सर्व संस्कार उसके पिताने

ही किए. इसी तरह चेदिदेशके राजा दमघोषने भी, मेरे पुत्र शिशुपालका विवाह होगा, यह मनमृ निश्चयकर, वह सर्व संस्कार कराने लगा. इस प्रकार करनेकी शक्ति उसमृ भी थी, क्यृकि वह भी राजा था तथा उसका नाम ही शान्तिका गर्जन दमघोष था, न कि उसका दमन अशान्त, जो करता है वह सफल नहीं होता है, अथवा इसके नाममृ एक अक्षर बदल गया है. वास्तवमृ यह मदघोष है. सिंहके समान इसकी गर्जना मदसे भरी हुई है, अतः अभिमानसे भगवान्का विचार नकर इस प्रकार करने लगा. वह अभ्युदयमृ उचित है, किन्तु उसमृ अभ्युदय हुआ नहीं।।१४।।

अभासार्थ : मदवाली सेनासे युक्त ऐसे का नगरमृ गमन 'मदच्युद्भिः' श्लोकमृ कहते हैं :

मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः।
पत्त्यश्व संकुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डिनं ययौ।।१५।।

श्लोकार्थ : मद करनेवाले हस्ती, सुवर्ण मालासे सजे हुए रथृसे, पैदल और सिपाही घुड़ सवारृकी सेनासे घिरे हुए (वर राजा) कुण्डिनपुर पधारे।।१५।।

व्याख्यार्थ : साठ घोड़े, मदमत्त हाथियृके साथ, यृ कहनेका भाव यह है कि साथमृ हाथियृकी सेना ले ली थी. सोनेकी मालाअृसे सुशोभित रथ थे, प्यादे और घोड़े, इस प्रकार चतुरंग सेनाको लेकर युद्धकेलिए ही कुण्डिनपुर जाने लगे, न कि विवाहकेलिए. यदि विवाहकेलिए जाते तो साथमृ विवाहकी सामग्री भी होती किन्तु वह नहीं थी।।१५।।

आभासार्थ : उसका आगे तिरस्कार करनेकेलिए पहिले सन्मानका वर्णन 'तं वै विदर्भाधिपतिः' श्लोकसे कहते हैं :

तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च।
निवेशयामास मुदा कल्पिते वाधिवेशने।।१६।।

श्लोकार्थ : विदर्भका राजा भीष्मक, सामने लेनेकेलिए आया और उसका पूजन सत्कारकर, हर्षसे बनाए हुए जनवासेमृ स्थापित किया।।१६।।

व्याख्यार्थ : विदर्भ देशका राजा विशेष अनभिज्ञ है, अर्थात् साधारण जानकार है. उसको लेनेकेलिए सामने जाकर पूजादिसे वैसे सत्कार किया, जैसे घरमृ आए हुएकी पूजा की जाती है. शास्त्रृमृ कहा है कि घरमृ जो आए, उसकी पूजा करनी चाहिए. 'च'का भाव यह है कि साधारण रीतिसे सत्कार किया.

प्रसन्नचित्तसे तैयार किए हुए रहनेके स्थान पर उनको ठहराया. वह सहज वा उत्तम नहीं था, थोड़ा सा सजाया अथवा न भी सजाया हुआ, वा बाग आदिमृ ठहराया।।१६।।

आभासार्थ : वहां सर्व दुष्ट ही इकट्ठे हुए थे, जिनका वर्णन 'तत्रशाल्वो' आदि तीन श्लोकामृ करते है :

तत्र शाल्वो जरासन्धो दन्तवक्त्रो विदूरथः।
आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याः सहस्रशः।।१७।।
कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम्।
यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिस्सह।।१८।।
योत्स्यामः संहतास्तेन इतिनिश्चितमानसाः।
आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समर्थबलवाहनाः।।१९।।

श्लोकार्थ : वहां शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र, विदूरथ, पौंड्रक आदि हजारा शिशुपालके पक्षके राजा आये. ये राम-कृष्णके वैरी, शिशुपालको कन्या दिलवानेकेलिए सजकर, आये थे. इन्हाने मनमृ निश्चय कर लिया था कि यदि बलभद्र आदि यादवाको साथ लेकर कृष्ण यहां आके कन्या हरण करेगे, तो हम सब इकट्ठे हो, उनसे लड़ेगे. इसीलिए वे सब राजा अपनी समग्र सेना और वाहन आदि लेकर आए थे।।१७ - १९।।

व्याख्यार्थ : विदूरथ, जो दन्तवक्त्रका भाई था. मुख्य जो चार थे, उनकी गणना की है. दूसरे भी शिशुपालके पक्षके आए थे. अपनेको मिथ्या वासुदेव कहलानेवाले पौण्ड्रक आदि भी वहां आए थे. उनके यहां आनेका कारण यह था कि वे सब रामकृष्णके शत्रु थे. उनके आनेका अन्य कोई कारण नहीं था, क्याकि उनको वहां कोई दूसरा काम नहीं था. हम सब अकेले तो कृष्णको जीतनेमृ शक्तिमान् नहीं हैं. किसी भी मित्रसे मिलकर कृष्णको जीतना ही है, याा करनेसे चैद्य पर अपना उपकार भी प्रकट होगा, अतः अरिमित्रन्यायसे वहां आकर पहुंचे. शिशुपालको कन्या दिलानेकेलिए सजकर आए थे. बुलाकर कन्या दी जाती है, इसमृ सन्देह क्याा ? इसके उत्तरमृ कहते हैं कि यदि आगत्य उनके हृदयमृ भगवान्ने इसी भांति जनाया कि यदि राम आदि यादवासे मिलकर कन्याको हरण करनेकेलिए स्त्रियाका हितकारी श्रीकृष्ण आवे तो हम सब मिलकर, उससे लड़ेगे. इसके सिवाय दूसरा कोई सामर्थ्य उनमृ नहीं है, इसलिए उन्हाने यही मनमृ निश्रय

कर रखा था. अतएव सब राजा अपनी सेना और वाहन लेकर आए थे. 'भूभुज' विशेषणसे बताया कि उनकी यह स्वाभाविक सम्पत्ति है।।१७-१९।।

आभासार्थ : यह खबर सर्वत्र फैल गई, जिसको सुनकर बलभद्र आदि भगवान्के कहे बिना भी आ गए, जिसका वर्णन 'श्रुत्वा' दो श्लोकॄमॄ करते है :

श्रुत्वैतद्भगवान् रामो विपक्षीयबलोद्यमम्।
कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशङ्कितः।।२०।।
बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः।
त्वरितः कुण्डिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः।।२१।।

श्लोकार्थ : भगवान् राम, चैदी राजाॠका यह उद्यम सुनकर और श्रीकृष्ण अकेले कन्याको हरणकेलिए पधारे हैं, यह जानकर कलह होनेकी शंकासे भाईके स्नेहसे आर्द्रचित्त हो, बड़ी सेना संग ले, हाथी, घोड़े रथ और पैदलॄके साथ तुरन्त कुण्डिनपुर पधारे।।२० -२१।।

व्याख्यार्थ : 'राम' नाम कहनेसे यह बताया कि वे साधनरूप हैं और 'भगवान्' विशेषणसे जताया कि जो सुना है वह सत्य है, क्यॄकि आप भगवान् होनेसे सत्य और झूठको जान सकते हैं. शिशुपालके सम्बन्धी होनेसे वे विपक्षी अर्थात् शत्रु हैं. उनकी सेनाका उद्यम सुनकर, भगवान् अकेले कन्याको लेनेकेलिए गए हैं. इसलिए वहां निश्चय युद्ध होनेकी शंका समझ, जबर्दस्त सेना लेकर तुरन्त कुण्डिनपुर गए. कृष्ण भगवान् हैं, उसके लिए सन्देह क्यॄ? जो सन्देहसे गए, इसके उत्तरमॄ कहते हैं कि भ्राताके स्नेहसे हृदय आर्द्रा हो गया था. यह सब लौकिकदृष्टिसे और स्नेह प्रकट करनेकेलिए गए।।२०- २१।।

आभासार्थ : इसी तरह सब प्रकारसे कहकर, बताते हैं कि भगवान् तब पधारते हैं कि जब अत्यन्त आकांक्षा होती है, इसलिए रुक्मिणीकी आकांक्षाका 'भीष्मकन्या' श्लोकसे साड़े सात श्लोकॄमॄ वर्णन करते हैं :

भीष्मकन्या वरारोहा काङ्क्षन्त्यागमनं हरेः।
प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत्तदा।।२२।।

श्लोकार्थ : वरारोह भीष्मक राजाकी कन्या हरिके आगमनकी राह देखती थी, भेजे हुए ब्राह्मणको जब लौटता हुआ न देखा, तब चिन्ता करने लगी।।२२।।

व्याख्यार्थ : रुक्मिणी भीष्मक राजाकी कन्या है, इससे स्वतन्त्र रह नहीं

सकती है. कारण कि वह पिता भयानक है और कन्या स्वतन्त्र हो नहीं सकती है. कन्यापनसे ही लोकमृ निन्दा नहीं है. 'वरारोहा' विशेषणसे रुक्मिणी अवश्य भोग योग्य बताई है, अतः यदि शिशुपालको, मैं दी गई, तो उसी समय मेरा सर्वनाश हो जायगा. इससे बहुत दुःखी हुई. दुःख मिटानेका कोई दूसरा उपाय न देखकर सर्व दुःखमृके हरण करनेवाले हरिका आगमन ही चाहने लगी. पश्चात् भेजे हुए अपने ब्राह्मणको लौटता न देख, उसका ही चिन्तन करने लगी, कि वह अब तक क्यमृ नहीं लौटा है? स्वयं भी भगवान्के पास झुकी, फिर भगवान्की प्राप्ति न होनेसे भगवान्के पास पहुंचने वाले ब्राह्मणका चिन्तन करने लगी।।२२।।

आभासार्थ : उसकी चिन्ता गुणमृसे भी अधिक है, यमृ प्रसिद्ध करनेकेलिए 'अहो' इन साढ़े तीन श्लोकमृमृ कहते हैं :

अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः।
नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम्।
सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्सन्देशहरो द्विजः।।२३।।
अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किञ्चिज्जुगुप्सितम्।
मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः।।२४।।

श्लोकार्थ : मुझ मन्दभागिनके विवाहमृ केवल एक रात्रि ही बाकी है. कमलनयन भगवान् तो अब तक नहीं पधारे हैं, इसका क्या कारण है, यह मैं समझ नहीं सकती हूं. जो ब्राह्मण मेरा सन्देश लेकर गया था वह भी अब तक लौटकर नहीं आ रहा, जिनने मेरे लिए पहिले उद्यम किए, वे निर्दोष भगवान् क्या मुझमृ कोई दोष देखकर मेरा पाणिग्रहण करनेकेलिए नहीं आते हैं?।।२३-२४।।

व्याख्यार्थ : रात्रि तीन पहर रहती है, विवाहमृ बाकी इतना ही समय रहा है, अर्थात् विवाह होनेके बीचमृ एक ही रात्रि शेष है. रात्रि तीन पहरकी कहनेसे यह बताया कि विवाहमृ थोड़ा समय बाकी है, अतः कलके दिन मेरे लिए महाप्रलय ही होने वाला है, इससे चिन्ता हो रही है. मैं अभागिन हूं, यदि अच्छा भाग्य होता या बड़भागिनी ही होती तो शीघ्र ही मेरे मनकी कामना पूर्ण होती. निश्चय न होनेसे थोड़े ही वचन कहे हैं. चिन्ता होनेका दूसरा कारण बताती हैं कि कमलनेत्र भगवान् नहीं आए हैं, वे तो दृष्टिमात्रसे तपका नाश करने वाले हैं. उनके न आनेका कारण मैं समझ नहीं सकती हूं. जब तक आनेका समय नहीं हुआ है, तो चिन्ता क्यमृ करती है? इसके उत्तरमृ कहती है कि भेजा हुआ ब्राह्मण भी नहीं

लौटा है. यदि यह ज्ञात हो जाय कि आ रहे हैं, तो चिन्ता न हो. आनेका समय तो निकट ही है, इससे एक बातका निश्चय हो जाय तो अस्वस्थता वा निश्चितता हो जाय कि कल विवाह न होगा. 'अपि' शब्दके आशयको प्रकट करते हुए कहते हैं, कि भगवान्ने कोई दूसरा भेज दिया हो, उससे भी विवाह रुक जावे . 'अद्यापि', 'अब तक' शब्द कहनेका भाव है कि समय निकट है. ब्राह्मण है, वे कदाचित् तपस्या करते ह्यगे, अतः उनके आनेका कोई नियम नहीं है. यदि याू कहे तो इस पर कहती हैं कि वह ब्राह्मण 'मत्सन्देशहर', 'मेरा सन्देश ले जानेवाला' है. जो केवल सन्देश ले जाता है वह भी सत्यवक्ता होता है. यह तो ब्राह्मण है, इससे निश्चय सत्यवादी है. सत्यकेलिए ही द्वितीय जन्म है, उस विषयमू स्वयं ही हेतुकी कल्पना करती हैं कि हो सकता है कि शुद्ध अन्तःकरणवाले निर्दोष भगवान्ने यहां कुछ भ्राताके पक्षपातवाला निन्दित कार्य देखा है, जिस कारणसे वा पूर्वजन्मका कोई कारण है, उससे मेरे पाणिग्रहणका पहले उद्यम करके भी और ब्राह्मणको भी रोककर कि साथमू ले जाऊंगा, इस प्रकार निश्चय कर फिर नही आए. इस कारणसे ब्राह्मण भी शीघ्र आनेमू असमर्थ है, अतः ब्राह्मण भी नहीं आया है, यह भाव, 'कृतोद्यम' पदसे प्रकट किया है।।२३-२४।।

आभासार्थ : कई कन्याआूसे दोषवाले पति भी ग्रहण किए जाते हैं. कोई सर्व प्रकार दोषरहित नहीं होता है. यदि निर्दोष ही पति चाहिए, तो किसीका भी पाणिग्रहण हो नहीं सकता है. यदि याू कहते हो तो सत्य है, किन्तु इस प्रकार सदोष पतिकी प्राप्तिमू अदृष्ट आदि प्रेरक होते हैं. मेरे लिए उसका भी अभाव है, याू 'दुर्भगाया' श्लोकमू कहती हैं :

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ।
देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिशा सती।।२५।।

श्लोकार्थ : अभागिन मुझ पर क्या ब्रह्मा, महादेव मेरे अनुकूल नहीं हैं? गिरिजा, सती, रुद्राणी और देवी पार्वती भी रूठी हैं?।।२५।।

व्याख्यार्थ : पति तो कृष्ण ही है, वे नहीं पधारे है. इस विषयमू जैसे-तैसे भ्रान्त भी होकर वहां जाऊंगी, क्याूकि ब्रह्माने मेरा पति भगवान् ही हो, वैसा विचार किया है, किन्तु अभागिन बनूंगी, जो कृष्ण, पति न ह्यगे. अतः दुर्भागिनी बनाने वाले भाग्यके होनेसे, ब्रह्मा भी अनुकूल नहीं है. भासता है, यदि ब्रह्मा अनुकूल हो तो भगवान् अब ही पधारने चाहिए, यदि याू अब पधारे तो दुर्भागिनी

देखनेमॄ न आये. यदि कहो कि सौभाग्य तो महादेव और पार्वतीके हाथमॄ है, तो महादेव और देवता रूप दुर्गा भी अनुकूल नहीं है, क्यॄकि मैंने उनकी आराधना नहीं की है, इस लिए वे भी अनुकूल नहीं है. वह दुर्गा गौरी है, अर्थात् गुरुकी पत्नी है. गुरु उपदेश देते हैं, उनकी शक्ति, भाग्यका सम्पादन करती है अर्थात् भाग्य बनाती है. उसी सम्बन्धको रुद्राणी प्रकट करती है. रुद्र गुरु हैं, आप भी गिरीशा या गिरीजा हैं और सती हैं, सती कहनेसे यह बताया है कि इसमॄ पतिव्रत बल भी है।।२५।।

आभासार्थ : इस प्रकार जब चिन्ता करते हुए कुछ काल बीता और चिन्ता बढ़ने लगी, तब बीचमॄ चिन्ताका नाश करने वाले शकुन हुए, जिनका वर्णन किया जाता है :

एवं चिन्तयती बाला गोविन्दहृतमानसा।
न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले।।२६।।

श्लोकार्थ : भगवान्ने जिसका मन हर लिया है, वैसी, समयको पहिचाननेवाली बाला, इस प्रकार चिन्ता करनेसे आंसुओॄसे पूर्णनेत्रा हो गई और उसने नेत्र मूंद लिए।।२६।।

व्याख्यार्थ : 'बाला' कहनेका भावार्थ यह है कि रुक्मिणी उस समय सोलह वर्षकी हो गई थी, अतः 'मुग्धा' है. ऐसी अवस्थामॄ फिर भगवान्ने मन हरण कर लिया है, जिससे व्याकुल हो गई, अतः रोदन आने लगा, किन्तु मंगल कृत्य हुआ है, उसको रोना उचित नहीं है. इसलिए आंसुओॄसे पूर्ण नेत्रॄको मूंद लिए, वैसी अवस्थामॄ तो रोना ही आना चाहिए. सो नेत्र कैसे बन्द कर दिए? जो कहो तो उसका उत्तर यह है कि 'कालज्ञा', समयको पहचानती है. यह शुभ समय है, इसमॄ रुदन नहीं करना चाहिए. ग्रहॄके अनुकूल होनेसे भगवान् अवश्य पधारॄगे, यह निश्चयकर, वैसे किया अर्थात् नेत्र मूंद लिए।।२६।।

आभासार्थ : और विशेष केवल कालज्ञानसे ही नेत्र मूंदकर, मौन नहीं हुई किन्तु अवयवॄके फरकनेसे शकुन भी हुए, जिससे मौन हो गई, जिसका वर्णन 'एवं बध्वा' श्लोकमॄ किया है :

एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप!।
वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रियभाषिणः।।२७।।

श्लोकार्थ : हे नृप! इस प्रकार गोविन्दके आनेकी प्रतीक्षा करती हुई

वधूके शुभ सूचक बायॄ तीन अंग ऊरु(जंघा), भुजा और नेत्र फरकने लगे।।२७।।

व्याख्यार्थ : 'वधू' शब्दसे यह प्रकट किया है कि विवाह करनेके योग्य है, एवं यह विवाहका शुभ समय है अथवा चारॄ ओरसे उसकी रक्षा हो रही है. वैसी गोविन्दके आनेकी बाटजोही कर रही थी, तो उस समय ही उसके बांऐ तीन अंग ऊरु, भुजा और नेत्र फरकने लगे. यह शकुन स्त्रियॄकेलिए शुभसूचक है. जिसके लिए 'प्रियभाषिणः' पद दिया है. यह प्रत्येक अंगका विशेषण समझना चाहिए. व्याकरणके अनुसार नपुंसकमॄ 'अन्यतरस्याम्' इस वाक्यसे एकशेष समास नहीं हुआ है, अथवा ये शुभकी सूचना देनेवाले सम्बन्धी हैं, अतः शुभ सुनूंगी।।२७।।

आभासार्थ : यॄ होनेके पश्चात् शीघ्र ही ब्राह्मण आ गया, जिसका वर्णन 'अथ' श्लोकमॄ करते हैं :

अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः।
अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह।।२८।।

श्लोकार्थ : इतनेमॄ ही तो श्रीकृष्णका भेजा हुआ वही ब्राह्मण आ पहुंचा और अन्तःपुरमॄ विराजती हुई देवी राजपुत्रीको देखा।।२८।।

व्याख्यार्थ : उसका उस समय ही आ पहुंचना, जो काकतालीय न्यायकी तरह हुआ हो, तो उस समय भगवान्केलिए ही उसकी जो आकांक्षा वर्णन की जाती है, अतः उसके निवारणकेलिए कहते हैं कि भगवान्ने ही "**ये त्यक्तलोक–धर्माश्च मदर्थे**", इस वाक्यके अनुसार उस ब्राह्मणको भेजा है, इसलिए श्लोकमॄ 'कृष्णविनिर्दिष्टः', 'कृष्णका भेजा हुआ' कहकर यह सिद्ध किया है कि ब्राह्मणका उस समय आना काकतालीय न्यायसे नहीं हुआ है, दोनॄ प्रकारके उनके निश्चय हो जानेसे ही विशेष प्रकारसे आया. 'अथ' शब्द यह प्रसंग पृथक् है, यह दिखानेके लिए भी है अर्थात् भगवान्ने ही वैसे किया है, यह जतानेकेलिए 'द्विजसत्तमः' ब्राह्मणको द्विज न कहकर, 'द्विजसत्तमः' कहा, जिसका आशय स्पष्ट करते हैं कि अत्यन्त अन्तरंग भक्त है, अतः वैसे ब्राह्मणसे तापकी निवृत्ति होनी योग्य ही है. केवल द्विज भी मित्र होता है. उसमॄ भी यदि संदेश ले जानेवाला हो, तो विशेष हितकारी होता है. उसमॄ भी द्वारका गया, वहां भगवान्की प्रीति प्राप्त की, इसलिए यह सत्तम है. सारांश कि अब यह द्विजसत्तम है, इस कारणसे ही अन्तःपुरमॄ ही विचरने वाली राजपुत्रीको स्वयं ही देखा. देवी क्यॄ हुई? भगवान्के

चिन्तन करनेसे भगवदावेशसे देवी बन गई. जैसे ब्राह्मणमू तीन धर्म हैं, वैसे इसमू भी आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक, इन तीन धर्मोंको करनेकेलिए ही तीन विशेषण कहे हैं. 'ह' शब्द आश्चर्यवाचक है ।।२८।।

अभासार्थ : इसके बाद जो कुछ हुआ वह 'सा तं' श्लोकमू कहते हैं :

सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती।
आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता।।२६।।

श्लोकार्थ : धीरे – धीरे चले आते प्रसन्न मुख ब्राह्मणको देख, लक्षणाूसे ही समझने वाली मन्द हंसती हुई वह सती रुक्मिणी उससे पूछने लगी।।२९।।

व्याख्यार्थ : कहां मनसे पदार्थका चिन्तन करना और कहां उस पदार्थका वहां प्राप्त हो जाना. याू होना दुर्लभ जैसा समझ, और वह हो गया है, उसको देख कर पूछने लगी. इंगितके(संकेतके) ज्ञानसे ही क्याू न निश्चय कर लिया? इसके उत्तरमू कहा गया है कि ब्राह्मणके इंगिताूसे उसमू दो धर्म देखे. एक प्रसन्न मुख था, जिससे जान लिया कि विवाहकी स्वीकृति भगवान्ने दे दी है, और दूसरा वह स्वस्थ होकर धीरे–धीरे आ रहा था, जिससे समझ लिया कि भगवान् भी पधार रहे हैं. केवल इंगितसे इसने कैसे समझ लिया? इसका समाधान यह किया है कि इसमू भी दो धर्म हैं . सती अर्थात् पतिव्रता है. पातिव्रत्यधर्म और दूसरा शास्त्राूसे लक्षणाूका ज्ञान, इन दो धर्मोंसे इसने जान लिया है. यह तर्कसे जाना है. तर्कसे जाना हुआ पूरा प्रामाणिक ज्ञान नहीं माना जाता है, अतः इस प्रकार जानकर भी फिर पूछने लगी. मन्द हासकर, ब्राह्मणमू अपना शुद्धभाव प्रकट करने लगी, अथवा केवल (स्मित)मन्दहास वाचक शब्द न देकर जो साथमू 'शुचि', शुद्धता वाचक विशेषण दिया है, जिसका आशय है कि इसका यह मन्दहास अपने मनोरथ पूर्ण होनेसे लौकिककी तरह नहीं है।।२९।।

आभासार्थ : इसके बाद ब्राह्मणके दो वचन 'तस्या' से कहते हैं :

तस्या आवेदयत्प्राप्तं सरामं यदुनन्दनम्।
उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति।।३०।।

श्लोकार्थ : ब्राह्मणने उसको पूरी तरह बतलाया कि भगवान् बलरामजी सहित आ पहुंचे है और आपका पाणिग्रहण करूगे तथा अपने साथ ले जाएंगे, ये वचन परिहाससे नहीं कहे हैं, किन्तु सत्य कहे हैं।।३०।।

व्याख्यार्थ : भगवान् पधार गए हैं, ऐसा निवेदन किया, पधारना तो दूसरे

कामकेलिए भी हो सकता है? इस भ्रमको मिटानेकेलिए केवल 'प्राप्तं' न कहकर 'आवेदयत्' शब्द भी दिया है. जिसका भावार्थ है कि तुम्हारे लिए ही पधारे हैं और अकेले भी नहीं हैं, बलरामजी भी आ गए हैं. जिससे यह बताया कि कलह होगा ऐसी शका भी मत करो, क्यूंकि रामजी उसको टाल दूंगे, जिससे आपका कार्य हो जायगा. भगवान्का मनोरथ भी पूर्ण हो जायगा. भगवान्का नाम 'यदुनन्दन' दिया है, जिसका आशय है कि जो भगवान् पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले यदुको भक्त होनेके कारण आनन्द देते हैं, वे उसी भावसे आपको भी आनन्द देते हैं. उसी प्रकार करनेमूं भक्त पर कृपालुपनका कारण है. 'स्त्रीषु नर्मविवाहे', इस उक्तिके अनुसार किसी समय ऐसी बातमूं झूठ भी बोला जाता है, इसलिए कहता है कि यह परिहास वा झूठ नहीं है, किन्तु सत्य वचन है. 'च' शब्दसे भगवान्ने जो अभिप्राय प्रकट किया था वह कहकर, बता दिया. भगवान् केवल विवाहकेलिए नहीं आए हैं, किन्तु अपने साथ उसको ले जाऊंगा, जिससे उसकी अभिलाषा पूर्ण हो, इसलिए भी पधारे हैं. [१]'उपगमन' पदमूं भी यही अर्थ समाया हुआ है।।३०।।

१. मूलमूं उपनयन पद है, टीकामूं उपगमन है.

आभासार्थ : मनोरथ पूर्ण देख, उस ब्राह्मणको 'तमागतं' श्लोकमूं वर्णन किया हुआ 'अभीष्ट' देने लगी :

तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा।
न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन् ननाम सा।।३१।।

श्लोकार्थ : उनको ले आया है यह जानकर रुक्मिणी प्रसन्न हुई. ब्राह्मण को देनेकेलिए नमनसे प्रिय अन्य कोई वस्तु नहीं देखी, अतः नमस्कार ही किया।।३१।।

व्याख्यार्थ : रुक्मिणी स्वयं भगवान्की ही है, इसलिए भगवान्के पधार जाने पर जो कुछ उसके पास था वह सब भगवान्को अर्पण कर दिया. विदर्भदेशमूं उत्पन्न होनेसे ब्राह्मणका कर्म सफल न कर सकेगी. भगवान्के पधारनेसे प्रसन्न चित्त हो गई, जिससे अपने लिए कुछ भी प्रार्थना नहीं की. जो चाहती थी वह परमानन्द सत्य द्रव्य प्राप्त हो गया. उसके मिलनेवाले ब्राह्मणको कुछ देकर प्रसन्न करे, ऐसी कोई वस्तु नहीं देखी, कारण कि जिस ब्राह्मणने, मोक्ष देनेवालेको दिया है, उसको क्या दिया जाए? वैभव दो तो कहती है कि वैभव भी नहीं दिया जा

सकता है, कारण कि यह ब्राह्मण है, इसको वैभवकी आवश्यकता नहीं है, क्यूंकि ब्राह्मणूका वैभव तप है. उसमू भी यह 'द्विजसत्तम' होनेसे भक्त भी हैं, इसलिए धनादि देना व्यर्थ है. इस कारणसे नमस्कारके सिवाय दूसरा कोई भी पदार्थ ब्राह्मणको प्रिय नहीं है, इसलिए उसने ब्राह्मणको नमस्कार ही किया. 'नमो नमः'से सदुपदेश दिया. जहां कोई भी बदला नहीं दिया जा सकता हो वहां नमस्कार ही प्रतीकार है. भगवान् स्वयं ब्राह्मण्य देव हैं, इसलिए भगवान्की पत्नी, ब्राह्मणको नमस्कार करे, यह योग्य ही है. इससे यह शिक्षा दी कि जब देनेकी वस्तुका अभाव हो, तब सर्वत्र इस प्रकार ही 'नमो नमः' करना योग्य है, यह साधन निरूपण किया है।।३१।।

आभासार्थ : भगवान् तो नगरमू पधारे और ब्राह्मण अन्तःपुरमू भीतर गया. उसके पश्चात् आए हुए दोनूका विवाहसे प्रथम कर्तव्य है, वह कहना चाहिए. पिता विवाह कराके न देवे तो हरण करना योग्य है, किन्तु बलात्कारसे हरण करनेमू भी माता-पिताका दान करना आवश्यक है, नहीं तो वह विवाह धर्मयुक्त नहीं माना जायेगा, इसलिए पिताके दानको गुप्त रखनेकेलिए वैसी कथा 'प्राप्तौ श्रुत्वा' श्लोकसे तीन श्लोकामू वर्णन करते हैं :

प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रक्षणोत्सुकौ।
अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः।।३२।।
मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजानि सः।
उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत्।।३३।।

श्लोकार्थ : अपनी कन्याके विवाहोत्सव देखनेके उत्सुक होनेसे दोनू भ्राताओंका आना सुनकर, राजा भीष्मक पूजाकी सामग्री लेकर बाजे-गाजेके साथ सामने सत्कार करनेकेलिए आए और साथमू मधुपर्क, शुद्ध वस्त्र भी ले आए थे. विधिके अनुसार पूजनकर, उन्हू सुशोभित किए।।३२-३३।।

व्याख्यार्थ : अपनी पुत्रीके विवाहोत्सवके सम्बन्धी होनेसे देखनेकेलिए उत्सुक थे, अतः आये हैं. इस प्रकार लोकमू भ्रम पैदाकर, स्वयं भीष्मक कन्या देनेकेलिये आया. ये दो राम, कृष्ण जो आये हैं, उनमूसे एक श्रीकृष्ण, पति हैं और दूसरा राम भावुक है. कृष्ण, विवाहका उत्सुक होनेसे पति है और राम उत्सव देखनेका उत्सुक होने भावुक है. इस कारणसे ही बिना बुलाये भी आये हैं. लोकमू भी जिनको प्यारी वस्तुको पाने या देखनेकी लालसा होती है, तो भी आगे जो

कार्य करना है, वह करना ही चाहिए. यह चित्तमू निश्चयकर, बाजे-गाजेके साथ पूजाका सामान लेकर सामने आया. शिशुपालके आने पर तो 'तं वै विदर्भाधिपतिः' इस श्लोकमू कहे हुए के अनुसार सामने गया. पश्चात् सामना करने पर सम्मुख आये हुएकी जैसी पूजा, जिस प्रकार, ठहराना आदि, वैसे आगे सबूका ही कहेगा, बीचमू तो भगवान्की विशेषरूपसे, जैसे वर(दुलहा)की की जाती है, वैसे करने लगा. भीष्मक सत्कार करनेकेलिए जब जाने लगा तब बाजे वगेरे(वाद्य साज) साथमू ले चला, तथा वरकी पूजाकेलिए जिन द्रव्यूकी आवश्यकता उस समय होती हैं, वे सब तैयारकर, साथमू लिए थे. वहां पहुंचनेके बाद पूजाके प्रारम्भमू मधुपर्क मंगाया. पश्चात् भगवान्को वस्त्रूसे सुशोभित करनेकेलिए शुद्ध सात्त्विक वस्त्र अर्पण किए. वस्त्रूका विशेषण जो 'विरज' दिया है, जिसका भाव है कि ये वस्त्र दानार्थ नहीं है, किन्तु शृङ्गारकेलिए सात्त्विक वस्त्र हैं. दूसरूको तो जो वस्त्र दिए जाते हैं, वे अपने यशकेलिए राजसगुण(भाव)से दिए जाते हैं, वे अविरज ही होते हैं. यदि विरजका भाव नवीन वा स्वच्छ किया जाय, तो नवीन वा स्वच्छ तो सर्वको दिए जाते हैं, जिससे 'विरज' विशेषण देना व्यर्थ हो जाता है, इसलिए विरजका भाव है सात्त्विक वस्त्र, अथवा कन्याको जो आगे वस्त्र देने पड़ते हैं, वे पहिले ही अखण्ड और शुद्ध वस्त्र दे दिए और उपायन (उपहार) भी वर और वधूको जो देना था, वह दे दिया. वह भी यू ही नहीं दिया, किन्तु जैसे विवाहमू देनेकी विधि है, वैसे दिए ।।३२-३३।।

ततो निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः।
ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा।।३४।।

श्लोकार्थ : महामति भीष्मकने समीप ही सुन्दर ठहरनेका स्थान तैयार रखा था, वह ठहरनेकेलिए दिया और लश्कर सहित तथा जो अन्य साथ आए थे, उनका भी यथायोग्य भोजन आदिसे आतिथ्य सत्कार किया।।३४।।

व्याख्यार्थ : पूजाके पश्चात् जैसे वरको ठहरनेकेलिए सुन्दर स्थान दिया जाता है, वैसे निकट ही उत्तम घर रहनेकेलिए दिया, जिससे भगवान् रुक्मिणीके समीप होनेसे उससे हिल मिल जावे. भीष्मकने यू कैसे जान लिया? इसके उत्तरमू कहा कि वह बड़ा बुद्धिमान् है, जिससे सब समझ गया था, पश्चात् वरके साथ जो आए थे, उनको भोजन भी दिया. उनके साथ जो सेना आई थी, वह पंक्तिमू साथ भोजन करनेवाली नहीं थी, अतः उसको अलग भोजन करवाया और जो दूसरे

अनुग थे, वे सहभोजी थे, अतः उनको साथमृ भोजन करवाया. अतिथि सत्कार तो हर एकका धर्मबुद्धिसे करना आवश्यक है, अथवा इस बुद्धिसे किया है।।३४।।

आभासार्थ : उसके पश्चात् दूसरृकी भी आतिथ्य सत्कारकेलिए पूजा की जिसका वर्णन 'एवं राजा' इस श्लोकमृ करते हैं :

एवं राजा समेतानां यथारूपं यथावयः।
यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत्।।३५।।

श्लोकार्थ : इस प्रकार जो राजा आदि आए थे, उन सबका उनके पराक्रम, आयु, बल तथा वित्तके अनुसार सर्व प्रकारकी कामनाओृसे सत्कार किया।।३५।।

व्याख्यार्थ : रूप तथा वयके समान जैसे-जैसे वस्त्र योग्य थे, वे तैयार करवाए थे, वे दिए. जितनी सेना थी उसके योग्य विशेष पोषण भी किया और जैसा अपने पास धन था उसके अनुसार, यथायोग्य चार प्रकारसे सबकी पूजा की।।३५।।

आभासार्थ : रानीका भी राजाकी तरह इसमृ पूरा प्रेम है, वा नहीं, इस सन्देहके निवारणकेलिए सामान्य रीतिसे स्त्रियोृको भी यह पसन्द है, इसका वर्णन 'कृष्णमागतं'से तीन श्लोकोृमृ करते हैं. कायिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकारका उनका प्रेम है, इसलिए तीन श्लोकोृमृ वर्णन करते हैं. उनमृसे इस श्लोकमृ 'कायिक' का वर्णन करते हैं :

कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः।
आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम्।।३६।।

श्लोकार्थ : विदर्भ पुरवासियोृने कृष्णका आना सुनकर सब यहां आकर अपने नेत्ररूप अंजलियोृसे उनके मुखरूप कमल मकरन्दका पान किया।।३६।।

व्याख्यार्थ : स्वभावसे स्त्रियोृको प्यारा श्रीकृष्ण है, इसलिए उसके घर जा कर भी जब वे देखने योग्य हैं, तब अपने घर आए हुएको कैसे न देखृ, इसलिए विदर्भ पुरवासी सब आकर नेत्ररूप अंजलियोृसे उनके मुखरूप कमलके मकरन्दका पान करने लगे।।३६।।

आभासार्थ : दर्शनकर, उन्होृने जो वचन कहे, वे 'अस्यैव' श्लोकमृ कहते हैं :

अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा।
असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः।।३७।।

श्लोकार्थ : रुक्मिणी इसकी ही भार्या बनने योग्य है न कि दूसरे की, यह निर्दोष है, इसलिए यह ही इसका योग्य पति है।।३७।।

व्याख्यार्थ : कोई भी किसीको भले देवॄ, किन्तु रुक्मिणी तो इसकी भार्या बनने योग्य है. इन शब्दॄसे स्वरूपकी योग्यता बताई है. इस प्रकारके शब्द कहनेका भाव यह है कि योग्य कन्या योग्य वरसे ही सम्बन्ध करानेके योग्य है, यह तो भाईने दूसरेको दी है, इसलिए भगवान्‌को दूसरी दी जाय? इनका निराकरण नगरवासी करते हैं कि 'नापरा', दूसरी नहीं, कारण कि दूसरी तो भगवान्‌के योग्य नहीं होगी, लक्ष्मीके सिवाय दूसरी कोई भी भगवान्‌की भार्या बनने योग्य नहीं है, लोक इसमॄ प्रमाण है, जैसे दैवी वाणीसे लोक कह रहे हैं, यह भी रुक्मिणीके योग्य है क्यॄकि निर्दोष आत्मा है. पुरुषोत्तम होनेसे ही निर्दोषपूर्णगुणविग्रह है. वह भी निर्दोषको ही अपना पति मानती है, भगवान् ईश्वर होनेसे समस्तॄके पूज्य होने योग्य है, किन्तु पतिपनसे तो इसके ही योग्य है, क्यॄकि यह भक्तिप्रधान है, अर्थात् इसमॄ प्रेम मुख्य है।।३७।।

आभासार्थ : इस प्रकार वाचनिक भाव प्रकटकर, इसमॄ कोई विघ्न न पड़े, ऐसी आशंका होनेसे उसके निवारणकेलिए किञ्चित्' श्लोकसे भगवान्‌को प्रार्थना करते हैं :

किञ्चित् सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत्।
अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिम् अच्युतः।।३८।।
एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः।

श्लोकार्थ : जो कुछ हमारे पुण्य हैं, उनसे त्रिलोकीको रचनेवाले यह अच्युत भगवान् प्रसन्न होकर हम पर अनुग्रह करके इस वैदर्भीका पाणिग्रहण करॄ. प्रेमकी बेड़ीमॄ बन्धे हुए पुरवासी इस प्रकार कहने लगे।।३८।।

व्याख्यार्थ : जो हमारे कुछ पुण्य हैं, तो उनसे पहले तो भगवान् प्रसन्न होवॄ, और वह आप ही त्रिलोकीके कर्ता हैं, दूसरॄकी अपेक्षासे आप स्वयं ही हम पर अनुग्रह करॄ, अनुग्रह करनेके बाद जो कुछ करना योग्य है, वह कहते हैं, कि वैदर्भीका पाणिग्रहण करॄ, यहां 'यॄ ही' कहनेका भाव है. आप अच्युत हैं पहले उस पतिकी खोज की जाती है जो स्वरूप और धर्मसे कभी भी, लेशमात्र भी डिगे

नहीं, वैसे ही भोगसे भी, इस प्रकार उनका अतिशय प्रेम प्रकटकर, सबको सम्मति होने पर माताकी भी यही राय हो गई, इस अभिप्रायसे अब उपसंहार किया जाता है. इस प्रेमकी बेड़ीमॄ बन्धे हुए अर्थात् अनेक विध स्नेहके तरीकॄसे वशीभूत हो, कहने लगे. 'स्म' पद कहनेका भाव है कि यॄ छिपकर नहीं कहने लगे, किन्तु जैसे प्रसिद्धि हो वैसे प्रमाणपनसे कहने लगे, कहने वाले नगरवासी थे, अतः कोई भी उनका मुख बन्द नहीं कर सकता था।।३८।।

आभासार्थ : इस प्रकार सबकी, हरण करनेमॄ सम्मति कह, देवीपूजा केलिए उसका बाहर निकालना 'कन्या च' श्लोकसे कहते हैं :

कन्या चान्तः पुरात् प्रागाद् भटैर्गुप्ताम्बिकालयम्।।३९।।

श्लोकार्थ : योद्धाओंसे रक्षित कन्या, देवीके मन्दिरको जानेकेलिए अन्तःपुरसे बाहर निकली।।३९।।

व्याख्यार्थ : जैसे नगर निवासियॊंने अपने सर्व पुण्यकर्म समर्पणकर, रुक्मिणीसे विवाह करनेकेलिए भगवान्को प्रार्थना की, वैसे ही रुक्मिणी भी, भगवान् मुझे स्वीकार करॄ, ऐसी प्रार्थना महादेवको करनेकेलिए अन्तःपुरसे निकली. यह आशयमॄ दिए हुए 'च' शब्दका है. अन्तःपुरसे बाहर आनेका यह भी कारण है कि भगवान् बान्धवॊंको पीड़ा नकर, आरामसे मुझे ग्रहण कर सकॄ. उत्कर्षसे बाहर निकलनेसे अपने मनका सन्तोष दिखाया. योद्धाओंसे रक्षित होकर इसलिए निकली कि भगवान् ग्रहण करॄ, तब तक कोई दूसरा स्पर्श न करे. 'अम्बिकालयम्', 'स्त्री देवता'. घरमॄ, स्त्रियां ही मुख्य होती हैं, वहां पुरुषॊंके सम्बन्धका अभाव रहता है. अम्बिकाका मातृत्व भाव भी बताया है।।३६।।

आभासार्थ : रुक्मिणी, देवीके मन्दिरमॄ जानेकेलिए, अन्तःपुरसे पैदल ही निकली थी, कारण कि जो रथमॄ बैठकर जाये तो रथमॄ बैठे हुएको दूसरे रथमॄ, बैठी हुई को ग्रहण करनेमॄ कठिनाई न होगी, भगवान् मुझे आसानीसे, ले सके अतः रुक्मिणीने पैदल जाना ही योग्य समझा, जिसका वर्णन 'पद्भ्यां' श्लोकमॄ करते हैं :

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम्।
सा चानुध्यायती सम्यङ् मुकुन्दचरणाम्बुजम्।।४०।।

श्लोकार्थ : यह 'पांवॊंसे' अम्बिकाके चरणाविन्दकेलिए जाने लगी. उस समय भी भली-भांति भगवान्के चरणकमलॊंका ही ध्यान कर रही थी।।४०।।

व्याख्यार्थ : देवीके चरणाविन्दके दर्शनकेलिए जानेके कारण केवल लोकमृ अपनेको(रुक्मिणीको) उसकी(अम्बिकाकी) भक्त प्रसिद्ध कराना था. चित्तका भीतरी भाव तो दूसरा ही था, वह भीतरी भाव जो था, वह श्लोकके उत्तराधमृ प्रकट किया है, वह तो वहां जाते समय भी मुक्ति दाताके चरणाम्बुजका ही भली भांति प्रतिक्षण ध्यान कर रही थी, उसकी सम्बन्धवाली स्त्रियां भी, भगवान्का ही ध्यान कर रही थीं, कारण यह है कि रुक्मिणीजीको भगवान्की ही केवल आकांक्षा है. पिताके घरमृ भी बन्धन और दूसरे स्थान पर भी रुकावट, इसलिए मुकुन्द भगवान्मृ निरोध, मोक्ष है, अतः उसका त्याग करना योग्य नहीं है।।४०।।

आभासार्थ : इस प्रकार काया और मनके कार्योंको कहकर, वाणीमृ कार्यका अभाव 'यतवाङ्' श्लोकमृ कहते हैं :

यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता।
गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः।।४१।।

श्लोकार्थ : सखियाृसे घिरी हुई, माताआृके साथ मौन धारणकर, दर्शनको जा रही थी. उस समय कवच धारण किए हुए, शस्त्रधारी राजाके शूरवीर योद्धे रक्षा कर रहे थे।।४१।।

व्याख्यार्थ : माताओके साथ जा रही थी. इनके साथ जानेका अभिप्राय यह था कि भगवान्के मनमृ मेरे लिए किसी प्रकार अयोग्यताकी शंका उत्पन्न न होनी चाहिए. सहेलियाृसे घिरी हुई थी. माताआृ और सहेलियाृका साथमृ होनेका भाव यह था कि भगवान् मुझे हरण कर ले जावे, इसमृ इनकी भी राय है, इसलिए इनको वा मुझे पश्चात्ताप न होगा, बाहरसे इनके साथमृ आनेसे शोभा भी है, बाहर भटाृसे रक्षित थी. वे शूरवीर थे, इससे भीतरका सामर्थ्य दिखाया. शस्त्र लेकर तैयार थे, इससे यह बताया कि अपनी रक्षा और शत्रुआृकी पीड़ाकेलिए साधनाृकी सम्मति बताई है. इस प्रकार इसकी रक्षाकेलिए चार पड़दे(आवरण) कहे, सर्व प्रकार दोषाृका अभाव बतानेकेलिए।।४१।।

आभासार्थ : पश्चात् मंगलसूचक बाजे भी बजने लगे और शुभके निमित्त कारण शकुन भी हुए, जिनका वर्णन 'मृदङ्ग' श्लोकमृ करते हैं :

मृदङ्गशङ्खपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे।
नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः।।४२।।

स्रक्–गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः।
(गायन्तश्च स्तुतन्तश्च गायका वाद्यवादकाः।)
परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवन्दिनः।।४३।।

श्लोकार्थ : हजारू उत्तम वेश्याएं अनेक प्रकारके उपहार और बलिदानके लिए साथ चल रही थी, माला, सुगन्ध, वस्त्र और आभूषणूसे अलंकृत ब्राह्मणूकी स्त्रियां संग चल रही थी. मृदंग, शंख, नगारे, तुरी, बड़े नगारे बज रहे थे. गाते, बजाते, स्तुति करते और बाजे बजानेवाले सूत, मागध एवं बन्दीजन, ये सब तथा मुख्य वैश्याएं रुक्मिणीको घेरे हुए चलती थीं।।४२ – ४३।।

व्याख्यार्थ : अनेक उपहार और बलियूके साथ मुख्य वेश्याएं रुक्मिणीको घेर कर चल रही थीं. इस प्रकार सम्बन्ध है, अनेक उपहार अर्थात भवानीकेलिए फल आदि वाले पूजाके साधन ये सब पृथक् साथ थे. साथका अर्थ तृतीयासे समझना चाहिए. मुख्य वेश्याएं जुदा थीं. बहुत वर जिनके होते हैं, उनको 'वार' कहा जाता है, वे मुख्य जिनमू हैं, वे 'वारमुख्या' कही जाती हैं. प्रतिदिन बहुत पति वेश्याआूके ही होते हैं. वे हजारू थीं, यू कहनेसे उनका उत्सव अर्थात् आनन्द प्रकट करनेका समय निरूपण किया है. भगवान्का रसस्वरूप नित्य क्षण–क्षणमू नूतन होनेसे देखने योग्य है. ब्राह्मणूकी स्त्रियां भी सदाचारसे आशीर्वाद देनेकेलिए भगवदिच्छासे साथ ही थीं. इनकी विशेष पूजा करनी चाहिए, वह पूजा पहिले होनी चाहिए, वह पूजा ही की गई. निरूपण करते हैं, माला, सुगन्ध, वस्त्र और आभूषणूसे अलंकृत की गई थीं. इसी भांति चार प्रकारसे इनकी पूजा हुई है. अन्य भी महान् आनन्द हुआ, वह वधू 'परिवार्य' पदसे कहा है. दर्शनकेलिए और मनोरथ पूर्ण होनेकेलिए यह यात्रा थी. सूत आदि विद्यासे आजीविका चलानेवाले कहे हैं।।४२–४३।।

आसाद्य देवसदनं धौतपादकराम्बुजा।
उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवेशाम्बिकान्तिकम्।।४४।।

श्लोकार्थ : वहां मन्दिरमू पहुंचकर, पहले अपने कमल समान कोमल हाथ और पैर धोए, पश्चात् आचमनकर, शुद्ध हुई, बादमू शान्त चित्त हो, अम्बिकाजीके पास गई।।४४।।

व्याख्यार्थ: भगवान्ने कुछ समय चुप्पी साध ली, यह इसलिए कि यह पूजा कर ले, पूजाके बाद ही ले लूंगा(हर लूंगा). तब वह देवगृहमू निकट जाकर

हाथ-पैर धो, आचमनकर, अन्दत-बाहर दोनॄ तरफ शुद्ध हुईं. उद्वेग आदिका त्यागकर, शान्तचित्त हो, पूजाकेलिए देवीके पास पहुंची, जिसके अन्तःकरणमॄ शान्ति है, उसको पूजाका और भक्तिका फल प्राप्त होता है, इस कारण ही भागवतमॄ लौकिक सौन्दर्य कहनेकेलिए भाषाका भेद निरूपण किया है।।४४।।

तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः।
भवानीं वन्दयाञ्चक्रुः भवपत्नीं भवान्विताम्।।४५।।

श्लोकार्थ : तब विधि जाननेवाली ब्राह्मणॄकी वृद्ध स्त्रियॄने, उस कन्यासे महादेव सहित भवानी देवीको प्रणाम करवाया।।४५।।

व्याख्यार्थ : भवानी पास पहुंचनेके बाद जो विधिको जानने वाली ब्राह्मणॄकी वृद्ध स्त्रियां थीं, वे रुक्मिणीसे देवीको प्रणाम कराने लगीं. 'भवानी' शब्दसे यह बताया है कि जिस देवी स्वरूपका पुरुषसे सम्बन्धमात्र हुआ है. उस देवीका नाम इस कारणसे 'भवानी' हुआ है, इससे विशेष प्रसिद्धिकेलिए 'भवपत्नी' विशेषण दिया है, अथवा यह अम्बिका भवानी महादेवकी भोगस्त्री नहीं है, यदि भोगकी स्त्री होती तो वर देनेकी शक्ति इसमॄ न रहती, इसलिए भवपत्नियॄ कहा है. पतिका यज्ञमॄ संयोग नहीं है, वहां भी महादेवके साथ होती है, उद्भवरूप ही सम्पूर्ण होता है, स्त्री सहित ही स्वरूप पूर्ण है।।४५।।

आभासार्थ : भवानीको नमस्कार करते ही भगवदिच्छासे रुक्मिणीको मनमॄ मंत्रका स्फुरण हुआ, जिसका वर्णन 'नमस्ये त्वां' श्लोकमॄ करते हैं :

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवम्।
भूयात् पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम्।।४६।।

श्लोकार्थ : हे अम्बिके! अपने सन्तान सहित आपको तथा महादेवको नमन करती हूं, मेरे पति भगवान् श्रीकृष्ण होवॄ, जिसका आप अनुमोदन करो, एवं श्रीकृष्ण भी अनुमोदन करे।।४६।।

व्याख्यार्थ : हे अम्बिके! अपने सन्तान गणपति आदि सहित आपको तथा महादेवजीको भी प्रणाम करती हूं, मन्त्रमॄ ही प्रार्थना करती है कि मेरे पति भगवान् कृष्ण ही होवे, जिसका अनुमोदन शिव और भवानी दोनॄ करॄ अथवा कृष्ण भी अनुमोदन करे. अन्य देवताको नमस्कार कर रही हूं, इसको अनुचित समझ, कोप न करॄ, किन्तु उचित जान, अनुमोदन हो करॄ. मेरे पति श्रीकृष्ण हो, वैसी लोककी प्रतीति भिन्न है, उस लोकप्रतीतिका कृष्ण अनुमोदन करे, यह

पृथक् विषय है, नहीं तो महादेव अपने सदृश ही करे और वह तो दूसरूका फल नहीं है, अतः सर्वत्र कृष्णका अनुमोदन हीं करना चाहिए।।४६।।

आभासार्थ : यह मन्त्र केवल नमस्कारके समय कार्यमू नहीं लाया, किन्तु इस मन्त्रसे समग्र पूजा की, जिसका वर्णन 'अद्भिः' श्लोकमू करते हैं :

अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपवासः स्रङ्माल्यभूषणैः।
नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक्।।४७।।
विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत्।
लवणापूपताम्बूल कण्ठसूत्रफलेक्षुभिः।।४८।।

श्लोकार्थ : ऐसे नमस्कार एवं प्रार्थनाकर, अब पूजा करती हैं. पहले जलसे पश्चात् गन्ध, अक्षत, धूप, वस्त्र, पुष्पमालाएं और आभूषणूसे, यथा अनेक प्रकारके उपहार, बलिएं, दीप आदिसे जुदी-जुदी पूजा की।।४७।।

पश्चात् उसी प्रकार सधवा ब्राह्मण स्त्रियूका उन पदार्थोंसे मौन पूजन किया तथा लवण, मालपुए, ताम्बूल, कण्ठसूत्र, फल और ईख, इन षट् रसवाले पदार्थोंसे पूजा की।।४८।।

व्याख्यार्थ : देवीके पूजनका प्रकार बताते हैं. पहले पाद्य, अर्घ्य, आचमन तथा स्नान करवाया, पश्चात् धूप, दीवे, गन्धसे पूर्व अक्षतूसे अलंकृत किया. धूपसे आर्द्रता(गीलापन) मिटाकर, वस्त्र, पुष्पमालाएं, आभूषण पहनाए, क्यूकि स्नानसे आर्द्रवस्त्र आदिका त्याग तब किया जाता है, जब अन्य शुष्क वस्त्र और अलङ्कार पहने जाते हैं, कारण कि शास्त्रमू कहा है 'अनलंकृताक्षणमपि न तिष्ठेत्', अलंकृत हुए विना स्त्रीको एक क्षण भी नहीं रहना चाहिए, इसलिए अन्य अलङ्कारूसे प्रथम अक्षत आदि अलङ्कार दिए, पश्चात् वस्त्र आदि दिए. फिर दीपावलिसे अनेक प्रकारकी आरती की. 'पृथक्' शब्द, पहले की हुई पूजासे भी सम्बन्ध रखता है अर्थात् पहले की हुई एक-एक पूजा भिन्न भिन्न की है. महादेवकी तथा भवानीकी. इसी प्रकार हर एक सधवा ब्राह्मण स्त्रियूकी भी पूजा की. यदि उनकी पूजा नहीं करती तो परिवार सहित पूजित शिव अपनी पूजा विष्णुको दूगे तो ब्रह्मा पूजा विना रह जाऐंगे, अतः ब्रह्माकी प्रीतिकेलिए ब्राह्मण स्त्रियां भी वस्त्र आदिसे जुदी-जुदी पूजी गईं. विवाहमू जो विशेष प्रकार किया जाता है, वह कहते हैं. [१]लवण आदि ये छः मंगल द्रव्य हैं, कारण कि रस रूप हैं, [२]कण्ठसूत्र अनेक प्रकारके भल टुकड़े किए हुए गन्ने, ये सब ही छः रस इकठ्ठेकर,

ब्राह्मण स्त्रियाॅको दानमॅ दिए।।४७-४८।।

१.लवण, पूए, ताम्बूल, कण्ठसूत्र, फल, गन्ना, ये छः रसस्वरूप हैं. २.कमलकी नालसे निकला सूत्र बताया हुआ सूत्र.

तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषा ययुजुराशिषः।
ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः।।४९।।

श्लोकार्थ : उन स्त्रियाॅने उसको दिया. अन्य स्त्रियाॅने आशीर्वाद दिए, रुक्मिणीने ब्राह्मणको, उनकी स्त्रियाॅको, तथा देवीको प्रणाम किया, दिए हुए पदार्थोंकी प्रसादी वधूने ली।।४९।।

व्याख्यार्थ : उन पूजित ब्राह्मण स्त्रियाॅने उसको दिया. जो कुछ विवाहमॅ दिया जाता है, वह पति सहित बैठी हुईको ही दिया जाता है, इस कारणसे ही लोकमॅ यह दान, विवाहके अनन्तर ही देना प्रसिद्ध है, वह यहां बन न सकेगा. मातृ कर्तव्य होनेसे मन्त्रकी तरह यह भी स्फुरण हुआ कि अब ही दे दो, अतः पहले ही दे दिया, अथवा भगवान् गुप्तरीतिसे वहां पधार गए. भवानी और महादेवने प्रार्थनाकी सफलताकेलिए भगवान्को रुक्मिणी दे दो, यह पहले दान करनेसे निरूपण किया जाता है, रुक्मिणीने ब्राह्मण स्त्रियाॅको दिया, उन्हॅाने इसको दिया, शेष भी दिए और आशार्वाद भी दिए. 'शिव' शब्दको स्पष्ट करते हैं, कि जो लवण आदि (लवण, पूए, ताम्बूल, कण्ठसूत्र, फल, गन्ना) षड् रस दिए थे, उनके थोड़े अंश दिए जाते हैं, इस प्रकार समग्र विवाहविधि कहकर, कर्मके सम्पूर्ण होनेकेलिए रुक्मिणीने जो नमस्कार किए, वे कहे जाते हैं. रुक्मिणीने उन ब्राह्मणियाॅको तथा देवोंको प्रणाम किया, उन ब्राह्मणियाॅने जो शेषादि दी वह लेकर अपनी ग्रन्थिमॅ बान्ध रखी, इस प्रकार समग्र विवाहविधि अनुसार हुआ, यह निरूपण किया. यहां तीन दिन जो व्रत होता है, वह भी हुआ, यो समझना चाहिए।।४९।।

मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामाम्बिकालयात्।
प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना।।५०।।

श्लोकार्थ : पश्चात् मौन व्रतका त्यागकर, रत्नकी जड़ाऊ मुद्रिकासे शोभित हस्तमॅ दासीका हाथ पकड़कर देवीके मन्दिरसे बाहर तुरन्त निकली।।५०।।

व्याख्यार्थ: विवाह विधि हो जानेके बाद मौनका त्यागकर सखियाॅसे जो

बातृ करनी थीं, वे कर, देवीके मन्दिरसे भगवान्‌की प्राप्तिकेलिए शीघ्र निकली. सहेलियां और अन्य स्त्रियां लौटाई गईं, एक जो अन्तरंग सेविका थी, उसको साथमृ ली, क्यृकि भगवद्भावसे मैं घबड़ाऊगी जिससे बाहर भूमि कैसी है, वह न जान सकूंगी, इसलिए इसको साथमृ लेना हितकारी है. यह मार्ग दिखलाऐगी, रत्न सहित मुद्रासे हस्तकी शोभाका प्रदर्शन इसलिए करती थी कि भगवान्‌ने मुद्रिका दी है यह प्रसिद्ध हो जाय अथवा पूर्व अवतारकी मुद्राको सूचित करती है।।५०।।

आभासार्थ : जो मैं नहीं जाऊंगी तो पहलेकी भांति गति होगी, उससे किसीको भी दर्शन न होगा, इसलिए विवाहमृ कोई भी देखे तो दूषण नहीं हैं. रुक्मिणीके भी बाहर आने पर सबने इसको देखा, जिसका वर्णन 'तां देवमाया' श्लोकमृ करते हैं :

तां देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम्।
श्यामां नितम्बार्पित–रत्नमेखलां व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशङ्कितेक्षणाम्।।५१।।

श्लोकार्थ : ईश्वरीय मायाकी भांति वीर पुरुषृको मोहित करनेवाली सुन्दर कटि भागवाली कुण्डलृसे सुशोभित मुखवाली नितम्ब पर बन्धी हुई रत्नृकी मेखलावाली, प्रकट हुए स्तनृवाली और बालृसे शंकित नेत्रृवाली ।।५१।।

व्याख्यार्थ : 'देवमायामिव'का भाव स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जैसे रंग मण्डलमृ प्रवेश करते समय भगवान्‌को बहुतृने बहुत प्रकारसे देखा, वैसे ही इसको भी देवमायाकी तरह वीरृने देखा, भगवान्‌की मायाको यह मोहमृ डालने वाली शक्ति आई है, यृ सबने निश्चय किया. वहां भी वीरृको मोहित करती है, यृ नहीं हो, तो वीर लोग आप ही जाकर न मरे, वह देवमाया केसी है जिसका वर्णन करते हैं कि षोड़श लक्षणृ वाली है. भगवान् बत्तीस लक्षणृ वाले और यह षोडश(१६) लक्षणवाली, यह बात प्रसिद्ध है. एक तो सम्बन्धसे असाधारण सामर्थ्य है, दूसरा शूरवीरृके शोर्यका निराकरण करना, तीसरा मोहित करना, चौथा सुन्दर कमरवाली योगकी लम्बिका क्रियाकी तरह अमृत सम्बन्धकेलिए पतली कमर निरूपण करनी चाहिए, इस कारणसे ही अर्थात् कमर सूक्ष्म न होनेसे योग्यता नहीं होती है, जिससे किसीका भी भगवान्‌के रससे सम्बन्ध नहीं होता है. ब्रह्मरन्धस्थित[१] वह रस पुरुषको जिह्वासे ही भोगना चाहिए, यदि वह साधनरूप नहीं हो, तो अपने ब्रह्मरन्ध्रस्थित रस भी देह नाश होने पर यृ ही चला जाता है.

लोकमॄ दुःख मात्र भोगा जाता है, आनन्दकी प्राप्ति नहीं की हुई, जैसे खाया हुआ अन्न भी मक्षिकाके सम्बन्धसे वमनमॄ निकल जाता है, उसका रस नहीं मिलता है, यह दृष्टान्त देकर समझाया है. भावार्थ यह है कि ब्रह्मरन्ध्रस्थित इस योग द्वारा सूक्ष्म जिह्वा द्वारा पान किया जाता है, वैसे सूक्ष्म कमर द्वारा भगवद्रस ग्रहण किया जा सकता है. ब्रह्मरन्ध्रके रसपानमॄ सूक्ष्म जिह्वा साधन है, भगवद्रस प्राप्तिमॄ सूक्ष्म कमर साधन है अन्यथा देहके नाश होनेसे उसमॄ स्थित रस व्यर्थ ही चला जाता है. देहसे केवल दुःख ही प्राप्त किया, रसकी प्राप्ति नहीं की गई. कुण्डलॄसे सुशोभित मुखवाली है, इससे रसके उपभोग स्थानकी ऊपरकी शोभाका वर्णन किया, रसको दिखाने वाले कुण्डल हैं. आयु भी कहते हैं श्यामा अर्थात् सोलह वर्षकी थी. नितम्बॄ पर रत्नॄकी मेखला सुशोभित थी, जिससे रसाविर्भावके अवसर पर रसके प्रकाशका निरूपण किया है, मध्यमॄ रसका प्रत्यक्ष कराने वाले साधनॄको कहते हैं कि स्तन भी बाहर प्रकट हो गए हैं, इस प्रकार रस रूप पांच धर्मोंका निरूपण किया है. अब रसके पोषक सात धर्मोंको कहते हैं, केशॄसे डरे हुए नेत्रॄवाली है, इससे दो लक्षण बताए हैं. १.केश २.दूसरी चंचल दृष्टि।।५१।।

१. योगी पुरुष लम्बिका योगसे अपनी जिह्वाकी सूक्ष्म बनाकर ब्रह्मरन्ध्रमॄ स्थित रसका पान करता है. यदि इस प्रकार जिह्वा सूक्ष्म न कर सके तो वह रसपान नहीं कर सकता है, वैसे सूक्ष्म कमर न होनेसे भगवद्रस भी प्राप्त नहीं होता है.

शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युतिशोणायमान द्विजकुन्दकुड्मलाम् ।
पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं सिञ्जत्कला नूपुरधामशोभिना।।५२।।

श्लोकार्थ : निर्दोष मन्द मुस्क्यानवाली बिम्बफलके समान अधरकी कान्तिसे कुन्दकी कलीके समान दांत भी जिसके अरुण हो गए हैं, एक पादसे चलनेसे जिसकी गति हंसके समान सुन्दर हो गई है, तथा दोनॄ नूपुरॄमॄ लगे हुए सूक्ष्म कणिकाएं उनके प्रकाशसे शोभित है।।५२।।

व्याख्यार्थ: मन्द मुस्क्यानमॄ निर्दोषता होती है, जिससे वह शुचिरूप है. सफेद दांत रसको प्रकट नहीं करते है, इसलिए विवाहके बाद उनको संस्कारद्वारा लाल चमकीले बनाए जाते हैं, किन्तु वह बनावटी संस्कार है, किन्तु यहां तो सहज धर्मोंसे दांत वैसे हो गए हैं, वह बताते हैं बिम्बफलको भांति जो रुक्मिणीका सहज लाल अधराष्ठ या उसकी कान्तियॄसे लाल हुए जो दांत वे ही जिसकी कुन्दकी कलियां थी, लालास देनेवाले द्रव्यॄकी अपेक्षा कान्तिसे जो लालास

आती है वह उत्तम है. एक पैरसे चलती थी, यह स्त्रियाृका एक प्रकारका लक्षण है, दोनाृ पैराृसे पुरुष चलते है, एक पैरसे स्त्री चलती है, उसमृ भी गति दो प्रकारकी होती है, एक सफल और बिना फल वाली है, यह विचार निश्चय प्रकट हुए लक्षणाृसे होता है, इसलिए उसके चलनेके प्रकारका निरूपण करते हैं, राजहंसकी तरह चलती है, दोनाृ नूपुराृमृ लगे हुए सूक्ष्म कणिकाआृके तेजसे शोभित है।।।५२।।

आभासार्थ : ऐसीके दर्शनसे जो वीराृको रस उत्पन्न होता है, तो दोष होना चाहिए, यदि रस उत्पन्न हो तो विषयकी उत्तमता नहीं होनी चाहिए, इस प्रकार दोनाृ तरह पाशारज्जु है, इसके निवारणकेलिए वीराृका दो प्रकारसे विनियोग है, जिसका वर्णन 'विलोक्य' श्लोकमृ करते हैं :

विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ।
यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहासव्रीडावलोकहतचेतस उज्झितास्त्राः।।५३।।

श्लोकार्थ : आये हुए यशस्वी वीर उनको देखकर मोहित हो गए और उससे उत्पन्न कामसे पीड़ित होने लगे, जिसको देख, उसके उदार हास, क्रीड़ा और दृष्टिसे उन राजाआृके चित्तका हरण हो गया, जिससे उन्हाृने अस्त्र छोड़ दिए।।५३।।

व्याख्यार्थ : प्रथम तो उसको देखकर आए हुए वीर मोहित हो गए, इससे आनेका फल कहा. मूर्च्छामृ भी सुषुप्तिकी तरह कुछ आनन्द आता है, 'मुग्धेऽर्धः' मूर्छाके समय भी आधी सम्पत्ति होती है, इस न्यायके अनुसार इनको मोहित होनेसे कुछ सुख प्राप्त हुआ. 'यशस्विनः' विशेषणसे उनके पुण्य भी सूचित किए. अभिलाषाको भी कहते हैं, उससे उत्पन्न कामसे पीड़ित हुए. इस प्रकार वीराृने चार धर्मोसे फल प्राप्त किया, इससे विषयका उत्कर्ष वर्णन किया, दोषाृके अभावकेलिए कहते हैं 'यां वीक्ष्य' जिसको देखकर, याृ जब तक उनकी दृष्टि रसवाली हो, उसके मध्यमृ ही वे गिर गए, उसमृ भी कारण हैं, वे निश्चयसे भगवद्विमुख हैं, उसमृ भी जरासन्ध आदि अभिमानी राजा हैं, रसके अनुभव केलिए जो उनका बल तथा उत्साह शक्ति थी, उसको इसके भावाृने हरण कर लिया, उन भावाृको कहते हैं, सर्व रसाृको देनेमृ समर्थ उसका उदार हास, लज्जा और देखना, इन तीन प्रकारके भावाृसे उनके तीन प्रकारके चित्तको हरण किया, जिससे उनके चित्त रहे नहीं और उस समय ँयुद्ध भी नहीं था, इसलिए उन्हाृने अस्त्र

छोड़ दिए।।५३।।

१. सुबोधिनी टीकामृ 'युद्धाभावात्' पद है, फुटनोटमृ 'चिन्ताभावात्' पाठ कहा है, जो भावानुकूल नहीं जचता है.

पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ।
सैवं शनैश्चलयती पदपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा।।५४।।

श्लोकार्थ : पश्चात् हस्ती, रथ और घोड़ामृ पर बैठे हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गए, वह रुक्मिणी, यात्राके मिषसे अपनी शोभा भगवान्को अर्पण करती हुई, चरणकमल परस्पर जुड़े हुए थे, जिससे वह जब इस प्रकार धीरे – धीरे चलती थी, तब मनसे भगवान्की प्राप्ति ही देख रही थी वा चाह रही थी।।५४।

व्याख्यार्थ : शस्त्र त्यागनेके पश्चात् वे पृथ्वी पर गिर गए, ऐसे गिरे, जो फिर (उन्हृ) उठनेका साहस न रहा, क्यामृकि ऊंचे स्थानामृसे गिरे थे, जैसे कि हाथी, रथ और घोड़ामृ पर बैठे थे, वहांसे नीचे पड़े थे, इसलिए उठनेका उस समय साहस न कर सके. यह गिरनेका कार्य जो भगवान्को करना था, वह इसने ही कर दिया. मूर्च्छित हो गए, जिससे गिरनेका भी ज्ञान न रहा, यों करनेसे तो यह दुर्गाकी तरह विशेष तेज वाली हुई. यदि यामृ कहो तो कहते हैं कि नहीं, यह यात्राके बहाने भगवान्को अपनी शोभा अर्पण कर रही थी, संयोगसे यह हो गया, वह तो अपने दुःखको मिटानेके लिए अपनी शोभा प्रकटकर, भगवान्को दे रही थी. वहां ये वीर इस शोभाको हम ग्रहण करृगे, ऐसी अयोग्य इच्छा करनेसे स्वयं गिर गए, कि रुक्मिणीने गिराए थे, यह तो यात्रा करती ही जा रही है. कैसे कहते हो कि भगवान्को शोभा देती है? इस पर कहते हैं कि शोभा अपनी अर्थात् रुक्मिणीकी है और स्वयं रुक्मिणी तो दूसरेकी है, अतः अपने दानमृ अपनी अपेक्षाके अभावसे भी अपनी वस्तु देनी ही चाहिए, इस अपनी वस्तुको देनेकेलिए भगवान्को ढूंढ रही है, उसका वर्णन करते हैं, 'सैवं' शीघ्र चलनेसे रथ पर चढ़ना न हो सकेगा, इसलिए धीरे–धीरे चरण कमलामृको साथ मिलाकर चलने लगी. 'कोश' शब्दसे यह भाव शब्द बताया है कि चरणकमल पूरी तरह जुदे न हो सकते थे, इससे थोड़ी दूर चलनेसे पैरामृ पीडा होने लगी, यों जतानेके लिए पैर मिलाकर रखती थी, यों समझा जाता है. इस प्रकार बहाने करनेका कारण उसी क्षण ही भगवान्की प्राप्ति चाह रही थी।।५४।।

आभासार्थ : कन्याको अपनी विलक्षणता बतानेकेलिए राजदर्शन भी

करना चाहिए, वह दर्शन भगवदर्थ हुआ, जिसका वर्णन 'उत्सार्य' श्लोकमृ करते हैं :

उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः प्राप्तान् समैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतं सा ।
तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम्।।५५।।

श्लोकार्थ : बायृ हस्तके नखाृसे अलकाृको ऊपर उठाके, कटाक्षाृसे आए हुए राजाआृको देखते – देखते भगवान्को देख लिया. सबने जिसको रथ पर चढानेकी इच्छा की, तब उनके बीचमृसे उस राजकन्याको भगवान्ने सब शत्रुआृको दिखाते हुए हरण कर लिया।।५५।।

व्याख्यार्थ : बाएं हाथके नखाृसे केशाृको ऊपर उठाके कटाक्षाृसे आए हुए राजाआृको जांचकर, देखने लगी, पश्चात् जिसकेलिए उनको देख रही थी, उस अच्युतको देख लिया. पहली बार ही देखनेसे कैसे पहचान लिया? जिसके उत्तरमृ कहा कि वह 'अच्युत' हैं, इसलिए वह सर्वत्र मौजूद है, इसलिए उनको रुक्मिणीके पहचाननेमृ किसी प्रकारकी रुकावट नहीं है और रुक्मिणीने चित्रमृ भगवान्के दर्शन किए थे, तथा स्वप्न आदिमृ भी देखे थे, इसलिए उसने भगवान्को पहचान लिया, इस प्रकार दोनाृमृ पहचान करनेका एक–एक धर्म था. भगवान् 'अच्युत' होनेसे चित्राृमृ तथा वहां एक ही है, इस कारणसे रुक्मिणकी दृष्टि दूसरी जगह नहीं गई इसलिए ही उनका दर्शन करती हुई जब खड़ी हो गई, तब सब उसको रथ पर चढ़ानेकी इच्छा करने लगे, उनके बीचमृसे भगवान्ने वह राजकन्या हरण कर ली. राजकन्याका विशेषण तो दिया है, जिसका भावार्थ है कि भगवान्ने इस राज कन्याका हरण इसलिए किया कि उसने भगवान्को आत्मसमर्पण किया था अर्थात् जो भगवान्को आत्मसमर्पण करता है, उसको सर्व दुष्टाृसे छुड़ाकर, अपनी शरणमृ लेकर रसदान करते हैं, अतः रुक्मिणीको भी ले लिया. इसलिए राजकन्याका हरण योग्य ही है. रथ पर चढ़ाने पर फिर सारथि आदिको मारना चाहिए, जब ही वह रथ पर चढ़नेकी इच्छावाली हुई, तब ही रथमृ चढ़ा लिया, अर्थात् हरण किया, तब ही सर्व समूह भाग गया, अथवा तब ही सब शत्रुआृका मानो मरण हुआ हो, जो शत्रु हरण करनेमृ रुकावट डालने वाले थे, उनके देखते हुए ले लिया, जिससे वे साक्षी बन गए, कृष्णका यह स्त्रीहरण एक प्रकारसे हस्तसे लेकर ऊपर उठाकर तोलनेके समान है।।५५।।

रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ।

ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः सृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः।।५६।।

श्लोकार्थ : लक्ष्मीपतिने अपने गरुड़के चिह्नवाले रथमृ बैठाकर राजाओृ के समूहका तिरस्कारकर, जैसे सियारृके मध्यसे सिंह, बलि ले जाता है, वैसे भगवान् रुक्मिणीको ले गए. पश्चात् बलभद्र आदि यादवृके साथ धीरे-धीरे जाने लगे।।५६।।

व्याख्यार्थ : पश्चात् रथमृ चढ़कर, ऐसे ले गए जैसे निर्विघ्न अपने देश पहुंच गए, यृ आगेसे सम्बन्ध है. समीपस्थित रथमृ न चढ़ाकर गरुड़ध्वजा वाले रथमृ ले गए, इसलिए 'सुपर्णलक्षणं' रथका विशेषण दिया है. वहां चारृ तरफ चक्रकी तरह राजा लोग घेर रहे थे, उन समस्त राजाओृको परास्तकर, ले गए. भगवान्का नाम यहां 'माधव' दिया है, जिसका भाव प्रकट करते हुए कहते हैं कि प्रकट बली तो है ही, परन्तु इनमृ छिपा हुआ बल भी है, कारण कि लक्ष्मीपति हैं. यह रुक्मिणी लक्ष्मी है, अतः इनकी ँभार्या है. जिससे इसका पालन करनेमृ भगवान्को धर्म प्राप्त हुआ, इसकी अभिलाषा करनेवाले वे तो अधिकारी नहीं थे, जिससे इनको पाप ही लगा, अतः इनको परास्त करना योग्य है. उनका पराभव कराने पर इनके रक्षक लड़ृगे? उनके मारनेसे अमंगल होता है, इस दोषका परिहार करते हैं कि 'ततो ययौ इन शब्दृके देनेका आशय यह है कि 'ततः' अव्यय है, जिससे बताया कि उस स्थानको अविकारी बनानेकेलिए, वहां किसीको मारा नहीं. वहां नहीं मारा तो नगरके बीचमृ कितनी दूर जाकर मारा होगा? इस शंकाको मिटानेकेलिए 'ययौ' कहा है, जिसका अर्थ है पहुंच जाना, अर्थात् भगवान् रुक्मिणीको लेकर कुशलपूर्वक अपने देश पहुंच गए. भगवान् तो सकुशल पहुंच गए किन्तु उनका वा रामादिकृका उपद्रव हुआ होगा? इस शंकाको मिटानेकेलिए कहते हैं, कि 'राम पुरोगमैः', बलरामजीको अपने साथ आगे कर ले गए, कारण कि बलराम साधन शक्ति है, और रणरूप है, जिससे यह बताया कि उसने भी नहीं मारा. रमणरूप आनन्दरूप होनेसे मारनेका गुण उसमृ नहीं है, अतः उसने भी कोई उपद्रव नहीं किया. आपसके संघर्षसे भी उपद्रव वा मारना आदि हुआ हो, ऐसी शंकाके निवारणकेलिए 'शनैः' शब्द दिया है अर्थात् धीरे-धीरे जाने लगे, जिससे बताया है, कि किसी प्रकारका संघर्ष नहीं हुआ. नगरमृ रहने वाले तीन-चारके सिवाय सब लोग विदा देनेकेलिए आए, उन्हृने लोकरीतिके अनुसार सबसे छोटी रुक्मिणी श्रीकृष्णको दी, इस कारणसे भगवान् ले जाते हैं और सब आदरसे देखते

रहे, इसलिए भी 'शनैः', धीरे-धीरे जाने लगे, यों कहा है. भगवान् वहां ही क्यॄ ठहरे नहीं जिससे सबका सन्देह मिट जाता और श्वसुर आदि भी आ जाते, उनकी आज्ञा लेकर पधारते, यॄ नकर, वहांसे शीघ्र क्यॄ चले गए? इस पर कहते हैं कि 'सृगालमध्याद्' यॄ कहनेका भाव प्रकट करते हैं कि भगवान् यॄ करते अर्थात् वहां ठहर जाते किन्तु वहां सत्पुरुष ठहरे होते तो, वे तो सियाल जैसे दुष्ट चित्त वाले थे, उनके बीचमॄ अपना स्थापन करना योग्य नहीं है, सियालॄका भाग भिन्न वा शून्य होता है, उसमॄ भी जो भाग क्रूर नहीं है, वह तो साध्यदेवॄका है, जो क्रूर है वह दुष्ट चित्तवाले सियालॄका होता है, जैसे मथित अग्नि और चांवलका ऊर्ध्व एवं यूप साध्यगण देवॄका है और यति शृगालॄका भाग है, यह श्रोतानिर्णय है, नहीं कि अपने भागका. और विशेष यह है कि लोकमॄ भी वह भाग सियालॄके बीचमॄ नहीं रखना चाहिए, जो सिंहॄका है, इसलिए वैसा ही दृष्टान्त देते हैं. 'भागभृत्' पदका अर्थ है भागकी पालना करता है, वह भागभृत् कहलाता है. लिए हुए भागको शुद्ध स्थान पर ही रखना चाहिए, इसलिए वहां नहीं रखा, यदि वहीं रखते तो वह असुरावेशी हो जाता।।५६।।

१. विधिवत् विवाहकी हुई पालन योग्य स्त्री है.

आभासार्थ : पश्चात् जो कुछ हुआ, उसका वर्णन 'तं मानिनः' श्लोकमॄ करते हैं :

तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परैः जरासन्धवशा न सेहिरे ।
अहो धिगस्मद्यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव।।५७।।

श्लोकार्थ : जरासन्धके आश्रित अन्य अभिमानी राजा, कीर्तिनाशक इस अपने पराभवको न सहनकर, कहने लगे कि आश्चर्य है, जो हमारे धनुष धारणको भी धिक्कार है, क्यॄकि जैसे सिंहॄके यश वा भागको मृग ले जावे, वैसे हम धनुषधारियॄके यशको ग्वाल हरकर, ले गए।।५७।।

व्याख्यार्थ : अन्य राजा अपने अभिमानकी रक्षाकेलिए ही आए थे, जिसकी सूचना 'यद्यागत्यहरेत्कृष्णः'मॄ दे दी है, वह हुआ, अर्थात् श्रीकृष्ण रुक्मिणीको हरणकर, ले गए, जिससे अपना तिरस्कार और यशका नाश देखकर सहन नहीं कर सके, क्यॄकि शत्रुओंसे किया हुआ तिरस्कार सहन नहीं किया जा सकता है, वे यदि विवाह कर ले जावे तो भी सहन करना अशक्य है, तो बलसे ले जावे. जरासन्धके आश्रित कैसे सहन करॄगे? अतः सहन न कर सके. जरासन्धके

आश्रित होनेसे यशका नाश सहन न कर सके तथा स्वयं अभिमानी थे, इसलिए अपना तिरस्कार भी सहन नहीं कर सके. वहां दोनॄ प्रकार अपनी निन्दाका प्रतिपादन करनेवाला वाक्य कहते हैं. धनुषधारी हमारे यशको धिक्कार है, जो अभिमानी, यश जाएगा, इससे डरकर ले जावे तो यश हो, वह तो हुआ नहीं. अब जरासन्ध जिनमॄ प्रमुख है, उन्होंने जो कहा वह कहते हैं, 'गोपैर्हृतं', गोप ले गए. ग्वाले जिस किसीकी गो हरण करते ही हैं, यह जो हरण की है, वह सिंहॄकी गो है, यह बड़ा अचम्भा है. सिंह गौका भक्षण करता है, ग्वाले पालते हैं, इस कारणसे जो किया है वह योग्य ही किया है, किन्तु इसीमॄ आश्चर्य है, यॄ कहनेसे उनकी प्रशंसा की है और अपनी वीरता प्रकट की है, तथा यह भी सूचित किया है कि इसके बाद किसी प्रकारका प्रयत्न नहीं करना चाहिए. इस प्रकार सूचित करनेमॄ हेतु कहते हैं 'केसरिणां मृगैरिव'. मृग साधारण हैं और केसरी मृगॄका राजा है, उसमॄ भी बहुतॄका यह भाग है, इस प्रकार यह दृष्टान्त यहां है, इसलिए असीम आश्चर्य नहीं है, यॄ कहकर अपने मनका समाधान करते हैं।।५७।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कंध (उत्तरार्ध) अध्याय ५० की श्रीवल्लभाचायचरण विरचित श्रीसुबोधिनी टीकाके राजस साधन अवान्तर प्रकरणके चौथे अध्यायका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण

अध्याय ५१

शिशुपालके साथी राजाओंकी और रुक्मिकी हार तथा श्रीकृष्ण–रुक्मिणी विवाह

यावन्निवर्तते चित्तं तदीयानां स्वभावतः।
तावदन्यस्य विषयो भगवांस्तं न मन्यते।।कारि.१।।

कारिकार्थ : तदीयोंका चित्त जब तक स्वभावसे निवृत्त हो जाय, तब तक भगवान् उसको अन्यका विषय नहीं मानते हैं।।१।।

अतो विधिविवाहार्थं तन्निराकरणं पुरा।
त्रिविधानां निरूप्यं हि युद्धमुण्डनबोधनैः।।कारि.२।।

कारिकार्थ : इस कारणसे विधिपूर्वक विवाह करनेकेलिए तीन प्रकारकी विधियोंका पहले युद्ध, मुण्डन और उपदेशसे[१] निराकरण करनेका निरूपण करना योग्य है।।२।।

उदासीनाः स्वकीयाश्च स्वयं चेत्यत्र शत्रवः।
मध्यमं भगवत्कार्यमनुकल्पो यतस्तथा।।कारि.३।।

कारिकार्थ : यहां उदासीन अपने और स्वयं शत्रु[२] है, भगत्कार्य मध्यम है क्योंकि वैसे ही अनुकल्प[३] है।।३।।

उत्तरार्धे पंचमे तु विवाहो वर्ण्यते हरेः।
रुक्मिण्या सर्वभावेन तद्दोषान् विनिवर्त्य हि।।कारि.४।।

कारिकार्थ : उत्तरार्द्ध राजस–साधन उप–प्रकरणके पाचवें अध्यायमें रुक्मिणीके दोषोंको निवृत्तकर, उसका सर्वभावसे हरिके साथ विवाहका वर्णन किया जाता है।।४।।

१.क)युद्धसे जरासन्ध आदि ख)मुण्डनसे रुक्मिका ग)उपदेशसे रुक्मिणीके अज्ञानका.
२. भगवान्की कृतिका अनुमोदन न करनेवाली अपनी आत्मा भी शत्रु है.
३.एक वस्तुके अभावमें दूसरी वस्तु काममें लाना, जैसे शहद न होवे तो गुड़से काम चलाना, इसको अनुकल्प कहते हैं .

आभासार्थ : पूर्व अध्यायके अन्तमें अपने यशकी निन्दा करने लगे, यों कहा है, पश्चात् जो सात्त्विक थे, उनकी जितनी सामर्थ्य थी, उतनी अपनी वीरता करने लगे, जिसका वर्णन श्रीशुकदेवजी 'इति सर्वे' श्लोकमें करते हैं :

१. 'भो भो पुरुषशार्दूल' इसमृ जो ज्ञानोपदेश होनेसे वे सात्त्विक हुए, अतः सात्त्विक है.

श्रीशुक उवाच

इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः।
स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः।।१।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेदजी कहने लगे कि वे सब क्रोधकी परस्पर वार्ता करते हुए इकट्ठे हुए, और कवच पहन, वाहनॄ पर चढ़, अपनी सेनासे वेष्टित हो, धनुष लिए उनके पीछे दौड़े।।१।।

व्याख्यार्थ : सब ही इकट्ठे हुए. थोड़े भगवदीय हुए थे, इसलिए ये अपना उद्यम करने लगे, भगवान् तो स्त्रीकी रक्षामृ रुके हुए थे, यदि यॄ न होता अर्थात् भगवान् उस रक्षामृ रुके हुए न होते तो सात्त्विकॄकी विचारपूर्वक प्रवृत्ति न हो सकती थी, अथवा क्रोधसे परस्पर बातॄको करते हुए उद्यम न करते, पश्चात् कवच पहिन, कमर बान्ध, रथ आदिमृ बैठ, तैयार होकर अपनी-अपनी सेनाओंसे जुदे जुदे ही चारॄ तरफ चढ़ाई करने लगे. दूरसे ही मारनेकेलिए धनुष धारण कर लिया।।१।।

आभासार्थ : शत्रुओंके इस उद्यमका वर्णनकर, उसके प्रतीकारकेलिए भगवान्के पक्षवालॄके उद्यमका वर्णन 'तानापतत' श्लोकमृ करते हैं :

तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः।
तस्थुस्तत्सम्मुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते।।२।।

श्लोकार्थ : यादवॄके सेनापति, उनको आक्रमण करनेकेलिए आते देख, हे राजन्! वे भी अपने धनुषॄकी टंकार करते हुए उनके सम्मुख खड़े हो गए।।२।।

व्याख्यार्थ : चारॄ तरफसे आक्रमण करते थे, यहां सब यादवॄकी सेनाके सेनापति ही थे, किसी प्रकारकी सेना नहीं थी, अथवा साधारण सैनिक भी नहीं थे, अतः उनके सामने खड़े हो गए. भगवदीय महान् अथवा छोटे होते हैं, तो भी उनकी जय होती है, इसलिए उनके सम्मुख डटकर खड़े हो गए, केवल खड़े नहीं हुए किन्तु उनको मानो बुलाते हुए धनुषॄकी टंकार करने लगे क्यॄकि वे राम आदि प्रसिद्ध ही थे।।२।।

आभासार्थ : पश्चात् पहले युद्धकेलिए प्रवृत्त हुए, यह 'अश्वपृष्ठे' श्लोकमृ कहते हैं :

अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थे च कोविदाः।
मुमचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा।।३।।

श्लोकार्थ : वे निपुण राजा, घोड़ाकी पीठ पर हस्तियाके कन्धे पर, रथाके मंच पर ऐसे शराकी वर्षा करने लगे, जैसे पहाड़ा पर मेघ जल गिराता है।।३।।

व्याख्यार्थ : उन राजाआके शर(बाण) वहां गिरते थे, जहां किसीको भी चोट न लगी थी, हालांकि वे युद्धमा निपुण भी थे, कारण कि चोट न होनेके दो कारण थे, एक तो उनके शर ऐसे स्थान पर गिरते थे और दूसरा ढाल आदि रुकावट करने वाले थे. उनके शर कहां गिरते थे, वह बताते हैं, घोड़ाकी पीठ पर, हस्तियाके कन्धा पर, रथके मंच पर, ही तीर गिरते थे. 'अथवा' कहकर दूसरा आशय बताते हैं, कि जहां ही गिरनेसे पीड़ा होवे, वहां ही शराकी वृष्टि करते थे क्याकि निपुण थे. 'च' पदसे यह प्रकट होता है कि जहां सारथि बैठे थे, वहां भी तीर फकते थे, श्रीकृष्णके जिस स्थान पर कोई बढ़ता नहीं है, पक्षवालाने हालांकि एक भी प्रतिकार नहीं किया, तो भी उनकी तनिक भी हानि नहीं हुई, इस विषयमा दृष्टान्त देते हैं, जैसे साधारण बादल अर्थात् जिनमा विशेष जल नहीं है, वे भी धाराआसे वर्षा न कर, केवल पानीसे पर्वताा पर सिंचन करते हैं, जिससे पर्वतामा किसी प्रकार दरार नहीं पड़ सकती है, वैसे ही यहां भी उनके तीरासे तनिक भी हानि नहीं हुई।।३।।

आभासार्थ : शराके इस प्रकार गिरनेसे रुक्मिणीको भय हुआ, वह भगवान्ने मिटाया, जिसका निरूपण करते हैं, क्या निरूपण करते हैं, कि सबको यह ज्ञात हो कि भगवान् भक्तकेलिए ही सब कुछ करते हैं, केवल उनको मार डालनेमा रुक्मिणीकी भी सम्मति नहीं थी, यदि अपने लिए ही भगवान्ने किया तो क्लिष्टकर्मापन भगवान्मा आ जावे, इस कारणसे युद्धमा पहले 'पत्युर्बलम्' इन दो श्लोकासे कहते हैं :

पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा।
सव्रीडमक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना।।४।।
प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने।
विनङ्क्ष्यत्यधुनेवैतत् तावकैः शात्रवं बलम्।।५।।

श्लोकार्थ : सुन्दर कटिवाली रुक्मिणी, पतिकी सेनाको बाणाकी वर्षासे

ढकी हुई देख, जब भयसे विह्वल नेत्रवाली हो, लज्जासे पतिके मुखारविन्दको देखने लगी, तब भगवान्ने हंसकर, उसको कहा, हे सुन्दर नेत्रवाली! तू डर मत, अब ही तुम्हारे जो ये यादव हैं, वे शत्रुओंकी सेनाका संहार करूंगे।।४-५।।

व्याख्यार्थ: बाणोंकी धारावर्षासे पतिकी सेनाको ढकी हुई देख, उनके मुखारविन्दको लज्जापूर्वक देखने लगी. 'सुमध्यमा' विशेषणसे यह शंका उत्पन्न हो सकती है, कि इसका विनियोग दूसरे प्रकार होगा, अतः कहते हैं कि नहीं यह शुद्ध अन्तःकरणवाली है. इस आशयसे 'सुमध्यमा' विशेषण दिया है. राजस गुण होने पर ही शौर्य आदि होता है, इसलिए ही भगवदीय सहन कर सकते हैं. रुक्मिणीने भगवान्को इस प्रकार पहले कभी नहीं देखा था, इसलिए यह अपूर्व दर्शन होनेसे लज्जापूर्वक देखने लगी. वास्तवमें तो यह देखना भयपूर्वक था, जिससे भी तो उस समय भाग भी सकते थे, किन्तु भाग जाने पर लाज ही हो. दोनों प्रकार लज्जासे देखने लगी, अनन्तर थोड़ी ही देरमें उसके नेत्र भयसे विह्वल हो गए, तब भी भगवान्को देखती रही, ऐसी दशा देखकर, भगवान् हंसकर रुक्मिणोको सान्त्वना देने लगे, इस प्रकार ही काम आप ही अपना वध चाहता है, इसलिए हंसनेसे ही मोहितकर, कामका वध किया, तथा उसके भय आदि भी मिटाए, मन और देह सन्देहकेलिए भगवान्के पास भेज दिए थे, वाणी नहीं भेजी थी, नहीं तो वहीं रमण करे. भगवान् भी उसी प्रकार यथायोग्य वाणीको ही कहने लगे. आप भगवान् हैं, इस ज्ञानसे उनकी वाणीमें अविश्वास नहीं हुआ, जैसी वाणी आपने कही, उसको ही हृदयमें धारण कर लिया. भगवान्ने कहा कि, हे वामलोचने! तू डर मत, क्योंकि यह सर्वत्र प्रसिद्ध है कि भगवदीय डरते नहीं है, अतः आप वक्रदृष्टि न करिए, अथवा जो पुरुषको भी मोहित कर सकती है, उसे किसका भय? किसीका नहीं, मनोहर दृष्टिसे ही सब शुभ होगा अथवा तुम्हारी दृष्टिसे मर जायंगे, इसलिए वामलोचने सम्बोधन दिया है, 'अधुनैव', 'अब ही', पद कहनेका आशय है कि इनके नाश होनेमें किसी प्रकार सन्देह नहीं है, उसको आत्मापनसे ग्रहणकर यह दिखाया कि रणका त्याग नहीं करना है, कारण कि, ये तेरे अब ही शत्रुकी सेनाको नष्ट कर देंगे, सब आत्मा अपनी हैं, इस विचारसे मारना नहीं चाहिए, किन्तु यह सेना शत्रुकी है, इस उपपत्तिसे मारनेमें कोई दोष नहीं यह नीति है।।४-५।।

आभासार्थ : इस प्रकार भगवान्के वाक्योंसे आज्ञा प्राप्तकर, सामर्थ्य

युक्त भी हो गए. जिससे शत्रुसेनाको दूर फूक दिया, जिसका 'तेषां' श्लोकमृ वर्णन करते हैं:

तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसङ्कर्षणादयः।
अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान् रथान्।।६।।

श्लोकार्थ : उन राजाआृके पराक्रमको न सहनकर, गद और संकर्षण आदि वीर यादव, शत्रुसेनाके घोड़े, हस्ती तथा रथाृको बाणृसे नष्ट करने लगे।।६।।

व्याख्यार्थ : वैसे पराक्रमको सहन न करते हुए नाश करने लगे. कौनसा ऐसा वीर शत्रु है, जो शत्रुआृके ऐसे पराक्रमकी उपेक्षा करे, जिनमृ गद और संकर्षण मुख्य हैं, उनमृसे एक उनके भीतर घुसकर जाकर, मारता है, तो दूसरा घसीटकर बाहर लाकर, मारता है, इनसे कम तो कोई नहीं है, किन्तु इन दोनृकी प्रमुखता है. विशेष बाणृसे, घोड़े, हस्ती और रथ, इन तीनृकी गणनासे यह बताया कि जो शत्रुआृमृ महान् योद्धे इन पर बैठे थे, उन सबको नष्ट कर दिया, शेष जो साधारण प्यादे, उनकी गिनती नहीं की है, क्यृकि महान् (पुरुष) क्षुद्रृको नहीं मारते हैं।।६।।

आभासार्थ : 'पेतुः' श्लोकसे तीन श्लोकृमृ कहते हैं कि मार डालना फल पर्यवसायी है :

पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि।
सकुण्डल किरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः।।७।।
हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊरवोऽङ्घ्रयः।
अश्वाश्वतरनागोष्ट्र खरमर्त्यशिरांसि च।।८।।
हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकाङ्क्षिभिः।
राजानो विमुखा जग्मुर्जरासन्धपुरः सराः।।९।।

श्लोकार्थ : रथियृ, घोड़े सवारृ और हस्तियृ पर बैठे हुए योद्धाआृके कुण्डल, मुकुट तथा पगड़ियृ सहित करोड़ृ शिर पृथ्वी पर गिर गए. खड्ग, गदा और धनुष सहित हाथ कटकर गिरते थे, कोहनीसे हाथके पृचे तकका भाग, जंघा और पांव यह भी कटकर गिरते थे, तथा घोड़े, खच्चर, हाथी, ऊंट, गधे और मनुष्य इनके भी शिर कटकर गिर पड़ते थे. जयकी इच्छावाले यादवृने सेनाका संहार करना प्रारम्भ किया, तब जरासन्ध जिनमृ मुख्य है, वैसे राजा

विमुख हो, भाग गए।।७-९।।

व्याख्यार्थ : दो प्रकारसे वध होता है, एक अवयवीका और दूसरा अवयवीका. पश्चात् भाग जाना, यी रथियीके कटे हुए शिर, रथका स्थान छोड़कर, पृथ्वी पर गिर गए. वैसे ही घोड़े सवारी एवं हस्ती पर बैठे हुए योद्धाओंके शिर भी गिरे. तलवारकी लड़ाईमें यह अचम्भेकी बात नहीं है. बाणोंके युद्धमें यों होना आश्चर्यकी बात हो सकती है, इसलिए यह निरूपण किया है. उनकी अप्रयोजकता निवारण करते हैं, पगड़ी, कुण्डल तथा मुकुट तीन प्रकारके हैं. बहुतायतको मिटानेकेलिए 'कोटिशः', करोड़ों शब्द कहा है. जो अवयव गिरे, उनको कहते हैं, तलवार और गदासे युक्त दक्षिण हस्त, कोहनीसे हाथके पोचे तकका भाग, जंघा और चरण, एवं अश्व आदिके शिर पृथ्वी पर गिरे, हाथी छः प्रकारके भी मरे, यह तात्पर्य है. 'च' पदका तात्पर्य है कि ध्वजा आदि भी पृथ्वी पर गिरे. अनन्तर भागने लगे, जिसका वर्णन करते हैं, जिनकी सर्व सेना नष्ट हो गई, ये जो वर्षा ही करते थे, मारते नहीं थे, किन्तु वे तो मारते हैं, इसमें कारण यह है कि यादव अपनी जय चाहते हैं, कन्या तो मिल गई थी, किन्तु केवल जयकी आकांक्षा रही थी, इसलिए उनका यह उद्यम था. राजा लोग तो अपने देश जाकर, भोग इच्छावाले थे, वृथा मरनेसे क्या लाभ होगा? इसलिए सब अप्रसन्न मुख फेरकर कुण्डिनपुरको गए. उन राजाओंमें मुख्य जरासन्ध था, क्योंकि उसने भागनेका अभ्यास किया है, जिससे पहले वह भागने लगा, पीछे दूसरे भी भाग गए।।७-९।।

शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम्।
नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन्।।१०।।

श्लोकार्थ : मानो जिसकी स्त्रीका हरण हुआ है, ऐसे आतुर, तेज हीन, उत्साह रहित, शुष्क मुखवाले शिशुपालके पास आकर कहने लगे।।१०।।

व्याख्यार्थ : इस विषयमें भीष्मकको कुछ भी कहना नहीं है, उसका कुछ भी अपकार नहीं हुआ है. शिशुपालके पास आकर कहने लगे, क्योंकि यद्यपि शिशुपालका रुक्मिणीके साथ विवाह नहीं हुआ है, तो भी वह यी समझता है कि मेरा विवाह हुआ है और मेरी स्त्री श्रीकृष्ण ले गया है, इसलिए वह खेद युक्त हो रहा है, इस कारणसे विष खाकर मरनेकी इच्छा करने वाले, जिसकी स्त्रीका हरण हुआ है, जिससे दुःखिया है, वैसे विचार हीनको सान्त्वना देनेकेलिए निकट

जाकर मरे हुएके समान शुष्क मुखवाला देख, शीघ्र ही सान्त्वनाके शब्द कहने लगे. शिशुपालके पूर्ण ज्ञानमृ मरणके साधन ही ज्ञापक थे, न अन्य कुछ भी, वह बताते हैं जिसकी कान्ति नष्ट हो गई है, बाहिर तेजका अभाव और भीतर उत्साहका न होना. जरासन्ध तो बहुत ही जतानेका अभ्यासी है, अर्थात् जरासन्ध बहुत बार हार खाकर, भागा है जिससे उस समय इसके आकृति आदि कैसे हो जाते है, वह सबको बताया हुआ है।।१०।।

आभासार्थ : 'भो भोः पुरुष' इस श्लोकसे सान्त्वनाके वाक्य कहते हैं :

भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज।
न प्रियाप्रिययो राजन् निष्ठा देहिषु दृश्यते।।११।।

श्लोकार्थ : हे पुरुषसिंह! इस उदासीका त्याग करो, हे राजा! जीवमृ प्रिय और अप्रिय स्थिर नहीं दीखते हैं।।११।।

व्याख्यार्थ : भगवद्गुणृके श्रवणसे ही शान्ति आती है, इससे उसका जो रुक्मिणीमृ अभिमान है अर्थात् रुक्मिणी मेरी है, वह भी मिट जाएगा, यृ निरूपण किया. पहले स्वस्थताका सम्पादन करते हैं अर्थात् मूर्च्छित हुए शिशुपालको सावधान करते हैं. 'भो भो' पदसे यह ज्ञात कराते हैं कि वह मूर्च्छित है. 'पुरुषशार्दूल' विशेषण देनेसे यह प्रकट किया है कि अपनी स्तुति श्रवणसे हृदयमृ न अपने माहात्म्यका ज्ञान होगा, यह कहना विवाह न होनेका लक्षण बताना है. विवाह न होनेसे तेरा कुछ गया तो नहीं है, जो कहो कि विवाह होनेसे मेरा कुछ प्रिय होता, तो उसके उत्तरमृ कहते हैं कि 'प्रियाप्रिययोः', जोवको सदैव प्रिय हो अथवा सर्वदा अप्रिय हो, वैसा कोई निर्णय नहीं है. उसमृ देहित्व ही कारण है. 'दिह् उपचये' धातुसे यह शब्द बना है, अतः जब बढ़ता है अथवा उन्नति होती है तब प्रिय होता है अर्थात् प्रसन्नता होती है और जो हानि होती है तो दुःख होता है।।११।।

आभासार्थ : 'यथा दारुमयी' श्लोकमृ दूसरे हेतु कहते हैं :

यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया।
एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः।।१२।।

श्लोकार्थ : जैसे काष्ठकी पुतली नचानेवाले जादूगरकी इच्छाके अनुसार नाचती है, इसी प्रकार यह जीव भी सुख-दुःख भोगनेमृ ईश्वरके आधीन है।।१२।।

व्याख्यार्थ : यह बोधनका हेतु अलौकिक है. विस्तृत अंगवाली भी पुतली सभामृ जो स्वयं रस पैदा नहीं कर सकती है, रसहीन है अथवा विरुद्ध रसवाली है, तो भी, कोई धूर्त जादूगर किसी देवताका रूप धारणकर, उसको नचाकर, अपना पेट भरता है, इसी प्रकार भगवान् भी अपनी क्रीड़ाकेलिए समस्त जगत्को नचाता है, अतः यह लोक ईश्वरके आधीन ही है. भ्रमसे ही सुख-दुःखकी स्वयं इच्छा करता है, भ्रमके कारण ही कहता है कि मुझे सुख प्राप्त हो, दुःखकी प्राप्ति न होवे, भगवान्, जैसे-तैसे प्रकृत्तिचक्र चलानेकेलिए अपनेमृ दोषका ज्ञान न होवे, इसलिए वैसी बुद्धि उत्पन्न करते हैं।।१२।।

आभासार्थ : इस प्रकार शास्त्रीय सान्त्वना देकर, अब अपना लौकिक प्रकार 'शौरेः सप्तदशाहं' श्लोकमृ कहते हैं :

शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः।
त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम्।।१३।।

श्लोकार्थ : श्रीकृष्णजीसे सत्रहबार, तेईस अक्षोहिणीयृके, साथ होते हुए भी, मैं हार गया हूं, किन्तु एक बार मैं जीत गया, जिससे मैंने दोनृ प्रकार अर्थात् जय(प्रिय) एवं पराजय(अप्रिय)का अनुभव किया है, इससे सुख तथा दुःखकी सदैव स्थिति नहीं रहती है, यह प्रत्यक्ष है।।१३।।

व्याख्यार्थ : सत्रह दिनृमृ जो कृष्णसे १७ युद्ध हुए, उनमृ मैं हार गया. हालांकि मेरे पास तेवीस अक्षौहिणी सेनाओृका साधन भी था, किन्तु अन्तमृ १८वीं बार मैंने जीत पाई है, इससे मुझे दोनृ प्रकार(जय-पराजय)का अनुभव है, यृ निष्ठा भाव प्रत्यक्ष है. यहां 'जि' धातु द्विकर्मक है. श्लोकमृ 'संयुगानि'के स्थान पर 'संयुगेषु' पद होता तो भी वही भावार्थ होता है।।१३।।

आभासार्थ : इस कारणसे ही मुझे शोक नहीं है, यह 'तथापि' श्लोकमृ कहते हैं :

तथाप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित्।
कालेन द्रव्ययुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत्।।१४।।

श्लोकार्थ : तो भी मैं न तो इसका शोक करता हूं, और न हर्ष करता हूं, क्यृकि मैं जानता हूं कि इस जगत्को, द्रव्ययुक्त काल ही नष्ट करता है।।१४।।

व्याख्यार्थ : कभी, उसके स्मरण होने पर वा कन्या आदिके देखने पर भी यदि दुःख होवे, तो विचारता हूं कि सर्वदा न हर्षका विषय और न दुःखका विषय

रहता है, एकका अनुसन्धान करना चाहिए, अर्थात् सुख वा दुःखका अन्वेषण करना चाहिए कि ये क्यॄ और कैसे वा किसके भेजे हुए आते हैं, अथवा स्वतः आते हैं, इसका विचार करो तो स्वयं निर्णय किया है, उसका उसको उपदेश देता है. 'कालेन' जो अपने बराबरी करने वालॄसे पराजय वा जय होवे, तो तब हर्ष वा खेद करना चाहिए, किन्तु यहां तो उसका करने वाला काल है, वह सबका अधिपति है, वह भी शरीर आदि सहित ही है, पराभव आदि शरीर द्वारा ही करता है न कि आत्माआॄका स्वतः होता है, इससे काल द्वारा इस जगत्का यह प्रकार देखनेमॄ कुछ भी शोक नहीं करता हूं. यदि 'द्रव्ययुक्तेन'के स्थान पर 'दैवयुक्तेन' पाठ माना जाय तो उसका अर्थ यॄ करना चाहिए कि कर्मके वशसे काल भी वैसे करता है, इसलिए उसका भी कोई दोष नहीं है।।१४।।

आभासार्थ : दूसरे कालकी वार्ता यॄ होवे, अब भी हम सब पराजित हुए हैं. अतः बहुतॄके साथ जो दुःख होता है, वह दुःख नहीं माना जाता है, इसलिए शोक नहीं करना चाहिए, इस अभिप्रायको 'अधुनापि' श्लोकसे प्रकट करते हैं :

अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः।
पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः।।१५।

श्लोकार्थ : अब भी हम सब जो योद्धाआॄके यूथपतिके पति हैं, थोड़ी सेनावाले कृष्णसे पालित यादवॄसे हार गए हैं।।१५।।

व्याख्यार्थ : 'वयं' बहुवचन देनेसे अपनी प्रशंसा की है, अर्थात् अपना बड़प्पन प्रकट किया है. 'सर्व' शब्द सबकी सम्मति है, यॄ बतानेकेलिए कहा है, तो प्रेरक न ह्यॄगे, यॄ न समझना. हम वीरॄके समूह्यॄके जो पति हैं अर्थात् जो सेनापति हैं उनके भी हम स्वामी हैं, सदा ही हम ऐसे होते आए हैं, लेकिन अब हार गए हैं, जिनसे हारे हैं, उन यादवॄके पास सेना भी थोड़ी है, तब तो वे भी मरे ह्यॄगे? इस उनके मनोरथरूप शंकाको मिटानेकेलिए कहते हैं कि वे मरे नहीं, क्यॄकि वे कृष्णसे पालित हैं, अतः उनको कोई भी मार नहीं सकता है, यॄ कहनेसे कृष्णने कन्याका हरण किया है, इस सम्भावनाका भी निवारण किया है।।१५।।

आभासार्थ : इनमॄ कौनसा आश्चर्य है? यदि यॄ कहो तो उसमॄ 'रिपवो जिग्युः' श्लोकसे कारण कहते हैं :

रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि।

तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः।।१६।।

श्लोकार्थ : अब समय शत्रुओंके अनुकूल है, इसलिए उनकी जीत हुई है, जब काल अपने अनुकूल बनेगा, तब हम जीतेंगे।।१६।।

व्याख्यार्थ : अब सात्त्विक काल देवोंका हितकारी है, अतः हमारे शत्रु जो वैष्णव हैं, उनकी जीत हुई है. हम दैत्य हैं, तमोगुणी हैं, अतः हमारा हितकारी तामस कालका वा राजसकाल आवेगा, तब हम जीतेंगे. श्लोकमें 'वयं' शब्द दिया है, जिससे बताया है कि उस समय राजस राक्षस भी जीतेंगे, दैत्योंका यह सिद्धान्त है कि काल ही सबसे बड़ा है, उसके सिवाय वे बड़ा कुछ भी नहीं मानते हैं, अतः वे उसके ही आश्रित हैं।।१६।।

एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम्।
हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः।।१७।।

श्लोकार्थ : इस प्रकार जब मित्रोंने समझाया तब शिशुपाल, अनुचरों के साथ अपने नगरको गया और मरनेसे जो राजा बच गए थे, वे भी अपने-अपने नगरको गए।।१७।।

व्याख्यार्थ : इसी प्रकार अपने सिद्धान्तके निरूपण करनेसे समझाया हुआ शिशुपाल, धोखा न देने वाले, एक जैसी प्रवृत्तिवाले अपने मित्र एवं अनुयायियोंको साथ ले, अपने नगर गया और जो राजा शेष बच गए थे, वे भी उसके घर तक साथ गए अनन्तर अपने-अपने शहरको गए।।१७।।

आभासार्थ : यों सत्रह श्लोकोंसे साधारणोंकी ममता मिटानेकेलिए एक वृत्तान्त कहा, अब रुक्मी प्रभृतियोंकी ममता मिटानेकेलिए तथा रुक्मिणीकी उनमें ममता न होवे, इसलिए साढ़े सत्रह श्लोकोंमें निरूपण करते हैं. मध्यम तामस है, अन्तिम राजस है, उससे तीन दोषोंके नष्ट हो जाने पर भगवान् आठ ऐश्वर्योंके रूप वाली रुक्मिणीको स्वीकार करेंगे, जिसका वर्णन आठ श्लोकोंसे होगा, इसमें पहले तामसके उद्यमका वर्णन 'रुक्मी' श्लोकसे कहते हैं :

रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन् स्वसुः।
पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली।।१८।।

श्लोकार्थ : श्रीकृष्णसे द्वेष करनेवाला अक्षोहिणी सेनासे घिरा हुआ बली रुक्मी अपनी बहिनके राक्षसविवाहको सहन न कर सका, अतः श्रीकृष्णके पीछे दौड़ा।।१८।।

व्याख्यार्थ : यद्यपि जब तत्त्वका उपदेश हो रहा था, वहां रुक्मी भी था, उस तत्त्व उपदेशसे अन्य सब समझ गए, जिससे वे चले गए. किन्तु रुक्मीको ज्ञान न हुआ, यह 'तु' पदका भावार्थ है. कृष्ण रुक्मिणीको ले गए, इसमें कौनसा अपराध है, जो बलवान् क्षत्रिय ले जाते हैं, वह उसीकी स्त्री होती है, यह क्षत्रियोंकी मर्यादा है, इस पर कहते हैं कि रुक्मी अपनी बहनका राक्षसविधिसे हुए विवाहको सहन नहीं कर सका. जो कुलीन हो, किन्तु दुर्बल भी हो, तो उनको कन्या राक्षसविधिसे लो जा सकता है, मैं कुलीनके साथ स्वयं शूरवीर हूं, अतः राक्षसविवाह होना अयोग्य है, यों रुक्मीने समझा तथा रुक्मी कृष्णका शत्रु भी है. यदि दूसरा यों कोई ले जावे तो, सहन भी कर ले और कुछ न कहे, यह तो शत्रु है, शत्रु ले जावे, वह कहीं भी, वा कभी भी, उपकारकेलिए नहीं होता है. रुक्मीको तो भगवान्से शत्रुता ही स्थापित करनी है, वह यदि रुक्मिणीका विवाह सम्बन्ध हो जाएगा तो हो न सकेगी, इसलिए सम्बन्धको तोड़नेकेलिए रुक्मीकी यह प्रवृत्ति है, क्योंकि शास्त्रमें कहा है कि 'कन्याहविषोस्तुल्यत्वात्', जैसे शत्रु भोज्य पदार्थ(भोजन) कर ले तो, उससे इस लोक तथा परलोकमें कोई लाभ नहीं होता है, वैसे ही कन्याका भी यदि शत्रु भोग कर ले, तो उससे भी दोनों लोकोंमें उपकार नहीं होता है, इसलिए उपभोगको रोकनेकेलिए हो इसकी यह प्रवृत्ति है, अतः श्रीकृष्णके पीछे दौड़ा. जिस मार्गसे कृष्ण जा रहे थे, उसी मार्गसे यह भी जाने लगा, अथवा जब भगवान् वहांसे पधारे उसी समय यह भी वहांसे निकलकर, चलने लगा, किन्तु दूसरे लौट गए. यह तो निवृत्त नहीं हुआ, यह ही इसमें विलक्षणता है. एक ही अक्षौहिणी सेना लेकर गया, जब बहुत चले गए क्योंकि उनका उत्साह नष्ट हो गया था. यह अकेला होकर भी कैसे गया? इसके उत्तरमें कहते हैं, कि 'बली', यह बहुत बलवान् है, इसलिए अकेला होते हुए भी गया।।१८।।

आभासार्थ : इस कारणसे ही बड़ी प्रतिज्ञा करने लगा, जिसका वर्णन 'रुक्म्यमर्षी' श्लोकमें करते हैं :

रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम्।
प्रतिजज्ञ महाबाहुर्दंशितः सशरासनः।।१९।।

श्लोकार्थ : क्रोधमें भरा हुआ महाबाहु, कमर कसा हुआ, कवच धारण कर, धनुष ले, युद्धकेलिए तैयार हुआ, रुक्मी सब राजाओंसे प्रतिज्ञा करने लगा।।१९।।

व्याख्यार्थ : बदला न ले सकनेसे क्रोधित युद्धकेलिए उद्यमवाला, रुक्मी सुनते हुए सन्त राजाओंके मध्यमें प्रतिज्ञा करने लगा. क्रोधमें पूर्ण होनेसे मैं क्या कर रहा हूं, उसको समझ न सका, लड़ाईकी सब सामग्री ले ली थी, इसलिए निर्भय बना था. सब रोकनेवाले भी नहीं हुए, सहायताकी भी इसको आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इसमें क्रियाशक्ति बहुत है, जिसका चिह्न यह है कि महाबाहु है, इसलिए कवच पहना है और धनुष भी लिया है।।१९।।

आभासार्थ : 'अहत्वा' श्लोकसे प्रतिज्ञाका वर्णन करते हैं :

अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम्।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि वः।।२०।।

श्लोकार्थ : युद्धमें कृष्णको मार डालनेके और रुक्मिणीको लौटाकर लानेके सिवाय कुण्डिनमें प्रवेश नहीं करूंगा, मैं यह सत्य कह रहा हूं अर्थात् मेरा यह कहना मेरी प्रतिज्ञा समझो।।२०।।

व्याख्यार्थ : रुक्मिणी अग्नि जैसी है, यों रुक्मी मानता है, अतः जैसे आश्रय स्थानसे बाहर निकली हुई अग्नि, पुनः आश्रयस्थान पर ही लौट आती है, वैसे ही कुलमेंसे गई हुई रुक्मिणी कुलमें ही आनी चाहिए. अग्निके दृष्टान्त कहनेका यह ही भाव है. यह जो आप कह रहे हो, वह होना कठिन है. यदि यों है तो अर्थात् यो मैंने नहीं किया तो कुण्डिनमें प्रवेश नहीं करूंगा, यह ही मेरी प्रतिज्ञा है, कि ये दोनों कार्य न कर कुण्डनमें लौटकर प्रवेश नहीं करूंगा. रुक्मीने जो प्रतिज्ञा की वह ही फलीभूत होगी अर्थात दोनों कार्य पूर्ण न होंगे, जिससे वह कुण्डिन लौटकर प्रवेश न करेगा अतः निन्दाके अभावसे और निर्णयके न कहनेसे पदोंका अर्थ अन्य प्रकारसे नहीं कहना चाहिए, यह मैं सत्य कह रहा हूं, इन शब्दोंसे वह शपथ ले रहा है।।२०।।

इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरम्।
चोदयाश्वान्यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत्।।२१।।

श्लोकार्थ : यों प्रतिज्ञाके वचन कहकर रथ पर चढ़, सारथिको कहने लगा कि घोड़ोंको इस प्रकार तेज चलाओ, जैसे मेरा और कृष्णका मिलाप हो जाय।।२१।।

व्याख्यार्थ : पश्चात्, पिता आदि बड़ोंकी आज्ञा लिए बिना ऐसी प्रतिज्ञाकर, अपने सारथिको यों न कहे तो वह ऐसा न करे, क्योंकि उसका

कृष्णके साथ किसी प्रकार सहज द्वेष नहीं था. 'सत्वर' शब्द दोनॄसे सम्बन्धित है (१)घोड़ॄको शीघ्र तेज चलाओ, और (२)कृष्णके साथ मैं जैसे जल्दी मिलूं. यह 'भवेत्', लिङ् लकार प्रार्थना अर्थमॄ है, अर्थात् घोड़ॄको वैसे प्रेरणा दे, जैसे मेरा कृष्णके साथ मिलन हो जाय, अर्थात् कृष्ण द्वारका पहुंच न जाय, अथवा पहले वैसा काम न पड़नेसे यह पहला ही अवसर है, अतः यह 'भवेत्', लिङ् लकार आज्ञाके अर्थमॄ है, अर्थात् सारथिको ऐसी शीघ्र रथ चलानेकी आज्ञा दी है, क्यॄकि यह कृष्ण, स्त्रीप्रिय है, अतः स्त्रीको हरकर ले गए हैं।।२१।।

आभासार्थ : रुक्मिको जो करना है वह 'अद्याहं' श्लोकमॄ कहते हैं :

अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः।
नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता।।२२।।

श्लोकार्थ : आज मैं, जिसने मेरी बहन बलपूर्वक हरण की है, उस दुर्बुद्धि ग्वालेका वीर्यमद तीक्षण बाणॄसे हरण करूंगा।।२२।।

व्याख्यार्थ : 'निशितैः बाणैः' पदॄमॄ जो तृतीया विभक्ति है, वह साथके अर्थमॄ दी हुई है. सुदुष्ट कार्योंमॄ जिसकी बुद्धि लगी हुई हैं, वैसे गोपालके गोपालपन शब्दसे दोषवाला नहीं है, किन्तु अभिप्रायसे वैसा होता है, वह अभिप्राय चालू प्रसंगसे अंगीकार किया जाता है, अन्य प्रकारसे नहीं कहना चाहिए. उसको जो वीर्यसे मद उत्पन्न हुआ है, वह मैं ले लूंगा, जिससे उस भगवान्के मद लेनेसे मैं मदको प्राप्त होऊंगा. पहले हम लोगॄमॄ मद नहीं था, अब भगवत्सम्बन्धसे प्राप्त 'वीर' मदसे ऐसा गर्व होगा कि हमारे समान कोई वीर नहीं है, यों कहनेसे न केवल मदका निरूपण किया, किन्तु यह बताया कि क्षत्रियॄका महत्त्व प्रकट करनेवाला साधन वीर्य ही है. भगवान्का इसमॄ हेतुपन कैसे? इस पर कहता है कि जिसने मेरी बहन बलात्कारसे हरणकर, वीर्य और शिक्षाका उपदेश दिया है, ऐसा कार्य करनेसे हमको जताया है कि वीर बनो, नहीं तो तुम्हारी स्त्रियां यॄ हरी जाएगी, जिससे बाणॄको प्राप्त करूंगा और वीर्यको भी, साधन और बल, इन दोनॄकी प्राप्ति भगवान्के सम्मुख होनेका फल है, अतः उसके सम्मुख ही जाना चाहिए, इसलिए नियोग कहा है।।२२।।

विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित्।
रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाब्रवीत्।।२३।।

श्लोकार्थ : ईश्वरके सामर्थ्यको न जाननेवाला, वह कुमति रुक्मी

बकवाद करता हुआ एक ही रथसे भगवान्को कहने लगा कि 'ठहर ठहर'।।२३।।

व्याख्यार्थ : रुक्मी असम्बद्ध जैसे शब्द कहने लगा. उसके शब्द असम्बद्ध क्यॄ थे? जिसका कारण बताते हैं, कि भगवान्ने तो बहुत प्रार्थना करनेसे उसका हरण किया था. न कि बलात्कारसे हरण किया था, इसलिए उसके शब्द असम्बद्ध थे, भगवान्का अचिन्त्य ऐश्वर्य सुनकर, तथा देखकर, भी इस प्रकार बकवाद क्यॄ कर रहा है? इसके उत्तरमॄ कहा है कि 'कुमतिः', हीन बुद्धिवाला है, जिससे पूर्वापरका विचार नहीं कर सकता है, वह यह सर्व भगवत् चरित्र जैसे तैसे अकस्मात् हो गया है, यों मानता है, क्यॄकि भगवान्के सामर्थ्यको नहीं जानता है. प्रमाण शब्द आदरणीय अर्थमॄ भी आता है और कहीं परिमाणमॄ आता है, जैसे यहां ही 'विदुः प्रमाणं वीर्ययोर्वा' इस श्लोकमॄ आया है. उपसर्गका अन्य उपसर्गका अर्थ होनेसे समुदायका नाना अर्थपन नहीं होता है, इस प्रकार वह दुर्बुद्धि एक ही रथमॄ भगवान्के समीप जाकर, भक्तॄ पर कृपा करने वाले सन्मात्रके इन्द्र गोविन्दको, जो कि इस कारणसे ही रुक्मिणीको हरण कर ले जा रहे हैं, उनका ठहर ठहर, यॄ दो बार कहने लगा. दो बार आदरमॄ, या तिरस्कारमॄ कहा जाता है. 'च' पदसे स्तुति वाक्य वा अन्य है।।२३।।

आभासार्थ : इस प्रकार कहनेसे भगवान् ठहर गए, तब जो किया उसका वर्णन 'धनुर्विकृष्य' श्लोकमॄ कहते हैं :

धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः।
आह चारे क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसनः।।२४।।

श्लोकार्थ : धनुषको दृढ़ खॄचकर तीन तीर श्रीकृष्णको मारे और बोला कि यदुकुलकलंक! क्षण भर यहां ठहर।।२४।।

व्याख्यार्थ : ऊपरके श्लोकमॄ 'च'का आशय स्तुति वाचक भी कहा. उसका आशय स्पष्ट करते हैं, कि मेरा उद्धार न कर, केवल रुक्मिणीको ले जाना युक्त नहीं है, यों वाक्यॄका भाव है. यदि कहो कि जो अधिकारी नहीं है उसको कृतार्थ कैसे किया जाय? अतः अपना अधिकार दिखानेकेलिए युद्ध कर, अपनी शूरवीरता रूप अधिकारसे परिचित करते हैं. पहले तो जो प्रतिज्ञा की, उस पर दृढ़ हूं इसको सिद्ध करनेकेलिए धनुषको एंचा, भगवान्को लक्ष्यकर, अपनी शूरवीरता दिखाने लगा, तीन शरॄसे मानॄ तीन लोकॄको हथियाने लगे, शर रस्मॄके ऊपरका आवरणरूप है, जैसे कि जलका शर पृथिवी है, वायुका शर अन्तरिक्ष है,

और ब्रह्माण्डका स्वर्ग शर है, अथवा इस प्रकार सर्व भगवान्को निवेदन किया, हस्त ही गति करता है, इसलिए हाथसे निवेदन किया अर्थात् दिया यॄ भाव है. केवल सर्वस्व ही नहीं दिया किन्तु वाणी भी निवेदित की है. यदि वे निवेदन नहीं करते तो कार्य अधूरा हो जाता है, अतः 'आह चारे' इस वाक्यसे भगवान्की वाणीका निवेदन करते हुए प्रार्थना करता है. मेरे चरण धरनेके योग्य सात्त्विक हृदयमॄ क्षणमात्र ठहरनेकी कृपा करो, यॄ ठहरनेसे कौनसा लाभ होगा? आप यादवॄके कुलके रक्षक हो तथा यादवॄकी मायाको अपनी क्रियाशक्तिसे खेचते हो, जिससे जो कोई भी यादवॄके रक्षक हैं, उन सबको भी वैकुण्ठ पहुंचाते हैं, अतः वैसे आप भक्तवत्सल हमारे हृदयमॄ भी क्षणमात्र स्थित हॄगे, तो हम लोगॄको तथा हमारे उपकारियॄको भी वैकुण्ठ ले चलोगे, इसलिए यह प्रार्थना है।।२४।।

कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्क्षवद्धविः।
हनिष्येऽद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः।।२५।।

श्लोकार्थ : हे मन्द! जैसे कौएको छोड़, हवि ली जाती है, वैसे आप मेरी बहिनको मेरे परोक्षमॄ चुराकर कहां ले जा रहे हो, छली, कपट युद्ध करनेवाले आपका गर्व आज मैं हरण करूंगा।।२५।।

व्याख्यार्थ : कहां जा रहे हो? जीवॄकी बहन ब्रह्मानन्द है, जहां भी कुछ सम्बन्ध होता है, वहां अंशोका अपना आनन्द ही है, कभी भी उसका अनुभव तो नहीं किया जा सकता है. अतः उसको वहन ही माना जाता है. हम लोगॄका उद्धार न कर उसको लेकर जिन यादवॄका पहले ही उद्धार कर दिया है, पुनः उनके उद्धारके लिए क्यॄ जा रहे हो? उसको हमारे परोक्षमॄ ले जा रहे हो, जीवॄके पास ब्रह्मानन्द है जिसको जब देख नहीं सकते हैं. भगवान् ही उस बह्मानन्दका अनुभव कर रहे हैं. जैसे कौएके सिवाय जगत्मॄ उत्पन्न पदार्थ हवि है, उनको हविकेलिए लाया जाता है कौएको छोड़ दिया जाता है. भगवान् ही सर्व यज्ञ भोक्ता हैं, वहां सर्व काकके सिवाय, हवि हो सकते हैं, जैसे जगत्के उद्धारकेलिए प्रकट हुए आप, मुझे ही छोड़ कर कैसे जा रहे हॄ? यॄ कहनेसे अपनेको धिक्कारा है, हवि भी परोक्ष हो, ग्रहण की जाती है. देवता प्रत्यक्षके द्वेषा हैं, परोक्षके प्रिय हैं. यदि कहो कि तूने ही अपना दृष्टान्त देकर काक बनाया है, इसलिए तू ग्रहण करने योग्य नहीं है, तो वैसा जो आपका मद है आज मैं उसको नष्ट कर दूंगा. हे मन्द! आपमॄ यह

मदरूप दोष है जिससे आप मुझ पर कृपा नहीं करते हो, अथवा 'मन्दमायिनः' समासान्त पदकर, अर्थ करता है, कि आपकी मायाको मन्द कर देता हूं. जिससे वह कार्य कर नहीं सके, भगवान् युद्ध तो कपटसे ही करते हैं, वास्तवमृ वे उससे मोक्ष देते हैं, ऐसे भगवान्के प्राप्त होनेके समय, प्रतिबन्ध करने वाले अपने धर्मको दूर करूंगा. याृ कहना योग्य ही है।।२५।।

आभासार्थ : यदि कहो कि तेरा उद्धार तूं किस प्रकार चाहता है? इसके उत्तरमृ कहता है कि 'ब्रह्मानन्द' हमको दो, याृ 'यावन्न मे हतो' श्लोकमृ वर्णन करता है :

यावन्न मे हतो बाणः शयीथा मुञ्च दारिकाम्।
स्मयन् कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम्।।२६।।

श्लोकार्थ : जब तक मेरे बाणृसे मरे हुए तुमको पृथ्वी नहीं सुलाता हूं उससे पूर्व, रुक्मिणीको छोड़ दे, ये वचन सुन, कृष्ण मुस्कुराते हुए, उसके धनुषको तोड़कर, छः बाणृसे रूक्मीको वेधित किया।।२६।।

व्याख्यार्थ : मेरे बाण, मुझे मारनेकेलिए आई हुई ये इन्द्रियां, उनसे जब तक मैं न मारा गया हूं, अर्थात् यदि ये इन्द्रियां आपका रस पान करेगी, तो ब्रह्मानन्दकी इच्छा न करेगी. किन्तु तब भक्तिको ही ग्रहण करेगी, जब तक हो तब तक तो ब्रह्मानन्द देना चाहिए, क्याृकि वह द्वारिका अर्थात् मुक्ति संसारको नष्ट कर देगी. भक्तिसे पहिले मुक्तिकी प्रार्थना करनी योग्य ही है. अब ही फल देना चाहिए यह आग्रह कैसा वा क्याृ है? इस पर कहता है कि 'शयीथा' प्रलयमृ सबको लपेटकर आप शयन करो, उससे पूर्व ही, मेरी मुक्ति करो, इस प्रकार जब भगवान्को कहा, तब भगवान् मुसकराने लगे, जिससे उसको मोहमृ डाल दिया, भगवान्ने मनमृ सोचा कि यह तो दुरात्मा है, मरनेकेलिए ही आ रहा है, स्वयं भगवान् तो स्त्री हितकारी हैं, इसलिए रुक्मिणीको छोड़ना योग्य नहीं है, उसके धनुषको तोड़कर, उसके फूके हुए तीरृको दूर हटाकर, छः शरृसे रुक्मीको बींधा. पुरुष छः प्रकारका है, इसलिए छः शरृसे सब अंगृमृ ताड़ना की।।२६।।

अष्टभिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः।
सचान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः।।२७।।
तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः।
स चान्यद्धनुरादत्त तदप्यच्छिनदच्युतः।

पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदच्युतः।।२८।।

श्लोकार्थ : और आठ बाण चार घोड़ाको, दो सारथीको तथा तीनसे ध्वजाको वेधित किया, तब रूक्मीने दूसरा धनुष लेकर पांच तीर कृष्णके पास फैंके, उन शराृसे ताडित कृष्णने वह भी तोड़ दिया, फिर भी उसने दूसरा धनुष उठाया तो उसको भी भगवान्ने तोड़ दिया।।२७-२८।।

व्याख्यार्थ : रुक्मीके रथके चार घोड़े थे, एक एक घोड़ेको दो-दो शराृसे वेधित किया, दो शराृसे सूतको, ये पांच चार घोड़े और एक सूत तीन प्रकार कट गए, ध्वजाके चार टुकड़े हो गए, इस प्रकार साक्षात् वा परम्परासे सब अंग जुदे-जुदे हो गए, उसको तोड़नेकेलिए प्रवृत्त बाणसे ही धनुष टूट गया, इसलिए धनुष तोड़नेके लिए जुदे तीराृको नहीं कहा है, तब उसने भी दूसरा धनुष लिया. भगवान्ने भी प्राणियाृके घातक धनुषको त्याग, दूसरा धनुष उठाया, यह आशय 'च' शब्दसे ज्ञात होता है. रुक्मीने जो दूसरा धनुष उठाया था, वह लेते ही भगवान्ने तोड़ दिया, क्याृकि आप 'अच्युत' हैं और धनुषको देवताआृका वर मिला हुआ है, अतः उस शरकी व्यर्थता होनेसे पहले वह धनुष तोड़ दिया, पश्चात् दूसरा भी ग्रहण किया, शास्त्रमृ कहा है कि 'त्रिसत्या हि देवाः', इसलिए धनुषका तीन बार ग्रहण हुआ है।।२७-२८।।

परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासीशक्तितोमरम्।
यद्यदायुधमादत्त तत् सर्वं सोऽच्छिनद्विभुः।।२९।।

श्लोकार्थ : उसने लोहेके मुद्गर, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल, तलवार, बरछी, भाला आदि जो-जो शस्त्र हाथमृ लिए, उन सबको प्रभुने तोड़ दिया ।।२९।।

व्याख्यार्थ : पश्चात् उसने परिघ आदि शस्त्र ग्रहण किए. मूलमृ 'चर्मासी' पद दीर्घ है, वह वैदिक है, चर्मसे लेकर तोमर तक एक ही पद है, बहुत कहनेसे क्या लाभ ? वह देवता आदिकी प्रेरणासे वा स्वतः जो जो शस्त्र उठाए, वे सब तोड़े गए, इस प्रकार करनेमृ सामर्थ्य इसलिए थी जो आपका नाम ही 'विभु' है, अर्थात् सब कुछ करनेमृ शक्तिमान् है।।२९।।

आभासार्थ : पश्चात् बहुत जतनसे सर्वभावसे आया, जिसका वर्णन 'ततो रथाद्' श्लोकमृ करते हैं :

ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया।

कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम्।।३०।।

श्लोकार्थ : पश्चात् क्रोधयुक्त हस्तमॄ तलवार लेकर रथसे नीचे उतरकर मारनेकी इच्छासे कृष्णके पास यॄ आने लगा, ज्यो पतंग अग्निके पास आता है।।३०।।

व्याख्यार्थ : हाथमॄ केवल तलवार थी, ढाल नहीं थी, मरनेकी इच्छासे अथवा भगवान्से अपनेको मरवानेकेलिए, परमानन्द स्वरूप कृष्णके निकट आने लगा, प्राकृतको छोड़ परमानन्द ग्रहण करना योग्य ही है, यदि कहो कि जब शरीर सबको प्यारा है, तब इस प्रकार कैसे आया? इसका उत्तर देते हैं कि जैसे पतंग अग्निकी तरफ आता है, क्यॄकि वे सूक्ष्म अपनेको अग्निमॄ डालकर, परमार्थ दृष्टिसे कृतार्थ बन जावॄगे. बहिर्दृष्टिसे अग्निको हम बुझा दॄगे, इस बुद्धिसे प्रवृत्त होते हैं, किन्तु अग्निको न बुझाकर स्वयं मर जाते हैं, वैसे यह भी, प्रवृत्त हुआ है, यह अर्थ है।।३०।।

आभासार्थ : अनन्तर अक्लिष्टकर्मा भगवान् उसकी अभिलाषा पूर्ण करते हुए और 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' इस वाक्यको सत्यता सिद्ध करते हुए, उसको मारनेके लिए प्रवृत्त हुए, जिसका वर्णन 'तस्य चापततः' श्लोकमॄ करते हैं :

तस्य चापततः खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः।
छित्वासिमादधे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः।।३१।।

श्लोकार्थ : आते हुए उस रुक्मीके ढाल तथा तलवारके, बाणॄसे तिल जितने टुकड़े कर दिए, और तेज तलवार लेकर रुक्मीको मारनेकेलिए उद्यत हुए।।३१।।

व्याख्यार्थ : ऐसेको भी तलवार और ढाल अथवा म्यानको तीरॄसे तोड़ दिए, ढाल भी ग्रहण की थी अथवा म्यान ग्रहण की थी, अपनी शूरवीरताको प्रसिद्ध करनेकेलिए तिलके समान टुकड़े किए हैं, यॄ करनेसे जो रुधिर बहने लगा वह जल रूप होकर, परलोकमॄ मिलने वाला हो गया. वह तिल सहित करनेकेलिए ही असि (तलवार) आदिके टुकड़े तिलके समान किए हैं, जिससे पितृपनको पितृलोकमॄ तर्पणकेलिए तिलोदकका सम्पादन हो गया. धनुष तो घात करने वाला नहीं है, जिससे जड़ पदार्थोंको काटकर उसके मारनेकेलिए तलवार ग्रहण की है, इसके मरने पर जगत्मॄ स्वरूपका अज्ञान मिटेगा ही, क्यॄकि यह रुक्मी भगवान्का मुख्य शत्रु है, अतः भगवान् उसको मारनेकेलिए उद्यत हुए, न

कि मारा।।३१।।

आभासार्थ : इस प्रकार स्वरूपके अज्ञानका नाश, मायाका हित करनेवाला नहीं होता है, इसलिए 'रुक्मिणी' उसका निषेध करनेकेलिए प्रवृत्त हुई, जिसका वर्णन 'दृष्ट्वा' श्लोकमॄ करते हैं :

दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला।
पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती।।३२।।

श्लोकार्थ : भ्राताको मारनेका कृष्णका उद्यम देख, सती रुक्मिणी भयसे विह्वल हो, पतिके चरणॄमॄ पड़कर करुण वचन कहने लगी।।३२।।

व्याख्यार्थ : रुक्मिणी प्रार्थना करनेकेलिए ये वचन कहने लगी. यद्यपि दुष्ट है, तो भी जो कर रहा है, वह स्वार्थकेलिए कर रहा है. जो जिस लिए प्रयत्न करता है, उसका यह कार्य पूरा करना चाहिए, इसलिए उसका उद्यम है, उसका भी भाई उसके भी वधका उद्योग? उसमॄ भी वधसे पहले स्वयं आपने देखा है, और रुक्मिणी उसकी सम्बन्धी है, इसलिए उद्यम आदि देख विह्वल हो गई है, क्रोध आने पर कभी अपनेको भी मार डाले. जिससे लोकमॄ निन्दा अपयश होगा, अपयशके कारणको स्पष्ट किया जाता है कि रुक्मिणीने जबर्दस्तीसे भगवान्को बुलाकर, भ्राताको मर वाया है, इस प्रकार बहुत पक्ष भयके कारणके हो सकते हैं, अतः भयॄके कारण विह्वल होनेसे शुष्क मुखवाली हो गई है, बहुत चतुर होनेसे दूसरा कोई इसका उपाय नहीं है, यह निश्चयकर, ये मेरे स्वामी हैं, इसलिए इनके चरणॄमॄ गिरकर कहने लगी, 'रुक्मी तो मेरा भाई है, इसका वध न करो', यह प्रार्थना देह, मन और वाणीसे करने लगी, चरणॄमॄ गिरकर, देहसे भ्राताके वधको रुकवाने लगी, विह्वलता दिखाकर मनसे रुकवाने लगी, भगवान् ईश्वर हैं, वे इसके रोकनेसे कैसे रुकॄगे? यदि यॄ कहो, तो कहते हैं कि करुणवाणीसे प्रार्थना की, भगवान् दयालु हैं, करुणाके वचनॄसे द्रवित हो जाते हैं. फिर उसमॄ विशेषता यह है कि पतिव्रताके पास सर्वत्र पतिको प्रार्थना करनेके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है, इसलिए रुक्मिणीको 'सती' विशेषण दिया है।।३२।।

आभासार्थ : 'योगेश्वराप्रमेयात्मन्' श्लोकसे उसके वचन कहते हैं :

योगेश्वराप्रमेयात्मन् देवदेव जगत्पते!।
हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज।।३३।।

श्लोकार्थ : हे योगेश्वर! अप्रमेयस्वरूप! हे देवॄके देव! हे जगत्के

पति! हे कल्याण! हे महाभुज! यह मारने योग्य नहीं है क्यूंकि वह मेरा भाई है।।३३।।

व्याख्यार्थ : भगवान् मारनेकेलिए उद्यमशील हुए हैं, क्यूंकि भगवान्को मारनेकेलिए आया है. वैसे समय रुक्मिणी कैसे रोकती है कि इसको मारो मत, इसके उत्तरमूं कहा है, कि रुक्मिणी भगवान्को कहती है, कि आप योगेश्वर हैं, इसलिए योगके नियन्ता हो, जिससे उसको दण्ड देनेके अनेक उपायूंको जानते हो, तो वध करनेसे क्या लाभ? इस रुक्मिणीके वचनूंसे ही भगवान्ने मारनेके बदले उसके शिरका मुण्डन किया, जिसको देख, रुक्मिणीने समझा कि मेरे कहनेसे ही भगवान्ने इसका वध नकर मुण्डन किया है, इस कारणसे मुण्डनमूं रुकावट न की. वाणीसे अप्रसन्नता भी प्रकट नहीं की, अन्तःकरणमूं दुःख करने लगी, इस मुण्डनकेलिए भी बलभद्रजीने सान्त्वना दी, यूं सब सुन्दर हो गया. बलरामजीके इस प्रकार रुक्मिणीको समझानेसे बलरामजीने अपनेको उपालम्भसे बचा लिया, यूं न होता, तो रुक्मिणी कदाचित् अपने भाईको कृष्णसे मरा हुआ देख, बलरामजीको कहती, कि अब तो आप प्रसन्न हुए, इस प्रकारके उपालम्भसे बच गए.

भगवान् क्रियाका विषय बनूंगे अर्थात् भगवान्ने इस प्रकारका मेरे भ्राताका मुण्डन आदिसे मृत्यु किया है, ऐसी शंका मिटानेकेलिए भगवान्को 'अप्रमेयात्मन्' कहा है अर्थात् आपका स्वरूप कोई समझ नहीं सकता है, कि यह कार्य क्यूं हुआ, तथा कैसे हुआ? इसमूं कौनसा रहस्य है? क्रिया होनेसे ही अनिष्टकी शंका होती है जहां क्रिया ही नहीं, वहां अनिष्ट कैसा? आप देवूंके भी देव हैं, देव ही अमर हैं तो उनके भी देव जो आप यहां पधारे हैं तो फिर चिन्ता क्यूं की जाय? विशेषमूं आप जगत्के रक्षक हैं, वे मारूंगे तो नहीं, किन्तु शिक्षा ही कर्तव्य है, अतः किसीको मारना आपको योग्य नहीं है, फिर अब तो आप कल्याणस्वरूप हैं, अर्थात विवाह कर, वरराजा बने हैं, ऐसे आनन्दके समयमूं वध तो नहीं करूंगे, उसमूं भी विशेषता यह है कि यह तो मेरा भाई है, आपका साला है, विवाहके दिनूंमूं तो सालेका आदर किया जाता है, यदि आप उत्तरमूं कहो, कि मैं अब छोड़ दूं तो यह पीछे अपकार करेगा, इसके उत्तरमूं कहती है कि 'महाभुज' होनेसे आपमूं महान् सामर्थ्य है, यदि कुछ भी अपकार करे, तो उसको उस समय दण्ड देनेमूं आप समर्थ हैं।।३३।।

आभासार्थ : इस प्रकार रुक्मिणीकी प्रार्थना करने पर भगवान्ने रुक्मीको मारा नहीं, वधके बदलेमृ, उसका मुण्डन किया, जिसका वर्णन नीचेके श्लोकमृ करते हैं :

श्रीशुक उवाच

तथा परित्रासविकम्पिताङ्गया शुचावशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया ।
कातर्यविस्रंसितकेशमालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत।।३४।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजीने कहा कि डरके कारण कम्पित अंगवाली, शोकसे शुष्क कण्ठवाली, तथा निरुद्ध कण्ठवाली कायरतासे गिरे हुए केश तथा मालावाली, रुक्मिणीने भगवान्के पाद पकड़ लिए, जिससे करुणा युक्त हुए भगवान्, रुक्मीके वधसे निवृत्त हो गए।।३४।।

व्याख्यार्थ : भयसे जिसके अंग कांप रहे हैं, शोकसे जिसका मुख शुष्क हो गया है और कण्ठ रुक गया है, कायर होनेसे केश मालाएं जिसके गिर रहे हैं, याृ होनेसे तीन गुणृका कार्य उसमृ पूर्ण हो गया. जैसा कि सतोगुणका कार्य भयभीत होना, तमोगुणका कार्य शोक होना और रजोगुणका कार्य कायर होना, इस प्रकार, विद्यमान् गुणृके दूर हो जानेसे वह दीन ही हो गई, वैसीने कोई अन्याश्रय न जानकर भगवान्के चरण पकड़ लिए, जिससे भगवान् दयासे आर्द्र हो, रुक्मीके वधसे निवृत्त हो गए।।३४।।

चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन् व्यरूपयत् ।
तावन्ममर्दुः परसैन्यमुद्धतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः।।३५।।

श्लोकार्थ : दुष्ट कर्म करनेवाले उसको, वस्त्रसे बांधकर मूंछ सहित मूंड – मूंडके विरूप किया, यहां भगवान्ने यह किया, वहां जैसे हाथी कमलिनीका मर्दन करते हैं, वैसे वीर यादवृाने अभिमानी शत्रुआृका मर्दन कर दिया।।३५।।

व्याख्यार्थ : वधका मुख्य अनुकल्प मुण्डन है और द्रविणा दान स्थानसे निकालनेको तो उसने ही प्रतिज्ञा की थी, अतः उसके ही वस्त्रसे चोरकी भांति उसको बान्धा, क्यृाकि वह रुक्मिणीको लेनेकेलिए आया था, इसलिए चोर जैसा दण्ड दिया गया. 'उसको' शब्द कहनेका आशय है कि वह प्रसिद्ध अनिष्टकर्म करने वाला घातक होनेसे दृष्ट है, अतः प्रसिद्धको, इतनीसे ही बड़ी पीड़ा होती है, जिससे भगवान्ने सेवक द्वारा उसका मूछ सहित शिर मूंडवाके विरूपरूपी वध कर

दिया. विरूप शब्दका आशय है कि मुण्डन, एक विचित्र प्रकारसे हुआ, जैसे मुछ्राका कुछ भाग काट दिया, कुछ रखा, वैसे ही शिरके बाल भी कहीं काटे, कहीं छोड़ दिए. दाढ़ीके बाल भी या ही किए, जिससे वह विरूप हो गया. इसका यह विरूप, मरण पर्यन्त रहा, क्याकि भगवान्ने इसको वधके बदले यह सजा दी थी अतः इसी प्रकार बालाको समूल छेदन किया, जिससे वे पुनः निकले ही नहीं, यदि वैसा न हो, तो भगवान् इस प्रकार केवल नाममात्र मुण्डन करावे ही नहीं, जब तक भगवान् उसको विरूप करते हैं, तब तक उस शत्रुकी अभिमानी सेनाको वीर यादवा कुछ भी परिश्रमके बिना जैसे हस्ती कमलिनीको उखाड़ता है, वैसे ही नष्ट कर दिया. सेनाको केवल रुक्मीके दोषके कारण नष्ट नहीं किया, किन्तु यह सेना भी दुष्ट है, इसलिए नाश किया. यादवा गद, संकर्षण आदि बहुत वीर थे और एक अक्षौहिणी भी थी, अतः नलिनी एकवचन दिया है।।३५।।

आभासार्थ : इस प्रकार भगवान्का किए हुए रुक्मीके निग्रहका निरूपणकर भगवान्की तरफसे ज्येष्ठ बलरामजीने जो सान्त्वना की, उसका वर्णन 'कृष्णान्तिकं' से साढ़े सत्रह श्लोका करते हैं :

कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम्।
तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वासंकर्षणो विभुः।
विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत्।।३६।।

श्लोकार्थ : वे बलभद्र आदि श्रीकृष्णके समीप आए, वहां रुक्मीको देखा जो वह विरूप मरे हुएके समान हो गया था, तब विभु संकर्षणजीने दयाकर, बन्धन पड़े हुएको छोड़कर कृष्णको कहने लगे।।३६।।

व्याख्यार्थ : यहां समाधान, सान्त्वना देनेके जो योग्य हैं, उन मुख्य रुक्मिणी है, मध्यम रुक्मी है और शेष प्राकृत राजा लोग हैं, अतः उनको भगवान्से भी कनिष्ठ सेनाने ही मारा है. भगवान् मध्यम रहे और रुक्मीको भगवान्के बड़े भ्राताने सान्त्वना दी, ये तीना ही प्रकरण युक्त ही हैं. सब यादव, उस सेनाको नष्ट कर आए. कृष्णके पास जाकर विरूप रुक्मीको देखा. विशेष न कहकर, केवल 'तथाभूतम्' कहा अर्थात् वह मूर्च्छित जैसा वहां पड़ा था. भगवान्ने वधके बदले जो मुण्डनकर, विरूप किया था, जिससे वह मरे हुएके समान हो गया था. राम विशेष प्रकारसे उसको वैसा देख, शिखा सहित वपनका कार्य सम्यक् प्रकारसे, कर्षण कार्य होनेसे, यह कर्म अधिकार बिना हुआ है. इस

कर्मका कर्ता संकर्षण ही है, भगवान्का यह कार्य नहीं है, स्वयं संकर्षण मारनेमृ भी समर्थ हैं, तो मुण्डन आदि कर्म करनेका भी उनका अधिकार है, इसलिए भगवान्से बान्धे हुएको खोल, छोड़कर, कृष्णको कहने लगे. शंका करते हैं, कि जो भगवान्ने किया है, उसको अन्य प्रकार बलरामने कैसे किया? इसका उत्तर देते हैं कि दयालु है, जो दयालु होते हैं, वे भगवान्से जिनको दुःख मिला है, कृपाकर, उनका भी प्रतीकारकेलिए प्रयत्न करते हैं. यदि कहो तो भी भगवान्से पूछकर याृ करना चाहिए था, आपने स्वयं ही कैसे बन्धनसे मुक्त कर दिया? इसके उत्तरमृ कहा कि भगवान्, मुक्त करनेवाले बलराम नहीं है, किन्तु वह बलराममृ विराजमान् भगवान्ने ही मुक्त किया है. बीचमृ संकर्षणकी कथा इतनी ही है, विशेष तो आगे कही जाएगी, इस कारणसे ही कृष्णको कहने लगे. यहां 'कृष्ण' पद, शास्त्रमृ कहे हुए 'कृष्णो द्वितीयः केशवः सम्बभूव' इस वाक्यानुसार जो कृष्ण है वह समझना चाहिए, अतः बलरामजी बड़े हैं जिससे अनौचित्य नहीं है।।३६।।

आभासार्थ : 'असाध्विदं' श्लोमकमृ बलरामजी भगवान्के किए हुए मुण्डन आदिका अनुमोदन नहीं करते हैं :

श्रीबलभद्र उवाच

असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम्।
वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः।।३७।।

श्लोकार्थ : हे कृष्ण! आपने यह बुरा कार्य किया है, इससे अपनी निन्दा होगी, यह कार्य हमको नहीं करना चाहिए, क्याृकि दाढ़ी-मूंछ मुण्डवाकर, सुहृदाृका विरूप करना उनका वध है।।३७।।

व्याख्यार्थ : जो किया वह आगे कहना योग्य नहीं है, वह बुरा है ,मरनेके पीछे ही सर्व मुण्डन करवाया जाता है. किञ्च, जो किया वह हमारा किया हुआ है हमसे ही हुआ है, हम संकर्षणरूप ही इसमृ कारण है, न कि आप जो स्वामी हैं उनका यह कार्य है, क्याृकि यह कार्य निन्दनीय है. परमार्थरूपसे यही अर्थ है. हालांकि, व्यवहारके अनुसार इसका मुंडन कराना योग्य है, यह इसके ही योग्य है, तो भी यह अपने करने योग्य नहीं है, यदि कोई मनुष्य मांसादि अधम भोजन करने वाला हो, उसको भी उत्तम पुरुष वैसा अयोग्य भोजन नहीं देता है, क्याृकि वैसा भोजन देनेसे, उत्तम पुरुषकी ही निन्दा होती है, सम्बन्धियाृकी तरफसे दाढी-मूंछ

आदि केशॄका मुण्डन कराकर, विरूप करना सम्बन्ध वालेका वध ही है, अतः सम्बन्धी होनेसे इस प्रकार भी वध करना उचित नहीं है, ये शब्द जो बलरामजीने कहे, वे विशेषमॄ रुक्मिणीकी सान्त्वना करानेकेलिए ही कहे, यॄ समझा जाता है, दोनॄका प्रकरण नहीं होनेसे भी उपसंहार बलवान् होता है।।३७।।

आभासार्थ : इस कारणसे, उसको ही 'मैवास्मान्' श्लोकसे साक्षात् सान्त्वना देते हैं :

मैवास्मान् साध्व्यसूयेथा भ्रातृवैरूप्यचिन्तया।
सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक्पुमान्।।३८।।

श्लोकार्थ : हे साध्वि! तेरा भाई विरूप हुआ है, इस चिन्तासे हमॄ दोष मत देना, क्यॄकि प्रत्येक पुरुष अपने किएका फल, सुख वा दुःख भोगता है, दूसरा कोई सुख-दुःख देने वाला नहीं है।।३८।।

व्याख्यार्थ : पतिके किए हुए कर्मको मान देना, पतिव्रता स्त्रीका धर्म है, इस कारणसे तू हम सब पर क्रोध मत कर, हम पर दोषके आरोपणका विचार भी न कर. हालांकि, भावना करने वाला चित्त भी श्रेष्ठ है. भावना करनेमॄ कोई भी दोष नहीं है तो भी भाईके विरूप होनेकी चिन्तासे, उस धर्मके आरोप करने पर कदाचित् क्रोध आ जाय, तो उसका निवारण करते हैं, आप कहते हो, वह उचित है, तो भी लौकिक दृष्टिसे क्रोध तो करना चाहिए. जरासन्धको तो मुक्त कर दिया और इसका मुण्डन कैसे किया? ये दो विपरीत कार्य कैसे हुए? इस शंकाके समाधानकेलिए कहा कि अपने धर्मके आधीन होनेसे सुख और दुःखका अनुभव होता है, संकर्षणमॄ ज्ञान मुख्य है. यदि ज्ञानप्रधान न होता तो सबको मार डालते, 'नायं हन्ति न हन्यते' वहां यह सिद्धान्त पक्ष लागू है. वैसे यहां सब कर्मसे हुआ है, कर्मके सिद्धान्तके अनुसार ही ज्ञान कराया है, अतः यह साधारण पक्ष है, वह भी सुन रहा है, इसलिए यहां कर्म मार्ग ही समझाया है, अतएव स्वयं ही अपने आपको सुखदुःख देने वाला है. दूसरा देने वाला नहीं है, नहीं तो कृतकी हानि न किए हुएके आनेका प्रसंग उपस्थित हो जावे।।३८।।

आभासार्थ : इस प्रकार समझानेसे रुक्मिणी समझेगी कि बलभद्रजी केवल हमारे पर ही अपराध डालते हैं, अपना अपराध प्रकट नहीं करते हैं, इसलिए भेद हुआ, अतः पुनः अन्य प्रकारसे उसको बोध करानेकेलिए 'बन्धुर्वधार्ह' श्लोकसे भगवान्को कहने लगे :

बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति।
त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः।।३९।।

श्लोकार्थ : हे कृष्ण! यदि सम्बन्धी मारनेके योग्य अपराध करे, तो भी सम्बन्धीको चाहिए कि अपने नातेदारको न मारे, वह तो अपने ही अपराधसे मरा हुआ है फिर उस मरे हुएको मारनेसे क्या? ।।३९।।

व्याख्यार्थ : मारनेका अपराध करने वाला भी सम्बन्धी साक्षात् मारनेके योग्य नहीं है, यदि मारा जायगा तो बन्धुपनका सम्बन्ध न रहेगा, वध करने वाला शत्रु ही होता है, जो अयोग्य कर्म करता है, वह अयोग्य ही होता है. यदि कहो कि जैसे अपना धर्म है, कि उसको न मारना चाहिए वैसे, उसका भी धर्म है, अतिक्रम नहीं करना चाहिए, यॄ यदि वह अपने धर्मका पालन नहीं करता है, तो दूसरा अपने धर्मका पालन कैसे करे? यदि यॄ कहो तो, इसका उत्तर है, कि वह मारने योग्य नहीं है. किन्तु उसको छोड़ देना चाहिए, क्यॄकि वास्तविकताका विचार किया जाय तो उसने अपने धर्मका त्याग किया तो क्या? हम भी अपना धर्म छोड़ देवे, यॄ करनेसे दोनॄ समान हो जायॄगे वह कर्म सार्थक करना चाहिए, इसलिए अपना उद्यम है, इस पर मैं कहता हूं कि, वह अपने ही अपराधसे मरा हुआ है, उसको फिर मारनेसे क्या? वा किसलिए मारा जाय? उसके कर्मसे प्रेरित हो, अपनेको उस प्रकार करना अपनेको योग्य नहीं है, उसका कर्म स्वयं दूसरेको प्रेरणा करेगा, अतः कर्मने ही उसको मार दिया है. यदि हम उसके अंग बने, तो अपनी ही हानि है. मित्रपनेसे यदि स्वयं मारे, तब पिष्टपेषण(पीसे हुएको पीसना) ही होगा, इसलिए क्यॄ मारा जावे? इस प्रकार कहना प्रश्नके वा आक्षेपकेलिए है, पीसकर भी उसको वेदमॄ प्रैष कहा है, अणु किए जावॄ, यॄ करनेका प्रयोजन है, कि वह यज्ञकेलिए योग्य पवित्र हो, इस प्रकार श्रुतिमॄ कहा गया है, वैसे यह भी पवित्र हो, वा मोक्षको प्राप्त होवे, इस प्रकार प्रश्नार्थ होता है, यदि यॄ ही है, तो भी क्यॄ मारा जाता है? अर्थात् इसको नहीं मारना चाहिए, किन्तु छोड़ देना चाहिए, क्यॄकि जो दुष्ट है, वह संस्कार करने योग्य नहीं है, संस्कार करनेसे भी वह पवित्र वा श्रेष्ठ होकर, सुधरेगा नहीं।।३९।।

आभासार्थ : यॄ शास्त्रके अर्थ अनुसार वह मारने योग्य नहीं है, यह निरूपण कर, अब लोकन्यायसे भी वह मारा नहीं जा सकता है, यह 'क्षत्रियाणाम् अयं' दो श्लोकॄमॄ निरूपण करते हैं :

क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः।
भ्रातापि भ्रातरं हन्याद् येन घोरं तमस्ततः।।४०।।

श्लोकार्थ : भाई भी भाईको मारे, वह क्षत्रियाॅका घोर धर्म प्रजापतिने बनाया है, जिससे घोर अज्ञानान्धकार ही होता है।।४०।।

व्याख्यार्थ : जो मारनेकेलिए आता है, वह मारा जाता है, जैसा कि कहा है, 'जिघांसन्तं जिघांसीयाद्' इसलिए लोक तथा वेदके अनुसार उसको मारना ही योग्य है, तब आप निषेध कैसे करते हैं? इसका उत्तर देते हैं, कि क्या जिसने नाश किया वह मारा जावे? अथवा अनुचित करता है, इसलिए मारा जावे, इनमॅा पहला तो है ही नहीं, क्याॅकि मारनेका अभाव ही है, उसने किसीको अब तक मारा नहीं और चालू प्रसंगमॅा मारे, वह असम्भव है, मारनेमॅा अयोग्यता तो नहीं है, क्याॅकि क्षत्रियाॅका यह घोर धर्म प्रजापतिने बनाया है.

धर्म तीन प्रकारके हैं, १.शान्त, २.घोर और ३.विमूढ, उनमॅासे शान्त धर्म ब्राह्मणाॅमॅा स्थापित किया है, घोरधर्म क्षत्रियाॅमॅा, विमूढधर्म वैश्य और शूद्राॅमॅा स्थापित किया है, अतः यह प्रकट देखनेमॅा आने वाला तीक्ष्ण शस्त्र ग्रहणकर, अपनी प्रवृत्ति दिखा रहा है. वहां सम्बन्धकी अपेक्षा नहीं है, ऐसी दशामॅा 'भ्राताऽपि भ्रातरं हत्याद्' भाई भी भाईका वध करे, यदि इस प्रकार किया हुआ कर्म भी यदि धर्म हो, तो उसको घोर कैसे कहा जाता है, जिस कर्मसे घोर अज्ञान अन्धकार हो, वह भी भयानक होवे, तो उस कर्मसे दैत्यपन होता है, अर्थात् जो ऐसा घोर कर्म करता है, वह दैत्य बन जाता है।।४०।।

आभासार्थ : आपका यह कहना सत्य है कि यदि युद्ध भी करे, तो उसको शस्त्ररहित और रथविहीनकर, छोड़ देना चाहिए, अर्थात् मारना नहीं चाहिए, किन्तु यह तो बहुत असभ्य वचन कहता है, इसलिए इस बकवादा अप्रिय कहनेवालेको तो मारना ही चाहिए, इस प्रकार कृष्णके विवार जान, बलरामजी, 'राज्यस्य' श्लोकमॅा इसका निराकरण करते हैं. उनके इस प्रकारके असभ्य वचन भी प्रजापतिके ही रचे हुए हैं, उसमॅा साधारणतासे छः हेतुआॅको बताकर समझाते हैं :

राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः।
मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदान्धाः क्षिपन्ति हि।।४१।।

श्लोकार्थ : राज्य, भूमि, धन, स्त्री, मान अथवा अन्यको हेतु बताकर लक्ष्मीके मदसे अन्धे बने हुए अभिमानी दूसराॅका अपमान करते हैं, किन्तु उसका

वध अथवा वधके समान मुण्डन आदि नहीं कराते हो, अतः तुमने इसका (रुक्मीका) मुण्डन किया, वह उचित नहीं किया है, या बलरामजीने कृष्णको उपालम्भ दिया।।४१।।

व्याख्यार्थ : किसीने किसीका राज्य ले लिया तो वह क्षत्रिय है, नहीं तो यह न मरवाएगा, राज्य जाने पर जो जीवन है, वह अयोग्य है, अतः मरनेकेलिए शत्रुओंको दूर फेंक देते हैं. लक्ष्मीके मदसे जो अन्धे बने हैं, वे भी फेंक देते हैं, अर्थात् वे उनको पूछते ही नहीं है, कारण कि लक्ष्मीसे उत्पन्न मदसे अन्धे यानि विवेक हीन हो गए हैं, अतः वे फेंकें, तो उनकी दृष्टिमें यह कार्य योग्य ही है, इस प्रकार, राज्यके एक भागमें भूमि, धन, स्त्री और मान तथा तेजकेलिए भी फेंक देते हैं, अर्थात् उनसे सर्व प्रकारका सम्बन्ध तोड़ देते है. इस प्रकार इन छःके अथवा कोई वैसे दूसरे हेतुके कारण जो सम्मानवाले हैं, वे या करते हैं, वह योग्य ही है, अतः इनसे व्यावहारिक सम्बन्ध तोड़ देना ही योग्य है, न कि मारना उचित है, कहनेका यह भाव है।।४१।।

आभासार्थ : मैंने भी इसको मारा नहीं है, फिर आप उपालम्भ क्यों दे रहे हो? यदि यों कहो, तो उसका उत्तर है, 'तवेयं विषमाबुद्धिः' श्लोकमें कहते हैं :

तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम्।
यन्मन्यसे सदाभद्रं सुहृदां भद्रमक्षयम्।।४२।।

श्लोकार्थ : दुष्ट हृदयवालोंकी सर्वभूतोंमें ज्यों विषमबुद्धि होती है, त्यों तुम्हारी यह बुद्धि विषम है, जो सुहृदोंके अक्षय मुण्डनको वधानुकल्प नहीं समझ, केवल निरूपण ही मानते हो।।४२।।

व्याख्यार्थ : यह मारा नहीं गया है, ऐसी जो तुम्हारी बुद्धि है, वह असमान है, जो अपकारपना न किया होता, अर्थात् मुण्डन न किया होता तो समान होती. यदि वध भी कर दिया होता, तो भी लोकन्यायसे(बुद्धि समान कही जाती) जो कि तुम, सुहृदोंके मुण्डनको केवल विरूप होना ही मानते हो, किन्तु वह मुण्डन भी वैसा नहीं है कि वे बाल फिर निकल जाएगे, जिससे विरूपता नष्ट हो जावेगी, किन्तु वह जीवन पर्यन्त रहने वाला और सदा अशोभाकर है, जिससे यह वध ही है, यदि तुम कहो कि लोकमें तो बुद्धि विषम करनी ही पड़ती है, इसमें कौनसा दोष है? इसके उत्तरमें बलरामजी कहते हैं कि, सर्वभूतोंमें दुष्ट हृदयवालोंकी ही विषमबुद्धि होती है, न तुम्हारी होनी चाहिए और न शुद्ध

हृदयवाला॒की ही. जिनके चित्तमृ कपट रहता है उनके ये ढंग हैं, न कि, शुद्धचित्तवाला॒के? कहनेका आशय यह ही है. तुम असुरा॒के शत्रु होल, इस वचनानुसार सर्व प्राणिया॒मृ जो दुष्टचित्तवाले हैं, उनका तो मुण्डन न होकर, वध होना ही योग्य है, यों मानते हो, अथवा दुष्टा॒के केश आदि अवयवा॒को ही वध मानते हो, भूता॒मृ जो दुष्ट हैं, उनका तो मुण्डन और जो सुहृद हैं, उनका मुण्डन भी नहीं. किन्तु तुमने तो ऐसा मुण्डन किया है वह तो अक्षय(जीवन पर्यन्त) रहने वाला है, इसलिए तुम्हारी बुद्धि असमान है, अथवा दुष्टा॒का वध, शुद्धहृदय वाला॒का सदा मुण्डन मानते हो, या॒ करना भी आप ब्रह्मको योग्य नहीं है, क्या॒कि इस प्रकारकी बुद्धि विषम कही जाती है।।४२।।

आभासार्थः इस प्रकार चार श्लोका॒से रुक्मिणीके सन्तोषकेलिए भगवान्को उलाहना दिया, उससे भी उसको प्रसन्नता न हुई, अतः ज्ञानोपदेशसे आत्ममोह से सात श्लोका॒मृ समझाते हैं, धर्मसहित भगवान् इसको ज्ञान करानेमृ समर्थ हैं :

स्वरूपाज्ञाननानात्वे देहादीनां च शत्रुता।
दोषत्रयं निरूप्यादौ आत्मधर्मनिरूपणम्।।कारि.१।।
स्वप्रकाशोऽयमात्मा हि असङ्गश्च निरूप्यते।
जन्मादिदोषास्त्वन्यस्य अतस्तैर्नैव दुष्यति।।कारि.२।।
असंसर्गाग्रहो भ्रान्तः दृष्टान्तैर्विनिरूप्यते।
ततोपसंहृतिर्युक्ता ज्ञानेनाज्ञाननुत्तये।।कारि.३।।

कारिकार्थः अपने आत्मस्वरूपका ज्ञान जब नहीं रहता है, तब नानात्व दृष्टिसे देहादिकी शत्रुता होती है, जिससे तीन दोष उत्पन्न होते हैं. उनका आदिमें निरूपणकर, पश्चात् आत्माके धर्मका निरूपण करते हैं. यह आत्मा स्वयं प्रकाशस्वरूप है, और असंग है, या॒ निरूपण किया जाता है, जन्म आदि दोष आत्माके नहीं हैं, किन्तु दूसरेके(देहके) हैं, अतः उनसे आत्मा दूषित नहीं होती है. असंसर्गका आग्रह दृष्टान्ता॒से भ्रान्त निरूपण किया है, ज्ञानसे अज्ञानकी निवृत्तिके लिए उपसंहार योग्य है।।१-३।।

व्याख्यार्थ : '**तरति शोकमात्मवित्**'(आत्मज्ञानी शोकको पार करता है) इस श्रुतिके अनुसार ज्ञानसे ही शोकको तैरता है, इसलिए ज्ञानका उपदेश करते हैं. यहां ज्ञानका तात्पर्य है, देहसे अतिरिक्त आत्माका ज्ञान, ऐसे ज्ञानसे ही देह आदि

अभ्याससे उत्पन्न मोह नष्ट होता है, इस कारणसे उस मोहके निराकरणकेलिए उसकी सामग्रीका, 'आत्ममोहो', श्लोकमॄ प्रतिपादन करते हैं :

आत्ममोहो नृणामेष कल्प्यते देवमायया।
सुहृद् दुर्हृदासीन इति देहात्ममानिनाम्।।४३।।

श्लोकार्थ : मनुष्यॄको यह जो देहादिमॄ मोह होता है, वह देवकी मायासे बनता है. देहमॄ जिनकी आत्मबुद्धि हो जाती है, उनकी सुहृद-दुर्हृद और उदासीन इस प्रकारकी भेदबुद्धि होती है।।४३।।

व्याख्यार्थ : आत्माका यह मोह है, अज्ञानके बाद जब दोष उत्पन्न होता है, तब जो अज्ञानता होती है, वह 'मोह' नामसे व्यवहारमॄ अर्थात् कहनेमॄ आती है, वैसे यहां भी आत्मस्वरूपके अज्ञान होने पर, जो शरीरमॄ अहंभाव उत्पन्न होता है, उससे यह मित्र है, अच्छा है, यह शत्रु है, दुष्ट है, और यह उदासीन है, ऐसी भेदबुद्धि हो जाती है. वह बुद्धि ज्ञानको अपना विषय नहीं कर सकती है, अर्थात् भेद मिटा नहीं सकती है, इसलिए मोह होता है. वह पशु आदिमॄ वैसे नहीं होता है, अतः मनुष्यॄको होता है. इसलिए 'नृणां' पद दिया है. देवादिकॄमॄ वैसा होने पर भी, देव नहीं कहा, जिसका कारण यह है कि ये व्यवहारमॄ यहां नहीं आते हैं. 'एषः' पद देकर सामने प्रत्यक्ष है, यह दिखाया है. मोह क्यॄ होता है? जिसका कारण बताते हैं, कि यह देवकी ही माया है, जो मनुष्यॄमॄ मोह उत्पन्न करती है. यदि यह मोह, माया उत्पन्न करनेवाली न होती तो श्रुति आदि प्रत्यक्ष इतने प्रमाण शास्त्रॄके विद्यमान होते हुए, इस मोहकी वृद्धि न होनी चाहिए, किन्तु वृद्धि होती ही रहती है, इससे यह माया ही मूल कारण है, एवं यह देवमाया मनुष्य पार नहीं कर सकता है, क्यॄकि दुस्तर है. जैसे मनुष्यॄकी मायाको पशु, पार नहीं कर सकते हैं, इस कारणसे 'देव' पद दिया है. 'सुतराम्', पुरुषोत्तमकी माया तो देवॄको भी दुस्तर है. माया, तीन गुणॄवाली है इसलिए मोह भी तीन गुणॄवाला हुआ है, जैसे कि सुहृत्, दुहृद् और उदासीन. उदासीन सात्त्विक है, सुहृद् राजस है, और दुहृद् तामस है. मायासे जब मोह पैदा होता है, तब सर्वत्र बिना किसी निमित्तके, जो ज्ञान होता है, वह व्यर्थ ही हो जाता है, इसलिए निमित्त बताते हैं, कि मायासे, वा अन्यसे जो देहको आत्मरूप मानते हैं, और उससे जब देहमॄ आत्मबुद्धि दृढ़ हो जाती है, तब ये दोष उत्पन्न होते हैं, उससे उनके उपकार अथवा अपकारसे अब अनुभव किया हुआ मोह उत्पन्न होता है इसलिए देहमॄ जो आत्मभाव पैदा हुआ

है, उसको ही मुख्यतः मिटाना चाहिए।।४३।।

आभासार्थ : देहमूं आत्मभाव न हो, तो भी यह कहना कैसे घटित हो सकेगा, जब तक परिच्छिन्न आत्मा है, इसलिए करणपनसे देहको स्वीकार किया जाए तो भी उदासीन आदि भेद तो रहूंगे ही, अतः देहसे पृथक् आत्मज्ञान व्यर्थ है, यदि यूं कहते हो, तो इसका समाधान यह है जो 'एकएव' श्लोकमूं कहा जाता है:

एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम्।
नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः।।४४।।

श्लोकार्थ : सर्व देहधारियूंकी आत्मा एक ही है, वह 'पर' अर्थात् सबको नियममूं रहनेवाली है, तो भी अज्ञानी उसको अनेक समझते हैं, जैसे एक चन्द्रको जलके हिलनेसे और आकाशको घट और मठमूं होनेसे अनेक समझते हैं।।४४।।

व्याख्यार्थ : सब देहूंमूं आत्मा एक ही है, क्यूंकि वह 'पर' है अर्थात् नियन्ता है. यदि वैसे न हो, देहसे परिच्छिन्न हो, तो देहके आधीन बन जावे. देहमूं रहते हुए भी आत्मा स्वतन्त्र है, यह अनुभव किया जाता है. देहान्तरमूं स्वतन्त्रता का अभाव तो, वहां अनुसन्धानके अभावसे दीखता है. इस प्रकार जब अखण्ड अद्वैतका भान होता है, तब सर्वत्र आत्मबुद्धि होती है, अथवा 'आत्म'शब्दसे भगवान् कहा जाता है, जीव उसके आभास ही हैं. 'पर' एक ही है. भगवान्के विद्य मान होते हुए इसका निरूपण करना युक्तियुक्त नहीं है, इसलिए, कहते नहीं, यह अर्थ योग्य है, कि सर्वदेहूंमूं जो आत्मा भगवान् है, वह एक ही है, क्यूंकि वह आत्मा यानि व्यापक है. यदि सर्वत्र एक न होवे, तो आत्मापन नष्ट हो जावे. यदि आत्मा भगवान्को अणु-परिमाण माना जावे, तो देहमूं भी व्याप्त होकर न रह सके, प्रकाशकी तरह गुणूंकी व्याप्ति होने पर, चैतन्य लक्षणवाले गुणका सिकुड़ना और बढ़ना अंगीकार करना चाहिए, उसमूं भी नियामक देह ही है, इससिए धर्मी ही नियामक है. धर्मका नियामकपन स्वीकार करनेसे क्या फल होगा? जैसे यह जगत् 'ब्रह्माण्ड' पदसे एक ही समझा जाता है. यदि एक न समझा जाए, तो उसका एकपनेसे निर्देश न होवे, वैसे आत्माका उपदेश भी समझना चाहिए. जैसे सुवर्ण अथवा मृत्तिका, अनेक प्रकारकी आकृतिमूं होते हुए भी, एक ही दीखती है, इसी प्रकार आत्मा भी देह आदिको विलक्षणतासे, देव, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि भावको ग्रहण करते हैं, यूं होते हुए भी कोई आत्मामूं दोष

नहीं, सर्व देहधारी उपचय(वृद्धि, ह्रास) आदिवाले हैं, अतः वृद्धि वा ह्रास आत्मामृ परिच्छेदसे बनता है. इसलिए आत्माका व्यापकत्व माननेसे एकसे ही चरितार्थता हो जाती है, जिससे नानापन मानना व्यर्थ है, ''**नानात्मानो व्यवस्थातः**'' यह स्मृतिवाक्य धर्ममर्यादाकेलिए है, उसकेलिए ही नानात्व स्वीकार करना चाहिए, जिससे लोकमृ गुण और दोषकी व्यवस्कथा हो सके, अतः इस तरह यह व्यवस्थाका निरूपण करने वाली है, जैसे पञ्चमहाभूत और एक आत्मा सब देहामृ समान है, याॄ होते हुए भी, कोई चाण्डाल है, और कोई ब्राह्मण है, ये विभाग, कर्म, धर्मके व्यवहार चलानेकेलिए ही बनाए हैं, सामग्री अर्थात् वस्तुआमृ अधर्म वा धर्मका प्रवेश हुआ है, इस प्रकार शास्त्र सम्पादन करता है, अतः अशुद्ध वा शुद्ध एवं इससे अपवित्रता पवित्र होगी, वा पाप पुण्य होगा, इस विषयमृ व्यवस्थाकेलिए शास्त्रवाक्यके प्रमाण सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है, इसलिए यह समस्त कल्पना, व्यवस्थाकेलिए है, वह योग्य ही है, उपक्रम आदि तो न्यायमतमृ भी नहीं है. भगवन्मतमृ तो भगवान्की तरह उसके भी गमन-आगमन ह्रागे, क्यांकि वहां भी इसलिए 'ईश्वर'पदका प्रयोग किया है, जैसे कि ''**शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः**'', इस वाक्यसे ब्रह्मवादमृ भी यह ही सिद्धान्त है, इससे सर्वत्र एक ही आत्मा है, यह मानना ही उचित है. यदि कहो कि जब सर्वत्र एक ही परमात्मा है तो फिर भेदकी प्रतीति क्याॄ होती है? इसके उत्तरमृ कहते हैं कि, 'नानेव गृह्यते मूढैः', जो निपट बैसमझ है, वे एकको नानाकी तरह देखते वा समझते हैं, मूढ भी कहीं नानापन(तरह-तरह)का अनुभव नहीं करते हैं. जैसे पुत्र आदिमृ और अवयवामृ दीर्घ-ह्रस्वादि विलक्षणता होते हुए भी उनको नाना नहीं समझते हैं. यदि समझें तो देह एक नहीं कही जावे, अतः गोपा याॄ कहा है, वहां स्पष्ट प्रतीति करानेकेलिए साकार और निरकारके दो दृष्टान्त देते हैं, जैसे चन्द्र साकार है, जिसकी जलमृ अनेक प्रतीतिमात्र होती है, तथा आकाश निराकार है, जिसकी घट तथा मठमृ भेद प्रतीति होती है, जिससे कहा जाता है, यह घटाकाश है, यह मठाकाश है, इस प्रकारकी भेदप्रतीति मायासे मूढ बने हुए मनुष्याॄको होती है, ज्ञानीआॄको तो सर्वत्र एक ही दीखता है ।।४४।।

१. जीव व्यापक है यह स्मार्तवाद है, उसको लेकर यहां कहा है. उपनिषद्-वादके अनुसार जीव अणुवाद है, वह यहां नहीं कहा है कारण कि रुक्मी असुर है, वह उपनिषद् - वाद सुननेके योग्य नहीं है.

आभासार्थ : तब देहमृ जो आत्मबुद्धि हुई है वह कैसे नष्ट होगी? जिसका उत्तर 'देह आद्यन्तवान्' श्लोकमृ देते हुए कहते हैं कि देह और आत्मामृ विलक्षणताका अनुसंधान करनेसे और देहका अपकारीपन भी इसमृ बताते हैं :

देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः।
आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम्।।४५।।

श्लोकार्थ : द्रव्य, प्राण और गुणस्वरूप यह देह आदि अन्तवाली है, अविद्यासे आत्मामृ उसकी कल्पना की गई है, जिससे वह देह, जीवको संसारमृ पटके हुए है।।४५।।

व्याख्यार्थ : ब्रह्म नित्य है, जो देशसे अपरिच्छिन्न है, वह व्यापक होता है, जिससे वह कालसे भी अपरिच्छिन्न है, अतः आत्मपनसे ही कालसे अपरिच्छेद सिद्ध है, देह तो आदि और अन्तवाली होनेसे देश और काल दोनृकी अवधियुक्त है, अतः देशकालपरिच्छिन्न है, 'प्रागभाव' और 'प्रध्वंसाभावकी' तरह दोनृका निवारण किया. 'एषः' पदका भाव है कि जो सामने दीख रहा है, मर गये हुए दहृका अन्त दीखता है और अवयवरहित देहकी गर्भपात होने पर उत्पत्ति दीखती है, इसलिए देह सर्वत्र अवयववाला नहीं है, अतः प्रदर्शन कहनेकी सार्थकता है, अथवा विद्यमान देहके जन्म-मरणका अदृष्टपन होनेसे अपनेसे पृथक्के ही प्रत्यक्षसंवादसे जो श्रुतिका प्रमाण मानते हैं, उनको कहता है कि 'एषः', सामने बीतनेवाला सदैव अथवा स्वल्पकाल रहनेसे दोनृमृ विलक्षणता बताकर, अब सगुण और निर्गुणसे विलक्षणता कहते हैं. द्रव्य अधिभूत, प्राण आध्यात्मिक और गुण आधिदैविक, ये ही देह और इन्द्रियृके देवतारूप ही स्वरूप जिसके हैं, किञ्च आत्मामृ अविद्यासे कल्पित है, इस प्रकार तीन विलक्षणताएं हैं, आत्मा आधार है, देह आधेय है, आत्मा सिद्ध है, देह स्वतः कल्पित है, जिसकी अविद्यासे आत्मामृ कल्पना की गई है, परमात्मा तो स्वतः ही प्रवृत्त हुए हैं, अनिष्ट और इष्ट करनेसे भी विलक्षणता बताते हैं, अपनेमृ केवल अभिमानके कारण देह, आत्माको, संसारमृ पटकती है, और आत्माको देहका हित ही चाहती है, इस प्रकार देह और आत्मामृ छः प्रकारसे विलक्षणता बताई गई है, इस विलक्षणताके अनुसन्धान करनेसे देहमृ हुई आत्मबुद्धि नष्ट हो जाती है।।४५।।

आभासार्थ : '**असंगो ह्ययं पुरुषः**' इस श्रुतिके अनुसार आत्मा असंग है,

यह निरूपण हुआ है, देह तो सर्व संगसे युक्त है, इस विलक्षणताको कहनेकेलिए आत्माके ही धर्म 'नात्मनः' श्लोकमृ कहते हैं :

नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगो वासता सति।
तद्धेतुत्वात् तत्प्रसिद्धेः दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः।।४६।।

श्लोकार्थ : हे सती! कारणरूप आत्माके, न तो दूसरे देह आदिके साथ संयोग है और न वियोग है, क्यूंकि अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत, ये आत्माके कार्य हैं और आत्मा होनेसे प्रकाशित होते हैं, जिससे आत्मा भिन्न नहीं हैं, जुदे होनेके सिवाय संयोग-वियोग हो नहीं सकते हैं, जैसे चक्षु इन्द्रिय और रूपका प्रकाशक सूर्य है, ये दोनृ तेजस् हैं, जिससे ये सूर्यके कार्य हैं और सूर्य कारण है, इससे सूर्यसे भिन्न नहीं है।।४६।।

व्याख्यार्थ : इस आत्माका देहसे संयोग वा वियोग नहीं+१ है, पहले संयोग हो तो अनन्तर वियोग होवे, इसलिए संयोगका निषेध किया, क्यूंकि अवयव भेदसे संयोगका अभाव है, संयोग भी स्थित होनेवालेका होता है, इसलिए सिद्धकी साधनतासे शंकाकर, दोनृका निषेध करते हैं. संयोग भी नहीं है और वियोग भी नहीं है. कदाचित् संयोग भी वियोगसे निषिद्ध किया है, जब संयोग भावरूप है और वियोग अभावरूप है, तब दोनृका अभाव कैसे बन सकेगा? प्राप्तका अनिषेध नहीं, वैसा नियम नहीं है, हो सकने हारी बातके भी निषेधसे भी इस पर कहते हैं कि, देह असत् है, इसलिए वैसी देहसे सत् आत्माका संयोग-वियोग नहीं हो सकता है, जैसे रज्जु और सर्पका संयोग-वियोग नहीं हो सकता है. सर्पका कोई भी अंश रज्जुमृ नहीं होता है. यदि कहो कि प्रत्यक्ष और श्रुतिसे देहको देखनेसे तथा अनुमान प्रत्यक्ष तथा श्रुतिमृ आत्माकी भी प्रतीति होनेसे, एवं दोनृमृ विलक्षणता भी कही है, जिससे जब वियोग ही है, तब दोनृका अभाव कैसे? इसके उत्तरमृ कहते हैं कि पहले ही कह दिया है, कि देह आदि असत् होनेसे और वह असत् प्रमाणसिद्ध है, जिससे ऐसी शंका बन नहीं सकती है. उसमृ हेतु कहते हैं कि 'तद्धेतुत्वात् तत्प्रसिद्धेः', उस देहकी उत्पति और ज्ञान प्रसिद्ध हो रहा है, यृ होनेमृ आत्मा ही कारण है, आत्माके प्रकाशसे ही देह भास रहा है, इससे उसको पृथक् स्थिति नहीं है, जिससे संयोग वियोग नहीं बनते हैं, जिनकी सत्ता पृथक् हो, उनमृ ही संयोग और वियोग बन सकते हैं, इस प्रकार लोककी स्थिति है, इस कारणसे ही जो-जो उत्पत्तिके आधीन हैं, वहां संयोग

सम्बन्ध नहीं होता है, जैसे द्रव्य और गुणमृ और ज्ञान होनेमृ, ज्ञान तथा विषयका संयोग नहीं हो सकता है, तो भी दोनृके होनेसे समवाय और स्वरूप सम्बन्ध माना गया है. यहां देहके असत् होनेसे दूसरेके स्वभावरहित होनेसे रज्जु और सर्पकी भांति स्वरूप सम्बन्ध नहीं है. समवायका भी निराकरण होगा, सर्व प्रकार संयोग और वियोग तो नहीं होते हैं, प्रकाश्य और प्रकाशकके सम्बन्धका अभाव ही है, इसमृ दृष्टान्त देते हैं, 'दृगपाभ्यां', नेत्रका अधिष्ठाता देव सूर्य है, उससे नेत्र सत्ता प्राप्तकर, विषयको ग्रहण करते हैं, सूर्यसे उन नेत्रृका संयोग-वियोग नहीं होता है, इस सदर्थका पूर्णज्ञान अधिकारीको ही होता है, मुखका दर्पण वा प्रतिविम्बसे कोई सम्बन्ध नहीं होता है. रुक्मिणीजीको 'हे सति!' यह विशेषण इसलिए दिया है कि तू मेरे कहने पर विश्वास करेगी, क्यृकि तूं पतिव्रता है, इस प्रकारके उपदेशसे आदिमृ आसक्ति न होवे और वैराग्य भी होवे, ऐसी सूचना दी है. अपनी आत्मामृ आसक्तिसे ही देहादिमृ अनासक्ति तथा संसासे वैराग्यकी सिद्धि होती है, जो वह नहीं है, तो देहादिमृ अनासक्ति और वैराग्यका भी अभाव है।।४६।।

१. वह अभ्युदसिद्धान्त मायावाद है, जिसका उपदेश बलरामजीने असुर रुक्मीके कारण किया है, पुराणृमृ इस प्रकार मायिक सिद्धान्त कहा है, वह वैराग्यको उत्पन्न करनेकेलिए कहा है.

आभासार्थ : अनुमान और श्रुतिसे जन्म आदि जीवके ही प्रतीत होते हैं, उससे संघातकी वैसी प्रतीति होती है. यदि देहको असत् कहोगे तो आत्माको ही कहोगे, इसलिए संयोग निराकरण असत्त्व, हेतुसे विपरीत ही होगा, अर्थात् सर्व दोष आत्मामृ ही आ गए ,यदि यृ कहते हो तो इसका उत्तर 'जन्मादयः' श्लोकमृ देखिए :

जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित्।
कलानामिव नैवेन्दोर्मृतिह्यस्य कुहूरिव।।४७।।

श्लोकार्थ : जन्य आदि विकार देहके हैं, आत्माके कभी नहीं, जैसे चन्द्रमामृ जो वृद्धि-क्षय दीखता है, वह कलाओंका है, चन्द्रमाका नहीं है, अमावस्यामृ जो तिरोभाव होता है, वह कलाका है, किन्तु अज्ञ, चन्द्रमाका समझते हैं. वैसे ही देहके तिरोभावसे आत्माका नाश जानते हैं।।४७।।

व्याख्यार्थ : 'तु' शब्द दूसरा पक्ष बतलाता है, जन्म-मरण आदि देहके ही हैं, जिस प्रकार देहकी सिद्धि होती है, वैसे ही जन्म आदिकी भी होती है,

उनका देहसे सम्बन्धिपन होनेसे ही सिद्धि है, अतः दोनूके असत् होनेसे जन्म आदि भी देहके ही हैं, योग्यको योग्यसे हो सम्बन्धित किया जाता है. सर्प चलता है अर्थात् जाता है ओर काटता है, ये सब जैसे सर्पके ही धर्म हैं, वैसे जन्म आदि भी देहके ही धर्म हैं, क्यूकि विकारवाले हैं, वैसे विकारवाले धर्म, विकाररहित आत्मधर्म कभी नहीं होते हैं. 'क्वचित्' पदका भाव प्रकट करते हुए कहते हैं, कि ज्ञानके बाद ये नहीं है, यू इष्ट ही है. इस पक्षको बदलता है. यह सर्व नहीं है, इस प्रकार ज्ञान होनेके बाद ही सर्पका अभाव होगा, किन्तु प्रतीतदशामू भी, इसमू ज्योतिषशास्त्रसिद्ध दृष्टान्त कहते हैं, 'कलानामिव', चन्द्रमाकी पन्द्रह कला हैं, प्रतिदिन एक कलाका तिरोधान होता है, न कि चन्द्रमाका. वह तो जलमय है. सूर्यकी किरणूका उसमू प्रतिबिम्ब पड़ता है. वे किरणू कम होती हैं, यो कालको जाननेवाले कहते हैं . आप यू कैसे कहते हो कि चन्द्रमाका नाश नहीं होता है, अमावस्याको सारा चन्द्रमा नष्ट हो जाता है, फिर वह नवीन होकर उत्पन्न होता है, इस प्रकार होता है. फिर आप कैसे कहते हो कि कलाओका क्षय होता है? ऐसा कहो, तो उसका उत्तर देते हैं, इस जीवकी और चन्द्रमाकी अमावस्या ही मृत्यु है. अमावास्यामू उसका दर्शन न होना कोई मृत्यु नहीं है. उसकी ही मृत्यु है, वह काल कभी उसको प्रकाशित करता है और कभी बड़ा और कभी छोटा, कभी भेद करता है, तथा कभी नहीं, इस प्रकार उसकी उत्क्रान्ति आदिका निरूपण किया जाता है, न कि वास्तविक उसका मरण है. मरणमू दोनूका वियोग होता है और देह तो पृथक् स्थित होनेसे पृथक्के निराकरणकेलिए यह प्रयास है।।४७।।

आभासार्थ : मिथ्या पदार्थसे सम्बन्ध तो किसी समय होता है, जैसे रज्जुका सर्पसे, आत्माका तो देहसे पूर्वसे ही सम्बन्ध चला आ रहा है, इसलिए विषम दृष्टान्त होनेसे देह सत्य होनी चाहिए, और उसमू आत्माका सम्बन्ध भी मानना चाहिए, यदि यू कहते हो तो इसका उत्तर 'यथा शयान' श्लोकमू कहते हैं:

यथा शयान आत्मानं विषयान् फलमेव च।
अनुभुङ्क्तेऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम्।।४८।।

श्लोकार्थ : जैसे सोया हुआ पुरुष, पदार्थ आदि नहीं होते हुए भी भोक्ता बनता है और विषयूका फल सुख भी लेता है, वैसे ही अज्ञानदशामू यह अज्ञ, संसारको प्राप्त करता है।।४८।।

व्याख्यार्थ : जो किसी समय हो, वह मिथ्या है, ऐसा कोई नियम नहीं है,

किन्तु सर्वदा ही देखनेमॄ आने वाला भी असत् होता है, जैसे जब ही शयन करता है तब ही पदार्थ न होते हुए भी, माला, चन्दन आदि विषयॄके सुख और फलका अनुभव करता है, यॄ होनेसे वे सत्य नहीं हो जाते हैं. 'मायामात्रम्' इस सूत्रमॄ निर्णय किया है कि वह केवल माया है, वैसे ही अज्ञानी सोए हुएकी तरह संसारको प्राप्त होता है, निद्राकी तरह अज्ञान है, इस प्रकार अर्थ है।।४८।।

आभासार्थ : अतः अज्ञानसे ही देहकी प्रतीति हो रही है, देहका सम्बन्ध ही आत्माके परिच्छेदकी प्रतीति कराता है. परिच्छेदके कारण ही शत्रु तथा मित्र आदिकी प्रतीति हो रही है, यॄ होनेकी जड़ परम्पराका अज्ञान है, इसलिए इस अज्ञानका तत्त्वज्ञानसे निराकरण करना चाहिए, जिसको 'तस्माद्' इस श्लोकमॄ कहते हैं :

तस्मादज्ञानजं शोकम् आत्मशोषविमोहनम्।
तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते।।४९।।

श्लोकार्थ : हे पवित्र मन्द हासवाली! इस कारणसे अज्ञानसे उत्पन्न आत्माको शोष और मोह देनेवाले शोकको तत्त्वज्ञानसे त्यागकर, शान्त हो।।४९।।

व्याख्यार्थ : विषम बुद्धिसे शोक उत्पन्न होता है, इसलिए वह अज्ञानकृत ही है. शोकको क्यॄ छोड़ा जाय? उसका उत्तर है, कि शोकसे दो प्रकारकी हानि होती है एक, अन्तःकरणका सूखना वा क्षय तथा भ्रममॄ पड़ना, बहुत अपकारी होनेसे इस अज्ञानको तत्त्वज्ञानसे मिटाकर, शान्त हो. इस प्रकार उपदेश वा प्रार्थना की गई है. 'शुचिस्मिते' आप पवित्र सुन्दर हासवाली होनेसे, आपका सहज ही अनुग्रह है, इस प्रकार इस कृत्रिम अज्ञानका निराकरण अत्यन्त क्लेशसे नहीं करना चाहिए, यों भी सूचित किया।।४९।।

आभासार्थ : इस प्रकार उपदेश किया हुआ ज्ञान, भगवत्सन्निधि होनेसे सफल हुआ, जिसका वर्णन 'एवं भगवता' श्लोकसे श्रीशुकदेवजी कहते हैं :

श्रीशुक उवाच
एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता।
वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे।।५०।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजीने कहा कि भगवान् रामने जब रुक्मिणीको इस प्रकार समझाया, तब रुक्मिणीने मन-मुटाव त्यागकर, विक्षेपवाले मनको

ज्ञानसे स्थिर कर लिया।।५०।।

व्याख्यार्थ : भगवदीय सिद्धान्तको छोड़, ज्ञान सिद्धान्तका ज्ञान रामने क्यूा दिया? जिसके उत्तरमूा कहा है, कि यह तन्वी है अर्थात् विषयपरायण है और राम साधनपरायण हैं. जो भगवान्के परायण न होकर, विषयपरायण होता है, उसको भगवान् अपना सिद्धान्त नहीं कहते हैं, क्यूाकि उस सिद्धान्तके अधिकारी मुक्त ही हैं, अतः इन तीन कारणूासे, इसको ज्ञानसे ही समझाया है. ज्ञानका प्रयोजन व फल उसका मन-मुटाव मिट जाना हुआ, और भगवान्मूा जो दोषबुद्धि थी, वह भी नष्ट हुई, पश्चात् विक्षेपवाले मनको, ज्ञानसे शुद्ध किया अर्थात् विशेष आदि नष्ट हो गए, उसको भगवान्मूा जो दोषबुद्धि थी, वह और दूसरा विशेष, ये दो ही दुःख देनेवाले थे, उन दोनूाकी निवृत्ति ज्ञानका फल है।।५०।।

आभासार्थ : इस प्रकार रुक्मिणीका समाधान कहकर, अब रुक्मीका त्याग ही दोनूाकेलिए सुखकारी है, इसलिए 'प्राणावशेष' श्लोकसे उसके परित्यागको कहते हैं :

प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः।
स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः।।५१।।

श्लोकार्थ : जिसकी सेना और प्रभावका शत्रुओूाने नाश कर दिया है, वैसा रुक्मी वहांसे प्राण बचाकर आया है, उसको तो वह भूल गया है, किन्तु आपने जो विरूप किया है, वह उसको याद कर रहा है, और अपनी प्रतिज्ञाको विफल समझ रहा है।।५१।।

व्याख्यार्थ : बलरामजी इसको छोड़ देनेको तो कहते हैं, किन्तु अकेला होगा, कोई इसका सहायक न होगा, तो दूसरे इसको मार डालूागे? इस शंकाका निवारण करते हैं, कि शत्रुओूाने इसकी सेना और प्रभावको नष्ट करनेके बाद इसको छोड़ दिया है, जिससे इसको अन्य मारूागे, यह भय नहीं रहा है. इसने और सब भुला दिया है, किन्तु विरूप होना तो अब तक स्मरण कर रहा है, जिससे खेदयुक्त है. यदि विरूप होने पर कार्य सिद्ध हो जाता, तो खिन्न न होता, किन्तु अब तो जिस कार्यके लिए आया था, वह भी जिसका सिद्ध न हुआ, अतः अपनी प्रतिज्ञाको त्यागा नहीं है. भगवान्ने इसकी बहिनका हरण किया है, जिसको वह भगवान्से छुड़ा नहीं सकता है, अतः स्वदेश कुण्डिनपुरको लौटना इसकेलिए अशक्य हो रहा है।।५१।।

आभासार्थ : इस कारणसे ही कुण्डिनपुर न जाकर दूसरे स्थान पर स्थित हुआ, जिसका वर्णन 'अहत्वा' श्लोकमू किया हुआ है :

अहत्वा दुर्मतिः कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम्।
चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत्पुरम्।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्रुषा।।५२।।

श्लोकार्थ : उसकी प्रतिज्ञा थी कृष्णको मारे बिना और छोटी बहिनको लाए बिना कुण्डिनपुरमू प्रवेश न करूंगा, यह पूर्ण न होने पर भोजकट महान् नगर बनवाकर क्रोधसे पूर्ण रूक्मी, वहां रहने लगा।।५२।।

व्याख्यार्थ : वहां रहने लगा, जहां मुण्डन हुआ और भोजकट नगर बसाया था, क्यूंकि दुर्मति है. भोजजाति वह है, जो मृतकाूके कपडे लते हैं. जातिका अपकर्ष दिखानेकेलिए यवनसे पहले कहा है, कि भोजसे यवन हुए हैं. मरण पर्यन्त यहां रहूंगा, इसलिए इस नगरका नाम भोजकट धरा है. हालांकि, याू करनेसे कोई पुरुषार्थ नहीं है, तथा झूठी प्रतिज्ञाका पालन करनेमू कोई दोष नहीं, तो भी भाईपनेसे क्रोध आनेसे वहां ही रह गया।।५२।।

आभासार्थ : इसके बाद भगवान्ने जो किया वह 'भगवान् भीष्मक' श्लोकमू कहते हैं :

भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान्।
पुरमानीय विधिवद् उपयेमे कुरूद्वह।।५३।।

श्लोकार्थ : हे कुरूद्वह! भगवान्ने इस प्रकार राजाओंको जीतकर, भीष्मककी कन्याको अपने पुरमू लाकर, विधिपूर्वक उससे विवाह किया।।५३।।

व्याख्यार्थ : भगवान्ने देखा कि यह सर्वप्रकारसे निर्दोष है,और मुझे ही वरण करना चाहती है. राजा लोग याू करना नहीं चाहते हैं, तब अपना वीर्य (पराक्रम)रूप विवाह करना योग्य समझ, आए हुए भूपतियाूको जीत लिया और रुक्मिणीको ग्रहण किया, किन्तु गन्धर्वनीतिसे उसको ग्रहण नकर, जैसे बालकका द्विजत्व सिद्धकेलिए यज्ञोपवीत संस्कार है, वैसे ही कन्याकेलिए विवाह संस्कार है, अतः सर्व सम्मतिसे अपनी पुरीमू लाकर, विधिपूर्वक विवाह किया. क्षत्रिय तो बहुत करके याू नहीं करते हैं, भगवान्ने भी नहीं किया है, केवल सद् बुद्धिकेलिए कहा है, इस प्रकार शंका मिटानेकेलिए राजाको 'कुरूद्वह!' विशेषण दिया है, जिसका आशय है कि आप, कुरुकुलमू उत्पन्न हुए हो, अतः विश्वास करो, कि

भगवान्ने विधिवत् विवाह किया है।।५३।।

आभासार्थ : सर्व सम्मतिसे जो विवाह किया, उसके प्रदर्शनकेलिए 'तदा महोत्सवो' श्लोकमृ यहां वह वर्णन करते हैं :

तदा महोत्सवो नणां यदुपुर्यां गृहे गृहे।
अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप।।५४।।

श्लोकार्थ : हे नृप! यादवृके पति कृष्णमृ अनन्य भाववाले, मनुष्यृके हरेक घरमृ उस समय यदुपुरीमृ महान् उत्सव हुआ।।५४।।

व्याख्यार्थ : श्लोकमृ 'नृणां' पदका भाव यह है कि केवल बान्धवृके घरृमृ उत्सव नहीं हुआ, किन्तु समस्त जनताके घरृमृ महान् उत्सव हुआ, इसलिए उसको पुष्ट करनेकेलिए 'यदुपुर्यां' पद दिया है अर्थात् सारी यदुपुरीमृ महान् उत्सव हुआ. तात्पर्य है कि सारी नगरीमृ कोई भी उत्सवके विपरीत नहीं था, यह कैसे सम्भव है, जब कि यादवृका परस्पर वैमनस्य होना सम्भव है, इसके उत्तरमृ कहते हैं कि परस्पर वैमनस्य भले हो, किन्तु उन सबका कृष्णमृ अनन्य भाव था, क्यृकि श्रीकृष्ण, यादवृके पति हैं. हालांकि, यादव स्वभावसे उद्धत होते हैं. तो भी अपने पति होनेसे श्रीकृष्णमृ अनन्यभाववाले हैं. जब भगवान् यादवृके पति हुए, तब वे वैसे अर्थात् अनन्यभाववाले बने. 'नृप!' यह सम्बोधन विश्वासकेलिए दिया है, जैसे आप हुए हैं।।५४।।

आभासार्थ : प्रत्येक विवाहमृ वरको दहेज मिलता है, यहां तो भगवान्को दहेज न मिलनेसे विवाहमृ शोभा न हुई होगी? इसके उत्तरमृ यह श्लोक 'नरा नार्यः' कहते हैं, जिससे विवाहकी शोभा विशेष हुई :

नरा नार्यः प्रमुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः।
पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः।।५५।।

श्लोकार्थ : नगरीके नर तथा नारियृने प्रसन्न होकर, और उज्जवल मणियृ के कुण्डलृको धारणकर, सुन्दर वस्त्रादिसे अलंकृतकर वधुकेलिए अनेक उपहार दिए।।५५।।

व्याख्यार्थ : नगरीके नर तथा नारियां पूर्णरीतिसे अलंकृत होकर इसी प्रकार सुन्दर वस्त्र आदिसे समलंकृत जो वर-वधू, उनको भेट दी, नगरवासियृके भेट देनेका कोई नियम नहीं है, तो नियम विरुद्ध इन्हृने वैसा क्यृ किया? जिसके उत्तरमृ कहते हैं, कि 'वरयोः' वधु-वरको उपहार देना ही चाहिए, इसलिए दिया,

जैसे ही दक्षिणाका शिष्टाचार है।।५५।।

आभासार्थ : पहले ही विवाहकी तैयारी हो रही थी, अचानक भगवान् भी पधार गए इसलिए विशेष प्रकारसे उनके वास्ते नगरीको अलंकृत न करने पर भी वह स्वभावसे ही अलंकृत थी, जिसका वर्णन 'सा वृष्णि' श्लोकमृ करते हैं :

सा वृष्णिपुर्युत्तभितेन्द्रकेतुभिर्विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः।
बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमङ्गलैरापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः।।५६।।

श्लोकार्थ : उस समय वह द्वारका ऊंचे इन्द्रध्वज, विचित्र मालाएं, वस्त्र रत्न और तोरणृसे शोभित थी और प्रत्येक द्वारपर मांगलिक साजृसे सजी हुई थी, जैसेकि जलसे भरे हुए घड़े, अगर, धूप व दीपकृकी जगमगसे सुशोभित हो रही थी।।५६।।

व्याख्यार्थ : वह द्वारका स्वर्ग पर्यन्त गई हुई उच्च ध्वजाओृसे सुशोभित हो रही थी, अथवा इन्द्रकेतु अर्थात् पारिजात और सुधर्म आदि वृक्ष एवं अन्य कल्प वृक्ष उनसे सुशोभित थी. विचित्र पुष्प, वस्त्र और रत्नमय तोरणृसे स्वभावसे ही शोभा पा रही थी और यह विशेषता भी हो रही थी कि प्रत्येक द्वारपर मंगल साज सजाए गए थे, जैसे कि जलसे भरे हुए घड़े, अगरके धूप तथा दीप जल रहे थे, इस प्रकार ऊपर, मध्य और नीचेके निवास स्थानृकी शोभाका निरूपण किया।।५६।।

आभासार्थ : अब 'सिक्तमार्गा' इन श्लोकृ से मार्गोंका वर्णन करते हैं :

सिक्तमार्गा मदच्युद्भिः आहूतप्रेष्ठभूभुजाम्।
गजैर्द्वास्सु परामृष्ट–रम्भापूगोपशोभिता।।५७।।
कुरुसृञ्जयकैकेय– विदर्भयदुकुन्तयः।
मिथो मुमुदिरे तस्मिन् सम्भ्रमात् परिधावताम्।।५८।।

श्लोकार्थ : बुलाए हुए प्रिय राजाओृके हस्तियृके मदसे, उत्पन्न जलके गिर जानेसे, मार्ग सिंचित हो रहे थे. द्वारृ पर जो सुपारियां और केलेके वृक्ष लगाए थे उनसे नगरीकी शोभा विशेष हो रही थी. हर्षके मारे चारृ और दौड़ते फिरते जो द्वारकावासी, उनके मध्यमृ कुरु, सृंजय, कैकेय, विदर्भ, यदु तथा कुन्ति, इन देशृके राजा भी परस्पर आनन्दित हो, फिर रहे थे।।५८।।

व्याख्यार्थ: बुलाए हुए प्रियतम भूपतियृके हस्तियृके गण्डस्थलसे निःसृत मदजलसे पुरीके मार्ग सिंचित हो गए थे, अतः उनको विशेष स्वच्छ

करनेका अवसर ही न मिला. द्वारॄ पर जो सजावट की, उसका वर्णन करते हैं. चारॄ तरफ जो केलेके खम्भ, उनसे पुरी सुशोभित थी. विवाह हो जानेपर, फिर आकर विधिपूर्वक विवाह किया, इस प्रकार सबका विचार था. छः प्रकारके क्षत्रिय, जिनका परस्पर स्वभावसे ही द्वेष चला आता है, वे भी आपसी वैरका त्यागकर, रुक्मिणी सहित भगवान्‌के दर्शनकर, आनन्दमग्न हो गए. दुर्योधन आदि कौरव, पाण्डव, पांचाल, धृष्टद्युम्न आदि वे दोनॄ परस्पर शत्रु हैं. कैकेय और विदर्भ, वैसे यादव और कुन्ति, वे तीनॄ भी आपसमॄ शत्रु हैं, किन्तु इस समय परस्पर प्रसन्न हो, उत्सव मनाने लगे, और आदरसे फिरते हुए परस्पर, सम्बन्धी बन गए. उत्सवका पूर्ण पोषण करनेकेलिए वे सब ही उसमॄ संलग्न हो गए।।५८।।

आभासार्थ : केवल यदुपुरीमॄ ही सम्भ्रम नहीं हुआ, किन्तु लोकमॄ सर्व स्थानॄ पर यह सम्भ्रम हुआ, जिसका वर्णन 'रुक्मिण्या' श्लोकमॄ करते हैं :

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं इतस्ततः।
राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्विस्मिता भृशम्।।५९।।

श्लोकार्थ : जहां-तहांसे भगवान्‌के रुक्मिणीका आश्चर्यसे किए हुए हरण सुनकर, राजा और राजकन्याएं बहुत अचम्भेमॄ पड़ गए।।५९।।

व्याख्यार्थ : भगवान्‌ने आश्चर्यजनक रुक्मिणीका हरण किया था, उसको जहां-तहां गाया हुआ सुनकर, राजालोग आश्चर्यचकित हो गए और कहने लगे कि इस प्रकार कैसे हरण कर आए? राजाओॄकी कन्याएं भी अचम्भेमॄ पड़ गईं कि याॄ हमको भी हरण करॄगे, यह हरणकी कथा सब स्थानॄमॄ सुननेसे असम्भावना भी मिट गई।।५९।।

आभासार्थ : इस प्रकार विशेष पुरुषॄका महोत्सव कहकर, साधारण जनताका महोत्सव 'द्वारकायां' श्लोकसे कहते हैं :

द्वारकायामभूद् राजन् महामोदः पुरौकसाम्।
रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम्।।६०।।

श्लोकार्थ : हे राजन्! द्वारकाके साधारण नगरवासियॄको महान् हर्ष हुआ क्यॄकि लक्ष्मीपति श्रीकृष्णके लक्ष्मीरूपी रुक्मिणीके साथ दर्शन हुए।।६०।।

व्याख्यार्थ : नगरमॄ रहने वाले जो साधारण जन, धन्धे-रोजगारमॄ ही लगे रहते हैं, उनको भी महान् हर्ष हुआ. हांलाकि उनको विवेक नहीं है, तो भी वस्तुकी सामर्थ्यसे ही आनन्द हुआ, वह वस्तु सामर्थ्यका वर्णन करते हैं. स्त्रियॄके

हितके लिए अवतार धारण करने वाले, लक्ष्मीके पति श्रीकृष्णके लक्ष्मीरूपिणी रुक्मिणीके साथ दर्शन हुए, याॄ तो भगवान् सदैव लक्ष्मीके साथ विराजते हैं, किन्तु जब अवतार लेते हैं, तब आप अकेले ही प्रकट दर्शन देते हैं, वैसे अकेले स्वरूपके दर्शन पुर वासियाॄको आनन्द होवे, क्याॄकि वे नित्य स्त्रीप्रधान हैं, अर्थात् वे सदैव स्त्रियाॄको साथ ही रखते हैं, जिससे स्त्रियाॄका ही आदर करते हैं, अतः भगवान्को भी स्त्री सहित देखकर ही, प्रसन्नचित्त हुए. अब तो इस स्वरूपमॄ पूर्ण शक्ति इकट्ठी हुई है इसलिए बड़ा ही मोद यानि सन्तोष उत्पन्न हुआ है।।६०।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कंध (उत्तरार्ध) अध्याय ५१ की श्रीवल्लभाचायचरण विरचित श्रीसुबोधिनी टीकाके राजस साधन अवान्तर प्रकरणके पांचवे अध्यायका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण

अध्याय ५२

प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरका वध

निरूपितो भगवतो भार्यायास्तु परिग्रहः ।
षष्ठाध्याये तु पुत्रस्य स्वीकारोऽत्र निरूप्यते।।कारि.१।।

कारिकार्थ : पूर्वाध्यायमृ भगवान्ने रुक्मिणीको भार्यापनसे स्वीकार किया, यह निरूपण हुआ. अब छठे अध्यायमृ पुत्रकी स्वीकृतिका निरूपण किया जाता है।।१।।

लोके हि पुत्र भार्याणां सम्बन्धे स्याद्धि संसृतिः ।
दुष्टभावेषु संसृष्टास्त्वत्र कृष्णेन मोचिताः।।कारि.२।।

कारिकार्थ : लोकमृ पुत्र तथा भार्यासे सम्बन्ध होने पर ही संसार होता है, यहां दुष्टभावमृसे निर्मित हैं अर्थात् भगवान्मृ विपरीत भाव करते हैं, उनको कृष्णने मुक्त कर दिया।।२।।

न चापि भगवान् कृष्णः कमप्यत्र निवारयेत् ।
भागिनं यत्र यो भागी निवृत्ते हरिसाद्भवेत्।।कारि.३।।

कारिकार्थ : भगवान् कृष्ण यहां किसी भी भागीका निराकरण नहीं करते हैं जहां जो भागी(अंशविशिष्ट) निवृत्त होता है, वह हरिके साथ मिल जाता है।।३।।

अतः शम्बर निर्मुक्तः पुत्रो जात इतीर्यते ।
पुत्रत्वं च न कालादेः किन्तु स्वेच्छात एव हि।।कारि.४।।

कारिकार्थ : अतः शम्बरसे छूटा हुआ, पुत्र हुआ, यमृ कहा जाता है, यह पुत्रत्व, काल आदि कारणसे नहीं है, किन्तु अपनी इच्छासे ही हुआ है।।४।।

तादृशस्य हि जीवस्य ततः काम कथोच्यते।।कारि.४.१/५।।

कारिकार्थ : इस कारणसे वैसे जीवकी काम कथा कही जाती है।।

कारिकार्थ सम्पूर्ण

आभासार्थ : पूर्वाध्यायमृ यह वर्णन हुआ है कि भगवान्की भार्या होनेकी रुक्मिणीकी इच्छा थी, जिससे उसको भगवान्ने अपनी भार्या बनाई, यहां भी प्रद्युम्नकी इच्छा थी कि मैं भगवान्का पुत्र बनूं, इसलिए भगवान्ने कामरूप प्रद्युम्नका पुत्रत्वसे स्वीकार किया, जिसका वर्णन श्रीशुकदेवजी 'कामस्तु'

श्लोकसे करते हैं :

श्रीशुक उवाच

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना।

देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत।।१।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि जो वासुदेवका अंशरूप काम महादेवके क्रोधसे पहले दग्ध हो गया था, वह फिर देह प्राप्तिकेलिए उस प्रभुकी शरण गया अर्थात् उनमें प्रविष्ट होकर उससे उत्पन्न हुआ।।१।।

व्याख्यार्थ : कामकी उत्पत्ति होनी बनती नहीं, क्योंकि कामसे ही भार्यामें प्रवृत्ति होती है, इस कारणसे आत्माके प्रति अपना कारण न होनेसे कामकी उत्पत्ति असङ्गत है. इस प्रकारकी शङ्काका 'तु' शब्दसे निराकरण करते हैं, जिसमें कारण देते हैं कि यह काम मोक्षदाता वासुदेव भगवान्का अंग है नहीं कि जीव है, शरणागतिमें विघ्न डालनेकेलिए, वासुदेव भगवान्से माया और काम ये दो अंश प्रकटे हैं. पुरुष और स्त्रीमें प्रतिष्ठित हुए, जिससे जगत् मोहिन हो जाता है, इसी कारणसे जीव भगवत् शरण नहीं लेता है. काम तो सबको मोहमें डालता हुआ, मुख्य अधिकारी महादेवको भी जब मोहित करनेमें प्रवृत्त हुआ, तब जो महादेव सब रोगोंको नष्ट करते हैं, उनने इस कामको भी रोग मानकर, अपनी कोधाग्निसे दग्ध कर डाला, उसी दिनसे काम पैदा न हुआ, लोकमें प्रवृत्त होते भी वह शक्तिहीन हो गया, मोक्षदाता भगवान् भी प्रकटे नहीं, जहां यह विघ्न कर सके. जब कृष्ण प्रकट हुए तब वह काम, मुझे रुद्र न जला सके, ऐसी देहकी प्राप्तिकेलिए फिर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट होता है, जिससे मेरी देहमें भगवत्सारूप्यता होगी, अतः अनन्य देह सहित ही प्रकट हो जाऊंगा, यह सङ्कल्पकर ही भगवान्में प्रविष्ट हुआ, किस प्रकार भगवान्में प्रवेश किया? जिसका वर्णन करते हैं कि वासुदेवके जो माया और काम दो अंश प्रकटे, उनमेंसे कामका निवास पुरुषोंमें हुआ और मायाका स्त्रियोंमें हुआ, अतः काम अग्निकुमार जो पुरुष थे, उनमें रहा था. किन्तु जब उन्होंने स्त्रीरूप धारण किया तब उनमें उसकी स्थिति न हो सकी, उन स्त्रीरूपोंसे निकलकर, भगवान्में प्रवेश किया, अतः आचार्यश्री कहते हैं कि वह काम गोपियोंके द्वारा कृष्णमें आया. उसका रहस्य बताते हैं कि वे गोपियां वास्तविक पुरुष थीं, उत्पत्ति न होगी, यों जान कर ही भगवान्में उत्पत्तिकेलिए प्रविष्ट हुआ।।१।।

आभासार्थ : जब ही रुक्मिणी भगवान्‌से सम्बद्ध[१] हुई तब ही उसमृसे कामरूप प्रद्युम्न प्रकट हुआ, जिसका वर्णन 'स एव जातो' श्लोकमृ करते हैं :

१.संबद्ध कहनेका भाव यह है कि जब श्रुतिरूप प्रभृति गोपियृासे रमरण समय भी पतित्व सम्बन्धके कारण पहले रुक्मिणीका ही स्वीकार हुआ है. –लेखकारका आशय

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्ण वीर्यसमुद्भवः ।
प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः।।२।।

श्लोकार्थ : वह ही श्रीकृष्णकी क्रिया शक्तिरूप वीर्यसे रुक्मिणीसे जन्म लेकर, प्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध हुआ, जो पिता श्रीकृष्णसे सर्व प्रकार न्यून नहीं था।।२।।

व्याख्यार्थ : वैदर्भी(रुक्मिणी)मृ भक्ति मुख्य है. श्लोकमृ 'कृष्णवीर्य समुद्भवः' पद कहा है, जिसमृ 'वीर्य' शब्दसे यह भ्रम होता है कि यह वीर्य अन्नसे उत्पन्न होनेसे अन्नमय होगा, अतः इस भ्रम निवारणार्थ स्पष्ट कहते हैं कि यहां 'वीर्य' शब्दसे भगवान्‌की क्रियाशक्ति कही है, नहीं कि अन्नमय वीर्य कहा है. भगवान्‌की क्रियाशक्ति उनके सदंशसे उत्पन्न होती है. काम स्वयं तो चिदंश है, उसको सदंशकी ही अपेक्षा थी, जिससे वह सदेह होकर प्रकट हो सके, क्यृाकि देह सदंशसे बनती है, इसका भावार्थ है कि प्रद्युम्नकी देह भगवान्‌का सदंश है, सदंशमृ पड़ा हुआ रूप क्रियाशक्ति है, इसलिये क्रियाशक्तिमृ प्रकट हुआ. अतः कहा है कि 'कृष्णवीर्यसमुद्भवः' कृष्णके वीर्यमृ(क्रियाशक्तिमृ) जिसका (प्रद्युम्न का) प्राकट्य हुआ है. 'एवं' पद श्लोकमृ देकर यह सिद्ध किया है, कि इसमृ (प्रद्युम्नमृ) कोई जीव नहीं है इसलिए ही लोकमृ 'प्रद्युम्न' नामसे प्रसिद्ध हुआ है अर्थात् जिससे विशेष तेज व बल प्रकट होता है. इस प्रकार उसका अभिलषित ही नाम पड़ा, इस प्रकार होने पर भी यदि भगवान्‌की इच्छा वैसी, न हो, तो वैसी अक्षय देहकी प्राप्ति न होती, इस तरह भगवत् सारूप्यको प्राप्त हुआ, जिससे पितासे किसी प्रकार कम न हुआ।।२।।

आभासार्थ : इसी बीचमृ नारदने शम्बरको जता दिया कि जब तक यह दश दिनका न हो, उसके पहले ही इसको मार डालना चाहिये, यृा नहीं किया जायेगा तो दश दिनके अनन्तर भगवान्‌के हस्तका स्पर्श हो जानेसे, यह अवध्य होगा अर्थात् कोई भी इसको मार न सकेगा, वह कामका शत्रु है, जब सर्वके भागसे यह छूटेगा तब भगवान् इसको पुत्रपनसे ग्रहण करृगे, नारदके कहने पर जो

शम्बरने कृत्य किया, उसका वर्णन करते हैं :

तं शम्बरः कामरूपी हत्वा तोकमनिर्दशम्।
स विदित्वात्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद् गृहम्।।३।।

श्लोकार्थ : अपनी इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाला वह शम्बर उसको अपना शत्रु जानकर, दस दिनके भीतर ही, उस बालकका हरणकर, समुद्रमॄ फूककर घर गया।।३।।

व्याख्यार्थ : यथेच्छरूप धारी शम्बरने स्त्रीरूप धारण किया. उस रूपसे वह भीतर गया. शम्बर पुरुष है, इसलिए इसमॄ कामरूप है ही, अतः एक ही जातिवालेने जातिवालेका हरण किया, इसलिए रक्षक देवॄने भी इसकी रक्षा नहीं की, अतः दशाहसे पहले हर बालकका हरण किया, क्यॄ हरण किया? जिसके उत्तरमॄ कहा है कि शम्बरने इसको अपना शत्रु समझा, इसलिए हरण किया. नारदसे यह ज्ञान पाया था, यॄ कि यह बात ध्यानमॄ रखना, इसलिए हरणके बाद समुद्रमॄ उस बालकको फूककर, अपने घर गया, (उसे) मारा क्यॄ नहीं, समुद्रमॄ क्यॄ फूका? इसका समाधान करते हैं, बालकको नहीं मारना चाहिए ऐसी आज्ञा है, जिसका भोग, काल नहीं करता है, उसका ही सब आदर करते हैं, उसको प्राकृत मानकर समुद्रमॄ फूक दिया, मनमॄ यह विचार किया कि समुद्र स्वयं इसका भक्षण कर लेगा, इस विचारसे समुद्रमॄ फूकां।।३।।

आभासार्थ : पश्चात् समुद्रने तो शम्बरके विचारके विपरीत किया, अर्थात् उसको मत्स्यका ग्रास करवाकर उस(शम्बर)के ही घर भिजवाया, जिसका वर्णन 'तं निर्जगार' श्लोकमॄ करते हैं :

तं निर्जगार बलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह।
ततो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः।।४।।

श्लोकार्थ : समुद्रमॄ बलवान् मत्स्यने उसको ग्रस लिया, पश्चात् उस मत्स्यको भी दूसरेको भी दूसरे मत्स्यके साथ मच्छजीवियॄने बड़ी जालमॄ पकड़ लिया।।४।।

व्याख्यार्थ : वह था तो बालक, किन्तु उस अवस्थामॄ भी चैतन्य था, जिससे वह ग्रसनेमॄ रुकावट करेगा, इसी कारणसे कहा है कि वह निगलनेवाला मत्स्य साधारण मत्स्य न था, किन्तु बलवान् था, जिससे वह बालक होते हुए भी रुकावट करनेमॄ सफल न होवे, वह निगलनेवाला मत्स्य दूसरे जो निर्बल मत्स्य

उसके साथ ये उन समेत बड़े जालसे पकड़ा गया, इससे जालका भी महत्त्व और बलवत्व बताया. पकड़ने वाले मत्स्य जीवी थे, उनका यह उद्यम सहज है, अतः इस विषयमृ अधिक प्रयास निरूपण करने योग्य नहीं है।।४।।

आभासार्थ : पश्चात् धीवरृके अधिपति शम्बरको उन धीवरृने वह मत्स्य दिया, जिसका वर्णन 'तं शम्बराय' श्लोकमृ करते हैं :

तं शम्बराय कैवर्ता उपाजह्रुरुपायनम्।
सूदा महानसं नीत्वावद्यन् स्वधितिनाद्भुतम्।।५।।
दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्ये न्यवेदयन्।

श्लोकार्थ : धीवरृने बड़े मच्छको लाकर शम्बरको भेट किया, रसोईयृने रसोड़े घरमृ ले जाकर उस अनूठे मच्छको छुरीसे चीर डाला, जिसके उदरमृ बालकको देखा, वह बालक मायावतीको दे दिया।।५।।

व्याख्यार्थ : 'उपायन' पदका भावार्य है श्रेष्ठ भेंट, उसने भी बिना विचार किए ही रसोईयृको वा घातकृको दी. रसोईयृने उसको रसोई घरमृ ले जाकर मार डाला. पश्चात् उसके उदरमृ अद्भुत बालक देखा, जिसको मायावतीको दिया, वह मायावती रति नामवाली कामकी पत्नी थी. जब काम, शम्भुदेवके क्रोधाग्निसे जल गया, तब उसकी स्त्री रतिको शम्बर ले आया, जिसमृ माया प्रविष्ट हो गई, तब उसका नाम मायावती प्रसिद्ध हुआ, मायासे प्रतिक्षण मोहित उसने इसको रसोई घरकी अध्यक्षा बनाई, पश्चात् मायावतीने वह बालक देखा।।५।।

आभासार्थ : मायावती इस बालकको देख, भयपूर्वक चित्तमृ शंकित हुई, कि यह जो कोई भी है वह मुझे ग्रहण करेगा, अनन्तर नारदने आकर इस मायावतीको समझाया, जिसका वर्णन 'नारदोऽकथयत्' श्लोकमृ करते हैं :

नारदोऽकथयत्सर्वं तस्याः शङ्कितचेतसः।
बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदर निवेशनम्।।६।।

श्लोकार्थ : नारदने शंकित चित्तवाली मायावतीको यह बालक कौन है? किससे उत्पन्न हुआ? मत्स्यके उदरमृ कैसे प्रविष्ट हुआ? यह सर्व कथा सुना दी।।६।।

व्याख्यार्थ : यह बालक काम है, कृष्णसे उत्पन्न हुआ है, मेरी प्रेरणासे शम्बर द्वारा समुद्रमृ फूकनेसे इसने मत्स्यके उदरमृ प्रवेश किया. पश्चात् यहां आना तो स्पष्ट ही है, जो आपने देखा ही है, इस प्रकार सात्त्विक, राजस और तामस तीन

ही बात समझा दी, जो यह मत्स्यके उदरमृ प्रविष्ट नहीं होता तो आगे भगवान् जो स्त्री विवाह कामपूर्वक करते, वे अयोग्य दीखते।।६।।

आभासार्थ : पश्चात् जब मायावतीने उस बालकका स्वरूप जाना कि यह कामदेव मेरा पति हैं, तब उसका ग्रहण किया, यह बतानेकेलिए 'सा च' श्लोकमृ उस मायावातीके स्वरूपका वर्णन करते हैं :

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी।
पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती।।७।।

श्लोकार्थ : वह यशस्विनी रति नामवाली कामदेवकी स्त्री, दग्धदेहवाले अपने पतिके देहको उत्पत्तिकी प्रतीक्षा कर रही थी।।७।।

व्याख्यार्थ : यह कामदेव उसकी आकांक्षा करता हुआ स्थित था. अर्थात् रतिकी प्राप्ति कब और कहां होगी, ऐसा विचार एवं इच्छा कर रहा था. श्लोकमृ 'च 'पद अर्थ समुच्चयकेलिए दिया हुआ है. नारदने कहा कि, वह भी इसकी आकांक्षा वाली है. कामकी ही पत्नी है, न कि कामके कारण जिस किसी और की, उसकी 'रति' नामसे सर्वत्र प्रसिद्धि है, इस कारणसे लोकमृ भी इसकी निन्दा नहीं हो रही है, याृ कहा है जिस प्रकार पुरुषृमृ काम प्रतिष्ठित है, वैसे ही स्त्रियृमृ रति प्रतिठित है, यह प्रसिद्ध ही है और विशेष यह है कि इसने यश प्राप्त किया है, अतः यशसे सम्बन्ध होनेके कारण अपकीर्तिकी सम्भावना भी नहीं है, वैसी यशस्विनी होनेसे, तो इसके पतिके मर जाने पर वैधव्य धर्म पालन करना ही योग्य था न कि अन्यरूपमृ स्थित पतिको ग्रहण करना चाहिए, इस शंकाके मिटानेकेलिए कहते हैं कि 'पत्युर्निदग्ध देहस्य' पति मरा नहीं था, जो वह विधवा हुई हो, उसका केवल शरीर ही जला था, यदि यह मर गया होता तो जगत्की उत्पत्ति हो न हावे, किन्तु देह ही दग्ध हुई थी, जिससे देहकी उत्पत्तिकी ही प्रतिक्षा कर रही थी।।७।।

आभासार्थ : वहां उसके आनेमृ क्या कारण है, वह 'निरूपिता' श्लोकमृ बताते हैं :

निरूपिता शम्बरेण सा सूपौदनसाधने।
कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं सदार्भके।।८।।

श्लोकार्थ : उस 'मायावती'को शम्बरने दाल-भात बनानेकेलिए रसोई घरमृ नियुक्त कर रखी थी, वहां जो बालक मिला, वह कामदेव था, अतः उस

बालकसे प्रेम करने लगी।।८।।

व्याख्यार्थ :दाल भातके पकानेमॄ शम्बरने इसको नियुक्त किया. कारण कि रसोईयॄके छल कपटको वह जानता था. उनके छल-कपट, प्राणॄका हरण करने वाले होते हैं. उस छल-कपटसे प्राणॄकी रक्षा हो, तदर्थ इसको रसोई घरमॄ रखा था, इससे भक्ष्य-भोज्य आदि सम्पत्ति तो इसके पास ही है. लोक तो बालकको इसका पुत्र ही समझते हैं, परन्तु वह तो इसका वचनसे पालन नहीं करती थी, किन्तु यह कामदेव मेरा पति है, यों जानकर उसका केवल पालन नहीं किन्तु साथमॄ स्नेह भी करती थी।।८।।

आभासार्थ : पश्चात् थोड़े ही कालमॄ अर्थात् सातवॄ वर्षमॄ ही वह युवा हो गया, कारण कि उसका एक तो मत्स्यके उदरसे सम्बन्ध हुआ था और दूसरा भगवान्से सम्बन्ध हुआ था, इन दोनॄ कारणॄसे शीघ्र यौवन आ गया, जिसका वर्णन 'नातिदीर्घेण' श्लोकमॄ करते हैं :

नातिदीर्घेण कालेन स काष्णीं रूढयौवनः।
जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम्।।९।।

श्लोकार्थ : थोड़े ही कालमॄ वह प्रद्युम्न तरुण हो गया. जो स्त्रियां देखती थी उनके मनका हरण हो जाता था।।९।।

व्याख्यार्थ: सोलह वर्षमॄ यौवन प्रकट होता है, किसीको बारह वर्षमॄ और किसीकी आठवॄ वर्षमॄ ही प्रकट हो जाती है. यह बड़ा लम्बा समय नहीं है, क्यॄकि कृष्णका पुत्र है, अतः जैसा पति वैसा पुत्र, इस कारणसे शीघ्र सातवॄ वर्षमॄ जवान हो गया, उस समय ही देखने वाली स्त्रियॄमॄ कामचेष्टा उत्पन्न हो जाती थी. जब युवतियॄकी इस प्रकारकी मनोवृत्ति होती है, तब समझना चाहिए कि इसमॄ पूर्ण यौवन प्रकट हो गया है, नहीं तो वह यौवन अलौकिक ही होता है. विशेष क्या कहा जाय, केवल मानव स्त्रियॄके मनका हरण नहीं होता, किन्तु देवस्त्रियॄमॄ भी देखनेसे इसी प्रकार चेष्टा हो जाती है।।९।।

सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलम्बबाहुं नरलोकसुन्दरम्।
सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्ग सौरतैः।।१०।।

श्लोकार्थ : कमलदलके सदृश नेत्रवाले, लम्बी बाहुवाले, मनुष्यलोकमॄ सुन्दर उस अपने पतिको वह रतिरूपा मायावती लज्जायुक्त एवं मुस्कान सहित ऊंची की हुई भृकुटीसे ईक्षण करने लगी, तथा प्रेमपूर्वक सुरत सम्बन्धी भावॄसे

सेवन करने लगी।।१०।।

व्याख्यार्थ : अनन्तर बहुत समयसे पति प्राप्तिकी अभिलाषावाली रतिरूपा मायावतीको बालरूपमॄ पति मिला. यौवन आनेमॄ भी विलम्ब हुआ, जब यौवन आ गया तब पति होनेसे उसकी सेवा करने लगी. आगे जो कार्य होने वाला है, उसके लिए यह निरूपण किया जाता है कि वह पतिके साथ, जिसके कमलदलके समान नेत्र थे, ऐसे नेत्रॉसे यह जताते हैं कि कामको जगानेवाले तथा कामरूप हैं. लम्बी बाहुवाला है, इससे यह बताया कि रतिके संगके सिवाय स्थिति असमर्थ है, तथा लम्बी भुजाओंसे यह भाव बताया है कि सर्व अंगोंमॄ सुख देनेकेलिए आलिंगनका सामर्थ्य है. मनुष्यलोकमॄ सुन्दर नर है, जिसका भाव बताते हैं कि वैसे सुन्दरमॄ ही मोह उत्पन्न होता है, अतः स्वभावके मिलनेकेलिए इसमॄ मोह योग्य ही है. स्त्रियोंमॄ जो प्रथम लज्जाका प्रदर्शन होता है. वह नवीन संगमकी भावनाका द्योतक है, अतः मायावतीने पहले लज्जा की, इसके बाद जब नवसंगममॄ रस उत्पन्न होता है, तब हास होता है. इन दोनोंसे ऊपर उठी हुई भॄह मिलनकी इच्छाका एवं पातिव्रत्यका कटाक्षों द्वारा सूचन करती हुई, प्रीतिसे पास प्राप्त हो जाती है. यह पास आना देवताओंकी आराधनाके समान नहीं है, किन्तु सुरत भावोंसे परस्पर मिलन है, क्योंकि यह रति है, प्रद्युम्न क्रियाशक्तिसे ही प्रकट हुआ है, इससे उसमॄ ज्ञानका अभाव दीखता है जिससे ही प्रद्युम्नकी भगवान्‌से विलक्षणता(भेद) प्रकट होती है, जो ज्ञानशक्ति हो तो प्रद्युम्नकी भगवान्‌से समानता हो जावे।।१०।।

तामाह भगवान् कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा।
मातृभावम् अतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा।।११।।

श्लोकार्थ : भगवान् कृष्णका पुत्र प्रद्युम्न, माताको कहने लगा कि हे माता! आपकी बुद्धि विपरीत हो गई है, जो मातृभावको छोड़ कामिनीकी तरह कर रही हो।।११।।

व्याख्यार्थ : भगवान् होनेसे धर्ममॄ तत्पर है, क्योंकि कृष्णकी सन्तति है, और मर्यादाकेलिए प्रकट हुआ है. सदानन्दका अंकुर भी, सदानन्द ही होता है, अतः उसको किसीकी भी अपेक्षा नहीं, जिससे यॄ कहा, कि हे माता! इस सम्बोधन देनेसे अज्ञान प्रकट किया है, किन्तु व्यवहारमॄ यॄ होनेसे, इससे काम धर्मका सहज विरोधी है, यह निरूपण किया. यदि व्यवहारसे माता शब्द न कहा

हुआ होता तो, अनन्तर इससे संग न करे, किन्तु किया है, अतः यह कहना व्यवहारमात्र है, यह भाषा लौकिकी है, जिससे इसमृ पारमार्थिक कोई विरोध नहीं है. माता तो अपने और अन्यके सम्मानकी रक्षा करती है. फैले हुए अङ्गृमृ सम्मान नहीं रहता है, अतः सर्व प्राणियृकी ही माता सम्यक् रीतिसे रक्षा करने योग्य है, अतः मातृभावका त्यागकर गुप्त कामको दूरकर, जैसे कामिनी अपनी कामना प्रकट दिखाती है, उसी तरह तूं कर रही है।।११।।

आभासार्थ : मायावतीने समझ लिया कि अपने स्वरूपका ज्ञान इसको तिरोहित हो गया है, अतः इसने जो कहा है, वह अज्ञानसे कहा है, इसलिए इसका कहा हुआ न कहनेके समान है, अतः इसको इसके स्वरूपका ज्ञान कराना चाहिए, इस विचारसे 'रति' इसको 'भवान्नारायणसुतः' श्लोकसे स्वरूपज्ञान कराती है :

रतिरुवाच

भवान्नारायरणसुतः शम्बरेण हृतो गृहात् ।
अहं ते दयिता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो।।१२।।

श्लोकार्थ : रति कहने लगी कि आप श्रीकृष्णके पुत्र हैं.शम्बरासुरने सूतिका गृहसे आपका हरण किया है, मैं आपकी स्त्री 'रति' हूं और आप कामदेव हैं।।१२।।

व्याख्यार्थ : वह शम्बरको पिता और मायावतीको माता मानता है, यृ नहीं है, इसका ज्ञान करानेकेलिए मायावती बालकको कहती है कि 'आप नारायणके पुत्र हैं', इसलिए शम्बर आपके पिता नहीं है और मैं माता नहीं हूं. यृ कहकर आप कौन हैं, वह कहती है कि आप नारायणके पुत्र हैं. इस पर यदि बालक पूछे कि नारायणका पुत्र हूं, तो यहां कैसे आया ? इसलिए उसके पूछनेसे पहले ही, बतला देती है, कि शम्बरने सूतिकागृहसे आपका हरण किया है. यदि बालक कह दे, कि साधारण धात्रीको माताकी तरह पाला एवं समझा जाता है, इसलिए प्रथम ही बता देती है, कि मैं धात्रीवद् नहीं हूं, किन्तु आपकी दयिता (स्त्री) एवं पत्नी हूं. दयिता होनेसे लौकिक रीतिके अनुसार भी मैं त्यागके योग्य नहीं हूं और पत्नी होनेसे, वेदशास्त्र रीत्यनुसार भी आप मेरा त्याग नहीं कर सकते हैं. यृ माना जाय तो भी लोकमृ इस बातका पता नहीं है. यदि यृ कहे तो उत्तर देती है, कि मैं रति, आकी स्त्री हूं और आप कामदेव मेरे पति हो।।१२।।

आभासार्थ : मैं काम हूं तो यहां शत्रुगृहमृ मेरा निवास कैसे हुआ ? इसका उत्तर 'एष त्वा' श्लोकमृ देती हैं :

एष त्वाऽनिर्दशं सिन्धावाक्षिपच्छम्बरोऽसुरः ।
मत्स्योऽग्रसीत्तदुदारादिह प्राप्तो भवान्प्रभो।।१३।।

श्लोकार्थ : इस शम्बासुरने आपके जन्मको दस दिन भी न हुए, उस समय आपको समुद्रमृ फृक दिया. वहां आपको मत्स्य निगल गया, उसके पेटमृसे निकलनेके अनन्तर आप यहां प्राप्त हुए हैं।।१३।।

व्याख्यार्थ : शम्बर असुर है, इस कारणसे यॄ किया, अर्थात् शिशु अवस्थामृ आपको समुद्रमृ फृक दिया. मत्स्य अपनी ज्ञातिका घात करतृ हैं, उसके उदरसे यहां प्राप्त हुए हैं, इस प्रकार इसने, उसको भी मारा, यह निरूपण किया है।।१३।।

आभासार्थ : शेष शम्बर बचा है, अतः 'तमिमं' श्लोकसे कहती हैं कि इसको मारो :

तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ।
मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः।।१४।।

श्लोकार्थ : अपने इस दुर्धर्ष और अजेय शत्रुको मारो, यह सैंकड़ॄ मायाके प्रकार जानता है, अतः इसको मोहन आदि मायाआॄसे ही मारो।।१४।।

व्याख्यार्थ : प्रद्युम्नको सावधान करनेकेलिए उसके गुणॄका वर्णन करती हैं. 'दुधर्ष' है, इसलिए विषदान अदि लौकिक प्रकारसे यह मरेगा नहीं, दुर्जय है, इसलिए क्षत्रिय धर्मयुद्धसे भी मरेगा नहीं. जो उपेक्षा की जाय, वह करनी भी योग्य नहीं है, क्यॄकि अपना शत्रु है, जो अलौकिक युद्धसे मारा जाय, इस सिद्धान्तका भी निवारण करती हैं, क्यॄकि सैंकड़ो प्रकारकी माया जाननेवाला है, तो जो अवधा है, वैसेको कैसे मारा जाय ? इसका उपाय कहिये, आप इसको अपनी मोहन आदि मायाआॄसे मारो. पहले इसको मोहितकर, अर्थात् भ्रममृ डाल दॄ, इसके बाद उसकी मायाके प्रतिद्वन्द्वी मायाआॄसे इसकी मायाको हटा दें. असुरॄका भगवान् माया है, इसी कारणसे इस प्रकार जानकार ही सर्व प्रकार उपासना तुल्य होनेसे, उपासनाकर अर्थात् आप भी मायाका आश्रय लेकर इसको मार, अनेक प्रकारसे उपासना करने वाले उपासककी विशेषता होती है, अतः मोहन आदि मायाआॄसे उसकी मायाको दूर करना योग्य ही है।।१४।।

आभासार्थ : जैसे मुझे अज्ञान हैं, वैसे ही उसको भी अज्ञान है, ज्ञान होने पर ही अपकारीपन समझा जाता है. इसलिए इसको मारना नहीं चाहिए? यदि आप यॄ कहो तो इसका परिणाम जो होगा, वह 'परिशोचति' श्लोकमॄ बताती हैं :

परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ।
पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा।।१५।।
प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ।
मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम्।।१६।।

श्लोकार्थ : टिटहरिके बच्चे चले जावॄ, तो जैसे वह शोक करती है, वैसे तेरी माता भी तुम्हारे जानेसे शोक कर रही है, जैसे बछडा बिना गौ व्याकुल होती है, वैसे तेरी दीन माता भी पुत्र स्नेहके कारण आकुल हो रही है, यॄ कहकर महात्मा प्रद्युम्नको मायावतीसे सर्व मायाओंको नाश करनेवाली महामाया प्रदान की।।१५ – १६।।

व्याख्यार्थ: निश्चयसे माता दयाका पात्र है, अतः उसके दुःखको मिटाने केलिए इसको मारना ही चाहिये, यह माव है. यहां 'माता' शब्द सामान्यरूपसे कहा है, अतः तुम्हारी माताका रुक्मिणीपन वा वैदर्भीपन भी शोकको मिटा नहीं सकता है. यद्यपि रुक्मीभ्राताके सर्व संबंधसे सम्पत्ति रुक्मिणीकी है, किन्तु वह सम्पत्ति भी इस शोकको निवृत्त नहीं कर सकेगी, तथा वैदर्भीपनमॄ यह भक्तिप्रधान है, जिससे शोककी सम्भावना नहीं होनी चाहिये, किन्तु यह पुत्रशोक ऐसा है, जिसको यह भक्ति भी मेट नही सकती है, कारण कि कोई इसका पुत्र ले गया है, जिसका शोक है अतः उसका विवेक चला गया है, जिससे टिटिहरीकी तरह शोक करती है. रात्रिके समय शोक करती है, इस कारण उसको नींद भी नहीं आती है. प्रजा चली जाय, किन्तु फिर लौट आजायेगी, तो ऐसा शोक न हो किन्तु तुम्हारे लौट आनेकी भी उसको आशा नहीं है, फिर प्रजा कन्या नहीं है, किन्तु पुत्ररूप प्रजा है. वह केवल अन्तःकरणमॄ शोक उत्पन्न नहीं करती है, लेकिन समस्त देह–इन्द्रिय आदिकी सर्व क्रियाशक्ति नष्ट कर देती है, अतः तुम्हारी माता पुत्रस्नेहसे अत्यन्त व्याकुल हो रही है. पुत्रका स्नेह असीम व्याकुलता उत्पन्न करता है, यह लोकमॄ प्रसिद्ध ही है. विरोधके कारण पिता भ्रातासे त्यागी हुई है. उनके विरोधके कारण माताके पक्षवाले भी सहायता नहीं करते हैं अर्थात् आश्वासन भी नहीं देते हैं, जिससे वह तुम्हारी माता दीन है, ऐसी अवस्थामॄ पुत्र ही उसका सहारा होता

है, अतः उसकेलिए भी तुमको इसको मारनेकेलिए जाना चाहिये, इस प्रकार कहनेका तात्पर्य है. मनकी प्रसन्नताके कारण विवाह आदि न होने पर भी, पुत्र उत्पन्न होता है तो पिता आदि मान देते हैं. यदि उत्पन्न हुआ पुत्र भी गुम हो जावे तो माता चिन्तासे आतुर भी होगी, अतः तेरी माता भी आतुर है. आतुरकी दशा वह होती है, जैसे ज्वरवालेकी होती है. विवेकसे उसकी आतुरताका समाधान हो जायेगा. यदि या कहो तो, या भी समाधान न होगा, जिसमा दृष्टान्त देकर उसको सिद्ध करती हैं, 'गौरिव', बछड़ेके जाने पर गौ आतुर हो जाती है, क्याकि गोकी ममताका स्थान केवल जैसे वत्स ही है, दूसराकी ममता तो बांटी हुई होती है किन्तु गोकी बांटी हुई नहीं होती है, इसलिए गोका दृष्टान्त दिया है. तुम्हारी माताने भी सबसे ममताको निकालकर, सम्पूर्ण ममता तुझमा ही स्थापित की है. इसलिए गौके समान होनेसे उसकी भांति ही आतुर(व्याकुल) है. मायावतीने इतना कहकर सोचा कि केवल यों समझानेसे कार्यकी सिद्धि नहीं होगी, अतः यों कहकर, विद्या भी दी. स्त्रीकी दी हुई विद्याकी सिद्धि तब होती है, जब देनेका समय होता है. मायावतीने सोचा कि अब इसकी इस विद्याकी आवश्यकता है, इस विद्याके सिवाय शत्रु मरेगा नहीं, अतः देनेका समय समझ विद्या दी. सर्व सुहृदाम स्त्री उत्तम है, और पतिकी अर्धांगिनी है, अतः उसको दी हुई विद्या दानसमयम देने पर सिद्धि होती है, लोकम भी यह प्रसिद्ध है, कि स्त्रियाका कहना शीघ्र ही हृदयम बैठ जाता है, प्रद्युम्न भी, दिया ग्रहण करनेके योग्य है, नामसे ही प्रसिद्ध होनेसे, विद्या फलीभूत होगी, इसलिए 'महात्मनः' विशेषण दिया है. रतिका नाम 'मायावती' इसलिए ही हुआ कि वह मायाविद्या इसम आ गई है, जैसे दैत्याके पास साधारणी माया है, वैसे यह भी होगी. इस संशयको मिटानेकेलिए कहा है कि यह 'महामाया' है. यह 'महामाया' इसलिये कही जाती है कि सर्व भगवदंशाको मोहित करनेकेलिए प्रवृत्त हुई है, जब दैत्याकी माया भगवान् ही है, तब यह महामाया कैसे? इसके उत्तरम कहा है कि 'सर्वमाया-विनाशिनीम्', समस्त मायाओंको नाश करने वाली है, अतः 'महामाया' है. जब 'स्वधा' कहकर जो पितराको अन्न आदि दिया जाता है तब जैसे भगवान् पितृरुप होकर उस पुत्रकी पालना करते हैं, नहीं कि प्रकट होकर तावता पुत्राको मोक्ष देते हैं, वा संघातम जो आत्मबुद्धि है उसका नाश करते हैं, इसी प्रकार अन्यको मोहित करनेकेलिए भगवान् मायारूप बनकर भक्तकी भी पालना करते हैं, नहीं

कि उनको मोक्ष देते हैं, अतः दैत्यामृ विद्यमान भी जीवमृ स्थित भगवदंशरुप चैतन्य तिरोहित है, जिससे वे केवल अपने जीवनका ही कार्य करते हैं. कर्म-ज्ञान आदि कुछ नहीं करते हैं, इसी कारणसे जीवत्व तुल्य होते हुए भी दैत्याकी अधर्ममृ रुचि होती है. दैवी सृष्टिमृ भगवदंशके तिरोभूत न होनेसे समस्त कार्योंकी सिद्धि होती है. इसी तरह शम्बरको मायामृ विद्यमान भी भगवत्व तिरोहित होनेसे पालनेके सिवाय अन्य मायया्का नाश करनेमृ असमर्थ है, अतः मनकी मायामृ भगवान्के आविर्भूत होनेसे समस्त मायाआ्का नाश करनेका सामर्थ्य है, जिससे उसके सर्व कार्योंकी सिद्धि होती है।।१५-१६।।

आभासार्थ : पश्चात् जिसको कर्म करनेमृ किसी प्रकार श्रम नहीं होता है, ऐसे प्रद्युम्नने विद्या प्राप्तकर, विचार करके निश्चय किया कि इसको जताकर ही विद्यासे मरवाऊंगा, इसलिए विद्याकी प्रबलता कहनेके या बतानेकेलिए 'स च शम्बरं' श्लोकमृ उसको युद्धकेलिए आह्वान करता है :

स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत्।
अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्संजनयन्कलिम्।।१७।।

श्लोकार्थ : वह प्रद्युम्न, शम्बरके पास जाकर, जिन आक्षेपा्को कोई भी सहन न कर सके, ऐसे वचन कहकर झगड़ेको पैदा करता हुआ, उसको लड़नेके लिए बुलाया।।१७।।

व्याख्यार्थ : 'च' पद श्लोकमृ दिया है, जिसका आशय है कि उसमृ मायारूप भगवान् प्रविष्ट हुए, अथवा 'च' पूर्व क्रिया समुच्चयकेलिए दिया है, या् होने पर ही विद्याके ग्रहणका फल, उसको मारना ही होगा. नजदीक गया, जिससे वह शूरवीर एवं दैत्य है, उसके पास जाना शङ्कावाला है, इस भ्रमका भी नजदीक जानेसे निवारण कर दिया है कि हम इससे किसी प्रकार भी डरते नहीं है. यदि शम्बर बालक समझके वचना् पर ध्यान न देवें, तो इसलिये कहते हैं कि लोकमृ प्रसिद्ध पुरुष थोड़े अपमानसूचक शब्दा्को भी सहन नहीं कर सकते हैं, उसमृ भी दूसरेके कहे हुए नहीं कहता है, किन्तु स्वयं कहता है. वे भी ऐसे अपमानसूचक शब्द कहने लगा, जो केवल सहन करने योग्य नहीं थे, किन्तु झगड़ा उत्पन्न करनेवाले थे. अचानक स्नेहके कारण पुत्र आदि भी या् कह देते हैं, इसकी व्यावृत्तिकेलिये कहा है कि पुत्रादिका्के वचन स्नेहसे कहे जानेसे झगड़ेको पैदा नहीं करते हैं, इसके अपशब्द कलहको उत्पन्न करने वाले हैं. मैं प्रद्युम्न

कामरूप हूं, तू मेरा शत्रु है, इसलिये तुझे मारूंगा, इत्यादि अपमानसूचक वाक्य कहने लगा।।१७।।

आभासार्थ : अनन्तर युद्धकेलिए प्रवृत्त हुआ जिसका वर्णन 'सोऽधिक्षिप्तो' श्लोकमृ कहा जाता है :

सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पादाहत इवोरगः।
निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात् ताम्रलोचनः।।१८।।

श्लोकार्थ : दुर्वचनृसे तिरस्कृत वह शम्बरासुर जैसे पैरकी ठोकर लगानेसे सर्प फुंकारता है, वैसे ही क्रोधसे लाल लोचन, गदा हाथमृ लेकर बाहर निकला।।१८।।

व्याख्यार्थ : जैसे उस बाल प्रद्युम्नमृ शम्बरका स्नेह था, वैसे ही द्वेष भी हुआ, इसलिये युद्धके वास्ते कैसे प्रवृत्ति हुई? जिसके उत्तरमृ कहा जाता है, कि निन्दाकी दुष्टता कहते हैं. दुर्वचनृसे यदि पिताका अपमान किया जावे, तो पिता भी पुत्रको मारता है. यह पिता तो कृत्रिम है, वह मारनेकेलिये क्यृ न प्रवृत्त होवे? शम्बरको यह ज्ञात हो गया कि यह मृत्यु है, इसलिये विशेषरूपसे आया है, तब भयसे क्यृ न निवृत्त हुआ? इस पर कहा कि 'पादाहत इव उरगः', जैसे पादसे आहत सर्प, विशेष क्रोधमें आकर, फुत्कार करता है, मरना कबुल करता है, किन्तु यहांसे निवृत्त नहीं होता है, क्यृकि उसको क्रोधकी ही रक्षा करनी है, न कि दूसरृ की. इसलिये एकके साथ एकको ही युद्ध करना चाहिये, इस कारणसे हाथमृ गदा लेकर अकेला ही बाहर निकला, न कवच धारण किया, तथा न अपने साथ किसी सहायकको लिया था. बाहर आनेमृ कारण, दुर्वचनृसे क्रोध आ गया था, जिससे उसके नेत्र लाल हो रहे थे, क्रोधके वश हो जानेसे कुछ भी जान न सका. दृष्टि लाल हो जानेसे देखकर भी जान नहीं सका ।।१८।।

आभासार्थ : पश्चात् स्वयं शम्बर ही प्रथम मारनेकेलिए प्रवृत्त हुआ, जिसका वर्णन 'गदामाविध्य' श्लोकमृ कहते हैं :

गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने।
प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिर्घोषनिष्ठुरम्।।१९।।

श्लोकार्थ : उस दैत्यने बहुत शीघ्रतासे गदाको फिराकर महात्मा प्रद्युम्नके ऊपर फैंककर, वज्रके गिरनेके समय जो भारी घोष होता है, वैसी ध्वनि की।।१९।।

व्याख्यार्थ : क्रोधवश होनेसे भारी गदाको ऊपर उठाकर अथवा घुमाकर, बहुत शीघ्र जब तक वह सावधान न हो जावे, उसके ऊपर उसका प्रहार किया. इस तरह अपराध करनेसे भी उसका पराजय ही सूचित हुआ. प्रद्युम्नको 'महात्मा'का विशेषण देकर यह बताया कि वह महती आत्मा है, इसलिये पलायन भी न करेगा. उसने(शम्बरने) समझा कि प्रहारमात्रसे ही मैंने इसको मारा डाला, इसलिये जोरसे ध्वनी करने लगा, वैसे नादसे मूर्च्छितका बहुत शीघ्र मरण हो जाता है, यह जतानेके लिये, उस नादके स्वरूपकी दृष्टान्तसे बखान करते हैं कि वज्र गिरनेके समय जैसा भारी घोष होता है, उससे भी यह नाद कठोर है ।।१९।।

आभासार्थ : प्रद्युम्नके पराक्रमसे ऐसा भी शम्बरका पराक्रम व्यर्थ गया, जिसका वर्णन 'तामापतन्तीं' श्लोकमृ करते हैं :

तामापतन्तीं भगवान् प्रद्युम्नो गदया गदाम्।
अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नदन्।।२०।।

श्लोकार्थ : भगवान् प्रद्युम्नने उस आती हुई गदाको अपनी गदासे दूरकर, क्रोधित हो, नाद करता हुआ अपनी गदासे शत्रुपर प्रहार किया।।२०।।

व्यायार्थ : प्रद्युम्नने अपनी गदासे उस गदाको दूरसे ही तोड़कर, अनन्तर क्रोधित होकर, उसकी भांति आपने भी शत्रुको मारना ही चाहिये, नहीं तो वह मार डालेगा, याृ नाद करता हुआ, अपनी गदाका शत्रुपर प्रहार किया. 'भगवान्' विशेषण इसके सामर्थ्यका कारण है, अथवा भगवान्के कार्य होनेसे वा प्रद्युम्नमृ भगवान्का प्रवेश है, इसलिये 'भगवान्' कहा है।।२०।।

आभासार्थ : 'स च मायां' श्लोकमृ कहते हैं कि शम्बर लौकिक प्रकार अपनी जीत न होगी, याृ समझ, भगवद्रूप मायासे युद्धकर, जीतूंगा इस विचारसे युद्धमें प्रवृत्त हुआ :

स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम्।
मुमुचेऽस्त्रमयं वर्ष काष्र्णौ वैहायसोऽसुरः।।२१।।

श्लोकार्थ : वह शम्बर मय दैत्यकी सिखाई हुई दैत्याृकी मायाका आश्रय लेकर आकाशमृ स्थित हो, प्रद्युम्न पर अस्त्राृकी वर्षा करने लगा।।२१।।

व्याख्यार्थ : 'दैतेयीं' पदसे बताया कि यह माया दैत्याृकेलिये भगवान् है, अच्छे प्रकार आश्रयका भाव है कि मनपूर्वक भक्तिसे उसका सहारा लिया है, यह

विद्या, मयकी सिद्ध की हुई है, जिसके उपदेशकी,की हुई है, अतः सफल होगी, यह जाननेकेलिये 'मयदर्शिताम्' पद दिया है. अनन्तर अदृश्य हो, प्रकाशमृ स्थित होते हुए प्रद्युम्न पर आग्नेय अदि अस्त्र समूहकी वर्षा करने लगा. आकाशमृ स्थित कहनेसे यह बताया कि असुराकी अन्तरिक्षमृ भी गति हो सकती है।।२१।।

आभासार्थ : 'बाध्यमानो' श्लोकमृ बताते हैं कि दैत्याकेलिए माया भगवान् है, अतः मायासे बताये गये अस्त्राृसे रुक्मिणीके पुत्रको कुछ पीड़ा हुई :

बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः।
सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम्।।२२।।

श्लोकार्थ : अस्त्राकी वर्षासे पीड़ित महारथी रुक्मिणीके पुत्रने सत्त्वमय सर्व माया की नाश करनेवाली महाविद्याका प्रयोग किया।।२२।।

व्याख्यार्थ : प्रद्युम्नको 'कार्ष्णेय' न कहकर, 'रौक्मिणेय' कहा, जिसका आशय उनकी यहां हीनता दिखानी है. यदि कृष्णका पुत्र कहे तो कृष्णके पुत्रको कोई बाधा नहीं होती, किन्तु बाधा इसलिये हुई कि रुक्मिणीसे भी पुत्रत्व सम्बन्ध होनेसे इतनी हीनता है, जो कुछ बाधा हुई, बाधा होने पर भी महारथी तथा क्षत्रिय जातिपनसे सामर्थ्य प्राप्त किया था, जिससे सत्त्वरूप, सकल मायाको दबानेकी इच्छावाली विद्यारूप माया जिसका मायावतीने साक्षात् उपदेश किया है, अतः मंत्र आदि पढ़नेके सिवाय वह माया साक्षात् स्वयं आ गई है, उसका आश्रयकर, स्वयं प्रद्युम्न भी अस्त्राकी वर्षा करने लगा।।२२।।

आभासार्थ : 'ततो गौह्यक' श्लोकमृ कहते हैं कि प्रद्युम्नकी इस प्रकार वर्षा करनेके अनन्तर उसने भी अनेक प्रकार मायाएं दिखाई :

ततो गौह्यकगान्धर्वपैशाचोरगराक्षसीः।
प्रायुक्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः।।२३।।

श्लोकार्थ : पश्चात् दैत्यने गुह्यकाकी, गन्धर्वोंकी, पिशाचाकी, उरगाकी, राक्षसाकी, इस प्रकार अनेक मायाआका प्रयोग किया।।२३।।

व्याख्यार्थ : ये पांच ही अंग मायाएं हैं. इससे जाना जाता है कि इसने अंग सहित मायारूप भगवान्की आराधना की है. गन्धर्व भी दैत्याके पक्षपाती है. उनके अवान्तर भेद भी हैं, इसलिये कहा है कि सैंकड़ो प्रकारसे प्रयोग किये. उन सकलाका भी प्रद्युम्नने एक बार ही निराकरण कर दिया. वह कृष्णके पुत्र है, पहले ही माया प्राप्त कर ली है, जिससे उसकी समस्त मायाओको दबा दिया,

अथवा नष्ट कर दिया ।।२३।।

आभासार्थ : पश्चात् प्रद्युम्नने देखा कि दो बार किया हुआ उद्यम सफल न हुआ अतः उसको ही मारने लगा, जिसका वर्णन 'निशातम्' श्लोकमृ कहते हैं:

निशातम् असिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम्।

शम्बरस्य शिरः कायात्ताम्रश्मश्रूवोजसाहरत्।।२४।।

श्लोकार्थ : फिर तीक्ष्ण खड्ग लेकर किरीट और कुण्डल सहित उसके सिरको लालश्मश्रुवालेने पराक्रमपूर्वक धड़से अलग कर दिया।।२४।।

व्याख्यार्थ : जैसे बाजको देखकर, पक्षी छिप जाते हैं, वैसे ही प्रद्युम्नको देखकर, शम्बर छिप गया, जिससे जाना गया कि अब इसकी प्रभा नष्ट हो गई है, वैसे उसको अपनी इच्छासे पराक्रमपूर्वक खड्गको लेकर लालश्मश्रुवाले प्रद्युम्नने किरीट तथा कुण्डल सहित नीचे और ऊपर चारृ तरफ शोभायुक्त एवं दुर्धर्ष सिरको धड़से अलग कर दिया।।२४।।

आभासार्थ : यह कर्म निन्दनीय नही है, यह जतानेकेलिए देवृका सम्मान करनेका वर्णन 'आकीर्यमाणो' श्लोकमृ करते हैं :

आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः।

भार्ययाम्बरचारिण्या पुरं नीतो विहायसा।।२५।।

श्लोकार्थ : तब देवताओृने स्तुति की और चारृ तरफ फूल बरसाये, अनन्तर आकाशमृ भी जिसकी गति है, ऐसी मायावती आकाशमार्गसे प्रद्युम्नको द्वारका ले गई और वहां उसने अन्तःपुरमृ पहुंचाया।।२५।।

व्याख्यार्थ : 'आकीरणं' शब्दसे यह बताया है कि चारृ तरफ फूलृकी वृष्टि की, कायिक और वाचनिक कहे, अब सर्वथा देवृकी चारृ तरफ पुष्पवृष्टिसे आदर करनेसे मानसिक आदर भी कहा, अनन्तर आकाशमृ फिर सकनेवाली मायावती, आकाशमार्गसे प्रद्युम्नको द्वारका ले गई. पहले इसका भगवद् गृहमृ पुत्रत्व सिद्ध हुआ था, पश्चात् दूसरे स्थान पर सिद्ध हो जाय, इसलिये उसको अन्तःपुरमृ ले गई. 'पुर' शब्दसे अन्तःपुर भी कहा जाता है. प्रद्युम्नको ज्ञान कराने केलिये ही श्रीकृष्णके अन्तःपुरमृ ले गई।।२५।।

अन्तःपुरवरं राजन्ललनाशतसंकुलम्।

विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः।।२६।।

श्लोकार्थ : हे राजन्! वह श्रीकृष्णका श्रेष्ठ अन्तःपुर अनेक स्त्रियृसे

व्याप्त था, जैसे बिजलीके साथ बादल आते हैं, वैसे इसने भी पत्नीके साथ आकाशमार्गसे अन्तःपुरमॄ प्रवेश किया।।२६।।

व्याख्यार्थ : अन्तःपुरमॄ उत्तम, अनेक स्त्रियॄसे भरा हुआ, जैसे बिजलीके साथ बादल आते हैं, वैसे आए. यॄ कहकर, शोभा तथा दोषॄका अभाव दिखाया. आकाशमार्ग पर आने पर किसी प्रकारका वहां स्थितॄको विचार अथवा मनमॄ शंका भी न हुई कारण कि आधिदैविक तो इस रहस्यको जानते हैं, इसलिये विरोध भी न किया, पत्नीके साथ प्रवेश करनेसे लौकिक दोष भी नहीं है।।।२६।।

आभासार्थ : 'तं दृष्ट्वा' इस श्लोकसे आठ श्लोकॄमॄ अन्तःपुरमॄ प्रविष्ट हुए प्रद्युम्नके स्वरूपको देखकर, जिसका जो कुछ विचार हुआ उसका वर्णन करते हैं:

तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम्।
प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम्।।२७।।
अलंकृतमुखाम्भोजं नीलवक्त्रालकादिभिः।
कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह।।२८।।
अवधार्य शनैरीषद् वैलक्षण्येन योषितः।
उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं शुचिस्मिताः।।२९।।

श्लोकार्थ : मेघके समान श्यामवर्ण, पीला पीताम्बर बांधे, लम्बी भुजावाला, अरुण सम नेत्रवाला, सुन्दर मन्द हास्य युक्त, सुन्दर मुखारविन्द वाला, नील और वक्र आदिसे अलंकृत मुखकमलवाला, उसका स्वरूप देख, उसको कृष्ण समझने लगी, जिससे कृष्णकी स्त्रियां जहां-तहां छिपने लगीं. धीरे-धीरे फिर उसके स्वरूपकी श्रीकृष्णसे विलक्षणता पहचानकर, प्रसन्न हुई कृष्णकी स्त्रियां, पवित्र हासवाली होकर स्त्रीरत्न सहित आए हुए प्रद्युम्नके पास आने लगीं।।२७-२९।।

व्याख्यार्थ : सकल स्त्रियॄका विचार तीन श्लोकॄसे और रुक्मिणीका पांच श्लोकॄसे कहते हैं. साधारण स्त्रियॄके विचारमॄ हेतुको कहनेकेलिये प्रथम मोहको कहते हैं. अन्तःपुरमॄ जितने जन है, बहुत कर स्त्रियां, वे उस प्रद्युम्नको भगवान्के समान देखकर, कृष्ण मानने लगी, जिससे पहले लज्जित होकर छिपने लगी, क्यॄकि वे उस समय स्वछन्द क्रीड़ा कर रही थीं, जिस क्रीडाको अचानक

आकर भगवान् कृष्णने देख लिया, इसलिये लज्जित हो गईं, वह भगवान् जैसा ही है इसकी पुष्टिमूं उसके विशेषण कहे जाते हैं. जैसे भगवान् षड्गुण सहित हैं, वैसे यह स्वयं भी सातूं प्रकार समान दीखता है. श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणिके सिवाय अन्य उपलक्षणूंका वर्णन करते हैं. १.मेघके समान श्याम वर्ण है, जिससे रूपकी समानता बताई. आकृति तो पुत्र होनेसे समान होती है. २.पीला पीताम्बर धारण किया था, जिससे वस्त्रूंसे समानता हुई. ३.लम्बी भुजाए थीं, जिससे स्त्रियूंके अच्छी तरह अवयवके ज्ञान होनेकी समानता कही. ४.अरुण नेत्र हैं, क्यूंकि अयोग्य कार्य होनेसे वह क्रुद्ध है यह जताया, वह विलक्षणता आगे स्फुट कहूंगे. ५.सुन्दर मुसक्यान है, यह स्त्रियूंको प्रसन्न करनेवाला धर्म है. ६.मनोहर मुखवाला कहनेसे उसकी शोभा सबसे विशेष है, यह दिखाया है. नीले रंगकी टेढी अलकूं तथा किरीट कुण्डलूंसे अलंकृत मुखाम्भोज है. विशेष क्या कहूं? भगवान्की सर्व सामग्रीसे सुसज्जित है. मुख तो समस्तूंके चित्तका भेदन करने वाला है, वह भी भगवत्समान था, इसलिये यह भ्रम हुआ, कि कृष्ण है, वह भ्रम योग्य ही है. जहां कहीं जो कुछ होता है, वह लीला ही है, इसलिये छिपकर देखने लगी, यूं बन सकता है इसका निरूपण किया है. अनन्तर पूर्णतया जाननेकी इच्छा होनेसे फिर ध्यानपूर्वक देखने लगी, तब ज्ञान हुआ कि भगवान्के स्वरूपमूं श्रीवत्स आदि चिह्न विशेष हैं, वे इसमूं नहीं है, इस प्रकार थोड़ी विलक्षणतासे समझ लिया कि यह साक्षात् भगवान् नहीं है, यूं निश्चयकर, उनके समान है, जिससे उनका सम्बन्धी है, ऐसा विश्वासकर, यह भगवान्का पुत्र होगा, यों जानकर प्रसन्न हुईं. हर्षित होती हुई स्त्रीरत्नसहित उसको देखनेकेलिये सब स्त्रियां उसके पास आईं. उस समय पवित्र मुसक्यान वालियां सब थीं, क्यूंकि पहले जो कृष्ण होनेसे पतिभाव था, वह बदलकर, अब दूसरा भाव अर्थात् पुत्रभाव हो गया है ।।२७-२९।।

आभासार्थ : वहां रुक्मिणी भी आ गईं, उनका और रुक्मिणीके पहले कहे हुए धर्म समान है, अब उसके विशेष धर्म कहनेकेलिए दूसरी प्रक्रिया 'अथ'से प्रारम्भ करते हैं :

अथ तत्रासितापाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी।
अस्मरत्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा।।३०।।

श्लोकार्थ : स्नेहसे झर रहे स्तनूंवाली, मधुर भाषिणी, श्यामकटाक्षवाली

रुक्मिणीको खोये हुए पुत्रका स्मरण हो आया।।३०।।

व्याख्यार्थ: भगवान्का यह पुत्र है, ऐसी सम्भावनासे सिद्ध है. रुक्मिणीके सिवाय अन्यॄको तो यह निश्चय हो गया था कि हमारा पुत्र नहीं है, इसको तो सन्देह हुआ, इसलिये यह क्रम अलग है. यह भगवान्का पुत्र है, ऐसा निर्णय होनेके अनन्तर ही अपना है या दूसरीका है, जिसका विचार करना उचित है? इस प्रकार संशय होने पर पुत्रत्वके निर्धार करनेकेलिये एकटक ध्यान करनेसे उसमॄ पहले अपनी सदृशता जानने लगीं. उस स्त्री समूहमॄ सुन्दर थी, अथवा कृष्णकटाक्षॄवाली होनेसे इसकी ज्ञानदृष्टि अन्योंसे विलक्षण है, इसलिये इसके ही समानताके कारण पुत्रकी स्मृति आ गई, कि मेरा नष्ट हुआ पुत्र यही है, ऐसा स्मरण हो आनेका कारण यह है कि वैदर्भी परभक्त है, इस प्रकार अन्तःकरण और देहकी उत्तमता कहकर, मध्यमॄ वाणीकी भी उत्तमता बताते हैं. यदि तीनॄकी उत्तमता न कही जाय, तो उनमॄ समानता न होवे. मधुर भाषण करनेवाली है. इस प्रकार तीनॄकी उत्तमतासे एकता होने पर ही संस्कार जागृत हो गया, जिससे अपने खोये हुए पुत्रका स्मरण होने लगा. यद्यपि छोटे बालक और बड़ेके स्थूल अवयवॄमॄ साधारण समानता नहीं दीखती है, तो भी उसके त्रिविध उत्कर्षके कारण वह समझ गईं कि यह वही बालक है, बड़े होनेसे इस प्रकार हुआ है, यह निश्चयकर, नष्ट हुए पुत्रकी स्मृति होने लगी, जिससे स्नेह बढ़नेके कारण स्तनॄसे दूध बहने लगा, आधिभौतिक देहको आधिदैविक देह बनानेवाले संवादका निरूपण किया।।३०।।

आभासार्थ: इसके चार धर्म निरूपण किये जाते हैं, एक आन्तर और तीन बाहरके. पहले प्रकट देखनेमॄ आनेवालेका वर्णन 'को नु' श्लोकसे कहते हैं :

को न्वयं नरवैडूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः।
धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा।।३१।।

श्लोकार्थ: कमल तुल्य नेत्रवाला, पुरुषॄमॄ श्रेष्ठ यह कौन है? अथवा किसका है? इसको किसने अपने कुक्षिमॄ धारण किया? और इसने यह कौन स्त्री प्राप्त की है?।।३१।।

व्याख्यार्थ : 'नु' पद संदेह अर्थमॄ है, यह देव आदिमॄ कौन है? वैदूर्यमणि श्यामपीत होती है, यह नील मेघवत् श्याम होते हुए भी मणिके संसर्गसे वैदूर्य मणिके संसर्गसे वैदूर्यमणिके समान हो गया है. यदि वैदूर्यमणि सम हो, तो

पुरुषाकार इसका सहज ही उत्पन्न होना चाहिये, वह चेतन भी होना चाहिये, अतः यह प्रद्युम्नके बराबर है, यों समझकर कहा कि 'नरवैदुर्यः', ऐसे नर जहां-तहां उत्पन्न नहीं होते हैं, किन्तु किसी वंशमृ ही वैसे उत्पन्न होते हैं. जैसे विशेष देशमृ हीरकरूप पाषाण पैदा होते हैं. इसीसे कोई आश्चर्य नहीं है कि यह किसी ऐसे विशेष वंशमृ उद्भूत हुआ है. यदि यॄ है तो किसके यहां उत्पन्न हुआ है? वह वंश कौन सा है? जिसमृ यह पुत्ररूपसे प्रकट हुआ है, उस वंशमृ भी वह कौन सा पिता है, जिसका यह पुत्र होके आया है. किसी स्थावरका भी नहीं है, क्यॄकि 'कमलनेत्र' है, और यह भी दीख रहा है कि इसमृ स्त्री भाव भी है, अर्थात् केवल स्त्री व पुरुषसे उत्पन्न नहीं हुआ और न केवल मनसे प्रकट हुआ है? ऐसे सुयोगको गर्भमृ धारण करनेवाली माता कौन है? जिसने अपनी कुक्षिमृ इसको धारण किया? अस्तु इसके योग्य यह भार्या इसने कैसे प्राप्त की है? अथवा 'वा' शब्दसे अनादर प्रकट करती हुई कहती हैं कि यह इसने कैसी स्त्री प्राप्त की है? रुक्मिणीके हृदयमृ ही नहीं जचती है, कारण कि वह पूर्वजन्मकी सम्बन्धिनी है, इसका ज्ञान रुक्मिणीको नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है।।३१।।

आभासार्थ : इसके देखनेसे पुत्रका स्मरण हो गया, उस स्मृतिका कारण सादृश्य है, जिसका प्रतिपादन करती हैं :

मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात्।
एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित्।।३२।।

श्लोकार्थ : मेरा पुत्र भी नष्ट हो गया था, जिसको कोई सूतिकागृहसे हरण कर ले गया था, यदि वह कहीं जीता होगा तो उसकी इतनी ही आयु है और रूप भी ऐसा ही है।।३२।।

व्याख्यार्थ : जैसे यह किसीका भी खोया हुआ पुत्र यहां आ गया है, वैसे मेरा भी खोया हुआ पुत्र कहीं होगा? 'आत्मज' शब्दसे यह बताया कि वह मेरे गर्भसे उत्पन्न पुत्र, नष्ट हो गया है. पृथक् रूपसे विद्यमान इसकी सुन्दरता वा अन्यगुणॄसे तुल्यता निरूपण करती हुई कहती हैं कि वह मर नहीं गया, किन्तु खो गया था. वह भी जब उसके दस दिन भी नहीं बीते थे, तब सूतिकागृहसे कोई हरण कर गया था, राक्षस वा किसी दूसरा घातक ले गया होगा, तो वह मार दिया गया होगा, वा उनके पास होगा, अतः इसकी उसके साथ समानता कैसे होगी? यदि यॄ कहो तो मेरा कहना है कि यदि वह कदाचित् जीवित है, तो इसके समान ही

उसकी आयु है, तथा रूप भी ऐसा ही है, याॄ कहकर यह बताया है, कि जिसके जीनेकी सम्भावना है, वैसे अपने पुत्रकी इससे समानता है।।३२।।

आभासार्थ : इसके बाद यह, वह नहीं है, वैसे भेदको दूरकर, दो श्लोकाॄसे विशेषणरूपसे निरूपण करती हैं कि वह ही यह होनेके योग्य है :

कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः।
आकृत्यावयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः।।३३।।
स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः।
अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः।।३४।।

श्लोकार्थ : इसने भगवान्के समान आकार, अवयव, चाल, स्वर, हास और दृष्टि कैसे प्राप्त की है? कदाचित् वही बालक तो यह नहीं है? जिसको मैंने गर्भमॄ धारण किया था, क्याॄकि इसमॄ मेरा प्रेम अधिक हो रहा है, इसीलिए मेरी वाम भुजा भी फड़क रही है।।३३-३४।।

व्याख्यार्थ : भले यह उत्तम हो, तो भी यदि यह भगवान्का पुत्र नहीं है, तो इसने उनकी सरूपता कैसे प्राप्त की? 'शार्ङ्गधन्वन्' भगवान्के नाम कहनेसे यह बताया कि जैसे भगवान्की आकृतिमॄ धनुषकी रस्सीके घात हैं, वैसे इसके आकारमॄ भी प्रतीत होते हैं, याॄ कहनेसे बताया कि यह काया, वाणी और मनसे भगवान्के समान है. भगवान्के समान ६ धर्मोंका वर्णन करती हैं. आकृति, अवयव और गति समान है. अवयव और अवयवीके कार्य, तुल्य निरूपण किये हैं. स्वर, वाचिक है और हाससे देखना मनके भावाॄका सूचक है, यह तो भेद होने पर नहीं बन सकता है, इसलिये वह ही यह है, जो भगवान्के पुत्रको मैंने गर्भमॄ धारण किया था, ऐसी निश्चयसे सम्भावना है. यह तुम्हारा कहना कैसे निश्चित सत्य माना जाय, जब कि भगवान्की अनेक स्त्रियां हैं, किसी दूसरे द्वीप वा देशमॄ भगवान् द्वारा किसी स्त्रीसे उत्पन हुआ होगा? यों मान लेनेसे सबकुछ बन सकता है, तो तुमने गर्भमॄ इसको धारण किया, यह माना जाय, जिसके उत्तरमॄ कहती हैं, 'वाम स्फुरति मे भुजः' मेरी वामभुजा फड़क रही है. स्त्रीका वामभुजा स्फुरण, अत्यन्त प्रियके समालिंगनका सूचन देता है, जिससे परममानन्द होता है, वैसा होनेसे यह मेरा पुत्र ही है ।।३३-३४।।

आभासार्थ : इस प्रकार यह मेरा ही पुत्र है. यह निश्चय करके भी लोकको अब पूर्ण परिज्ञान नहीं हुआ है, अतः उससे पुत्र व्यवहार नहीं किया जा

सकता है, इस प्रकार संदेह करती हुई के समान खड़ी ही रही, अनन्तर भगवान् इसका निश्चय करानेकेलिए समस्तॄके साथ पधारे, यह 'एवं' श्लोकसे कहा जाता है :

एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ।
देवक्यानकदुन्दुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत्।।३५।।

श्लोकार्थ : इस प्रकार रुक्मिणीके विचार करते हुए, देवकी और वसुदेवजी के साथ उत्तमकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आए।।३५।।

व्याख्यार्थ : क्यॄ पधारे ? जिसका परिज्ञान कराने आचार्यश्री कहते हैं कि देवकीके पुत्र, भक्तहितकारी हैं. 'सुतराम्', अर्थात् स्त्रीभक्तॄका. रुक्मिणी भक्त है, वह तो अब तक विचार करती हुई क्लेशसे स्थित थीं, अतः उसके दुःखका निवारण करनेकेलिये यदि उसको पुत्र समझ, स्वीकार किया जावे, तो भी उसमॄ पिता-माता आदिकी आज्ञा ही प्रेरक है, अतः भगवान् अकेले न पधारकर, देवकी और वसुदेवको भी पधराकर आये, क्यॄकि यह उत्तमश्लोक है, यों न किया जाय तो निन्दा होती. भयसे अक्षर न लिखे जाने पर उसको अक्षरच्युतका-लङ्कार कहकर समझाया जाता है, जैसे राक्षसॄको रक्ताक्ष कहा जाता है, और यह पुत्र भी स्थानसे च्युत ही हुआ और फिर प्राप्त हुआ है, यों सूचित करनेकेलिये 'आगमत्' पदमॄ आ उपसर्ग और 'अगमत्', 'गम्' धातुका भूतकालमॄ लकार है, जिसका अर्थ है सबके साथ आये।।३५।।

आभासार्थ : भगवान् आकर भी कुछ बोले नहीं, चुप होकर खड़े रहे, क्यॄकि भगवान्ने समझा कि यदि मैं स्वयं बोलूंगा तो बहिर्मुख लोग कहॄगे कि भगवान् पुत्रलोभ कर रहे हैं. नारदके मुखसे सारी कथा 'विज्ञातार्थोऽपि' श्लोकके द्वारा कहलाई :

विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमास जनार्दनः ।
नारदोऽकथयत्सर्वं शम्बराहरणादिकम्।।३६।।

श्लोकार्थ : आप सब जानते थे, तो भी चुप होकर बैठ गए. तब नारदने, शम्बरने बालकका हरण किया, वहांसे लेकर यहां लौटकर जैसे आया, वह सर्व वृत्तान्त कह सुनाया।।३६।।

व्याख्यार्थ : ज्ञानमॄ भगवान् हेतु हैं, और मौन धारणमॄ जनार्दन. वह मनुष्यॄकी अविद्याका नाश करनेवाले हैं. निन्दा करने पर तो उनकी अविद्या नष्ट

नहीं होगी, तब भगवान्‌की इच्छासे नारदने आकर सर्व समाचार कहा. अपना किया हुआ ही कहा, याॄ कहते हुए अपने दोषका भी नारदने परिहार किया अर्थात् अपना दोष मिटा दिया. शम्बरने बालकका अपहरण किया, वहांसे लेकर यहां, वह बालक, स्त्री समेत आकर पहुंचा, यह समस्त वृत्तान्त कहकर सुना दिया।।३६।।

आभासार्थ : नारदका कहना सबको पसन्द आया, जिससे सबको अङ्गीकार योग्य है, इसलिए पहले रुक्मिणीकी जो सोतिन, श्रीकृष्णकी अन्य स्त्रियां थीं, उन्होॄने यह कहनेको स्वीकार किया, जिसका वर्णन 'तच्छ्रुत्वा' श्लोकमॄ करते हैं :

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः।
अभ्यनन्दन् बहून् अब्दान् अष्टमृतमिवागतम्।।३७।।

श्लोकार्थ : यह बड़े आश्चर्यकी बात सुन, भगवान्‌के अन्तःपुरकी स्त्रियां बहुत वर्षोंके बाद मानो मरकर पीछे आया हो, वैसे प्रद्युम्नको आया हुआ मान, बहुत आनन्दित हुईं।।३७।।

व्याख्यार्थ : ये राजसी हैं, जो नारदसे सुना, वह बहुत आश्चर्यकारक था. जैसा कि, जिसको मत्स्यने खाया, वह कैसे बच गया? फिर विशेष अचम्भा तो यह है कि समस्त अवयव, ज्योॄके त्योॄ हैं, अथवा खड्गके क्षत होने पर भी अक्षत रहा है. समुद्रमॄ फेकने पर भी मरे नहीं, वे यदि इसको अङ्गीकार न करॄ तो इनकेलिये यह बाधक था कि श्रीकृष्णके अन्तःपुरकी स्त्रियां थीं, वे विचारने लगी की यदि हमारा पुत्र भी यों हरण होकर, पीछे लौटे, तो दूसरी भी उसको अङ्गीकार न करॄगी. अतः वह सोतिन होते हुए भी प्रसन्न हुईं. यह हमारा पुत्र है, याॄ कहकर सोतिनके दोषवाले भाव दिखाये नहीं. किञ्च परम स्नेहसे पूर्णरीतिसे आनन्द युक्त होने लगी, वैसे आनन्द होनेमॄ कारण बतलाते हैं कि बहुत वर्षोंसे जो खोया था, वह स्वस्थ अवस्थामॄ आकर मिला है, केवल बहुत दिनसे खोया हुआ मिला है, यही प्रसन्नतामॄ कारण नहीं है, किन्तु यदि मर गया हुआ जाननेके बाद जल्दी भी आ जावे तो भी हर्षोल्लास होता है. मर गया और फिर वह स्वस्थ आकर मिले, तो उसका लोक आदर सहित अभिनन्दन करत हैं, देहमॄ होते हुवे भी जीवनमॄ अभिनन्दन होता है. ।।३७।।

आभासार्थ : श्लोकसे सात्त्विकॄका अभिनन्दन कहते हैं :

देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ।
दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम्।।३८।।

श्लोकार्थ : देवकी, वसुदेव, राम, कृष्ण तथा स्त्रिएं और रुक्मिणी, ये सब युगलको पाकर अथवा इससे मिलकर आनन्दको प्राप्त हुए।।३८।।

व्याख्यार्थ : देवकी, वसुदेव, राम और कृष्ण तथा सतोगुणी स्त्रियां मायावती(रति) और प्रद्युम्नसे मिलकर आलिंगनकर, प्रसन्न हुऐ. क्यूंकि एक पुत्र था, दूसरी पुत्रवधु थी. रुक्मिणीका नाम पृथक् लेनेका आशय यह है कि जितना आनन्द इन सकलूंको हुआ, उतना आनन्द एक रुक्मिणीको ही हुआ।।३८।।

आभासार्थ : वहां जो साधारण तामस गुणवाले स्थित थे, उनकी सम्मति 'नष्ट प्रद्युम्न' श्लोकसे कहते हैं :

नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ।
अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हा ब्रुवन्।।३९।।

श्लोकार्थ : द्वारकावासी खोये हुए प्रद्युम्नका पीछा आना सुनकर कहने लगे कि मानो मरकर, पीछा आया हो, वैसे यह बालक भी आ गया है, यह प्रसन्नताका विषय है, बहुत अच्छा हुआ।।३९।।

व्याख्यार्थ : उनकी विपरीत भावना नही थी, इसलिए कहा है कि 'अहो मृत इवायतः', मानो मरकर फिर जीवित होकर लौटे हैं, लौकिक भाषामूं अश्लील वचन कहनेका दोष नहीं गिना जाता है. 'हे' और 'अहो' ये दोनूं पद आश्चर्य बताते हैं, जाने और आने दोनूं कार्य आश्चर्यकारक है।।३९।।

आभासार्थ : कामदेवने बहुत प्रयासके अनन्तर देह ग्रहण की, जिसका फल हुवा या नहीं ? इस सन्देहका 'यं वै' श्लोकमूं निराकरण करते हैं :

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन् रहरूढभावाः ।
चित्रं न तत्खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः!।।४०।।

श्लोकार्थ : श्रीकृष्णके सदृश प्रद्युम्नका रूप देख, उसमूं अपने स्वामीकी भावना हो जानेसे, उसकी माता रुक्मिणी आदि वे भी उससे प्रेम करने लगीं, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है. लक्ष्मीके निवासस्थान श्रीकृष्णके पुत्र कामदेवका केवल स्मरण होते ही जब मन चलायमान हो जाता है, तब साक्षात् मूर्तिमान् कामरूप प्रद्युम्नके देखनेसे उनका मोहित होना कोई बड़ी अचम्भेकी बात जब नहीं है, तो अन्य स्त्रियूंका तो कहना ही क्या ?।।४०।।

व्याख्यार्थ : प्रद्युम्नका पितृ समान रूप देखकर, उसमृ अपने पतिका भाव हो जानेसे, उसकी माताएं भी काम जागृत होने पर, एकान्तमृ उसका सेवन करने लगीं, इसमृ कोई आश्चर्य नहीं है. लक्ष्मीके आस्पद भगवान्का ही यह प्रतिबिम्ब है. प्रतिबिम्बके समान ही बुद्धि होती है, इसलिये कोई दोष नहीं है. वह लक्ष्मीका निवासस्थान है, याृ कहनेसे यह बताया है कि जब लक्ष्मी वहां रहती है, तो हम वहीं क्याृ न रहृ? इस प्रकार उनके भ्रम होनेमृ यह मुख्य कारण बताया है. काम होने पर कामसे सर्व होना सम्भव है. जब काम अक्ष विषय होता है, तब केवल याद करते ही अनर्थ करता है, तो फिर प्रत्यक्ष होवे तो क्या अनर्थ करेगा? वह कहा नहीं जा सकता, जहां उसके दर्शनसे भगवान्की स्त्रियाृकी यह दशा है, वहां अन्य स्त्रियाृमृ काम जागृत हो अनर्थ करे, इसमृ कहना ही क्या है? इस प्रकार सर्व लोकाृमृ कामकी प्रतिष्ठा हुई, याृ कहा. स्त्रियाृमृ प्रतिष्ठित काम सुखका कारण होता है, न कि पुरुषाृमृ स्थित होनेसे सुखका कारण होता है, याृ वैसे कहा है।।४०।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कंध (उत्तरार्ध) अध्याय ५२ की श्रीवल्लभाचायचरण विरचित श्रीसुबोधिनी टीकाके राजस साधन अवान्तर प्रकरणके छठे अध्यायका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण

अध्याय ५३

स्यमन्तकमणिकी कथा,
जाम्बवती और सत्यभामा के साथ श्रीकृष्णका विवाह

सप्तमे कामतः प्रोक्तो विवाहस्तामसः परः।
सात्त्विकश्च प्रसङ्गेन क्लेशेनोभे निवारिते।।कारि.१।।
क्लेशापनोदनार्थाय चौर्यमत्र निरूप्यते।
वाचिकं कायिकं चैव कायेन वचनेन च।।कारि.२।।
सम्बन्धी च तथा भक्तः स्वापराधापनुत्तये।
सत्यभामा जाम्बवती ताभ्यां सम्यक् निरूपिते।।कारि.३।।
गुणा एतास्ततोऽग्रे तु विद्यारूपा निरूपिताः।
एवमष्टौ महिष्यो हि सात्त्विक्यस्तु ततः पराः।।कारि.४।।
विवाहाः सप्त कामेन कृपया तु सहस्रशः।
विधितस्त्वेक एवोक्तो द्वयोरत्र निरूप्यते।।कारि.५।।

कारिकार्थ : सातवृ अध्यायमृ जो विवाह कहे हैं, वे कामसे किए हुए हैं, उनमृसे जाम्बवतीका विवाह तामस है, और सत्यभामाका सात्त्विक है, इन दोनृके विवाह तामस, सात्त्विक कहनेसे शेष रुक्मिणीका विवाह स्वतः राजस सिद्ध है. यद्यपि रुक्मिणी जाम्बवतीको विवाह भगवत्परिग्रह होनेसे सात्त्विक कहे जा सकते हैं, किन्तु उनको सात्त्विक विवाह न कहनेका कारण यह है कि वे दोनृ भगवान् क्लेशृसे लाये हैं, अतः वे सात्त्विक विवाह नहीं है. सत्यभामाको पिताने लाकर दान कर दी, जिससे उस विवाहमृ क्लेश न हुआ, जिससे वह सात्त्विक है. इसके विवाहमृ क्लेश न होनेका कारण चौर्य प्रसङ्ग है, जिसका यहां वर्णन किया गया है. सत्राजितने वाणीसे झूठा कलम लगाकर वाचिक और स्वयं गुफामृ जाकर युद्ध किया, जिससे कायिक दोष किया. शतधनुके वचनसे उस मिथ्या अभिशाप को मिटाया, ऐसे सत्राजितने और भक्त जाम्बवान्ने अपने अपराधको मिटाने केलिए दोनृने, आकर सत्यभामा और जाम्बवती भगवान्को अर्पण की, सत्यभामा तथा जाम्बवतीके विवाहका कारण वाचिक और कायिक मिथ्याभिशाप था, जिसका निरूपण किया. ये रुक्मिणी, जाम्बवती और सत्यभामा, रजो, तमो और सतोगुण रूप हैं, आगे तो विद्यारूपसे इनका निरूपण

हुआ है. इस प्रकार आठ महिषियां सात्त्विक गुण वालियां हैं और सात कामसे हैं, कृपासे तो सहस्रू किए हैं, विधि अनुसार तो एक ही कहा है. इस प्रसङ्गमू दोनूका विवाह चौर्य प्रकरणमू निरूपण किया है।।१ – ५।।

कारिकार्थ पूर्ण.

आभासार्थ : रुक्मिणीका विवाह और पुत्र सम्पत्तिको कहकर, कारणवश 'सत्राजितः' श्लोकसे सत्यभामाके विवाहका वर्णन श्रीशुकदेवजी करते हैं :

श्रीशुक उवाच

सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः।
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान्।।१।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि हे राजन्! सत्राजितने भगवान् का अपराध किया था, उस अपराधका दोष निवृत्त हो, इसलिए सत्राजितने स्वयं आकर स्यमन्तकमणि सहित अपनी कन्या भगवान्को अर्पण की।।१।।

व्याख्यार्थ : भगवान्ने सत्राजितसे कन्या मांगी नहीं थी और न अभिप्रेत ही थी, तो भी सत्राजितने स्वयं कन्या अपंण की, जिसका कारण है कि सत्राजितने भगवान्का अपराध किया था, जिसे मिटानेकेलिये स्यमन्तकमणि लाकर दी और अपराध करनेके दण्डरूपमू कन्या अर्पण की है. कोई कहते हैं कि यह कथा संक्षेपमू कही गई है, वास्तविक रीतिसे तो यह कथा समाधि भाषा नहीं है, क्यूकि, उदार लीला करने वालूकी अपकीर्ति आदि समाधिभाषाका कार्य नहीं हो सकता है. समाधिभाषामू तो भक्तिसाधक चरित्र ही वक्तव्य होते हैं, यहां केवल प्रथम समाधिभाषा है, विस्तार जो है वह लौकिकी भाषा है, जैसे तेसे कभी अपराध भी होता है, अतः अभिप्रेत न होनेसे वा कल्पान्तरकी कथा होनेसे नहीं कहा है. वस्तुतः सत्यभामा तो सरस्वती अथवा पृथ्वीकी अंशरूपा है, इसलिये उसके विवाहकेलिये भगवान्ने ही वैसा उद्योग किया है. यहां राजसूका स्वीकार वक्तव्य है, उसकेलिये यहां स्त्री प्रकरणमू सत्यभामादिका ही परिग्रहमात्र कहना चाहिये. 'मात्र' पदसे यह सूचित किया है कि रुक्मिणीविवाहके प्रसंगमू जो विस्तार किया है, वह समाधि भाषा नहीं है, किन्तु लौकिकी भाषा है, इसलिये ही आचार्यश्रीने टीकामू 'मात्र' पद दिया है ।।१।

आभासार्थ : यदि कहो कि आकांक्षा पूर्तिके अभावसे संक्षेप पर है, यूू क्यूू न कहा जावे? तो कहते हैं कि इस प्रकार मत कहो, मित्रविन्दाके विवाहकी

भांति सारा कहनेसे ही आकांक्षा निवृत्ति होती है, अतः राजा पूछता है 'सत्राजितः' श्लोकसे :

राजोवाच

सत्राजितः किमकरोद् ब्रह्मन् कृष्णस्य किल्बिषम्।
स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ?।।२।।

श्लोकार्थ : राजाने कहा, ब्रह्मन्! सत्राजितने कृष्णका कौनसा अपराध किया स्यमन्तकमणि उसके पास कहांसे आई? उसकी कन्या भगवान्को किस कारणसे दी?।।२।।

व्याख्यार्थ : हे ब्रह्मन्! यह संबोधन श्रीशुकदेवजीको इसलिये दिया है कि आपको सबका ज्ञान है, जिससे आप सब कुछ बता सकोगे. सदानन्द स्वरूप तथा पालक श्रीकृष्णका कैसे कोई भी अपराध कर सके? भगवद्भक्ताका स्यमन्तक अपराधका कारण कैसे हो सकता है? अन्य देवके भजनसे याू होते हुए, फिर उसका निरोधमू सम्बन्ध कैसे? यह प्रश्न करनेका अभिप्राय है. जो विरोध करते हैं, उनका अपकार करना योग्य ही है, याू होने पर उनको सर्वस्वके साथ कन्यादान करना तो उचित नहीं है, इस कारणसे यहां दोनाू बात कैसे? किस कारणसे कन्या दी, वह कन्या सूर्यदेवके वरमू प्राप्त हुई थी, उसकी ओरसे पुत्री न थी, जैसे भगवान् नन्दका पुत्र है, वैसे यह कन्या इसकी पुत्री थी. अन्य पुराणका यह निर्णय है, इस कारणसे इससे विवाह करनेमू यादवाूको दोष नहीं हैं. भागवतमू भी स्त्रीरत्न, रत्न ही है, इस वाक्यसे, देवसे ही प्राप्त हुई जानी जाती है. भगवान् भी अक्लिष्टकर्मा हैं, जिससे सगोत्रका विवाह नहीं कर सकते।।२।।

आभासार्थ : विस्तारसे कहनेकेलिए 'आसीत्' श्लोकसे कथा प्रारम्भ करते हैं :

श्रीशुक उवाच

आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा।
प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम्।।३।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजीने कहा – सत्राजित भक्तका, स्वामी सूर्य होते हुए भी परम मित्र था, जिससे सूर्यने प्रसन्न होकर उसको स्यम्नतकमणि दी थी।।३।।

व्याख्यार्थ : 'आसीत्' पदसे यह भी बताया है कि वह स्वतन्त्र कथा है.

सत्राजित था, यह प्रथक् वाक्य है, उसका महत्त्व प्रकट दिखानेकेलिये कहा है कि सूर्यदेव स्वामी होते हुए भी भक्तका परम मित्र था. सूर्यका स्वभाव ही ऐसा है, जो भक्तका शीघ्र ही सखा बन जाता है, इससे यह सिद्ध हुआ कि सूर्य परम दयालु है, थोड़ा भी भजन करनेसे बहुत देता है, यह निरूपण किया. उसके अनन्तर जो हुआ जिसका वर्णन करते हैं कि सूर्यने प्रसन्न होकर उसको मणि दी. मणिका नाम स्यमन्तक था. वह मणि सूर्यके पास कहांसे आई? इस प्रश्नके उत्तरमॄ कहा है कि सूर्य स्वयं मणिको उत्पन्न करता है. मणिको उत्पन्न करनेमॄ सूर्यकेलिये किसी प्रकारका दोष नहीं है, क्यॄकि जब सब सूर्यसे पैदा हुआ है, तो मणिमात्र उत्पन्न करनेमॄ कौनसा दूषण उसको लगता है, यॄ जाना जाता है. यह मणि इसकेलिये पैदा की है, क्यॄकि इस पर भक्तिसे प्रसन्न हुआ है, जिससे मणिको पैदा किया है. न केवल पैदा ही की, किन्तु उससे भी विशेष प्रसन्न हो, उसमॄ अपना सामर्थ्य स्थापितकर, प्रसन्नतासे मणि इसको दी, प्रसन्न होके देनेसे वह मणि भोग और भोगके साधनॄका साधक भी हुई, यॄ जाना जाता है।।३।।

आभासार्थ : इसी कारणसे 'स तं बिभ्रन्' श्लोकमॄ पहले उसके भोगका वर्णन करते हैं :

स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः।
प्रविष्टे द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः।।४।।

श्लोकार्थ : वह सत्राजित कण्ठमॄ उस मणिको धारण करनेसे सूर्यके समान प्रकाशमान् हो गया और द्वारकामॄ प्रविष्ट हुआ, तो उसके तेजसे इसको किसीने नहीं पहचाना।।४।।

व्याख्यार्थ : सूर्यने मणिमॄ अपना तेज स्थापित किया था, जिसके धारण करनेसे मनका वर्णन करते हैं. सत्राजितने सूर्यको धारण किया है, इस कारण उसके प्रभावसे जैसा सूर्य है, वैसा ही यह चमकने लगा. यदि दूसरे स्थान पर मणि धारण करके जाता तो किसी प्रकार हानि नहीं होती, क्यॄकि वहां सूर्य, रक्षा कर सकते, किन्तु वह तो मणि ग्रहणकर, द्वारकामॄ स्थित भगवद्भक्तॄको ठगनेकेलिये आया, जिससे सूर्यने अप्रसन्न हो, इसकी उपेक्षा की. इसकी उपेक्षा की, इस अभिप्रायको प्रकट करनेकेलिये इसका द्वारकामॄ प्रवेशका वर्णन किया है. 'राजन!' यह सम्बोधन इस बातको जतानेकेलिये दिया है कि दूसरॄके कार्योंमॄ कोई दूसरा रक्षा नहीं करता है उसका मनोरथ इतना ही था, कि मुझे कोई पहचान

न सके. वह सिद्ध हुआ, मणिके धारण करनेसे पहचाननेमृ नहीं आया।।४।।

आभासार्थ : उसका प्रभाव सब मनुष्यृ पर हुआ, यह बतलानेकेलिए लोकृको भ्रमका वर्णन 'तं विलोक्य' श्लोकमृ करते हैं :

तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः।
दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः।।५।।

श्लोकार्थ : लोक उसको दूरसे देखकर तेजसे चकाचौंध दृष्टि हो गए, तब चौपड़ खेल रहे भगवान्के पास कोई आकर कहने लगा कि कदाचित् सूर्य आ रहा है।।५।।

व्याख्यार्थ : निकट हो तो पहचान भी जाय, यह तो दूर थे और वहांसे ही तेजके कारण नेत्रृकी दृष्टि चकाचौंध हो गईं, अतः पहचान न सके. मनमृ समाधान किया कि हमारे स्वामीके स्थान पर महान् आत्माएं भी आती हैं, यो संतोषकर भगवान्के स्थान पर गये, वहां देखा कि भगवान् तो अन्य कार्यमृ आसक्त हुए हैं, अतः इसका सम्मान अब नहीं करृगे, इस कारणसे वह हमको बहुत समय तक पीड़ा करेगा, क्यृकि मनमृ शंका होने लगी थी कि यह सूर्य है, अतः लौकिक व्यसनरूप चौपड़का खेल खेलते हुए भगवान्को कहने लगे. विशेष प्रकारसे चौपड़ खेलनेवाले राजा लोगृको अधिदेवनके दिन चौपड़ खेल खेलनेमृ कोई दोष नहीं, यृ करनेसे उनको निद्रा भी नहीं आती है, यृ न होता तो धर्म स्थापनकेलिये अवतार लेनेवाले चोपड कैसे खेले? चौपड़के खेलका स्थान मुख्य अधर्मका स्थान है. 'भगवते' पदसे यह बताया कि वह आगमन सूर्यका नहीं है, केवल लोगृको आशंका हुई है।।५।।

आभासार्थ : लोक स्वतः सूर्यके महत्त्वको जानते हैं, अतः सूर्यका आगमन समझकर, भगवान्की पहले स्तुति करते हैं, अनन्तर प्रार्थना करते हैं कि सूर्यदेव आ रहे हैं, यह वर्णन 'नारायण' इन तीनृ श्लोकृसे करते हैं :

जना ऊचुः

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर!।
दामोदराविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन।।६।।
एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते।
मुष्णन्गभस्तिचक्रेण नणां चक्षूंषि तिग्मगुः।।७।।
नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः।

ज्ञात्वाद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो।।८।।

श्लोकार्थ : हे शङ्ख, चक्र, गदा धारण करनेवाले नारायण! हे दामोदर! हे कमलनयन! हे गोविन्द! हे यदुनन्दन! हे जगत्के पति! यह तेज किरणृवाले, किरणृके समूहसे मनुष्यृके नेत्रृकी दृष्टिको हरण करते हुए, सूर्यनारायण आपको देखनेकेलिए आ रहे हैं. हे प्रभु! त्रिलोकृमृ जो श्रेष्ठ देवता हैं, वे भी आपके मार्गको ढूंढ़नेकी इच्छा करते हैं. यादवृमृ गुप्त विराजमान आपको जानकर सूर्यनारायण दर्शनकेलिए आज आ रहे हैं।।६ – ८।।

व्याख्यार्थ : आप सूर्यान्तर्यामी नारायण हैं, उनके आने पर ही कार्य सिद्ध होता है, क्यृकि अन्तर्यामीकी प्रेरणाके सिवाय कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है, यों जतानेकेलिये सूर्यका आगमन बन सकता है, यह हेतु कहा है, अतः आपको नमस्कार है. नमस्कारके सिवाय विशेष तो हमसे हो नहीं सकता. शंख, चक्र और गदाको धारण करने वाला विशेषण देनेसे शेषनारायणसे पृथक्ता दिखाई, अथवा नारायणत्वकी स्थापना की है. 'दामोदर' नामसे यह बताया है कि आप सदैव भक्त पर कृपा करते हैं, भक्त कृपालुत्वही आपके यहां आनेका कारण है. 'कमलनयन' नामसे बताया है कि आप यहां पधारकर, विरही भक्तृके ताप दूर करनेका कार्य करते हैं. 'गोविन्द' नामसे यह बताया है कि आपको यों करना आवश्यक है, कारण कि आप इन्द्र बने हैं. विशेषमृ आप 'यदुनन्दन' हैं, जिससे आपने इसकेलिये ही अवतार लिया है।।६।।

आपको यहां बहुत कार्य है, जिससे सूर्यने समझा कि आपका आगमन न हो सकेगा, अतः स्वयं वह आया है. आाये हुएको कुछ जानने वा पूछकर कार्य करनेकी इच्छा है, इसलिये 'सविता' नाम दिया है. इस समय भगवान् लीला कार्य करनेमृ स्थित हैं, अतः उसके अनुकूल कार्य करने, आपसे पूछनेके वास्ते आया है. यदि पूछना है तो दूत द्वारा भी पुछा सकता है, फिर आया क्यृ? इसके उत्तरमृ कहा है, कि केवल पूछना नहीं है, किन्तु उसको आपके दर्शनकी भी इच्छा थी, इसलिये भी आया है. स्नेह होनेपर भी आपका दर्शन करना आवश्यक है, क्यृकि आप जगत्के स्वामी है. हम आपको इसलिये निवेदन करते हैं कि यह सूर्य, तेजकिरणृ वाला है, जिसके तेजसे हमारे नेत्र चकाचौंध होकर, पीड़ित हो रहे हैं. दूरमृ स्थितकी किरणृ थोड़ी चकाचौन्ध करती है. हम मनुष्य अल्पबलवाले हैं, जिससे यह पीड़ा सहन नहीं कर सकते हैं, क्यृकि यह इसकेलिये स्वाभाविक है,

जो मनुष्यृके नेत्रृका अपने तेज रश्मियृसे चकाचौन्धकर, पीड़ित करे. यहां ज्ञान देने वाले भगवान् आये हैं, ज्ञान साधनृको दूर फूक देते हैं, अतः इनका समादर स्वागत करिये.

हम क्यृ करृ? आप भी हमारे अन्तरंग हैं, आप ही इनका निवारण करो. यदि आपका इस प्रकार कहना हो, तो उसकेलिये हमारा निवेदन है कि देवता आपके यहां मिलने, दर्शन करने वा किसी कार्यकेलिये आवे, उनको कैसे रोका वा लौटाया जाय? आप उनके स्वामी हैं, स्वामीके दर्शनकेलिये आते हैं और आने वाले देवृमृ श्रेष्ठ देव आते हैं और विशेषता तो यह है कि आप यादवृमृ गुप्तरूपसे पधारे हैं, आज इस गोप्यको जानकर आये हैं, ऐसी स्थितिमृ कोई उनको रोके तो वे समझृगे, कि यह ही हमसे प्रवंचना करता है, यों समझ, उसको ही मारे. आप ज्यृ समझते हैं कि सूर्य आ रहा है, यृ नहीं है. वह न आवेगा क्यृकि उसको बहुत काम है, जिनमृ रुका हुआ रहता है, यदि वह नहीं है, तो कदाचित् ब्रह्मा दर्शनकेलिये आ रहे है, अवतार लेने पर दूसरा रूप धारण होता है, इसलिये उस अन्य रूपमृ पहलेसा व्यवहार करना उचित नहीं है. यदि यृ कहो तो, वह बात असमर्थोंकेलिये है, आप तो 'प्रभु' होनेसे सर्वसमर्थ हैं. कोई रूप धारण करे, तो भी वेके वे ही हैं बदलते नहीं हो, अतः श्रेष्ठदेव आते ही रहते हैं।।६-८।।

आभासार्थ : ये वचन उनके सुनकर भी, प्रारम्भ किया हुआ कर्म नहीं छोड़ना चाहिये, यृ विचारकर, आप वैसे ही बैठे रहे, और प्रजाआृके भ्रमको दूर कर दिया, जिसका वर्णन 'निशम्य' श्लोकसे करते हैं :

श्रीशुक उवाच

निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः।
प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन्।।९।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि कमलनेत्र भगवान् बालकृ जैसे प्रजाके वचन सुनकर हंसे और उनका भ्रम मिटानेकेलिए कहने लगे कि यह सत्राजित है, जो मणिसे प्रकाशित हो रहा है, सूर्यदेव नहीं है।।९।।

व्याख्यार्थ : 'बाल' शब्द यहां अज्ञृकेलिये दिया है, अर्थात् भगवान् अज्ञृके वचन सुनकर हंसने लगे, क्यृकि ये अपनी बड़ाईका ही विचार करते हैं किन्तु कारणका विचार नहीं करते हैं, वैसे ये भी अपने उत्कर्षसे मेरे उत्कर्षकी ही भावना करते है, वा मेरा उत्कर्ष ही बटाते हैं, इस कारणसे जो कोई आता है,

उसको मेरे सम्बन्धित्वके कारण महान् समझते हैं, और भगवान् कमलनेत्र हैं, जिससे इन मूर्खोंको अपने उत्कर्षके परायण देख, हंसकर, दृष्टिसे ही उनको सुख देने लगे, एवं कहने लगे कि यह देवरूप सूर्य नहीं है, किन्तु सूर्यका तेज है. यह जो आ रहा है, वह सूर्यका भक्त सत्राजित है. भक्त होनेके कारण देव कहा गया है. वह ऐसे कैसे हो गया? इस पर कहते हैं कि मणिको कण्ठमृ बांधा है, इसलिये ऐसा प्रकाशित हो रहा है।।९।।

आभासार्थ : मणिसे प्राप्त(भोग) कहकर 'सत्राजित्स्वगृहं' श्लोकसे अर्थकी सम्पत्ति कहते हैं :

सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम्।
प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत्।।१०।।

श्लोकार्थ : सत्राजितने अपने घरमृ उत्सवार्थ माङ्गलिक कराके प्रवेश किया, अनन्तर देव मन्दिरमृ ब्राह्मणृ द्वारा मणिकी स्थापना कराई।।१०।।

व्याख्यार्थ : भगवान्की कृपासे पहले ही मांगलिक कार्य हुए हैं, जिससे धर्म धौर कामकी सिद्धिका होना निरूपण किया. इस प्रकार जिस घरमृ धर्म, अर्थ और काम, तीन कार्य सिद्ध हुए हैं, वैसे घरमृ प्रवेशकर, वहां देवृके पूजास्थानमृ जहां दैत्य प्रवेश नहीं कर सकते हैं, वहां ब्राह्मणृके साथ जाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक मणिकी स्थापना की।।१०।।

आभासार्थ : अब 'दिने – दिने' श्लोकमृ मणिके स्थापन करनेसे जो फल हुआ, उसका वर्णन करते हैं :

दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो।
दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्वाधिव्याधयोऽशुभाः।
न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः।।११।।

श्लोकार्थ : यह मणि प्रतिदिन आठ भार अर्थात् ४० मन सुवर्ण देती थी, जहां मणि है, वहां अकाल, महामारी, अकल्याण, सर्प, आधि, व्याधि और दूसरे अशुभ भी नहीं होते, तथा मायावी लोगृका रहना भी नहीं हो सकता।।११।।

व्याख्यार्थ : चालीस सेरका मन होता है, पांच मनका एक भार वजन होता है, वे आठ भार प्रतिदिन मणि देती थी, अर्थात् मणि हरेक दिन ४० मन सोना देती थी. मणि याृ कैसे कर सकती? इस शंकाका समाधान आचार्यश्री करते हैं, कि यह मणि सूर्यसे उत्पन्न होनेसे, इसकी जड़ सूर्य है, अतः जैसे सूर्य पैदा कर

सकता है, वैसे ही यह भी पैदा कर सकती है. भगवान्को 'प्रभु' सम्बोधन देकर यह बताया कि आप सर्वसमर्थ हो, आपको ऐसे मणिकी इच्छा हो नहीं सकती है. यह मणि केवल इच्छित पदार्थ ही नहीं देती है, किन्तु अनिष्टृका भी निवारण करती है, जैसे कि अनावृष्टिसे दुर्भिक्ष होता है, उसके निवारणकेलिये समयानुसार उचित वर्षा करती है, शीतला आदि देव, जिन रोगृके अधिष्टाता हैं, उन रोगृसे जो मृत्यु आदि होती हैं, उन रोग मृत्युको होने नहीं देती है. आधि–व्याधिके हेतु जो अरिष्ट है, उनका नाश करती है. अशुभ स्वप्न आदि तथा पूतना आदि राक्षसृका यहां आना भी नहीं होता है. जहां यह मणि पूजी जाती है, वहां ऊपर कहे हुए अनिष्ट होते ही नहीं हैं, यों मणिके दृष्ट तथा अदृष्ट सामर्थ्यका वर्णन किया है।।११।।

आभासार्थ : जो योग्य न हो उसमें बड़ा धर्म, वा वस्तुका होना योग्य नहीं है. भगवान्ने विचारा कि यह सत्राजित इस मणिके योग्य नहीं है, अतः इस मणिके कारण इसका नाश होगा, अपने नगरमृ इसका नाश हो, यह भी उचित नहीं है, अन्य देवका यहां सामर्थ्य चल नहीं सकता है, उसकी कृपा भी व्यर्थ है, इसलिए इसका दोनृ लोकृमृ हित सिद्ध हो, तदर्थ जितना द्रव्य इससे होता है, उतना ग्राम आदि द्वारा इसको दिलाकर, यह मणि उग्रसेनको देनेकेलिए भगवान् सत्राजितको कुछ 'स याचित' श्लोकसे कहने लगे :

स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा।
नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्ञाभङ्गमतर्कयत्।।१२।।

श्लोकार्थ : भगवान्ने कुछ समयकेलिए मणिको यदुराज उग्रसेनको देनेके वास्ते सत्राजितसे मणि मांगी, किन्तु पैसेके लोभी उसने यह मणि नहीं दी और किसी तरह भी भगवान्की याचनाका भङ्ग हो, वैसा विचार करने लगा।।१२।।

व्याख्यार्थ : कुछ समयकेलिये, यह मणि उग्रसेन, जो यादवृका राजा है उसको दे, जब तक तुम्हारा मृत्युकाल टल जावे, पश्चात् स्वयं ही ले लेना, इस प्रकार भगवान्ने अपना अभिप्राय बताया. यह शंका नहीं करना कि उसकी ही मृत्यु होगी क्यृकि वह शूरकुलमृ उत्पन्न होने तथा यादवृका राजा होनेसे उनमृ सामर्थ्य है, जिससे मणिके द्वारा उनकी मृत्यु न हो सकेगी, अथवा लौकिक पक्षपातके कारण भी भगवान्ने यृ कहा है, भगवान्की ऐसी इच्छा होने पर भी, मणि नहीं दी. क्यृकि अर्थ ही सिद्ध करना चाहता है, मृत्युको टालना नहीं चाहता

है. मणि न देनेके ये ही कारण हैं. सत्राजित् उस उपायका विचार करने लगा, जिससे भगवान् मणिकी याचना करे नहीं, सूर्यको कहा जाय और उसके द्वारा उपद्रव कराये जावू, यू होनेसे मांगूगे नहीं, इस प्रकार याचना भंग करानेका विचार करने लगा।।१२।।

आभासार्थ : इस प्रकार उसके दो दोषूका निरूपण किया, १. आज्ञाका उल्लंघन और बुराई हो, ऐसा विचारकर, वहां उसकी ही बुराई हुई, आज्ञा भंगका फल मृत्यु भी हुआ, जिसका दो अध्यायूमू निरूपण किया जाता है. यद्यपि मणि, धन-सम्पत्ति आदि देनेवाली, रोगादि नाशक है, तो भी भगवद्भाव रहित होनेसे, अनर्थ फल देनेवाली हुई. भगवान्की आज्ञाके उल्लंघनसे तदीयूकी बुद्धि ही दूषित हो गई, पूज्यने भी मणि केवल सत्राजितको ही धारण करनेकेलिए दी थी. भगवान्के धर्म, भक्तका ही हित करते हैं, मणिको सामान्य मणि समझकर, उसका भ्राता प्रसेन भी उसकी प्रतिष्ठाकेलिए कण्ठमू डालकर वनमू गया, जिसका वर्णन 'तमेकदा मणिं' श्लोकमू करते हैं :

तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम्।
प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद् वने।।१३।।

श्लोकार्थ : एक दिन सत्राजितका छोटा भाई प्रसेन बड़ी प्रकाशमान् उस मणिको कण्ठमू बांध, घोड़े पर सवार होकर शिकार करनेकेलिए वनमू गया ।।१३।।

व्याख्यार्थ : प्रसेनने कण्ठमू मणि इसलिये धारण की थी कि इसके तेजसे मृग अन्धे हो जायूगे, तो उनको पकड़नेमू सुगमता होगी. यद्यपि प्रसेनके पास बहुत सेना थी, तो भी अकेला ही घोड़े पर चढ़कर शिकार खेलनेलिये वनमू फिरने लगा. शिकार, वह राजलीला है जिसमू मृगताश किये जाते हैं अर्थात् जिस लीलामू मृग नाशके मुखमू जाते हैं, इसलिये इसको संस्कृतमू 'मृगयां' कहते हैं।।१३।।

आभासार्थ : उसकी महती प्रभाको न सहकर सिंहने उसको मारकर मणि ले ली, यह चरित्र 'प्रसेनं' श्लोकमू कहते हैं :

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी।
गिरिं विशन् जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता।।१४।।

श्लोकार्थ : एक सिंह वहां वनमू घोड़े समेत प्रसेनको मारकर मणि ले,

पर्वतकी गुफामृ जाता था, तो मणिको चाहनेवाले जाम्बवानने उसको मार डाला।।१४।।

व्याख्यार्थ : मृग अर्थात् सिंह आदि पशु अलौकिक उपायसे मारे नहीं जाते, कारण कि भगवान्ने उनको मार डालनेकी अलौकिक बुद्धि नहीं दी है. उनको मारनेका उपाय शिकार ही बनाया है. उनका वध मणिसे होना ही विचारा हुआ था, उससे ही मृत्युको प्राप्त हुआ. वह मणि साधारण पत्थरकी मणि नहीं थी, किन्तु देव रूप मणि थी, अतः क्रुद्ध हुई मणि जिसके पास जाती है, उसका ही वध करवाती हैं, यों परम्परासे बहुतृका वध कहा जा सकता है. घोड़े समेत प्रसेनको मारकर, मणि सिंहने ग्रहण की, वह भी अधम स्थान पर्वतकी गुफामृ प्रविष्ट होते ही, जाम्बवान्ने उसे मार डाला. वह सिंह महान् है, उसको क्यृ मारा? इसके उत्तरमृ कहते हैं कि 'मणिमिच्छता', जाम्बवान्को मणि लेनेकी इच्छा थी, इसलिये उसने सिंहको मारा. यदि मारते नहीं तो जीवित सिंह मणिको छोड़ता नहीं, इसलिये मारनेके सिवाय अन्य कोई उपाय मणि लेनेका नहीं था।।१४।।

आभासार्थ : 'सोऽपि' श्लोकमृ उस मणिके लेनेका प्रयोजन बताते हैं :

सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले।
अपश्यन् भ्रातरं भ्राता सत्राजित् पर्यतप्यत।।१५।।

श्लोकार्थ : उसने भी मणिको लेकर बिलमृ अपने कुमारका खिलौना बना दिया, वहां प्रसेनका भ्राता सत्राजित अपने भ्राताको न देखकर शोक करने लगा।।१५।।

व्याख्यार्थ : जाम्बवान्का छोटा बालक जिस स्थान पर रहता था, उस अपने स्थानकेबिलमृ, मणिको उसने बालकका खिलौना बनाया, इससे यह समझा जाता है, कि यह कार्य एक ही दिनमृ पूरा हो गया, पश्चात् सत्राजितने भ्राताकी खोज करनेकेलिये मनुष्य भेजे, उसका कहीं भी पता न लगा. उससे भ्रातृस्नेहके कारण भ्राताको न देखनेसे, सत्राजित शोकातुर होने लगा. मणि भी गई और भ्राता भी गया इसलिये सन्तप्त हुआ।।१५।।

आभासार्थ : इसके अनन्तर, भ्राताकी तरह इसकी बुद्धि भी दुर्बुद्धि हो गई जिसका वर्णन 'प्रायः' श्लोकमृ करते हैं:

प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः।
भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपज्जनः।।१६।।

श्लोकार्थ : गलेमृ मणि बांध, वनमृ गए हुए मेरे भाईको बहुतकर कृष्णने मार डाला, यह सुनकर नगरके लोग आपसमृ कहने लगे कि सत्राजितके भाईको मारकर कृष्ण मणि ले आए हैं।।१६।।

व्याख्यार्थ : सत्राजितने कहा कि जैसे मेरा भाई वनमृ गया, वैसे यह भी गए. भगवान् स्वतः गये अथवा दूसरृको भी ले गये. वहां जाकर मेरे भाईको स्वयंने मारा अथवा दूसरृसे मरवाया, बहुत कर तो स्वयंने ही मारा है, यह विशेष कोटि है, क्यृकि कृष्ण ही समर्थ हैं और मणिके गुणृको जानते हैं, अथवा उनको दूर भी कर सकते हैं, यृ करनेमृ कारण भी हैं, जो पहले मुझसे उग्रसेनकेलिये मणि मांगी थी, मैंने नहीं दी थी, वनमृ जाकर मारनेसे कोई जान न सकेगा, इस प्रकार विचारकर, निश्चय किया कि कृष्णने ही मारा है और यह दोष कृष्ण पर आरोप किया. यह तो केवल तू ही कहता है, दूसरा कोई भी नहीं कहता. तुम यह कल्पना कैसे करते हो? इसके उत्तरमृ कहता है, कि मेरा भाई है, जिससे मुझे प्यारा है, इसलिये मैं कहता हूं, दूसरेको क्या प्रयोजन है, जो कहे. यह समस्त वर्णन अपने अन्तःपुरमृ किया, पश्चात् प्रत्येक कान कानमृ कहने लगा. मन्त्रकी भांति धीरे धीरे भगवत्कीर्तिको कहने लगे क्यृकि मनुष्य है, वह थोड़े दोषसे जन्म मरण आदिको प्राप्त नहीं होता है।।१६।।

आभासार्थ : यद्यपि भगवान्ने पहले ही सर्व वृत्तान्त जान लिया था, तो भी, लौकिक व्यवहार दिखानेकेलिए मनुष्यृके मुखसे जब स्वयंने सुना, तब उसके प्रतिकारकेलिए यत्न करने लगे, जिसका वर्णन 'भगवांस्तदु' श्लोकमृ करते हैं :

भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनः।
मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः।।१७।।

श्लोकार्थ : भगवान्ने अपनेको वह कलङ्क लगा सुनकर, उसको मिटानेकेलिए अपने साथ कुछ नगर निवासियृको लेकर, जहांसे प्रसेन गया था, उस रास्तेसे उसको ढूंढ़नेकेलिए गए।।१७।।

व्याख्यार्थ : वह सत्य वृत्तान्त आप्त(सत्य जानने वाले व कहने वाले) पुरुषृसे अथवा अचानक सुनकर, उपश्रुति सबको ही जनाती है, इस कारणसे उसके प्रतीकारकेलिए प्रवृत्त हुए, उसको मिटानेकी क्या आवश्यकता थी? जिसका कारण कहते हैं कि अपयशसे लिप्त हो जानेसे अर्थात् वैसी निन्दा होने

लगी, जो लेपकी भांति सर्वत्र भासमान होने लगी. सारांश यह है कि जहां-तहां प्रत्येक मनुष्य भगवान्‌की निन्दा करते हुए कहने लगे कि भगवान् प्रसेनको मारकर मणि ले आए हैं, अतः इस असत्य कलङ्ककको मिटानेकेलिए यदि भगवान् प्रयत्न न करते तो, उस कलङ्करूप दोषके कारण किसीकी भी मुक्ति न हो सकती थी, क्यूंकि सबकी आत्मा भगवान् ही हैं. भगवान् कलङ्कसे दोषी हुए तो सब दोषी हुए, अतः उसका निराकरण करना योग्य ही है, वह निराकरण भी अलौकिक रीतिसे नकर, लौकिक प्रकारसे ही करना चाहिए, इसलिए उन नागरिकूंको साथ ले गए, जो पदमार्गको जानते थे, जिससे उसके जानेके मार्गको पहचानकर वहां पहुंच गए, यों न करते, तो लोक कृत्रिम(बनावटी) जानते।।१७।।

आभासार्थ : 'हतं प्रसेनं' श्लोकसे कहते हैं कि अनन्तर उसको जाकर मरा हुआ देखा :

हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने।
तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः।।१८।।

श्लोकार्थ : वनमूं प्रसेन और अश्वको सिंहसे मरा हुआ देखा और उस सिंहको मनुष्यूंने पर्वतके ऊपर रींछके हाथसे मरा हुआ देखा।।१८।।

व्याख्यार्थ : केसरी सिंहके नखूंके चिह्न प्रसेनके देह पर देख, समझ लिया कि इसको सिंहने मारा है, तब जान लिया कि मणि भी इसको मिली है. अपने गोत्रमूं उत्पन्न प्रसेन यादव मारा गया है. प्राणियूंके साथ ही सिंहके रास्तेसे पीछे गए, तो वहां मनुष्यूंने पर्वतके ऊपर देखा कि इस सिंहको किसी रींछने मार डाला है, क्यूंकि वहां रींछके पैरूंके चिह्न देखनेमूं आ रहे थे।।१८।।

आभासार्थ : 'ऋक्षराजबिलं' श्लोकसे कहते हैं कि भगवान् रींछको ढूंढ़नेमूं प्रवृत्त हुए :

ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसावृतम्।
एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः।।१९।।

श्लोकार्थ : रींछूंके राजाकी गुफा बड़ी भयंकर और अन्धकारसे व्याप्त थी, इसलिए प्रजाको बाहिर ही खड़ी रख, आप अकेले प्रविष्ट हुए।।१९।।

व्याख्यार्थ: यद्यपि भगवान् बिलमूं भक्तकेलिए गये थे तो भी, लोकमूं यह जतानेकेलिये, कि भगवान्‌ने मणिकी प्राप्तिकेलिए कष्ट भी किया है. रींछ प्राकृत पशु है, जिसकेलिए भगवान् वहां क्यूं गये? इस शंकाका निवारण करते हैं

कि वह साधारण पशु नहीं है, किन्तु रींछाका राजा है. राजा महान् ही होता है. दूसरे किसीको क्या नहीं भेजा? इसके उत्तरमा कहा है कि वहां दूसरा कोई जा नहीं सकता था, कारण कि गाढ़ अन्धकारसे वह बिल व्याप्त था, जिससे अतःकरण तथा इन्द्रियाकी वहां प्रवृति नहीं हो सकती है. घोर अन्धकार है, कारण कि वहां कभी भी सूर्यका दर्शन नहीं होता है, जिससे सूर्यके प्रकाशसे वह स्थान रहित है, इस कारणसे मणिने भी वहां प्रकाश नहीं किया, यों सूचित किया. भगवान् अपनी दयालुता प्रकट करते हुए अन्याको बाहर ही ठहराकर, स्वयं प्रविष्ट हुए, बाहर ठहरने वालाकेलिये 'प्रजा' पद देकर यह सूचित किया है कि वह साधारण असमर्थ और अनियामक थी, इसलिये भगवान्को ऐसे स्थान पर जानेसे रोका नहीं. जो साधारण थे, वे तो लौट गये, इसलिये प्रजाको बाहर ही ठहरानेका कहा है, किसी दोष हो जाने पर समुदायमासे प्रायश्चित्त एक ही करता है, यह नियम है, इस नियमके पालनार्थ भगवान् एक ही प्रविष्ट हुए, यादव भी भगवान्की इच्छासे अथवा अपकीर्तिसे शंकित हो, भगवान्के साथ प्रविष्ट न हुए।।१९।।

आभासार्थ: 'तत्र दृष्ट्वा' श्लोकसे कहते हैं कि वहां प्रविष्ट हुए भगवान्ने मणि देखी :

तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम्।
हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके।।२०।।

श्लोकार्थ: वहां बालकने मणिको अपना खिलौना किया है, यह देख, उसको लेनेका विचारकर भगवान् बालकके पास खड़े हो गए।।२०।।

व्याख्यार्थ : श्लोकमा 'मणिश्रेष्ठ' पद देनेका भावार्थ प्रकट करते हुए आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि यद्यपि वहां नागलोकको दूसरी भी अनेक दिव्य मणियां थीं, जिससे स्यमन्तक मणिकी पहचान कठिन थी, तो भी यह स्वतः ही उत्तम थी, जिससे लौकिक प्रकारसे भी यह पहचानी जा सकती थी, इसलिये इसको मणि श्रेष्ठ कहा गया है. या है, तो भी ऐसी मणि तो गुप्तस्थानामा रखी जाती है, तो भगवान्ने लौकिकरीतिसे कैसे देख ली? इसके उत्तरमा कहा है कि 'बालक्रीडनकम्' बालकाके क्रीड़ाकेलिये ऊपर बांध रखी थी. अन्य पुराणामा तो ऐसी कथा है कि जब भगवान् वहां पधारे तब धात्री बालकको लालन करती हुई कहती थी, 'सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः, सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः', सिंहने प्रसेनको मारा, फिर जाम्बानने सिंहको मार डाला. हे

सुन्दर कुमार! तू रो मत यह स्यमन्तक तेरी है, ये शब्द सुनकर, लौकिक प्रकारसे भी जान लिया. अपकीर्तिका निराकरण करनेकेलिए यह मणि हरण करनी चाहिये, ऐसा स्वभाव तो इनका नहीं हो सकता है, पर उसका उपयोग भी करना नहीं है. बालकको तो शब्द मात्रसे प्रसन्न किया जा सकता है, मणिसे धनकी प्राप्ति तब हो, जब उसकी पूजा की जाए. पूजाके अभावसे धन भी उत्पन्न नहीं होता है, सुवर्णसे भी उपभोगका अभाव है. आप अक्लिष्टकर्मा हैं, इसलिये पामरसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं थी, इसलिये स्वयं ही मणिके हरणका विचार करने लगे, यों विचार करनेके बाद परिश्रम न हो इसलिये सर्व सामग्री तैयार कर ली. पहले भगवान् बालकके पास मौन धारणकर, कितने समय खड़े रहे, किन्तु वहांसे मणि लेकर नहीं निकले. चोरीसे जीवन बुरे मार्ग पर जाता है, जिससे महान् हो, चाहे भक्त हो, वह विषयासे आसक्त होनसे प्राकृत हुआ, अतः उसके सम्बन्धसे तदीय भी प्राकृत हो गये।।२०।।

आभासार्थ : भगवान्को देखकर, वह दाई, जो बालककी रक्षा कर रही थी, उससे सद्बुद्धि न होनेके कारण और इस कामसे आग्रह होनेसे बिना विचार आक्रोश (चिल्लाने लगी) करने लगी, जिसका वर्णन 'तमपूर्वं' श्लोकसे करते है:

तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत्।
तच्छ्रुत्वाभ्यद्रवत्क्रुद्धो जाम्बवान् बलिनां वरः।।२१।।

श्लोकार्थ : दाईने उस अपूर्व नरको देख, डरे हुएके समान चिल्लाया, वह चिल्लाना सुनकर बलवानोंसे श्रेष्ठ, क्रोधित जाम्बवान् भगवान्के निकट आया।।२१।।

व्याख्यार्थ : देव आदिसे कोई एक होवे, तो वाणीका स्तम्भन भी कर दे, किन्तु भगवान्ने ऐसा किया नहीं, भगवान्का क्लिष्टकर्म जानकर, समझने लगी कि यह कोई मनुष्य है, अथवा यह 'नर' शब्द आकृतिके कारण कहा गया है. सुखी भी कभी चिल्लाहट करता है, यह चिल्लाना वैसा नहीं था, किन्तु यह माया हुआ, पुत्रको मारेगा, इस विचारसे. यद्यपि जाम्बवान् महान् होनेसे निर्भय था, तो भी डरे हुएके समान चिल्लाने जगा, कारण कि दाई बालककी रक्षा कर रही थी. यद्यपि स्वयं भीतरी अन्य कार्योंसे रुका हुआ था तो भी दाईका वाक्य सुनकर भगवान्के पास आ गया. वाक्य सुनते ही इसको क्रोध उत्पन्न हुआ, क्योंकि यह विचार होने लगा, मेरे घरसे रखी हुई मणिको लेनेकेलिए यह कौन है? जो मेरे

घरके भीतर आ गया है, जाम्बवान्केलिये रामायणमृ प्रसिद्ध हैं, कि बड़ा बुद्धिमान् है, वैसा बुद्धिमान् होकर भी, बिना विचार किये आ गया, याृ आनेका कारण बलका अभिमान था, इसलिये श्लोकमृ 'बलिनां वरः' बलवानृामृ श्रेष्ठ कहा है, बली भी इसका वरण करते हैं ।।२१।।

आभासार्थ : ऐसा समझदार होते हुए भी कालादिके वश हो जानेसे अज्ञ बन गया, जिससे भगवान्के साथ युद्ध करने लगा, जिसका वर्णन 'स वै भगवता' श्लोकमृ करते हैं :

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः ।
पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित्।।२२।।

श्लोकार्थ : वह जाम्बवान् निश्चयसे, उनके प्रभावको न समझ, प्राकृत मनुष्य मानकर, अपने स्वामी उन भगवान्से युद्ध करने लगा।।२२।।

व्याख्यार्थ : जाम्बवान् स्वयं प्रसिद्ध था, अतः इस प्रकार भगवान्से युद्ध करनेसे अपकीर्तिको प्राप्त होगा, यह सूचित किया. यह सूचना साधारण नहीं है, किन्तु निश्चयपूर्वक है, जीवको भगवान्की आराधना शरीरसे करनी चाहिये, उसमृ भी अपने स्वामी उपास्य रूपकी तो करनी ही चाहिये. 'तेन' पदसे यह दिखाया है, जाम्बवान्का उपास्य जो रघुनाथ हैं, वे कृष्ण ही हैं, अतः उसी सकल सामग्रीको लेकर यहां आये हैं. जैसे वही लक्ष्मण बलराम है, वही सीता रुक्मिणी है, वे बन्दर यादव है, वह ही अयोध्या अब द्वारकापुरी है, वह सरयू गोमती है, जब याृ है, तब जाम्बवान् अपने उपास्यसे कैसे लड़े? इस पर कहते हैं कि प्रकृतिके अधिष्ठाताको प्राकृत समझा, न कि पुरुषोत्तम जाना. वह जाम्बवान् महान् बुद्धिमान् है, उसको ऐसा अज्ञान कैसे हुआ? क्रोध ऐसी वस्तु है जो ज्ञानीको अज्ञानी बना देता है, यह भी क्रूर था, अतः क्रोधके कारण प्रभावको न जान सका. अलौकिककी पहचान न हो सकी, भगवान्ने जो गोवर्धन धारणकर अपना प्रभाव दिखाया था, वह इसने न देखा और न सुना था, क्याृकि एक तो सत्संगका अभाव था, अर्थात् सत्संग नहीं किया था तथा दूसरा बिलमृ भी रहता था, जिससे माहात्म्य जान न सका था, अतः माहात्म्यका ज्ञान न होनेसे, कोपके आवेशसे और यह मेरा स्वामी है, इस अज्ञानसे लड़ाई करने लगा. भगवान् तो अक्लिष्टकर्मा हैं, अर्थात् भगवान्को किसी भी कार्य करनेमृ परिश्रम तो होता ही नहीं है, इसलिये कुछ न कहकर ही स्वयं युद्ध करने लगे. भगवान्की उत्तराधकी लीलाको प्रकृति[१] तथा काल[२] आदि[३]

सहन न कर सके. उनकी[४] पीड़ाकेलिए जैसे पुरुषको छोड़, सत्ताईस तत्त्व कठिनताका त्याग करते हैं, वैसे ही सेवकृके किये हुए मुष्टि प्रहारृसे चलनेमृ पैरृकी तरह कोमल किये, यों कोई एक कहते हैं. दूसरे कहते हैं कि बहुत समयसे मल्लयुद्ध लड़नेकी चाहना थी इसलिये यृ किया. रामावतारमृ श्रीरामचन्द्रजीने इसको वरदान दिया था, तेरी सेवा ग्रहण करूंगा, तब जाम्बवान्ने फिर प्रार्थना की कि मेरा बल तो व्यर्थ ही चला जायेगा. तब भगवान् रामने कहा, बुद्धि अब प्रकट कर, अर्थात् बुद्धिसे सेवा अब कर, उसको अब स्वीकार करूंगा. शेष बल पीछे प्रकट करना, अर्थात् बलकी सेवाकी स्वीकृति कृष्णावतारमृ करूंगा, क्यृकि तेरा ऐसा उत्कृष्ट पराक्रम है, जो कोई भी जीव सहन न कर सकेगा, अतः उसमृ स्थापित ज्ञानशक्तिको रामावतारमृ ग्रहणकर, अब बल-शक्ति द्वारा पूजा ग्रहणकर, उसकी मुक्ति करृगे, इसलिये ही भगवान्का यह उद्यम है।।२२।।

१.'प्रकृति' शब्दका तात्पर्य है लोक धर्मका अनुसरण करना. २.सत्ताईस नक्षत्रृको यहां 'काल' कहा है. ३.'आदि' पदसे कर्म और स्वभाव समझने चाहिए. ४.भगवान्ने जो सेवक पर मुष्टि प्रहार किये, तत्त्वृके पीड़ाकेलिए युद्ध किया है, जिसका कारण सत्ताईस तत्त्वृकी कठिनता छुड़ाना है.

आभासार्थ : ग्रह आदिके वशसे जीत नहीं होती है, इसलिए किसीको शंका होती हो, तो उसके मिटानेकेलिए समस्त नक्षत्रृमृ निरन्तर युद्ध करने लगे, जिसका वर्णन 'द्वन्द्वयुद्धं' श्लोकमृ कहते हैं :

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः।
आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्याथे श्येनयोरिव।।२३।।

श्लोकार्थ : जीतनेकी इच्छावाले उन दोनृको आयुध, पत्थर, वृक्ष, द्रुम और भुजाओंसे भारी भयंकर द्वन्द्व लड़ाई वैसे होने लगी, जैसे क्रव्य(मांस) केलिए बाज पक्षियृमृ आपसमृ होती है।।२३।।

व्याख्यार्थ : दोनृकी लड़ाई अच्छे प्रकारसे होने लगी. यह लड़ाई नरृकी तरह दिखावा मात्र नहीं थी, किन्तु वास्तविक घोर युद्ध था. सारा बल जिस युद्धमृ लगाया जावे, उसको 'तुमुल' युद्ध कहा जाता है, ऐसी भारी लड़ाईका कारण यह था कि दोनृ चाहते थे, कि हमारी जीत होनी चाहिये, किन्तु भगवान्के प्रहारसे शीघ्र दुःखी हो गया, लड़ाई बन्द हो, ऐसी इच्छा जाम्बवान्को होने लगी. तो युद्ध क्यृ किया? जीतनेकी इच्छासे किया, परन्तु वह इच्छा, अज्ञानसे उत्पन्न हुई थी.

भगवान्ने तो समझ लिया कि मैंने जीत लिया, मेरा सेवक ही मेरे स्वरूपको जान सकता है. अथवा यह भगवान् है, या जतानेकेलिए कहता है, कि मैंने अज्ञानसे जीतनेकी इच्छा की थी. अब युद्ध बन्द होना चाहिये, भगवान्ने मुझे जीत लिया. उस युद्धमा युद्धके साधन अनेक थे. पहले तो अनेक प्रकारके आयुध थे, कोई तो या कहते हैं कि जाम्बवान् बड़ा योद्धा था, इसलिये उसके पास इतने बहुत आयुध थे, जो भगवान्को भी स्वयं आयुध देता था और कहता था कि अब लड़ो. दूसराका कहना है कि नहीं, जैसा शस्त्र जाम्बवान् लेता था, वैसा शस्त्र भगवान् प्रकट करते. वास्तवमा वस्तु स्थिति ऐसी होती थी, कि जो शस्त्र जाम्बवान् भगवान् पर फैकता था, उसीको लेकर भगवान् प्रहार करते थे. पत्थर तथा पेड़ तो सुलभ मिल जाते थे, वे सब टूट जाते, तब भुजाओसे युद्ध करते थे. इस युद्ध करनेकी विधि क्या है? जिसका उत्तर दृष्टान्त द्वारा दिया है, जैसे मांसकेलिये बाज पक्षी लड़ते हैं, वे जब तक मांस अपनेको न मिला है, तब तक लड़ते है, वैसे ही यहां जब तक मणिकी प्राप्ति न हो जाय, तब तक लड़ते रहना. कच्चा मांस बाज पक्षियाको जीवनकेलिये अवश्य अपेक्षित है, वैसे ही भगवान्को अपना कलंक मिटानेकेलिये मणिकी अवश्यकता अपेक्षित है. कलंक मिटकर सत्यरूप शोभा तब बढ़ेगी, जब यह मणि विजयसे प्राप्त की जायेगी. इस प्रकारके मोहके कारण ही भगवान्को मणि अपेक्षित है. बाज जाति और श्रृगालको क्षुधासे पीडा नहीं होती है. अथवा क्षुधा और पीड़ा नहीं होती है. इस प्रकार बहुत अर्थोंकी समानता देखकर 'श्येनौ' दृष्टांत दिया है।।२३।।

आभासार्थ : 'आसीत्' श्लोकसे युद्ध कितने दिन चला, सो बताते हैं :

आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः।
वज्र निष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम्।।२४।।

श्लोकार्थ : वज्रके प्रहारसे भी कठोर मुक्काओसे विश्राम लिए बिना दिन – रात अट्ठाईस दिन तक परस्पर दोनाा लड़ते रहे।।२४।।

व्याख्यार्थ : अट्ठाईसवा दिन, जाम्बवान्को ज्ञान हुआ कि यह तो मेरे उपास्य स्वरूप हैं, वह दिन भी फलरूप होनेसे युद्धमा गिना गया है. वास्तवमा उसी दिन लड़ाई नहीं हुई है, वज्रके प्रहारसे भी कठोर घुसाओसे जो इतने दिन लड़ाई, बिना विश्रामके दिन–रात चली, वह 'तुमुल', भारी लड़ाई हुई. कालने रात्रि विश्रामकेलिये बनाई है, किन्तु वह कालकृत विश्राम भी न लेकर लड़ते रहे. जब

तक वह प्रहार करे, उससे पहले भगवान् कर देते. वह भगवान्का प्रहार बलरूप हो जानेसे वज्र गिरनेसे भी कठोर होता था, वे दोनॄ तुल्य होनेसे, विश्राम नहीं लेना चाहते थे, यॄ होते हुए भी एकका भी पराजय न हो सका, जिसका कारण यह था कि जाम्बवान् भक्त था, इसलिये भगवान् उसको मारना नहीं चाहते थे. भगवान्का तो अशक्य ही है, अतः दोनॄ वैसे ही रहे और लड़ते रहे. इस विषयमॄ एक विरुद्ध कथा हरिवंशमॄ कही गई है, कि भगवान्ने जब जाम्बवान्के बिलमॄ प्रवेश किया, तब वसुदेव आदि लौटकर, द्वारका आ गये, वहां कहने लगे कि कृष्ण मर गये हैं. यह कथा महामायाके उपस्थानसे आगे कही गई है. इससे यह विरुद्ध होनेसे उपेक्षा करने योग्य है. दूसरे इस प्रकार समाधान करते हैं कि कथा दूसरे किसी कल्पकी है. सप्तविंशात्मक काल पूरे होने पर उसका कालकृत बल भी पूरा हो गया. प्राकृत बलके पक्षमॄ भी अट्ठाईस प्रकारका उसका बल था।।२४।।

आभासार्थ : प्रकृति काल आदिका प्रकार गया और जब पुरुष प्रकार आया तब ही उसको विवेक आया, जिसका वर्णन 'कृष्णमुष्टि' श्लोकमॄ करते हैं:

कृष्ण मुष्टि विनिष्पात निष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः।
क्षीण सत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः।।२५।।

श्लोकार्थ : श्रीकृष्णके घूंसॄके प्रहारसे उसके अङ्गॄके सब बन्धस्थल शिथिल हो गए और बलशक्ति क्षीण हो गई, शरीर पसीनेसे भर गया, तब जाम्बवान् अचम्भेमॄ आ, उनसे कहने लगा।।२५।।

व्याख्यार्थ : जाम्बवान्का बल क्षीण हो गया, किन्तु भगवान्का बल क्षीण न हुआ. अनन्तर थोडे भी प्रहारसे उसके अंगॄके बन्धन ढ़ीले पड़ गये, जिससे सर्व अवयव शिथिल हुए, हाथ-पैर टूट गये, पश्चात् अशक्त हो, यह कौन है? इस प्रकार जाननेकी इच्छा की. बाहर तथा भीतरकी शक्ति जानेसे निर्बल हो गया, जिससे समग्र शरीर पसीनेसे व्याप्त हो गया. विवेक, धैर्य सहित अन्तःकरण क्षीण हुआ, अङ्गॄमॄ पसीना आ जानेसे शरीर भी कमजोर हो गया, वैसी स्थिति आ जानेसे विशेष प्रकारसे अचम्भेमॄ पड़ गया, विचार करने पर देखा कि इससे मिलाप आदि किया है तो यह प्राकृत धर्मोंसे जीव जाना जाता है, किन्तु कोई भी जीव मेरे समान भी बलवाला नहीं है, यह तो मुझसे भी अधिक बलवाला कैसे हुआ, यह अचम्भा है. यदि भगवान् है तो इस प्राकृतरूपसे कैसे आए? दोनॄ, परस्पर विरुद्ध

देख, बहुत ही अचम्भेमॄ पड़ गया।।२५।।

आभासार्थ : पश्चात् विरोध कैसे मिटे? इसका विचार करने पर ध्यानमॄ आया कि भगवान्की लीला करनेके समय प्राकृताॄकी भांति चेष्टा हो सकती है, यह निश्चय कर लिया, क्याॄकि उनका विशेष बल तो प्रत्यक्ष देख लिया, अतः यह भगवान् ही हैं, याॄ जानकर इससे पराजय होना मनको विशेष पीड़ा नहीं करनेवाली है, याॄ जताते हुए भगवान्की स्तुति 'जाने त्वां' से तीन श्लोकाॄ द्वारा करता है :

जाम्बवान् उवाच

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण–ओजः सहो बलम्।
विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम्।।२६।।
त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत्।
कालः कलयतामीशः परमात्मा तथात्मनाम्।।२७।।
यस्येषदुत्कलित रोषकटाक्ष मोक्षै–
वर्त्मादिशत् क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः।
सेतुः कृतः स्वयश सोज्ज्वलिता च लङ्का–
रक्षः शिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि।।२८।।

श्लोकार्थ : मैं आपको जानता हूं, आप सब प्राणियाॄके प्राण, ओज, सह और बल हैं, तथा विष्णु, पुराणपुरुष, उद्भवकर्ता और सर्वके नियन्ता कालरूप भी हैं, आप विश्वकी रचना करने वालाॄके भी सृजन करनेवाले हैं, जो रचे हुए सत् पदार्थ हैं, वे भी आप ही हैं. नाश करनेवालाॄके भी कालरूप आप हैं, आत्माके परमात्मा भी आप हैं. जिनके स्वल्प ही उद्दीपित क्रोध भरे कटाक्षाॄके पातसे समुद्रके नक्र और मगर जब क्षोभित हो गए, तब समुद्रसे मार्ग दिया, अनन्तर समुद्रमॄ पुल बांधी, अपने यशसे लंकाको प्रकाशित किया, बाणाॄसे राक्षसाॄके सिर पृथ्वी पर गिराये, वे रामचन्द्र प्रभु आप हैं।।२६ – २८।।

राजसैः सात्त्विकैश्चैव तामसैस्तन्निभैर्गुणैः।
सम्पूर्णैः सहितो विष्णुर्भगवानेव न चान्यथा।।१।।

कारिकार्थ : राजस, सात्त्विक और तामस, इन तीन सम्पूर्ण गुणाॄके प्रकाशसे युक्त यह भगवान् विष्णु ही हैं, दूसरा कोई नहीं है।।१।।

व्याख्यार्थ : जाम्बवान् युद्धसे कैसे निवृत्त हुआ? इसके उत्तरमॄ कहा है

कि प्रभुके स्वरूपको जब जान गया, तब निवृत्त हुआ. ज्ञानमार्गके अनुसार भी ज्ञान होता है. अतः कहता है. मैं आपको जानता हूं, कि आप सकल प्राणियोंके आसन्य प्राण हैं, उसका कार्य ओज अर्थात् इन्द्रियोंकी शक्ति भी आप हैं, अन्तःकरणका बल और शरीरका बल भी आप हैं. इस प्रकार सर्व प्राणियोंमें बलात्मा कार्य कारणसे जिसका वीर्य बांटा हुआ है, वह आसन्य आप ही हैं. इस तरह नरोंमें उत्तम कहकर अब कहता है कि पुरुषोत्तम भी आप हैं, क्योंकि पुराणपुरुष विष्णु हो. यों तो केवल विष्णु कहनेसे अधिकारी विष्णु समझा जाता, वैसा होते हुए भी लोकको प्रकट करने वाले तथा प्रकर्षसे भावित करने वाले होनेसे प्रभु विष्णु भी आप ही हैं, सबको नियममें रखनेवाले कालरूप भी आप हैं. पहले रूपभेदसे चार प्रकारकी क्रिया शक्तिका निरूपण किया. अब चार प्रकारसे ज्ञानशक्ति निरूपण की जाती है. ज्ञान चार प्रकारका है, एक नियामक, इष्टकी साधनता जताकर प्रवृत्त करने वाला, दूसरा फलदातापनसे स्थित, तीसरा निर्वाह करने वाला सर्वरूप, चौथा है, वह ज्ञानरूप अवरोह क्रमसे और अन्य पदोंसे निरूपित है।।२६।।

इस प्रकार भगवान्के पूर्ण ज्ञान-क्रिया-शक्तिवाले स्वरूपका निरूपण कर, अब उनके जगत्के जन्मसे लेकर मोक्ष पर्यन्त चारों कार्योंका निरूपण करता है कि विश्वकी रचना करने वाले तत्त्वोंका सृष्टा आप ही हैं. बने हुए कार्यरूप घट आदिका सत् स्वरूप आप ही हैं. यों कहनेसे स्थिति बताई. नाश करने वाले काल महादेव और यम आदिके भी कालरूप आप ही हैं. इस प्रकार सृष्टि-स्थिति-प्रलय कर्ता स्वरूपोंको कहकर, मोक्ष दाता होनेसे परमात्मा आप ही हैं, अर्थात् समस्त जीवोंकी परम आत्मा होनेसे फलरूप आप हैं. सारांश यह है कि सायुज्यस्थान आप हैं. आपकी परमात्मारूपसे सेवा करने वाले जीवोंको मोक्ष देनेवाले परम आत्मरूप आप मोक्षदाता हैं. अथवा सर्व भगवान् हैं, यों कहनेकेलिये सदंशसे उत्पत्ति आदि करनेवाले स्वरूप होनेसे भी आाप भगवान् हैं. चिदंश जीवका आप भगवान् ही आत्मा हैं, यों कहते हुए आत्मापनसे ही सबकी स्वरूपता सिद्ध हो गई. उनका नियामक अन्तर्यामीरूप भी आप भगवान् हैं, यो निरूपण करनेकेलिये कहता है, कि पररूप आप ही है, अर्थात् आपसे उत्तम वा पर कोई नहीं है, इस विषयमें सम्मत्तिकेलिये श्रुतियां ली हैं।।२७।।

इस प्रकार मूल स्वरूपके कार्योंका रूप वर्णनकर, जो ही राम मेरा

स्वामी, वही आप हैं. यों कहनेकेलिये, रामावतारके पराक्रमका वर्णन करता है. अल्प ही उभरा हुआ फूल सम क्रोध, वह भी बढा हुआ कली जैसा हो गया. वह भी मनमें ही उत्पन्न हो रहा था, थोड़ा भी क्रोध मनमें उत्पन्न होता है, तो दृष्टि भी वैसी हो जाती है. अर्थात् दृष्टि बदल जाती है. जिससे यह ज्ञान होता है, कि इसको क्रोध उत्पन्न हुआ है. श्रीरामकी दृष्टि पूर्ण क्रोधसे युक्त न थी, अतः कटाक्षरूप ही थी. फिर वे दृष्टिके अवयव, मोक्षरूप थे, यह जतानेकेलिये कटाक्षके मोक्षका निरूपण किया है. अर्थात् राम ऐसी स्थितिमें अपनी दृष्टिके कटाक्षको समुद्र पर फेंका, जिससे डरकर समुद्रने ही जब मार्ग दे दिया, तो चेतन जीव उनसे डरे, उसमें कहना ही क्या है? समुद्रने डरसे भगवान् रामजीको कहा कि यह मार्ग है, मेरे ऊपर मार्ग बनाकर आप निःसंकोच हर्षसे पधारिये. समुद्रको जानेका मार्ग दे देना चाहिये था? उपाय क्यों बताया? जिसके उत्तरमें कहा है, कि समुद्रने सोचा कि यदि रास्ता दूंगा, तो मेरे भीतर जो नक्र, मगर आदि भंयकर जीव हैं, वे उनको कष्ट देंगे, अतः मार्ग बता दिया अथवा समुद्रको संस्कृतमें 'अब्धि' नाम भी दिया है, वह इसलिये दिया है, कि इसमें निरन्तर पानी पैदा होता ही रहता है. यदि वहांसे रास्ता दिया जाता तो पानीकी उत्पत्तिमें रुकावट हो जाती, अतः रास्ता न देकर ऊपर पूल बान्धनेका उपाय बता दिया, जिससे मर्यादाकी भी रक्षा की गई. इस प्रकार उत्पत्ति होनेमें जलका स्वभाव भगवान्ने बनाया है. इस तरह अन्य प्रकारसे कर नहीं सकते, इसलिए भगवान्को ऊपर मार्ग बनानेकी प्रार्थना की है. अन्तरिक्षसे भी जाकर मारा जा सकता था. इस प्रकार मारनेसे राक्षसोंसे समानता हो जाती, इसलिए कुछ अलौकिक भी दिखाना, इस विचारसे पाषाणोंको ही समुद्रमें स्नान कराते तैराना योग्य ही है. यह निश्चयकर पत्थरोंसे पुल बनवाई, यों निरूपण किया है. यह पुल वानरोंने नहीं किन्तु भगवान्ने सिद्ध किया है. भगवान्ने तीन प्रकारसे चरित्र किया है. १.पुल बान्धना, यह राजस चरित्र है. २. रावणकी पुरीका वा रावणका दाह, यह सात्त्विक चरित्र है, शेष राक्षसोंका वध, यह तामस चरित्र है. अथवा जलकार्य सत्त्व, अग्नि कार्य राजस आसन्य कार्य तामस है. इन कार्योंके निमित्त होनेसे तीन गुणोंका क्रम है. श्रीरामने अपने यशसे लंका प्रकाशित कर दी, वा जलाई, इससे यह बताया कि रघुनाथने ही लंकाको जगत्में प्रसिद्ध किया, नहीं तो लंकाको कौन पहचानता था. जैसे अन्य राक्षस-स्थान लोकमें प्रसिद्ध नहीं, वैसे वह भी नहीं होती. बाणोंसे क्षत हो, राक्षसोंके सिर स्वयं पृथ्वी

पर गिर जाते, क्षत होते ही गिरनेका कारण भगवान्का सामर्थ्य ही है।।२८।।

आभासार्थ : जाम्बवान्ने जब इस प्रकार स्तुति की, तब भगवान्ने उसके टूटे हुए अंगृाको पहले जैसे सिद्ध कर दिये और उसको 'इति' श्लोकसे कहने लगे:

श्रीशुक उवाच

इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः।

व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः।।२६।।

श्लोकार्थ : हे महाराज! इस प्रकार जिस रींछृाके राजाको विशेष ज्ञान हो गया है, उसको देवकीके पुत्र अच्युत भगवान् स्पष्ट कहने लगे।।२९।।

व्याख्यार्थ : जिसको विशेष ज्ञान हुआ है, और जो स्वभावसे भी महान् है, क्यृाकि रींछृाका राजा है, अतः उस महान् ऋक्षराजको स्पष्ट कहने लगे. इसका प्रयोजन उत्तर श्लोकमृा कहा जाएगा, अथवा उसको जो पीड़ा हुई, उस पीड़ाको मिटा देनेकेलिये स्पष्ट कहने लगे. भगवान् जो स्पष्ट कहने लगे, वह स्पष्ट कहना, छलसे भी हो सकता है, क्यृाकि रींछने ऐसे कार्य किये हैं, जो निन्दाके योग्य है. इसका स्पष्टीकरण करते हुए परीक्षितको 'महाराज' सम्बोधन देकर, इस शंकाका निवारण करते हैं, कि सेवकके अपराधृाकी गणना नहीं की जाती है. आप राजा हैं इस बातको जानते ही हैं, स्पष्ट वचन क्यृा कहे? आज्ञा क्यृा न दी, इसका उत्तर देते हैं कि आप 'अच्युत' एवं 'भगवान्' ही होनेसे सर्वसमर्थ हैं अर्थात् आज्ञा करृा, वा स्पष्ट वचन कहृा, उनकी जैसी इच्छा हो, त्यो करृा. किञ्च देवकीके पुत्र हैं, वह स्वरूप तो भक्तृा पर कृपा ही करता है, अतः इनका स्पष्ट वचन कहना उचित ही है।।२९।।

आभासार्थ : स्पष्ट कहनेसे पहले ही उसका कल्याण किया, जिसका वर्णन 'अभिमृश्य' श्लोकमृा करते हैं :

अभिमृश्यारविन्दाक्ष पाणिना शंकरेण तम्।

कृपया परया भक्त मेघगम्भीरया गिरा।।३०।।

श्लोकार्थ : कमलनेत्र भगवान्ने परमकृपासे उस भक्त पर अपना कल्याण करनेवाला हाथ फेरा, और मेघकी गरजके समान गम्भीर आनन्द देनेवाली वाणीसे कहने लगे।।३०।।

व्याख्यार्थ : उनका इस प्रकार एक बार भी हाथ फिराना नित्य रहता है. सामान्य मनुष्य भी यदि यृा हाथ फिरावे तो वह भी उस समय ही देता है, तो

आनन्द मयका हस्त फिरे, तो उससे जो सुख होगा, वह कहा नहीं जा सकता है. उसमू भी जिस क्षणमू वह कल्याणकारी हस्त धरा, उस समयसे लेकर वह सुख वैसा हो, बढ़ता रहता है, यों उसकी जो पहले अवस्था थी, उससे भी अब विशेष सुन्दर अवस्था हो गई, अर्थात् भगवान्का, शरीर पर हाथका स्पर्श होनेसे उसके टूटे हुए अंग तो जुड गये, किन्तु पूर्वसे सुन्दर भी हो गये थे. न केवल अंग सुन्दर हुए, किन्तु मनकी व्यथा भी मिट गई, क्यूकि भगवान् 'अरविदाक्ष' हैं. जैसे कमलसे ताप मिटता है, वैसे भगवान् भी अपने कमल समान नेत्रूसे भक्तके भीतरी व्यथा, यानि तापको शान्तकर, सर्व प्रकार सुख देते हैं. कल्याणकर, हस्त धरनेसे आश्रय भी दिया,जिससे आगे सद् बुद्धि भी उत्पन्न होती रहे. इस प्रकार काया तथा मनसे सांत्वना देकर अब वचनसे भी सान्त्वना करते है. मेघसम गम्भीर वाणीसे सान्त्वना दी. जिसका भावार्थ यह है कि जैसे मेघ गर्जनाकर, बताते हैं कि हम वर्षा करूगे, सुभिक्ष होगा चिन्ता मत करो, यह गर्जना सुन, प्रजाके मनका ताप मिट जाता है, वैसे ही भगवान्की वाणीसे इसके ताप मिट गये. आज्ञा न कर, स्पष्ट कहा, यह उचित सा नहीं था, यों क्यू कहा ? इसका समाधान करनेकेलिये 'परया कृपया' पद दिया है, जिसका आशय है, कि परम कृपाके कारण यू किया है. कृपासे जो किया जाता है, वह उचित ही है, उसमू भी यहां परम कृपा है, जिसकेलिये क्या कहा जाय ? इससे मानस सान्त्वना भी कहा, समझा जा सकता है. 'तं' शब्दसे यह बताया है कि जिसने स्तुति की है, उसकी सान्त्वना करना उचित ही है. तीन प्रकारकी सान्त्वना कहनेका कारण यह है कि वह भक्त है।।३०।।

आभासार्थ : 'मणिहेतोः' श्लोकसे वह स्पष्ट वाक्य कहते हैं :

श्रीभगवान् उवाच

मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ।

मिथ्याभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना।।३१।।

श्लोकार्थ : हे रींछू के पति! हम यहां बिलमू मणिकेलिए आए हैं, क्यूकि हम पर जो झूठा कलंक लगाया गया है, वह इस मणिसे मिटाया जाएगा।।३१।।

व्याख्यार्थ : यहां आनेमू मणि कारण है, मणि लेनेकेलिये हम यहां आये हैं. बहुवचन इसलिये कहा कि पहले अपने साथ जो सब आये थे, उनकी सूचना

दी. 'हेतु' शब्द निमित्तवाची है, अर्थात् मणिके निमित्त, हम आये हैं. हे ऋक्षपति! यहां मणि है, यह जानकर ही हम यहां आये हैं, यह कारण नहीं होता तो हमारा इस बिलमृ आना नहीं होता. मणि लेनेका भी प्रयोजन बताते हैं. यों भी आप न समझना कि मणि इतना सोना देती है, इस लोभसे आये हैं, वह प्रयोजन नहीं है. धन आदिकी लालसा हमको बिलकुल नहीं है, किन्तु हम पर मणि ले जानेका झूठा कलंक लगाया गया है कि मैंने सत्राजितके भ्राता, प्रसेनको मारकर मणि ले ली है. इस नहीं किये हुए कार्यका आरोपण झूठा कलंक लगाया गया है. यह अपकीर्ति सर्वत्र हो रही है. लोक तो सत्यको जानते नहीं हैं, देखे हुएको प्रमाण मानते हैं, अतः यह मणि ले जाकर, सारी कहानी सुनाके, अपना कलंक मिटाऊंगा, इसलिये ही हमारा आना हुआ है. यद्यपि आगे झूठी निन्दा मिट जाती, तो भी कार्य प्रारम्भ किया है, इसलिये वर्तमान प्रयोग करना ही योग्य है. एकवचन इसलिये दिया है कि झूठी निन्दा एककी हुई है. 'आत्मनः' पद आवश्यक था, क्यृाकि मेरी ही निन्दा हो रही है, नहीं तो भक्तका उद्धार ही न हो सकता, यृा भी है।।३१।।

आभासार्थ : इस प्रकार जब भगवान्ने अपना अभिप्राय स्पष्ट कह दिया तब जाम्बवान्ने विचार किया कि इनको मणि किस प्रकार दूं? केवल मणि देनेसे तो मेरा सेवकपन सिद्ध न होगा, अतः मांगनेवालेको सब ही देना चाहिए, यह निश्चय कर, मणि तथा अपनी कन्या भी दी, यह 'इत्युक्तः' श्लोकमृ शुकदेवजी वर्णन करते हैं :

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा।
अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह।।३२।।

श्लोकार्थ : श्रीशुकदेवजीने कहा, भगवान्ने जब यृा कहा, तब जाम्बवान्ने प्रसन्नतासे अपनी जाम्बवती कन्याको लाकर कृष्णके पास स्थापित की और पूजार्थ मणि भी दी।।३२।।

व्याख्यार्थ : जाम्बवान्की सन्तति 'जाम्बवती', इस प्रकार नाम होनेसे यह कन्या जाम्बवान्की केवल पाली हुई नहीं है, किन्तु उत्पन्न की हुई है. रींछृाकेलिये कन्याका विवाह करानेका कोई विधान नहीं है, अतः दान ही की. वह कन्या पहले कहीं दी हुई नहीं थी. अप्रसन्न होकर नहीं दी, किन्तु देनेसे प्रसन्न

ही हुआ, कारण कि समझने लगा कि मेरा सौभाग्य है, जिससे कन्याको ऐसा श्रेष्ठ वर मिल गया और मैंने भी भगवान्का पूजन किया. अनन्तर जब कन्याका दान भगवान्को देने लगा तब पूजनके निमित्त मणि भी भगवान्को अर्पण की. ये दोनूं, हाथमूं कुश और जल लेकर भगवान्को नहीं दी थी, किन्तु भगवान्के समीप आकर भूटकी भांति धर दी।।३२।।

आभासार्थ : इसी भांति भीतरकी दशाको कहकर, अब बाहरकी हालतका वर्णन 'अदृष्ट्वा' से लेकर तीन श्लोकोंसे करते हैं :

अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ।
प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः।।३३।।
निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः ।
सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात् कृष्णमनिर्गतम्।।३४।।
सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ।
उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये।।३५।।

श्लोकार्थ : भगवान्के संग गए हुए मनुष्य, गुफामूं न जाकर बाहर खड़े थे. भगवान् अकेले ही भीतर गए, संगी मनुष्य भगवान्के लौट आनेकी प्रतिक्षामूं बाहर खड़े रहे. जब १२ दिन तक भगवान् बाहर नहीं आए, तब दुःखी हो, अपने पुरको लौट गए. उन्होंने जाकर भगवान्का बाहर न आनेका समाचार सबको सुनाया. वसुदेव, देवकी, देवी रुक्मिणी, मित्र और बान्धव, कृष्णका बिलसे बाहर न आना सुन, शोक करने लगे. वे दुःखी हुए द्वारकावासी सत्राजितको शाप देने लगे, इस प्रकार उसको गाली – गलोच करते हुए कृष्णकी प्राप्तिकेलिए महामाया दुर्गाके पास गए।।३३ – ३५।।

व्याख्यार्थ : द्वारकावासी जो बाहर खड़े हो गये थे, उन्होंने सोचा था कि भगवान् उसी दिन ही लौट आयूंगे, किन्तु भगवान् जब उस दिन नहीं लौटे, तो दूसरे दिन सोचा कि कल नहीं आए तो आज तो आ ही जाएंगे, यों निरन्तर आकांक्षा करते हुए उनको वहां बिना भोजनके बारह दिन बीत गये, इतने दिन निराहार रहनेसे उनके बारह अंग शिथिल हो गये, जिससे उनका विवेक जाता रहा. भगवान् भी शूरवंशमूं उत्पन्न हुए हैं, इसलिये उनके स्वभावको न जान सके थे, जिससे दुःखी हो. बारह दिन उनकी राह देखकर अनन्तर अपने पुर अर्थात् द्वारका चले गये. 'संवत्सरप्रतिमा वै द्वादशरात्रयः', इस वाक्यानुसार बारह रात्रियां

भोजनके बिना संवत्सरके समान है.

जो साथ नहीं आये थे, और द्वारकामृ ही स्थित थे, वे भी भगवान्का बिलसे बाहर न आना सुनकर दुःखी हुए, जिसका वर्णन 'निशम्य' श्लोकमृ हुआ है. पुरुषृसे स्त्रियृमृ अविवेक विशेष होता है, उसमृ भी फिर पुत्रका स्नेह अधिक अविवेक करता है, इसलिये पहले देवकीसे प्रारम्भ किया है. सम्बन्धमृ तीन मुख्य होते हैं, माता, पिता और स्त्री. दूसरे भी सुहृद, मित्र, सम्बन्धी ज्ञातिवाले और गोत्र वालृसे भी सम्बन्ध होता है, अतः वे सब भी कृष्णका बिलसे बाहर न आना सुनकर शोक करने लगे. शोक करनेका कारण यह था कि वे वस्तुके तत्त्वृको नहीं समझते थे. श्रीकृष्ण तो भक्तृके हितकेलिये ही प्रकटे थे, अतः कैसे विलम्ब किया है? इस प्रकार सर्वका राजस शोक और दुःख कहकर, अब तामस और सात्त्विक कहते हैं. यह सत्राजित दुरात्मा है, जैसे प्रसेन मरा, वैसे यह भी मरे तो अच्छा, इस प्रकार शाप देने लगे. शाप देनेका कारण है, श्रीकृष्णके बाहर न आनेसे दुःखी होना. दुःखमृ इससे भी विशेष कारण, यह भी था कि द्वारकावासी थे. मथुरा छोड़कर देशके एक कोनेमृ द्वारका है, उसमृ जाके रहे थे. वहां इनके रक्षक श्रीकृष्ण ही हैं. उनके न आनेसे दुःखी होना उचित ही है. द्वारकावासी होनेसे, यह भी सूचना दी है, कि इन्हृने जो सत्राजितको शाप दिया है, वह सफल होगा. सात्त्विक दुःख कहते हैं, कि माया ही भगवान्के प्रकट होनेमृ बाधा डालती है. भगवान्ने उसको वर दिया है, कि तुझे सब पूजेंगे, अतः भगवान्ने जो वर दिया है, वह वर उनको ही सत्य करना है, इसलिए अन्य देवकी पूजाकी अपेक्षा भगवान्के आविर्भावकेलिए दुर्गाकी पूजा करनी चाहिये।।३३-३५।।

आभासार्थ: इसी तरह भक्तृके तीन प्रकारके दुःख देख, कृतकार्य भगवान् अपना आविर्भाव करने लगे, द्वारकावासियृके पंद्रह दिनका व्रत पूर्ण होते ही स्वयं प्रकट हुए, अपना वाक्य भी सत्य किया, जिसका वर्णन 'तेषां तु' श्लोकमृ करते है :

तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टा शिषासवः।
प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः।।३६।।

श्लोकार्थ: देवीके उपस्थान करनेसे ज्यृ देवीने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया, त्यृ ही कार्य सिद्धकर स्त्रीको भी संग ले, हरि भगवान् सबको आनन्दित करते हुए प्रकट हो गए।।३६।।

व्याख्यार्थ : जिसने अशीर्वादके साथ प्राण भी दिये, वह भगवान् स्वयं ही आ गये. देवीके उपस्थानसे जो आशीर्वाद मिला, उसके साथ भगवान्ने प्राण भी दिये, अथवा देवीके उपस्थानसे प्राप्त आशीर्वादसे यज्ञरूप भगवान् प्रादूर्भूत हुए. किसी पुस्तककी प्रतिमृ 'प्रत्यादिष्टाशिषां सर्वे' पाठ है, वह विचारणीय है. वा राजाके प्रति कहता है कि आप भक्तृके वह कार्य करने वाले भगवान् अपना कार्य पूर्णकर, प्रकट हुए हैं, अथवा दुर्गाके आशीर्वादका निराकरण करके दी हुई आशीर्वादसे सर्वके कामनाॠके पूर्ण करनेवाले यज्ञरूप आप ही प्रकट हुए हैं. स्यमन्तक मणिको ले आनेसे अपना अर्थ सिद्ध किया है. हर्ष उत्पन्न करते थे, क्यृकि केवल मणि नहीं ले आये, किन्तु साथमृ स्त्री भी ले आये हैं, और सर्व आभरणृसे अलंकृत थे, एवं भोजन आदिसे पुष्ट होकर आये थे. ग्लानि युक्त नहीं थे, कारण कि सर्व दुःख हर्ता हरि हैं।।३६।।

आभासार्थ : 'उपलभ्य' इस श्लोकमृ कहते हैं कि भगवान्की प्राप्तिसे परम आनन्द हुआ :

उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम्।
सहपत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः।।३७।।

श्लोकार्थ : मानो मरकर, पीछे आए हो, ऐसे श्रीकृष्णको कण्ठमृ मणि धारण किए हुए तथा स्त्रीको संगमृ लेकर आनेको पाकर सब लोग बड़े आनन्दमग्न हो गए।।३७।।

व्याख्यार्थ : लोकिकभाषामृ यदि असभ्य दृष्टान्त भी दिया जाये, तो दोष नहीं है. ससुरने ही वह मणि कण्ठमृ बान्धी थी, अतः उसके ही आग्रहसे यह मणि अपनी ही है, यों जनाते हुए स्त्री सहित 'मणिग्रीव' होकर आप स्वतः आ गये. आनेमृ केवल अपयशका मिट जाना नहीं है, किन्तु इससे सम्बन्धी तथा भक्तृका आपसे निरोध भी हुआ है, जिससे सब अत्यन्त प्रसन्न हो, उत्सव मनाते हुए आनन्दमय हो गये. भगवान् इन्द्रियृके स्वामी हैं, इसलिये उनको वैसी ही प्रेरणा की।।३७।।

आभासार्थ : भगवान् इस प्रकार मणिको प्राप्त कर भी, उपक्रम बलवान् होनेके कारण, मणि ले आनेकेलिए उद्यम करने लगे, इसलिए वह लाई हुई मणि सत्राजितको ही दे दी, जिसका वर्णन 'सत्राजितं' श्लोकमृ करते हैं :

सत्राजितं समाहूय सभायां राजसंनिधौ।

प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत्।।३८।।

श्लोकार्थ : श्रीकृष्णने सत्राजितको राजाके समीप सभामृ बुलाकर मणि कैसे लाए हैं, वह सब समाचार सुनाकर मणि उसको दे दी।।३८।।

व्याख्यार्थ : भगवान् पहले ही जो विचार कर लेते हैं, वह ही करते हैं. यह स्यमन्तक मणि, सत्राजितकी है, जिससे उसको किसी भी भांति अपनी नहीं मानते है. इस कारणसे मिलने पर भी आप ग्रहण नहीं करृगे. निबन्धमृ तो दूसरा ही हेतु कहा है.

सर्वात्मनान्यहृदयं न गृह्णाति हरिः स्वयम्।
सर्वात्मनाऽप्रपन्नं च नाशायेव सुयोधनम्।।कारि.१।।

कारिकार्थ : भगवान् आप जिसमृ दूसरेका चित्त आसक्त है, वह वस्तु बिलकुल किसी प्रकार भी स्वतः नहीं लेते हैं, जो सर्वात्मभावसे शरण नहीं आया है, उसका तो दुर्योधनकी भांति नाश ही होता है।।१।।

व्याख्यार्थ: सत्राजितको सभामृ बुलाया. वह दुरात्मा है. लज्जा आनेसे दूसरी तरह कहने लगेगा, उसमृ भी राजाके सम्मुख निर्भय होकर, कहेगा, जैसे राजा भी न ग्रहण करृगे और आज्ञा भी न करृगे. प्राप्तिका उपाय स्पष्टरीतिसे बताया, जिससे मणि पर उसकी सत्ता नहीं है, यह सिद्ध कर दिया. फिर भी मणि उसको दे दी. यद्यपि भगवान् अपनी इच्छावाले हैं, मार भी सकते हैं, किन्तु मारा नहीं, किन्तु मणि निवेदन की, अर्थात् कहा कि यह मणि तुम्हारी है, तुम ले लो. इस प्रकार देनेके गुप्त भावार्थको किसीने भी समझा नहीं।।३८।।

आभासार्थ : अनन्तर उसका कृत्य 'स चातिव्रीडितः' श्लोकसे पांच श्लोकामृ कहते हैं :

स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः।
अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना।।३९।।

श्लोकार्थ : अनन्तर वह अति लज्जित हो, नीचे मुख कर, मणि ले, अपने अपराधके कारण सन्तप्त होता हुआ, घरको गया।।३९।।

व्याख्यार्थ : उसको मणि लेनेमृ लज्जा आने लगी, किन्तु लोभसे अथवा दण्डके भयसे मणि ली. मैंने लोकमृ भगवान्की वृथा निन्दा करवाई, जिससे मुख नीचा कर दिया. पहले कहे हुए अपकीर्ति कराने वाले हेतुसे पश्चात्ताप भी करने लगा. अतः इस प्रकार किये हुए पापकर्मको प्रायश्चित्तरूप पश्चात्ताप करने पर

परलोककी शुद्धि होगी, यह जनाया है. वहां उसका कोई भी बन्धु नहीं था. इसलिये किसीसे भी पूछे बिना, अपने ही घर गया. मणि प्राप्त होनेसे तो संतोष होना चाहिये, प्रत्युत इसने पश्चात्ताप कैसे किया? इसके उत्तरमृ कहा कि अपने किये हुए भगवदपराधके स्मरणसे पश्चात्ताप हुआ. अन्य देवकी प्रसन्नताकी अपेक्षा भगवदपराध महान् है।।३९।।

आभासार्थ : बलवान्से विग्रह करनेसे व्याकुल हो, उस ही कर्मका ध्यान करने लगा, जिसका वर्णन 'सोऽनुध्यायन्' श्लोकमृ करते हैं :

सोऽनुध्यायंस्तदेवार्थं बलवद्विग्रहाकुलः।
कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाच्युतः कथम्?।।४०।।

श्लोकार्थ : बलवान् श्रीकृष्णचन्द्रके साथ विवाह हो जानेसे व्याकुल सत्राजित अपने किए अपराधका विचार करते हुए सोचने लगा कि यह अपना पाप कैसे दूर करूंगा, और अच्युत मुझ पर प्रसन्न हो, इसका अब क्या उपाय है।।४०।।

व्याख्यार्थ : यद्यपि वह यत्न नहीं करता था, तब भी वही बात ध्यानमृ आ जाती, जो कि विग्रह स्वयं नहीं किया है, और न करेगा. भगवान् भी नहीं करते हैं, तो भी जो बलवान् भगवदीय हैं, उनके साथ विग्रह होगा, इसलिये घबराहट हो रही थी. यह दोष तब मिटेगा जब भगवान् प्रसन्न ह्मगे. उसका ही विचार करता है कि कैसे इस पापको मेटूंगा? वह उपासना करनेवाला है, इसलिये उसकी बुद्धि प्रायश्चित्तमृ हुई है. यहां 'रज' शब्दका अर्थ है पाप, जिसका कोई भी धर्म कभी भी कम नही होता है, अर्थात् जिसके सर्वधर्म नित्य ही हैं, उसके अपराधसे अवश्य नरककी प्राप्ति होनेवाली है, जिसकी निवृत्ति उस प्रभुकी कृपासे ही हो सकती है, किन्तु वे प्रभु प्रसन्न कैसे ह्मृ? इसका विचार कर रहा है ।।४०।।

आभासार्थ : जैसे वाक्य कहनेसे अपकीर्ति हो गई, वैसे अब क्रियासे यश कैसे होगा? वह 'किं कृत्वा' श्लोकमृ कहता है :

किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा।
अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम्।।४१।।

श्लोकार्थ : मैं क्या करूं? जिससे मेरा भला हो और अदूरदर्शी क्षुद्र, मूढ और द्रव्यलोभीको, लोग शाप न देवे।।४१।।

व्याख्यार्थ : मेरी कीर्ति चाहे न हो, किन्तु लोक जैसे शाप न देवे, शाप

देनेमॄ मेरी वाणीका दोष ही कारण है, न कि दूसरा अपने दोष दिखाता है. मैं अदीर्घदर्शी हूं. स्यमन्तकमणि भगवान् ले गये, इस वाक्यके कहनेसे लाभ होगा, या हानि होगी, यह विचार न किया, यह दूरदर्शिता करनी योग्य थी, इसलिए मैं अदूरदर्शी हूं. इसमॄ भी कारण यह है कि मैं क्षुद्र हूं, अर्थात् अल्प व नीच राजस हूं. महान् पुरुष गम्भीर होते हैं. विशेष यह है कि मैंने भगवान्की पहली आज्ञा न मानी, यह दोष मुझ पर पड़ा उसके न माननेका कारण यह था कि मैं धनका लोभी हूं।।४१।।

आभासार्थ : इस प्रकार मेरे तीन दोष हैं, इसका प्रतिकार क्या है? इसका विचार करते हुए इसके ध्यानमॄ आया कि इन दोषॄके होनेका मूल निमित्त मणि है, वह मणि ही दे देनी चाहिये, मणि दी जाएगी तो सूर्य कहॄगे कि मणि मत दो, दोषॄके मार्जनकेलिए यदि देना है, तो दान योग्य कन्या ही दो, अतः एकके देनेसे दोनॄ ही दी जाय, तो अच्छा होगा, भगवान् भी सन्तुष्ट हॄगे और लोक भी निन्दा न करॄगे, यह निश्चय किया, उस निश्चयको 'दास्ये' श्लोकमॄ कहता है :

दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च।
उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा।।४२।।

श्लोकार्थ : उनको कन्या दूंगा, केवल कन्यारूप स्त्रीरत्न नहीं, किन्तु मणि रत्न भी दूंगा, यह उपाय उत्तम है, इससे इनकी शान्ति होगी, अन्य प्रकारसे शान्त न हॄगे।।४२।।

व्याख्यार्थ : 'कृष्ण' नाम न देकर, 'तस्मै' पद देनेका भावार्य यह है कि लोक–वेदमॄ प्रसिद्ध जो पुरुषोत्तम हैं, वह यह ही हैं, जो क्या कन्याको वे लॄगे? इसके उत्तरमॄ कहता है कि सर्वथा ग्रहण करॄगे, क्यॄकि स्त्री, रत्नरूप है. जैसे जाम्बवान् कायिक अपराध कर भी मणि तथा कन्या देनेसे कृतार्थ हो गया, वैसे ही मैं भी हो जाऊंगा, इस अभिप्रायसे कहा कि कन्याके साथ मणि भी दूंगा. इस उपायसे भी दूसरा कोई भी भक्तिमार्गीय उपाय क्यॄ नहीं करते हो? इसके उत्तरमॄ कहता है, कि यह उपाय सुन्दर है, कारण कि यह व्यवहारका लौकिक कार्य है. लौकिकमॄ लौकिक उपाय चाहिये, जिससे यह उपाय उत्तम है. दूसरे उपायसे उनको शान्ति न होगी, जो भगवान् मणि न ग्रहण करॄ, तो अपनी आधी बुद्धि दुष्ट हैं, यो मानूंगा और पूर्ण शरणागति नहीं हुई है।।४२।।

आभासार्थ : केवल यॄ विचार ही नहीं किया, वैसा किया भी वह 'एवं

व्यवसितो' श्लोकमॄ कहते हैं :

एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम्।
मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह।।४३।।

श्लोकार्थ : सत्राजित अपनी बुद्धिसे ऐसा निश्चयकर, अपनी सुन्दर कन्या तथा मणि स्वयं लेकर श्रीकृष्णके पास आ, उनको अर्पण की।।४३।।

व्याख्यार्थ : अपनी बुद्धिसे ही यह निश्चय किया, किसी दूसरेसे पूछा भी नहीं. विवाह समयमॄ जैसे समलंकृत की जाती है, वैसे अलंकृतकर, सुन्दर कन्या आप घरमॄ ले जाकर दोषॄके परिहारकेलिये सदानन्द श्रीकृष्णको अर्पण की. 'ह' पद आश्चर्यमॄ है कि ऐसा कार्य सत्राजितने कैसे किया।।४३।।

आभासार्थ : भगवान्‌ने दोमॄसे एक ही ग्रहण की, जिसका वर्णन दो श्लोकॄ मॄ किया है :

तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि
बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम्।।४४।।

श्लोकार्थ : सत् चरित्र, सुन्दररूपा तथा उदारता आदि गुणॄसे युक्त बहुतॄ से मांगी हुई, उस सत्यभामासे भगवान्‌ने शास्त्रविधि अनुसार विवाह किया।।४४।।

व्याख्यार्थ : सत्यसे ही जो प्रकाशित हो रही है, इसलिये सत्यरूपा कान्तिरूपा होनेसे, सत्यभामा नामसे प्रख्यात थी. यद्यपि सत्राजितने निवेदन ही की थी, तो भी भगवान्‌ने शास्त्रविधि अनुसार उससे विवाह किया. यदि भगवान् याॄ न करते तो अचानक दूसरे किसीको दे दे तो, क्याॄकि पहले इसकी मंगनी बहुताॄने की थी, जिससे अनिश्चितरूपसे देनेका विचार दिखाया भी था, अतः यह कार्य विवादका विषय था, इसलिए विधि अनुसार ही विवाह करना उचित था, और कन्यामॄ योग्य गुण भी हैं. स्वभाव सुन्दर था, जो अन्त करणका धर्म है, अथवा इन्द्रियाॄका क्रिया रूप है. रूप शरीरका धर्म है, वह भी सुडोल तथा श्रेष्ठ थ., उदारता थी, वह भी अन्तःकरणका धर्म है. इस प्रकार उत्तम गुणॄसे युक्त कन्या जान, भगवान्‌ने उससे विधिपूर्वक विवाहकर, विवादको नष्ट कर दिया।।४४।।

आभासार्थ : एकका ग्रहणकर दूसरीको लेनेका 'भगवानाह' श्लोकमॄ निषेध किया :

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप।
तवास्तु देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः।।४५।।

श्लोकार्थ : हे नृप! भगवान् कहने लगे कि हम मणिकी इच्छावाले नहीं हैं, आप सूर्यदेवके भक्त हैं, अतः यह आपके पास ही रहे, हम तो फलके भोक्ता हैं।।४५।।

व्याख्यार्थ : श्रीकृष्ण ईश्वर हैं, इसलिए यहां 'संनियोगशिष्टन्याय' लागू नहीं होता है. हम मणिकी इच्छा नहीं करते हैं. विवाह करनेमॅू हम ही प्रयोजक हैं. मणि लेनेमॅू सबकी सम्पत्तिकी अपेक्षा है, इस कारणसे ही 'वयं' बहुवचन दिया है. 'नृप' यह परीक्षितकेलिये जो संबोधन दिया है वह 'भगवानाह' इस वाक्यसे सम्बन्ध है, अर्थात् श्रीशुकदेवजी राजा परिक्षितको सम्बोधनकर, कहते हैं कि भगवान्ने सत्राजितको यॅू कहा. राजा लोग इस प्रकार कहते हैं, यह जतानेकेलिये आपने जो दो वस्तु, एक कन्या और एक मणि, उनमॅूसे एक वस्तु(कन्या) मेरी हो और एक (मणि) तुम्हारी हो, क्यॅूकि तुम सूर्यदेवके भक्त हो, जो मणि अपने पास न रखोगे, तो सूर्यदेव क्रोध करेगा. मैंने तो निवेदन कर दी है, उसका आप त्याग कैसे करते हैं? इसके उत्तरमॅू कहते हैं, कि हम फलके भोक्ता हैं, मणिका फल हमको भी मिलेगा क्यॅूकि ससुरकी धन सम्पत्तिका लाभ जमांई लेता है. 'च' पदसे कोई इकट्ठा किया हुआ पदार्थ. सत्राजित तो अपनेको वा अपनी आत्माको इकठ्ठा करता है, प्रत्यय दिया है, भगवान्का अभिप्राय तो कोमल है, उसने पहले उनको कन्या देनेकी प्रतिज्ञा की है, दोनॅू ही ग्रहण करनेसे उनको दुःख होगा, इसलिये भक्तका हित और भक्ति मार्गको सत्य करनेकेलिये भगवान्ने वैसा ही किया है।।४५।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कंध (उत्तरार्ध) अध्याय ५३ की
श्रीवल्लभाचायचरण विरचित श्रीसुबोधिनी टीकाके राजस साधन अवान्तर
प्रकरणके सातवॅू अध्यायका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित श्रीभागवत विवृति

'सुबोधिनी'

दशम स्कन्ध उत्तरार्ध

राजस फल प्रकरण

(अध्याय ५४/५७–६०/६३**)**

हिन्दी भाषानुवाद

अनुवादकः

गो.वा.श्रीफतहचन्द वासु(पुष्करणा), जोधपुर

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य

... तब व्यासजीने भागवतपुराण प्रकट किया जिसके अभ्यास (श्रवण–स्मरण–कीर्तन) से लोग मुक्त हो सकते हैं, बशर्ते भागवतका आजीविकार्थ उपजीवन न किया जाय. यह श्रीमद्भागवत एक श्रेष्ठ साधन है. अतः प्रयत्नपूर्वक, किसी लौकिक हेतु या दम्भ के बिना, आदरके साथ इसका पठन करना चाहिये. भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कण्ठमृ ही क्यृ न अटक जायें परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं ही करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके अन्य किसी भी उपायसे अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये

(तत्त्वार्थदीपनिबन्ध.२।६७, २४३, २५४).

जो लोग भगवद्गुणगानको अपनी आजीविकाका साधन बनाते हैं ऐसे गुणगानकर्ता गंदे जलको एकत्रित करनेकेलिये जमीनमृ खोदे गये गहरे गढ्ढेकी तरह होते हैं. (जलभेद.५)

मुंह–हाथ–पांव आदि धोनेमृ प्रयुक्त गंदे जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमृ जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे अधम होते हैं दक्षिणा लेकर कथा करनेवाले ...आशय यह है कि गढ्ढेमृ भरे हुवे प्रक्षालनोच्छिष्ट गंदे जलकी तरह इन गानोपजीविअृका भाव सत्पुरुषृकेलिये ग्राह्य नहिं होता ... पौराणिकृके भावृका निरूपण करनेके बाद जो गायकृका निरूपण किया गया है वह यह दिखलानेकेलिए कि (आजीविकार्थ पुराणृका उपयोग करनेवाले) पौराणिक भी ऐसे गायकृके तुल्य नीच ही होते हैं.

(श्रीकल्याणरायविरचित जलभेदविवृति ५).

अध्याय ५४

स्यमन्तक मणिहरण,
शतधन्वाका उद्धार और अक्रूरजीको फिरसे द्वारका बुलाना

आचार्यश्रीने भागवतमृ पांच प्रकरण विभाग किए हैं, जिसमृ राजस प्रकरण विभागके दो अवान्तर प्रमाण तथा प्रमेय प्रकरण पूर्वार्ध भागमृ आए हुए हैं और फल प्रकरण उत्तरार्धमृ आता है. एवं इसकी भाषा तथा पूर्वार्धकी भाषामृ अन्तर है, जिससे दोनृकी संगति नहीं बनती है, इस शंका निवारणकेलिए कहा है कि वे भाषाएं भी समाधिभाषाकी पोषिकाएं हैं, जिससे उनके साथ ही प्रकरण विभाग बन जाता है, इसको समझानेकेलिए ही पहली कारिका कही है:

निरोधो मानरूपोऽत्र सप्तभिर्विनिरूपितः।
मेयरूपश्च तावद्भिः प्रमेयबलमुच्यते।।का.१।।

इस प्रकरणमृ प्रमाणरूप निरोध सात अध्यायृ और उतने ही अध्यायृसे प्रमेयरूप निरोध पूर्वार्धमृ कहा है, साधन प्रकरण तो उत्तरार्धमृ कहा हुआ है, इसलिए उसकी तो शंका उत्पन्न ही नहीं होती है, जिससे साधन प्रकरणकेलिए यहां नहीं कहा है, केवल शंका निवृत्तिकेलिए पूर्वार्धमृ आए हुए प्रमाण तथा प्रमेय प्रकरणको कहा है।।१।।

अपकारिषु भक्तेषु तथा साधारणेषु च।
फलप्रकरणं ह्येतत्तेन तादृङ् निरूप्यते।।का.२।।

अपकार करनेवाले यहां दो प्रकारके हैं: एक अक्रूर आदि भक्त और दूसरे साधारण, इन दोनृके मिले हुए फलका यह प्रकरण है, जिसमृ उनको स्वरूपबलसे फलकी प्राप्ति हुई है न कि साधनबलसे फल मिला है, अतः वैसा स्वरूपबल निरूपण किया जाता है।।२।।

कामः फलं यथा पूर्वं क्रोधस्त्वत्र तथा फलम्।
राजसानां विशेषेण जयस्त्वत्र फलिष्यति।।का.३।।

जैसे पहले तामस प्रकरणके फल प्रकरणमृ कामलीलाका निरूपण हुआ है, वैसे यहां राजस प्रकरणके फल प्रकरणमृ क्रोधलीला निरूपण की गई है, वे लीलाएं ही फलरूप या फल सम्पादिका हैं, इस प्रकरणमृ विशेषकर राजस भक्तृको ही जयरूप फल प्राप्ति होगी।।३।।

हरिधर्मैश्च हरिणा बलभद्रेण यादवैः।

जयो निरूप्यते लोके निरोधात्मा हि राजसः।।का.४।।

हरिने हरिके धर्मोंसे जयकी और बलभद्रने यादवॄसे लोकमॄ जयकी, जिसका यहां निरूपण किया जाता है, यहां निरोधरूप परमात्मा राजस है।।५।।

तत्राष्टमे तथाध्याये कृष्णेच्छाया जयस्त्रिधा।

सत्राजिच्छतधन्वा च अक्रूरश्च जितास्तथा।।का.५।।

इस प्रकरणमॄ तथा इस आठवॄं[१] अध्यायमॄ श्रीकृष्णकी इच्छाका जय तीन प्रकारसे हुआ है; क्यॄकि सत्राजित, शतधन्वा और अक्रूर तीनॄसे जय प्राप्त हुई है।।५।।

१.राजस फल प्रकरणका पहला अध्याय उत्तरार्धसे गिनती प्रारम्भ करनेसे आठवां अध्याय होता है.

कारिकार्थ समाप्त.

आभासार्थः पूर्व अध्याय सात के अन्तमॄ कहा कि भगवानने मणि नहीं ली. जिसके फलका वर्णन यहां किया जाता हैं. श्रीकृष्णसे दूसरे देवमॄ यदि बुद्धि की जाती है तो वह बुद्धि उस अन्य देवोपासकको जीते हुए भगवानमॄ निरोध नहीं करा सकती है, अतः निरोधका अधिकारी भी सत्राजित् अपनी देहका त्याग कर मणिके द्वारा भक्त संसारमॄ स्थित हो, भक्त चरणारविन्दरूप वाराणसी आदिमॄ निरोधको प्राप्त हुआ, यॄ कहा जाता है, उसमॄ प्रथम पूर्व देहके त्यागकेलिए 'विज्ञातार्थोऽपि' इन दो श्लोकॄसे प्रस्तावना कहते हैं.

श्रीशुक उवाच

विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धान् आकर्ण्य पाण्डवान्।

कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून्।।१।।

श्लोकार्थः श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि यद्यपि श्रीकृष्ण जानते थे कि पाण्डव गुफामॄसे हो कर लाक्षाभवनसे जीवित निकल गए हैं. तो भी कुन्ती तथा पाण्डवॄका लाक्षागृहमॄ जलना सुनकर कुलोचित व्यवहार करनेकेलिए बलदेवजीको साथ लेकर कुरुदेशको पधारे।।१।।

व्याख्यार्थः जहां भगवान् स्वयं विद्यमान हैं, वहां भगवानके धर्म प्रयोजक नही हो सकते हैं. लोक तो दुष्ट हैं यदि स्वयं कर्म न करॄ तो अन्यथा (झुठे) अनुमान करने लगॄगे, इसलिये भगवान् स्वयं बलरामजीको साथ ले

द्वारकाका त्यागकर हस्तिनापुर गये. यॄ कहा जाता है, जब भक्तॄके हितकारी भगवान् हैं, तब पाण्डवॄके वैरियॄका विधिमुखसे हित भी करनेवाले नहीं है, तो फिर क्यॄ जाते हैं? मुख्य सम्बन्धियॄके चलेजाने(मरजाने) पर, जिन सम्बन्धियॄ को जानेवालॄका दुःख नहीं है, उनके पास संवेदनाकेलिए जाना कुलाचार नहीं है. यदि आपको इसका ज्ञान नहीं, इससे अज्ञानसे चले गये हैं, यॄ कहा जाय, तो इस प्रकारकी शंका भी नहीं करनी चाहिये, क्यॄकि आापको सर्व प्रकारका विशेषरूपसे ज्ञान है तो भी गये, लाक्षागृहसे जैसे पाण्डव निकल गये, जैसे एक चक्रमॄ गये वहां ब्राह्मण भेष धारणकर भिक्षावृत्तिसे रहे और जैसे लाक्षागृहमॄ पांच पुत्र तथा कोई शबरी जल गई, उनके जलनेके भ्रमसे, लोक कहते हैं कि पाण्डव और कुन्ती जल गई, यह सब अर्थ प्रमेयसे समझमॄ आता है, इस प्रकार सर्व अर्थ भगवानने प्रमेयबलसे तो जान ही लिया था, किन्तु यदि भगवान् हस्तिापुर न जाकर संवेदना प्रकट करनेका अज्ञान नाट्य न करते, तो कौरव समझते कि भगवानने पाण्डवॄको लाक्षागृहसे निकलवाकर दूसरे सुरक्षित स्थान पर स्थापित किया है, जिससे वे फिर पाण्डवॄका नाश करनेका यत्न करने लग जावे, इस प्रकार विचारकर ही भगवान् गये, क्यॄकि आप सत्पुरुष भक्तॄके रक्षक गोविन्द हैं, अतः पाण्डवॄकी इस प्रकार पूर्ण रक्षा होगी, वे निश्चिन्त हो निवास करॄगे. इस कारण पाण्डवॄके जलजानेको सुनकर गये, मुख्य वास्तविक अर्थ तो यह है कि वे जले नहीं थे, क्यॄकि पाण्डव पिताके पुत्र हैं, माताके पुत्र ही दग्ध होते हैं और कुन्तीको दग्ध सुनकर कुलधर्मकी रक्षाकेलिए गये, बान्धवॄके मरने पर बचे हुए सम्बन्धियॄके पास उनसे मिलनेकेलिए वा उनको देखनेकेलिए दूर रहनेवाले सम्बन्धी जाते है. यह कुलधर्म लोकाचार है यह तो लौकिक है, किन्तु भगवान् तो उनका भी मुझमॄ निरोध हो इसलिये गये, इस प्रकार सूचित होता है. 'कुरुन्' पदका अर्थ 'हस्तिनापुर' है अकेले भगवान् जाते तो किसीको संशय भी होता, इस सन्देहको मिटानेकेलिये अपने साथ बलरामजीको भी ले गये यॄ कहा है।।१।।

भीष्मं नृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च।
तुल्यदुःखौ समागम्य हा कष्टमिति होचतुः।।२।।

श्लोकार्थः भीष्म, धृतराष्ट्र, विदुर, गान्धारी और द्रोणसे मिलकर अपनी संवेदना प्रकट करते हुए कहने लगे कि हा! बड़ा कष्ट हुआ।।२।।

व्याख्यार्थः दोनॄने जाकर जो किया वह कहते हैं, भीष्म, धृतराष्ट्र और

विदुर तीनो ही सात्विक राजस तामस थे, स्त्री गान्धारीका जन्मसे अपकर्ष था, द्रोणका ब्राह्मण होनेसे उत्कृष्टपन था, प्रत्येकके पास जाकर दोनू कहने लगे कि यू होना बड़े दुःखका विषय है, बहुत बुरा हुआ, ऐसे वचन कहना आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले हैं, इसलिये श्लोकमू 'ह' पद दिया है।।२।।

जिसकेलिये यू कहा वह 'लब्ध्वैतदन्तर'से ४ श्लोकमू वर्णन करते हैं.

लब्ध्वैतदन्तरं राजन् शतधन्वानमूचतुः।
अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते?।।३।।

हे राजन्! अक्रूर तथा कृतवर्मा इस अन्तर(अवसर)को पाकर शतधन्वाको कहने लगे कि मणिको क्यू नहीं लेता है?।।३।।

अक्रूर द्वारकाका अवेक्षक अर्थात् दिनको न्याय करनेवाला धर्माधिकारी था और कृतवर्मा कोटवाल था अर्थात् रात्रिमू रक्षा करनेवाला था. शतधन्वा जो कार्य दूसरेसे न हो सके उसको पूर्ण करनेवाला था, उन दोनूकी आज्ञाको पालन करता था, वह चोरीसे सब करनेमू समर्थ था. ये तीनू यादव, भगवान् वा बलभद्रके विद्यमान होते हुए अन्यायका कार्य नहीं कर सकते थे. भगवान् अन्यग्रामको गये है यह अवसर प्राप्तकर वे दोनू शतधन्वाको यू कहने लगे कि आप सत्राजितसे मणि क्यू नहीं छीन लेते हैं. 'सपाद' श्लोकमू यह वाक्य कहा, हे राजन्! यह सम्बोधन इसलिये दिया है कि वैसा परिज्ञान आपको है।।३।।

केवल मणि ही नहीं लेनी है, किन्तु वह मृत्यु करने(मारने) योग्य है वह भी करना, 'योऽस्मभ्यं' श्लोकमू यह कहते हैं.

योऽस्मभ्यं सम्प्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः।
कृष्णायादान्न सत्राजित् कस्माद् भ्रातरमन्वियात्?।।४।।

जिसने कन्यारत्न हमको देनेकी प्रतिज्ञा की थी, उस सत्राजितने हमारा अपमानकर कृष्णको दी, वह क्यू न अपने भ्राताके पीछे जावे?।।४।।

मणिग्रहणमू यह मणि भगवानकी है यह हेतु न बताना चाहिए, क्यूकि इससे भगवानका अपराध करना होगा. यह भगवानका श्वशुर है अतः यह हेतु न कहकर अन्य हेतु बताना योग्य समझ कहने लगे कि इस सत्राजितने कन्यारत्न हमको देनेका वचन दिया उससे विरुद्ध गया, अब उसके बदलेमू रत्नूमू भी जो रत्न है वह उससे लेना चाहिये हम लोगूकी निन्दाकर ये वर सुन्दर नहीं है यू कहकर भगवानको कन्या दी है. इसने हमारी निन्दा की है इस निन्दाके कारण हम

जो क्षत्रियधर्म पालन कर रहे हैं, उनको अवश्य इसका नाश करना चाहिये, भगवानको दी है इसलिये उसे गुप्तरूपसे मारना चाहिये, जैसे भगवानने इससे मणि मांगी थी किन्तु वह उनको न देकर भ्राताको दी पश्चात् सिंहने मणि सहित भाईको मार डाला इस प्रकार कन्या दानके प्रसंगमॄ अपनी मणि भी भगवानने उसको दे दी, इसलिये मणिसहित सत्राजितको भाईकी तरह क्यॄ न मारा जावे, भाईके पीछे इसको भी भेजना योग्य है. सत्यभामा और मणि मांगनेमॄ दोनॄ बराबर है. हम लोगॄने सत्यभामा मांगी थी भगवानने मणि की याचना की थी दोनॄको मांगी हुई वस्तु नहीं दी गई, दोनॄकी निंदा की है इस कारणसे मणि जिसके पास हो, वह प्रसेनकी पदवीको प्राप्त होना चाहिये, यह भ्राताके साथ जावे तो योग्य ही है उन्हॄने लौकिकीभाषामॄ जो अर्थ कहा वह सरस्वतीने परमार्थरूप सत्य कर दिया जिसने प्रसेनको मारा, उसको भी दूसरेने मार डाला, यॄ ये दोनॄ जानते थे, अतः उनको भी यॄ करना सम्मत नहीं था, यदि सम्मत होता तो वे स्वयं कर लेते, स्वयंने नहीं किया, मूर्ख शतधन्वाको वह कार्य करनेकेलिये कहने लगे।।४।।

चतुर शतधन्वाने ऐसा क्यॄ किया? जिसका उत्तर 'एवं भिन्नमतिः' श्लोकमॄ कहते हैं.

एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः।
शयानमवधील्लोभात् स पापः क्षीणजीवितः।।५।।

इस प्रकार नीचतम शतधन्वाने उन दोनॄके बहकाने पर लोभके कारण सोये हुए सत्राजितको मार डाला, क्यॄकि उस पापीकी शेष आयु स्वल्प थी अर्थात् आयु पूरी हो गई थी।।५।।

उन दोनॄने जिसकी मति नष्ट कर दी थी, मति क्यॄ नष्ट हुई? जिसका कारण यह था कि मणि मिलेगी, इस लोभसे विपरीत बुद्धि हो गई. आगे इसका परिणाम क्या होगा? जिसका ध्यान भी न रहा, वे दो, उसको बहुत प्रकारसे भ्रमित करने लगे. वह भ्रमित करना आगेके कार्यकेलिये ही है. जिस भावको वे दो ही जानते थे कि मणि सम्बन्धसे ही मृत्यु होगी, इसलिये उन्हॄने मणि लेनेकी इच्छा नहीं की, यह तो मणिको चाहता था इस कारणसे यह नीचतम(सबसे अधिक नीच) है, उन दोनॄमॄसे एक असत्(नीच) था और दूसरा असत्तर(विशेष नीच) था, शतधन्वाने असीम नीच होनेसे सोये हुवे सत्राजितको मार डाला. यदि ऐसा असीम नीच न होता तो लड़ाई कर मार सकता था और मणि ले लेता, इससे निश्चय होता

है कि यह असत्तम है जिसको सोते हुवे मारा उससे कोई इसका वैर नहीं था, केवल लोभके कारण उसने यह कुकर्म किया, द्वारकामृ रहनेवालेको भगवदीयके विषयमृ ऐसी कुबुद्धि कैसे पैदा हुई? जिसके उत्तरमृ कहते हैं कि वह पापी है और इसकी आयु क्षीण हो चुकी है अर्थात् शीघ्र मरनेवाला है अतः दूसरृके बहकानेसे ऐसी कुबुद्धि उत्पन्न हुई है इसकेलिये ही उसका अवतार है।।५।।

यदि केवल सत्राजितका वध किया हो वह भी दूसरृकी प्रेरणासे किया, जिससे इसका इतना दोष न माना जाता, किन्तु इसने उससे विशेष भी किया, जिसका वर्णन 'स्त्रीणां' श्लोकमृ करते हैं

स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत्।
हत्वा पशुन् सौनिकवत् मणिमादाय जग्मिवान्।।६।।

जैसे कोई अनाथ विलाप करे, वैसे विलाप करती हुई अनाथ स्त्रियृको जैसे कसाई पशुओृको मारता है, वैसे मार कर मणि लेकर भाग गया।।६।।

विशेष प्रकार विलाप करती हुई सतियां, वे भी नाथसे रहित थी उनको मारकर मणि लेकर भाग गया, यृ करनेका कारण इसमृ दया और सरलताका अभाव है, जिसकेलिये कसाईका दृष्टान्त देते हैं, जैसे कसाईमृ दया और सरलता नहीं रहती है, जिससे पशुकी हिसा करनेमृ हिचकता नहीं, वैसे यह भी इन अबलाओृको मारकर मणि ले जानेमृ हिचका नहीं. दूसरा दृष्टान्त देते हैं कि जैसे लकड़ी तोड़नेवालेको स्वार्थ सिद्धिके कारण वृक्षृ पर दया नहीं आती है वैसे ही इसको भी अनाथ स्त्रियृ पर दया न आई, पहले मणिका पूजन न कर प्रसेनके कण्ठमृ बांधी गई थी जिससे अनिष्ट हुआ, अब तो मणि पूजित थी तो भी अनिष्ट हुआ, यह विरोध है. इस विरोधका परिहार करते हैं कि पहले प्रमाणबल था अब प्रमेयबल है, इसलिये पूर्वाध्यायके वाक्यृसे विरोध नहीं है।।६।।

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्दिता।
व्यलपत् तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती।।७।।

सत्यभामा पिताको मरा हुआ देख शोकसे पीड़ित होने लगी, हे तात! हे तात! यृ कहती हुई विलाप कर बेसुध(मरे जैसी) हो गई।।७।।

वह सत्राजितको मार स्त्रियृको पीटकर मणि लेकर जब चला गया, तब उपश्रुतिकी भांति यह समाचार सुन भगवद्गृहसे अपने पिताजीके घर आ गई, पिताजीको मरा हुआ देख शोकसे दुःखी हुई, हे तात! हे तात! यृ विलाप करने

लगी. जिस प्रकार स्त्रियाृने चिल्लाया था वैसे ही यह भी चिल्लाने लगी. जितना दुःख पतिके मरनेसे स्त्रियाृने किया उतना ही दुःख सत्यभामा पिताके मरनेसे करने लगी, स्त्रियाृका तो पतिके मरनेसे अपना तथा पतिका नाश हुवा और सत्यभामा का तो उनकी तरह दोनाृका नाश नहीं हुआ, केवल पिता मरा है, इसलिये दोनाृकी तुल्यता नहीं है, कारणकि पतिके मरनेसे अर्द्धांगिनी स्त्रीकी भी मृत्यु हो जाती है. यहां तो शतधन्वाने उनको भी पीटकर मणि ली है इसलिये जब सत्यभामाकी इनसे समानता नहीं हो सकती है तो 'च' समुच्चयके अर्थमृ कैसे समझा जावे? इसके उत्तरमृ कहा है कि यहां भी तात! तात! दो बार कहा है और 'हा हता अस्मि' 'हाय मैं मर गई हूं' इस पर शंका की जा सकती है कि स्वयं मरी नहीं है तो भी वैसे क्याृ कहती है? इसके उत्तरमृ कहते हैं कि 'मुह्यती' मरे जैसी हो गई है इसलिये जैसे कहा है कि मैं मर गयी हूं वह सत्य ही है।।७।।

भगवानसे विरोध होनेके कारण उसकी परलोक सम्बन्धी क्रिया भी जल्दी न हो सकी थी, जिससे सत्यभामाने इसकेलिये जो उद्यम किया, वह 'तैलद्रोण्यां' श्लोकमृ कहा है.

तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम्।
कृष्णाय विदितार्थाय तमाचख्यौ पितुर्वधम्।।८।।

सत्राजितके मृतदेहको लोह या ताम्रके बने हुए तैल पात्रमृ धरकर सत्यभामा हस्तिनापुर गई, यद्यपि कृष्णने तो यह सब पहले ही जान लिया था, तो भी उनको अपने पिताके वधका समाचार सत्यभामाने सुनाया।।८।।

यह सत्यभामा देवदत्तकी प्रायः पुत्रिका है, जिससे पुरुषके समान प्रकृतिवाली है, क्याृकि इसका कोई भ्राता भी नहीं है, अतः शास्त्रधर्मसे यह विवाह करने योग्य नहीं थी तो भी स्त्रीरत्न होनेसे भगवानने ग्रहण की है. इस कारणसे इसका चरित्र पुरुषकी तरह ही है, मरण पर्यन्त ही विलाप होता है, इसके बाद सत्यभामाने पिताके मृतदेहको तैलके पात्रमृ धर दिया और स्वयं हस्तिनापुर गई, हस्तिनापुर स्थित भगवान् मरे हुआृका अनुसन्धान करते है. हस्तिनापुर प्रसिद्ध स्थान है वहां कोई भी जावे उसमृ सन्देह नहीं होता है किन्तु सत्यभामा तो भगवानको पिताकी मृत्युके समाचार देनेकेलिये ही गई है, यह भूली हुई है. क्याृकि कृष्ण भगवान् हैं उनको तो इसका ज्ञान पहले ही है, तो भी ऐसेको पिताका वध बताने लगी, बताना आवश्यक है, इसलिये वे जानते थे तो भी

बतानेमॄ दोष नहीं है.

जैसे जानकर भी कुछ न किया वैसे सुनकर भी कुछ नहीं करेगा इस शंकाका उत्तर 'तदाकर्ण्य'से दो श्लोकाॅमॄ देते हैं कि लौकिक प्रतीकार किया.

तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम्।
अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः।।९।।
आगत्य भगवांस्तात सभार्यः साग्रजः पुरम्।
शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः।।१०।।

हे राजन! सत्यभामाकी यह बात सुनकर यद्यपि दोनॄ ईश्वर है, तो भी मनुष्यलोकका अनुसरण करते हुए आंखॄमॄ आंसू भर, अहो! हमॄ बड़ा कष्ट हुआ है, यॄ कहकर विलाप करने लगे, फिर भगवान् सत्यभामा और बलरामजीके साथ द्वारका आकर मणि लेनेकेलिए शतधन्वाके वधार्थ उद्यम करने लगे।।९-१०।।

यद्यपि वे दोनॄ ईश्वर हैं, तो भी लीलाकेलिये लोकका अनुसरण कर शतधन्वाने श्वशुरको मारा है, इसलिये सत्यभामाकी भांति आप भी विलाप करने लगे और कहने लगे कि जैसे इसके मरनेका कष्ट तुझे हुआ है वैसा ही दुःख हमको भी हुआ है, सत्यभामा वा लोक, यों न समझॄ कि ये केवल वाणीसे कहते हैं किन्तु इनको वास्तव हार्दिक दुःख नहीं है, इस भ्रमके निवारणकेलिये आंखॄमॄ आंसू भरकर संवेदना प्रकट करने लगे, 'अस्त्राक्षौ' द्विवचन देकर यह बताया कि पूर्णशक्ति अर्थात् ज्ञान एवं क्रियाशक्ति दोनॄ ही संवेदना प्रकट कर रही है. सारांश कि बलराम जो क्रियाशक्ति हैं और श्रीकृष्ण जो ज्ञानशक्ति हैं वे दोनॄ इस कर्मके होनेसे सत्यभामावत् दुःखी हुवे हैं, अब उद्यमका विवरण करते हैं यदि किसी दूसरे द्वारा उद्यम करते तो वह उदासीनताका द्योतक हो जाता था. अतः स्वयं भगवान् आकर उद्यम करने लगे, भगवान् पद देनेका आशय यह है कि आपमॄ सामर्थ्य एवं उपायका ज्ञान भी है, यह प्रकटकर दिखाया है. हे तात! राजाको यह सम्बोधन विश्वासार्थ दिया है भगवान् द्वारकामॄ इस उद्यमको करनेकेलिये छिपकर गये हॄगे, इस संशयको दूर करनेकेलिये कहते हैं कि स्त्री और भ्राताके साथ प्रकटरूपसे आये हैं, द्वारकामॄ आकर ही उपायका विचार करने लगे न कि मध्यमॄ ही ठहरकर बन्धनका विचार किया. शतधन्वाको मारू और मणि भी लूं इस प्रकार दो प्रयोजन नहीं थे. प्रयोजन तो एक ही मणि लेनेका था किन्तु शतधन्वा जीते हुए मणि न देगा इसलिये उसको मारना पड़ेगा, यॄ तो शतधन्वाने सत्राजितको दूसरॄकी प्रेरणासे

मारा है या भगवानकी भी वैसी इच्छा थी, इसलिये शतधन्वा मारने योग्य नहीं है और सत्राजितके वंशका भी यह शतधन्वा नहीं है, जिस कारणसे भगवान् मरे हुवेको मारे, दोनॄ(सत्राजित और शतधन्वा) समान हैं, किये हुएका करना नहीं होता है, यॄ शतधन्वाके मारनेसे सत्राजित् जीवित न होगा. इस कारणसे ही भगवानके आगे कहे हुए शब्द घटित होते हैं, जैसाकि 'वृथा हतः शतधनुः' शतधन्वाको व्यर्थ ही मारा. 'शतधनु' शब्द सकारान्त तथा उकारात भी है, जैसे सत्राजित तकारान्त और अकारान्त है अर्थात् दोनॄ दो स्वभाववाले है, जिससे मारे गए, इसलिए दो प्रकारके प्रयोग किए हैं. सत्राजितके दो स्वभाव निन्दा करने और पश्चात्ताप करनेसे सिद्ध किए हैं, वैसे यह भी पहले सत्राजितको मारनेके समय निर्भय था और आगे भाग जानेसे डरपोक हो गया, जिससे द्विस्वभाव इसका भी सिद्ध है, पश्चात् शतधन्वाका यह आरम्भ 'पकडो और मारो' इस प्रकार स्पष्ट आज्ञारूप है।।९-१०।।

पश्चात् जब राजकीय मनुष्य उसको पकड़नेकेलिए प्रवृत्त हुए, तब शतधन्वाने जो कृत्य किया, उसका वर्णन 'सोऽपि' श्लोकमॄ करते हैं.

सोऽपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया।
साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत्।।११।।

वह भी कृष्णका उद्यम जानकर डरते हुए प्राणॄके बचानेकी इच्छासे जब कृतवर्मासे सहायता मांगने लगा, तब उसने कहा।।११।।

यह जो राजाकी ओरका बन्धन सुना जाता है, वह वास्तविक भगवानसे किया हुआ ही है, यों इसने निश्चयसे समझ लिया. अतः यह श्रीकृष्णका उद्यम है. यॄ जानकर और कृष्णको पक्षपाती समझकर शतधन्वा डर गया पहले नहीं डरा था, जिसका कारण यह था कि कृष्ण इसका पक्षपाती बनेगा. यों नहीं जानता था, केवल समझता था कि यह साधारणरूप ब्रह्मत्व और सम्बन्धी ही है, इसलिए निर्भय था, जिससे सत्राजितको मारा और अनाथ स्त्रियॄको पीटकर मणि ले आए, वस्तुको चुरा लाने पर ही चोरका उस पर स्वत्व होता है. 'शत्रुजयन्याय'से शत्रुको मारनेसे मारनेवालेकी वह वस्तु हो जाती है, यदि शत्रुको मारा न जाय, वह जीता हो और उसकी उपस्थितिमॄ वस्तु ले ली जाय तो उसको पराये धनका चुराया जाना कहा जाता है, अतः यह मणि मुझे मारकर ही लॄगे, इसलिए प्राणॄकी रक्षाकी इच्छासे अपनेको अकेला असहाय समझकर कृतवर्मा यादवको प्रार्थना करने लगा

कि मेरी सहायता करो, चोरकी भांति मरना अच्छा नहीं है, जिसका भाव है कि मैं कृष्णसे युद्ध करना चाहता हूं. इस कार्यमृ तुम्हृ मेरी मदद करनी चाहिए, इस प्रकार प्रार्थनापूर्वक याचनामृ जो वाक्य कहने चाहिए, वे तो स्पष्ट ही है, इसलिए नहीं कहे हैं और उस कृतवर्माने जो कुछ कहा, वह 'च' पदसे सूचित किया है।।११।।

वह कृतवर्मा महान् यादव है, महाभारतके युद्धमृ कौरवृका पक्षपाती था. उसको बहुत कार्य हैं, उसके मनकी अभिलाषा तो पूर्ण हो गई, यह मणि तो नहीं देता है, जिससे उदासीन हो भगवानका पक्ष लेता हुआ 'नाहमीश्वरयोः' श्लोकमृ अपने विचार कहने लगा.

नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः।
को नु क्षेमाय कल्प्येत तयोर्वृजिनमाचरत्।।१२।।

राम-कृष्ण दोनृ ईश्वर हैं, उनकी उपेक्षा मैं नहीं कर सकता हूं, उनका अपराध कर अपने कल्याणकी कल्पना भी कौन कर सकता है?।।१२।।

फल तो न तुम्हृ प्राप्त होगा और न मुझे मिलेगा, जैसे तू उनको तुच्छ समझ उपेक्षा करता है, वैसे हो सकती है. किन्तु वह भी करनी नहीं चाहिए, क्यृकि राम और कृष्ण लौकिक मनुष्य नहीं है, किन्तु ईश्वर है. जिससे दृष्ट-अदृष्ट, लौकिक और अलौकिक फलके देनेमृ समर्थ हैं, मैं अकेला अपने अनुभवसे जानता हूं कि तुच्छ हूं वे राम-कृष्ण नामसे ही सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, यदि कहो कि तुम भी यादव तथा शूरवीर और महारथी हो, तब क्यृ डरते हो? इसके उत्तरमृ कहता है कि विचारकर देख भगवानके जितने ही अपराधी है, उन सबका वर्तमानमृ कल्याणसे पात हुआ है. इसके बाद भविष्य क्या होगा, उसकी कल्पना कौन कर सकता है? किन्तु भूतकी तरह भविष्यका भी निर्णय होगा ही यह निश्चय ही है, उसमृ भी वे दोनृ पूर्ण शक्तिमान् भगवान् है. उनका अपराध करते ही भगवानसे न भी मारा गया हो, तो भी चिन्तासे ही मुरझा जाता है. साधन और फल समानकालमृ ही प्राप्त हो जाते हैं, इसलिए वर्तमानकालका प्रयोग किया है।।१२।।

उस विषयमृ उदाहरण 'कंस' श्लोकमृ देता है.

कंसः सहानुगोऽपीतो यद् द्वेषात् त्याजितः श्रिया।
जरासन्धः सप्तदश संयुगान् विरथो गतः।।१३।।

जिससे द्वेष करनेसे कंस भाई समेत नाशको प्राप्त हुआ और राज्य लक्ष्मीसे भ्रष्ट हुआ तथा जरासन्ध १७ बार युद्धमृसे हारकर बिना रथके ही भाग

गया।।१३।।

कंस महान राजा था, वह भी उनके अपराध करनेसे भ्राता सहित नष्ट हो गया तथा भगवानने लक्ष्मीसे भी हीन कर दिया अथवा द्वेषके कारण वैसा हुआ, कोई भी विषय एक उदाहरणसे निश्चित् सिद्ध नहीं माना जाता. इसलिए भगवानकी छलरहित क्रियाशक्तिका निरूपण करते हैं कि जरासन्ध द्वेषसे सत्रह बार लड़ाई करनेकेलिए चढाई कर आया, किन्तु लड़ाईके मैदानमॅू हारकर रथका भी त्यागकर भाग गया।।१३।।

भगवानसे कृतवर्मा विरुद्ध है, याॅू समझ पहले उससे सहायताकी मांग करने लगा, जब उसने उत्तर दे दिया कि मैं तुम्हॅू सहायता नहीं दे सकता हूं, तब उसको उदासीन समझ, देखा कि सत्राजितका वध तो अक्रूरका ही अभीष्ट था, जिसको इसके कथनसे मैंने मारा है. इसलिए इस पर मेरा उपकार है, यों मान भगवानके भक्त अक्रूरको भी कहने लगा कि मैं भगवानसे युद्ध करूंगा, यदि उससे मैं हटने लगू तो आप सहायता करना, जैसे मुझे बल मिले तो मैं जीत जाऊं, यह विचार 'प्रत्याख्यातः' श्लोकमॅू प्रकट करता है.

प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत।
सोऽप्याह को विरुध्येत विदित्वेश्वरयोर्बलम्।।१४।।

जब शतधन्वाको कृतवर्मा तथा उसके पक्षपातियोंॅने सहायता देनेका निषेध कर दिया, तब अकूरजीसे सहायताकी प्रार्थना की, उसने भी कह दिया कि ईश्वरोंॅके बलको जानकर उनसे कौन विरोध करे?।।१४।।

शतधन्वाको कृतवर्माने जब सहायता न देनेका कहा 'च' पदसे यह भी जाना जा सकता है कि दूसरे पक्षपातियोंॅसे सहायता मांगी थी, उन्होंॅने भी निषेध किया, अक्रूरके कहनेसे सत्राजितको मारकर जो उनके ऊपर मैंने उपकार किया है और नामसे भी जाना कि भक्त अक्रूर दयालु है इसलिए यह सहायता करेगा. इसलिए आगेकी भांति याचनाके वचन नहीं कहे, अक्रूरकी अपने कार्यकी सिद्धि तो हो गई, किन्तु भगवानकी ऐसी राय नहीं है, यों जानकर शतधन्वाको वह साढ़े तीन श्लोकोंॅसे कहने लगा. 'अपि' पदका तात्पर्य है कि कृतवर्माकी इच्छा जान ली थी, उसको न मानना तो सिद्ध ही है, उसी प्रकार ही कहने लगा, वे दोनोंॅ ईश्वर है, उनके बलको जानकर कौन ऐसा मूर्ख है, जो उनके विरुद्ध हो, याॅू कहनेका आशय यह है कि तुमने जो कुछ अबतक विरोध किया, वह हो गया आगे तुम्हॅू भी

विरोध नहीं करना चाहिए. इस प्रकार कहकर वह युद्ध न करे, इसलिए भगवानके माहात्म्यको कहता है, कौन ऐसा है, जो उनसे लड़े? मूर्ख भले करे, समझदार तो नहीं करेगा; क्योकि ईश्वरृका बल प्रत्यक्ष तथा शास्त्र द्वारा जाना गया है. अतः पूर्णशक्ति भगवानका विरोध कोई नहीं करता है, इस प्रकार उपदेश दिया।।१४।।

पहिले सुने हुए माहात्म्यको 'य इदं' श्लोकसे कहते हैं.

य इदं मायया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च।
चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताजया।।१५।।

जो अपनी इच्छारूपी मायाशक्तिसे इस जगतको उत्पन्न करता है, पालन करता है, एवं नाश करता है, उस विश्वरचना करनेवालेकी अजेय मायासे मोहित मनुष्य जिसकी इस लीलाको नहीं जान सकते हैं।।१५।।

भगवानकी समर्थता और उसका अनन्यपन प्रतिपादन किया जाता है, 'माया' पदका भावार्थ है, वह(माया) भगवानकी वह शक्ति है, जिससे प्रभु जो चाहे वह कर सकते हैं. अथवा वह शक्ति है, जो प्रयोजिका नहीं है, उस अप्रयोजिकाको भी साधनरूपसे ग्रहण कर यह समस्त जगत् पैदा करता है, पालता है और नाश करता है, जैसे भगवान् करते हैं, वैसे दूसरा भी करेगा. इसके उत्तरमृ कहा है कि भगवान् तो यह लीलामात्रसे ही करते हैं, याृ कहनेसे 'दूसरे करृगे', इसको दूरसे ही परास्त कर दिया अर्थात् दूसरा कोई इस प्रकार नहीं कर सकेगा. कारणकि भगवानकी केवल क्रिया ही कोई नहीं जानता है कि भगवान् क्याृ करते हैं और कैसे करते हैं? सिद्ध हुई भी क्रियाशक्ति तथा सर्वकार्य करती हुई देखकर भी यह नहीं समझ सकते हैं कि इसका स्वरूप क्या है? न समझनेका हेतु यह है कि भगवानकी अजन्मा प्रकृतिने उनको मोहित कर दिया है, यदि वे जानते तो अपनेको ठगने कैसे दृ? जो अजासे मोहित है, वे स्वयं ही अजा है अर्थात् सबसे मारे हुए हैं, जिससे अपनी रक्षा करनेमृ भी अशक्त है अर्थात् अपनी भी रक्षा नहीं कर सकते हैं, वे सृष्टि आदि कैसेकर सकृगे, यह भावार्थ है।।१५।।

इस प्रकार श्रुतियाृसे सिद्ध प्रभाव कहकर अब प्रत्यक्षसिद्धबल कहता है.

यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना।
दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः।।१६।।

जिसने सात वर्षकी बाल्य अवस्थामृ पर्वतको उखाड़कर एक हाथसे जैसे बालक छाता धारण करता है, वैसे धारण किया।।१६।।

जरासन्धसे जय तो अतिदेशसे ही मिल गई. अलौकिक कार्य जो किए हैं. वे कहने चाहिए, उनमृ पर्वतका उठाना लोकमृ बहुत आश्चर्यका कार्य किया है, जिसमृ भी यह कार्य आपकी आयु और शरीर आदि प्रकारसे तो 'सुतरां' बिलकुल आश्चर्यका हेतु कहा जाता है. आयुसे तो आप उस समय सात ही वर्षके थे, उस आयुमृ गोवर्द्धनपर्वतको एक ही हस्तसे उखाड़कर धारण किया, यह प्रयत्न तो मन्दराचल धारण करनेसे भी विशेष प्रयत्न किया है; क्यृाकि मन्दरको पीठ पर धारण किया था और इसको एक ही हस्त पर धारण किया है, वो दोनृामृ बड़ा अन्तर है, उससे भी तीसरी विशेषता यह थी कि जैसे लीलासे बंशीको अंगुलियृा पर धारण करते हैं, वैसे उसको भी लीलासे ही धारण किया है, यह धारण भी गोकुलकी रक्षाकेलिए नहीं किया है अन्यथा साधनृाके आधीन हो जावे या इन्द्रके भयसे धारण किया है, यह शंका भी हो सकती है, इसलिए भी धारण नहीं किया है, किन्तु लीलासे ही किया है, जिसमृ दृष्टान्त देता है कि जैसे बालक छतरीको उठाता है, वैसे उठाया।।१६।।

इस प्रकार माहात्म्य कहकर अपने किए हुए अपराधकी 'नमस्तस्मै' श्लोकसे नमस्कारपूर्वक क्षमा मांगता है.

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे।
अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः।।१७।।

अद्भुत चरित्र करनेवाले अनन्त सर्वके आदिकरण, निर्विकार स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करता हूं।।१७।।

आप अचिन्त्य ऐश्वर्यवाले हैं, मैंने आपको वैसा न समझ अन्यथा समझा, जिससे अपराध किया, अतः उस अपराधको क्षमा करना, यह प्रार्थना है. 'कृष्णाय' नाम देनेसे यह भाव प्रकट किया है कि आप भक्तृाका हित करनेकेलिए ही प्रकटे हैं किञ्च भगवानकी इच्छा ऐसी थी, जो सत्राजित् मरा वह आज अब विपरीत हुआ अनुग्रहकर आप निरोध करते हैं अथवा यह विपरीत है. उसको कहता है कि आपके कर्म 'अद्भुत' हैं, जिनको कोई भी समझ नहीं सकता है, प्रतिकार अशक्य है, यों कहनेकेलिये 'आदिभूताय' विशेषण दिया है, जिसका भावार्थ है कि आप सबके आदि हैं जिससे आपको एवं आपकी लीलाके भावृाको कोई जान नहीं सकता है इससे यह भी सूचित किया है कि किसीका अपराध भी नहीं है. 'कूटस्थाय' विशेषणसे आपमृ दोषृाका अभाव दिखाया है

और यह भी सूचित किया है, कोई भी अपराध करनेकेलिये समर्थ नहीं है, सबसे विशेष सर्व दोषाृके मिटानेकेलिये उपपत्ति देता है कि 'आत्मने नमः' आप सबकी आत्मा है वैसे आपको नमस्कार है।।१७।।

प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम्।
तस्मिन् न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ।।१८।।

जब अक्रूरने भी साथ देनेसे निषेध किया, तब शतधन्वा वह बड़ी मणि अक्रूरजीके पास धर अर्थात् उसको देकर सो योजन जानेवाले घोड़े पर चढ़(जाने लगा) चला गया।।१८।।

इस प्रकार जब उसने भी सर्व प्रकार युद्ध न करनेको कहा, तब भाग जानेकी इच्छावाले उसने समझ लिया कि यह मणि होगी तो मेरा वध होगा, इसलिये मणिको अक्रूरजीके पास धर सो योजन जानेवाले अश्व पर चढ़, चला गया।।१८।।

ग्रामसे रात्रिके समय ही निकले, यदि किसी दूसरेके पास रखाृगे तो उसके मरनेपर उसकी सन्तान मणि ले लेगी, इसलिये मणि उसको दू जो भगवानको दे देवे वैसा तो अक्रूरजी है क्याृकि भक्त है, यह मणि साधारण नहीं है इसलिये देनी भी कठिन है, दी नहीं जा सकती है, इससे यह भी सूचित किया है कि भगवान् अद्भुतकर्मा हैं वह ग्रहण भी नहीं करृगे नहीं तो उनको ही दे दू. अतः अक्रूरके पास धरकर ही भागना उचित है. पश्चात् भागा हुआ शतधन्वा एक ही दिनमृ सौ योजन दूर चला गया. याृ दूसरे दिन लोकमृ मनुष्याृकी आपसमृ बातचीत होने लगी कि शतधन्वा भाग गया. एक दिनमृ सौ योजन चला गया, तब भगवानने जो कुछ किया वह 'गरुड़ध्वज' श्लोकमृ कहते हैं.

गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ।
अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन् गुरुद्रुहम्।।१९।।

हे राजन्! राम-कृष्ण भी गरुड़की ध्वजावाले बड़े वेगवाले घोड़ाृसे युक्त रथमृ बैठ, उस गुरुद्रोहीके पीछे गए।।१९।।

भगवान् यदि उसी दिन जाते तो पासहीमृ पकड़ लेते, किन्तु आप दूसरे दिन भी मध्यान्हमृ निकले, इतनेमृ वह दोसौ योजन मार्गका अतिक्रमणकर चला गया, भगवानने सोचा कि दूसरे रथ तेज चलनेवाले नहीं है और अलौकिक प्रकार भी नहीं करना है अतः गरुड़की ध्वजावाले रथमृ राम व जनार्दन चढ़ सर्वसामग्री

उस एक ही रथमृ साधनसहित पूर्ण प्रयत्नसे रख महान वेगवाले घोड़ृसे सैन्यको साथमृ लेकर उसके पीछे गये, पीछे जानेका कारण उसको मारना था, मारनेकेलिये क्यृ गये? वह गुरुद्रोही था अतः वधके ही योग्य है, पांच गुरुओंमृ श्वशुरकी भी गणना की हुई है, उस 'श्वशुर'का इसने द्रोह किया है इसलिये गुरुद्रोही है, राजन्! सम्बोधन देनेका आशय यह है कि जैसे राजा ऐसृके वधमृ आलस्य नहीं करता है वैसे हम भी आलस्य त्याग शौर्य प्रकट करते हुए जा रहे हैं. गुरुद्रोह कहनेसे दूसरे भी इसके दोष दिखा दिये, शास्त्रमृ कहा है कि 'प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपु हन्ति धर्मवित्' शरण आया हुआ हो या जो बिना रथवाला हो और डरा हुआ हो ऐसे शत्रुको धर्मज्ञ नहीं मारते हैं, तो भगवान् धर्मज्ञ है उन्हृने विरथ डरे हुएको कैसे मारा? इस पक्षको यहां नहीं लिया है, क्यृकि इससे प्रबलपक्ष गुरुद्रोहीको मारना चाहिये, वह है।।१९।।

इतनेमृ वह मिथिला नगर तक पहुंच गया वह मारा गया, उसका मिलना और उस प्रकार 'मिथिलाया' श्लोकमृ कहते हैं.

मिथिलाया उपवने विसृज्य पतितं हयम्।
पद्भ्यामधावत् सन्त्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा।।२०।।

मिथिलाके उपवनमृ उसका घोड़ा श्रमित हो गिर गया, उस गिरे हुएको छोड़, डरा हुआ पैदल ही दौड़ता हुआ जा रहा था, भगवान् कृष्ण भी उसके पीछे क्रोधित हो दौड़ते हुए जाने लगे।।२०।।

बहुत दूर जानेसे अश्व थक गया जिससे वह पृथ्वी पर पड़ गया अर्थात् गिर गया, पश्चात् वह पैदल दौड़ता हुआ गया, अनन्तर भगवान् भी पैदलको पकड़नेकेलिये उसके पीछे रथसे जानेका शास्त्रमृ निषेध है, अतः भगवान् भी स्वयं पैदल हो उसके पीछे गये।।२०।।

पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना।
चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम्।।२१।।

पैदल भगवानने उस पैदलके सिरको सुदर्शनके तेज घेरेसे काटकर कपड़ृमृ मणि ढूंढने लगे।।२१।।

भगवान् आप भी पैदल थे, उस पैदलके तेज घेरेवाले सुदर्शनसे शिरको काट डाला, दौड़नेके समय ही शरीर दौड़ता हुवा ही स्थित था, शिर तो धडसे पृथक हो गया. भगवान् हैं, इसलिये उसको मोक्ष दान देनेकेलिये यृ करने लगे.

अतः इस प्रकार निरूपण किया है, अतएव भगवान् अद्भूतकर्मा है, बलभद्र आपके अद्भुतकर्म देख रहा है कि भगवान् जानते भी हैं कि मणि इसके पास अब नहीं है, तो भी कपड़ाॅमृ मणिको पूर्णरीतिसे ढूंढने लगे।।२१।।

बलभद्रका विचार था कि इसके पास मणि है इसलिये इसको मारना चाहिये, किन्तु भगवानका विचार था कि यह गुरुद्रोही है इसलिये यह मारनेके योग्य है, भगवान् जानते थे कि मणि इसके पास नहीं है तो भी भगवानने मारने योग्य समझ मारा, लोककी भांति बलभद्र ने अनेक प्रकारके वाक्य सुनकर निश्चयकर लिया था कि मणिका इसके पास होना ही इसका अपराध है, याॅ न हो तो लोक अन्य प्रकार भी कहता तो विश्वास न करते, अतः भगवान् कहते हैं.

अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजान्तिकम्।
वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते।।२२।।

भगवान् कृष्णके ढूंढने पर जब मणि न मिली, तब बड़े भ्राताके पास आकर कहने लगे कि शतधनुको वृथा मारा, उसके पास तो मणि नहीं है।।२२।।

भगवान् मणि न मिलने पर बड़े भ्राता बलदेवजीके पास आकर कहने लगे कि शतधनुको व्यर्थ ही मारा, यदि भगवान् यहां सर्वज्ञत्व दिखाते तो आपका अपराध दीखता, जानकर ही वहां गये जहां मणि नहीं थी, सर्वज्ञत्वमॅृ सर्वकर्तृपन भी होगा इसलिये सुतराम ही अपराध होवे इससे अज्ञानका नाट्य करना चाहिये, अर्थात् आप सब जानते हुए भी इस प्रकार लीला करनेमॅृ अपनी अज्ञता प्रकट करनेकेलिये ही बलरामजीको कहा कि इसके पास मणि जानकर इसको मारा, किन्तु इसके पास मणि तो है ही नहीं यह भगवानका अज्ञान, नाट्यकर दिखाना है, 'वृथाहतः शतधनु' इस पंक्तिका अर्थ दूसरे प्रकार भी होता है, जैसे कि 'शतधनुः वृथा अहतः' शतधनुका मारना निरर्थक नहीं है किन्तु सार्थक है, क्याॅकि वह गुरुद्रोही था मणि न मिली तो भी इसका वध होना ही चाहिये था, नहीं तो लोक कहते कि इन्हाॅने कुछ नहीं किया, ऐसे गुरुदोहीको छोड़ दिया. मणि तो इसके पास नहीं है इसलिये दोनाॅ बात 'मारना व न मारना' समान है।।२२।।

पश्चात् युक्तियाॅके ज्ञाता बलभद्रजीने 'तत आह' श्लोकमॅृ भगवानको कहा.

तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना।
कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष्टुं पुरं व्रज।।२३।।

अनन्तर बलरामजीने भगवानको कहा कि निश्चय है कि शतधनुने यह मणि किसी पुरुषके पास रखी है, उसकी सूचना निकालनेकेलिए नगरमॄ जाओ।।२३।।

बलभद्रका कहना है कि मणिकी अवश्य खोज करनी, जो उस स्थान पर नहीं है तब निश्चयसे शतधन्वाने[१] वह मणि किसी पुरुषके पास रखी है, न कि पृथ्वीमॄ गाड़ी है वा स्त्रीको दी है, पुरुष पद देनेसे यह सूचित किया है कि किसी महानको दी है, 'नयस्त' पदका भावार्थ है कि गिरवीकी भांति रखी है, उसने यॄ किया है तो क्या करना चाहिये? इसके उत्तरमॄ बलभद्रने कहा कि आप घर मत जाओ नगरीमॄ जाकर खोज करो क्यॄकि जिसकेलिये आये वह काम नहीं हुआ है।।२३।।

१.'शतधन्वन्' शब्द नकारान्त है जिसकी 'शतधन्वना' तृतीया विभक्ति है.

अपना अन्यत्र जाना बतातॄ हैं 'अहं विदेहमिच्छामि'.

अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम।
इत्युक्त्वा मिथिलां राजन् विवेश यदुनन्दनः।।२४।।

मैं अपने प्रियतम विदेहको देखनेकेलिए मिथिला जा रहा हूं. हे राजन्! यॄ कहकर बलरामने मिथिलामॄ प्रवेश किया अर्थात् गए।।२४।।

पृथ्वीका भार उतारनेकेलिये ही दोनॄ पधारे हैं, लोक दो स्वभाववाले हैं एक प्रवृत्ति परायण है, दूसरे निवृत्ति परायण हैं, जो दोनॄ एकहीमॄ आसक्त हो जावॄ, अर्थात् दोनॄ एक स्वभाववालॄके उद्धार करनेमॄ लग जावॄ, तो उस पक्षको बलवान् देख दूसरा निवृत्त हो जाय, अथवा वैसा बन जाय, उससे भूमिका भार न उतरकर वैसा ही रह जावे, इसलिये लोक जय आदि फलमॄ दोनॄ परस्पर विरुद्ध स्वभाववाले हो गये, अतः दुर्योधनको शिक्षा देनेकेलिये बलरामजी विदेहके नगर जाते हुए भगवानको द्वारकामॄ भेजने लगे, यहांसे ही दोनॄकी शक्ति पृथक विभाजित हो गई एकदूसरेकी लीलामॄ असम्मति भी दिखाई जाती है, अतएव आगे भगवानके वाक्य हैं, किन्तु 'मामग्रजः सम्यक् न प्रत्येति मणि प्रतीति', परन्तु मेरे बड़े भाई मणिके प्रति पूरा ध्यान नहीं देते हैं. ईश्वरकी शक्तियॄके विभक्त होनेसे उनके भक्तॄकी बुद्धि भी बट जाती है, इसलिये अक्रूर और भीष्म आदिका शील भी भगवानसे भिन्न हो गया, जो इस प्रकार प्रभु लीला न करते तो दोनॄ प्रकारके भक्तॄका निरोध न होता, अतः जो बलभद्रके प्रकारसे निरुद्ध हुए वे

भगवानके विचारूके अनुकूल नहीं होते और जो भगवानने निरुद्ध किये वे बलभद्रके अनुकूल नहीं थे, इन दोनू शक्तियूके विभाग होनेसे शास्त्र(ज्ञानशास्त्र और भक्तिशास्त्र) भी विभक्त हुए, यह जतानेकेलिये 'विदेह' पद दिया है. जो ज्ञानमू निष्ठ थे वे प्रिय प्रसन्न बलरामके पक्षमू थे, भक्तिमू निष्ठावाले दूसरेमू क्रिया(कर्म और ज्ञान) और ज्ञानशक्ति एक स्थान पर और भक्ति तथा परमानन्द दूसरे स्थान पर. अतएव बलरामको विदेह प्रियतम है. इस कारणसे उसके पास जाकर उसके दर्शनकेलिये अत्यन्त उत्सुक होने लगे, ज्ञानपक्षमू वेदमार्ग अत्यन्त आदरणीय नहीं है इसलिये गरुड़की ध्वजावाला रथ भगवानने ही लिया, बलदेव दूसरे रथमू बैठकर अथवा पैदल गये, यों निश्चय किया जाता है, श्रीबलभद्र नियोग करनेवाले हैं इसलिये उनका ही चरित्र तीन श्लोकूसे कहा जाता है, मिथिला नगरी बनाई नहीं गई है किन्तु मथन करनेसे उत्पन्न हुई है, यू कहनेका भावार्थ यह है कि इसी कारणसे ही इस मिथिलामू कर्म और ज्ञानका उद्भव होता है, यह सूचित किया है, 'यदुनन्दन' नाम देनेसे यह भाव बताया है कि इसलिये ही भगवदवतार हैं, यू करना उचित ही है यह बता दिया।।२४।।

पश्चात् राजाका किया हुआ अभिनन्दन कहा जाता है.

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः।
अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः।।२५।।

उनको देख मिथिलाका राजा प्रसन्नचित्त हो जल्दी उठ खड़ा हुआ, पूजाके योग्य सामग्रीसे विधिके अनुसार बलदेवजीकी पूजा की।।२५।।

मैथिल बलदेवजीका अतिप्रिय था, इसलिए उसे सूचित किए बिना ही वहां गए. अतः अन्तःपुरमू पहुंच जानेके अनन्तर उनको देखकर राजाने जाना कि बलदेवजी आए हैं, तब एकदम उठकर उनकी पूजा की यू कहा; क्यूकि मैथिल है दर्शनसे ही प्रसन्न चित्त हो गया, इस प्रकार कहनेसे राजाके देह, इन्द्रिय आदिकी स्थिति प्रेमयुक्त हो गई, यों सूचित किया, अनन्तर राजाने जो कार्य किया, उसका वर्णन करते हैं कि विधि अनुसार राजाने बलरामजीकी पूजा की इस कार्यमू स्वल्प भी पुष्टि नहीं है, यह सूचित करनेकेलिए 'अर्हणीयम्' रामकी साधनपूर्वक सबको पूजा करनी चाहिए, क्यूकि ब्रह्मरूप है, किससे पूजा करनी चाहिए? जिसके उत्तरमू कहा कि 'समर्हणैः' अच्छे प्रकार पूजाके योग्य शुद्ध द्रव्यूसे पूजा करनी चाहिए।।२५।।

१.मिथिलामृ उत्पन्न होनेसे कर्म और ज्ञानमृ निपुण है.

इस प्रकार पूजाके बाद उसके लौटनेकी सम्भावनाकर उसके निषेध केलिए 'उवास' श्लोकसे कहते हैं.

उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः।
ततोऽशिक्षद् गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः।।
मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना।।२६।।

बलदेवजी कितने ही वर्ष उस मिथिलामृ रहे, पश्चात् वहां समय पाकर धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने उनसे गदायुद्धकी शिक्षा प्राप्त की, महात्मा जनकने भी बडे प्रेमसे उनका आदर-सत्कार किया।।२६।।

बलरामजी राजगृहमृ नहीं रहे यह बतानेकेलिये कहा है कि 'तस्यां मिथिलायां' उस मिथिलापुरीमृ रहे. रहनेका समय बताते हुए कहते है कि कितने वर्ष अर्थात् तीन वर्ष वा इससे कुछ अधिक रहे, वह नगरी मर्यादायुक्त है इसलिये वहां रहनेमृ किसी प्रकार उद्वेग नहीं हुआ, वहां इतना समय रहनेसे परदेशवासमृ जो कलेश आदि होते हैं वे आपको भी हुवे ह्मगे ? जिसके उत्तरमृ कहते हैं कि नहीं हुवे, क्यृकि आप 'विभुः' हैं अर्थात् सर्वसमर्थ हैं, इतना समय रहे जिसका प्रयोजन बताते हैं कि धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनको गदा युद्धकी शिक्षा दी, धृतराष्ट्र पद कहनेका भाव यह है कि दुर्योधन धृतराष्ट्र जैसे पिताका पुत्र है जिससे जैसे वह समर्थ है तैसे पुत्र भी समर्थ है इसलिये ही 'सुयोधनः' विशेषण दिया है कि अच्छे प्रकार युद्धकर सकता है अथवा दुर्योधन पदको यौगिक मानकर उसके तात्पर्यके निषेधकेलिये विपरीत 'सुयोधन' दिया है श्लोकमृ बताते हैं कि यह रूढ़ पद है, अतः इसकी ज्ञान और क्रियाशक्ति दोनृ पुष्ट नहीं थी, इसलिये बलभद्रसे गदा युद्ध सीखी, जब वह गदाकी शिक्षाके योग्य हुआ उस समय शिक्षा ग्रहण की, गदा चलाने योग्य तब होता है जब वह अत्यन्त बलवान् एवं तरुण हो, जिस कालमृ प्रहार शुष्क होता है उस समय पूय आदिको नहीं बनाता है तथा नाड़ियां भी टुकड़े-टुकड़े अर्थात् टूट नहीं जाती है एवं शिथिल भी नहीं होती है. इसलिये गदा सीखनेका समय शरदऋतुसे छ मास होता है, उस समय ठंडक होनेसे शरीरमृ फुर्ती रहती है पसीने आदि भी नहीं होते हैं, ऐसे योग्य समयमृ गदाकी शिक्षा प्राप्त की, वह भी विदेशमृ रहता था, जिससे कोई उद्वेग नहीं था और जनक द्वारा प्रेमपूर्वक सम्मानित हुवा था, क्यृकि जनक जन्मसे ही उत्कृष्ट थे, उस कुलीनका

मर्यादावाला जानकर अंगीकार किया, बलभद्रके सम्बन्धी हैं इसलिये भी प्रेम किया, यों स्वतः आप स्वभावसे भी महात्मा है, जिससे जो भी गृहमृ आता है उसकी आराधना करते ही हैं, अतः तीन प्रकारसे आदर पाया, जिससे कायादि क्लेश न होनेसे सीखे, शिक्षासे गदा युद्धको जान लिया कि गदासे इस प्रकार युद्ध किया जाता है।।२६।।

मर्यादारूप भगवानका चरित्र कहकर 'केशवो' श्लोकमृ पुष्टिरूप चरित्र कहते हैं.

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः।
अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः।।२७।।

प्रिय करनेवाले सर्वकरण समर्थ केशवने द्वारकामृ आकर शतधन्वाका मरण और मणिका न मिलना, दोनृ बातृ कह सुनाई।।२७।।

पैदा करनेवाले और नाश करनेवाले दोनृको फल समान देते हैं इसलिये कहा जाता है कि प्रभु पुष्टिस्थ अर्थात् अनुग्रह करनेमृ स्थित हैं, रथसे द्वारकामृ आकर सत्यभामा आदिके प्रसन्नतार्थ शतधन्वाका मरण सुनाया और तदीयृके सुखकेलिये कहा कि मणि नहीं मिली, सर्वेश्वरने आज्ञाकारीकी भांति अपना किया हुया कार्य क्यृ निरूपण किया? इस शंकाकी निवृत्तिकेलिये कहते हैं कि यृ कह देनेका कारण यह है कि भगवान् अपनी प्रियाका प्रिय करनेवाले हैं, यदि कहो कि यह भी योग्य नहीं, तो इसका उत्तर देते हैं कि 'विभु' सर्व करनेकेलिये समर्थ है, यों करनेसे किसी प्रकार हानि नहीं, दोनृ बात प्यारीके प्रिय हित करनेकेलिये कह दी है, मणिकी प्राप्तिकी बात प्रिय कैसे है? यह शंका होती है, जिसका उत्तर है भगवान् सर्वसमर्थ हैं इसलिये यह कार्य भी सत्यभामाके मनमृ प्रिय करवा दिया क्यृकि सत्यभामा समझ गई कि इसमृ हम लोगृका हित ही है।।२७।।

वैरका कार्य आयु पर्यन्त रहता है, मरनेके बाद वैर नहीं, अतः शतधनुके मरनेके अनन्तर सत्यभामाके प्रसन्न हो जानेके बाद, जो कर्त्तव्य करना चाहिये वह कराने लगे, वह 'ततः' श्लोकमृ कहते है.

ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै।
साकं सुहृद्भिर्भगवान् या याः स्युः सांपरायिकाः।।२८।।

उसके अनन्तर भगवान् कृष्णने बान्धवृके साथ मिलकर मरे हुए बन्धुकी जो-जो मृतक क्रियाएं करनी चाहिए, वे करवाई।।२८।।

श्वशुर बन्धुकी क्रिया ब्राह्मण द्वारा करानी है, बान्धवॄके[1] साथ मिलकर कराई, इस लौकिकनीतिके कहनेका भावार्थ यह है कि इसका परलोकमॄ भी भगवान् कुछ अलोकिक नहीं करते हैं, 'भगवान्' कहनेसे बड़ा ही पोषण हुआ ऐसी सूचना दी. 'सुहृद्भिः' कहनेसे यह बताया है कि इस क्रियाके करनेमॄ सर्वकी आवश्यकता होती है, जो-जो विधिमॄ आवश्यक अथवा अनावश्यक सब फलके अर्थ संग्रह किये हैं।।२८।।

१.मित्र, वे जिनका हृदय पवित्र प्रेमवाला है ऐसे बान्धवॄ.

बलभद्रजीके कहनेसे मणि ढूंढनेमॄ प्रवृत्त हुए लोकसे भी जाना कि यह अक्रूर तथा कृतवर्माका कृत्य है, जब ही लोकके आग्रहसे उनका निग्रह करना प्राप्त हुआ तब ही भगवदिच्छासे उनकी बुद्धि भाग जानेकी हुई, जिसका वर्णन 'अक्रूरः कृतवर्मा' श्लोकमॄ करते है.

अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम्।
व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ।।२९।।

अक्रूर और कृतवर्मा शतधनुका वध सुनकर भयसे त्रासको प्राप्त होनेसे कोई मिषकर द्वारकासे निकल गए, क्यॄ डरे थे? जिसके उत्तरमॄ कहा है कि शतधन्वाके प्रेरक ये दोनॄ थे, इस कारणसे डरे थे और द्वारका छोड़ गए।।२९।।

शतधनुका वध सुनकर मणिका रखना और सत्राजितका वध दोनॄ कार्योंमॄ ये दोनॄ प्रयोजक थे जिससे ये भी अपनेको उसके भीतर समझने लगे. अर्थात् अपनेको दोषी समझने लगे अतः भयसे डरे, मिषकर द्वारकासे बाहर चले गये भगवानके प्रयत्नसे पहले ही, भगवानकी शक्तिका विभाग हो गया था. उन दोनॄके निकल जाने मात्रसे ही भागना सर्वजनीन हो गया अर्थात् सबको मालूम हो गया, इसलिये दोनॄकी बढ़ाई करते हैं कि ये दोनॄ द्वारकाके प्रयोजक है, एक लोकसे दूसरा वेदसे अवेक्षक हैं, जैसेकि एक कोटवाल था, दूसरा धर्माध्यक्ष है।।२६।।

भगवानने साधन शक्ति दूसरे स्थान पर भेज दी, इसलिये इस विषयमॄ यहां भगवान् ही निमित्त हैं, प्रयोजक मणि बलभद्र और दुष्टॄके निवारक सत्साधनॄका सम्पादक आधिभौतिकादिकॄका भी दूसरे स्थान पर जाने पर, यहां केवल फलरूप भगवानके विद्यमान होते हुए भी सब द्वारकावासियॄको पीड़ा उत्पन्न हो गई, जिसका वर्णन 'अक्रूरे प्रोषिते' श्लोकमॄ करते हैं.

अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन् वै द्वारकौकसाम्।
शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः।।३०।।

जब अक्रूरजी द्वारका छोड़ गए, तब द्वारकावासियाृके अनिष्ट होने लगे जैसे कि शारीरिक, मानसिक, दैविक, भौतिक सर्व ताप बार-बार आने लगे।।३०।।

इस अनिष्टमृ केवल अक्रूरजीका ही प्रयोजकपन है यह लोक सिद्ध है, सर्वलोक आधिभौतिक व्यवस्थावाला ही हो गया है, उसमृ भी साधनृके विद्यमान होते हुए भी ताप हो रहे है, जिसमृ लौकिक कृतवर्माको प्रयोजक न मान धर्माध्यक्ष अक्रूरको ही सवजनका प्रयोजक मान लिया सर्व द्वारकावासियाृको सर्व प्रकारकी शारीरिक, मानसिक (व्याधि एवं आधिरूप) पीडा बार-बार होने लगी, ये आध्यात्मिक गिने गये, आधिदैविक तथा आधिभौतिक ताप फिर होने लगे. यह भाषा लौकिकी है इसमृ किसी प्रकार विरोधकी शंका न करनी चाहिये, कारणकि उत्तरार्धमृ जो लीला की है, वह लोकधर्मको सामने रखकर की है, अर्थात् लोकानुसार की है, इसलिये लौकिकीभाषा है, कोई कहते हैं कि समग्र उत्तरार्ध[१] लौकिकीभाषा नहीं है, ये दुःख, ज्ञान आदिसे इनका उपाय करने पर भी फिर-फिर उत्पन्न हो जाते हैं, वे भी फिर शरीरमृ और मनमृ ही दुःख पैदा करते हैं, इसलिये वह विशेषणत्वसे कहे हैं।।३०।।

१.स्वरूपसे लौकिकताकी लीला जहां-जहां है, उतनी ही लौकिकीभाषा है यों किन्हींका मत है.

आगेकी भांति फिर लोकमृ विपरीततासे यश होने लगा, जिसका वर्णन 'इत्यङ्गोप' श्लोकमृ करते हैं.

इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम्।।३०।।

हे अंग! कई लोक पहले कहे हुएको भूलकर यों स्तुति करते हैं।।३०।।

जो मणि लेकर भाग जाता है, उसकी लोक प्रशंसा करते हैं जो नहीं लेता है और निर्लेप है, उसकी निन्दा करते हैं, अतः पूर्वके अध्यायमृ निन्दाका निरूपणकर यहां स्तुतिका निरूपण करते हैं, याृ इस प्रकार होने पर हे अंग! हे राजन्! कोई हम जानकार हैं, ऐसे अभिमानी, परमार्थदर्शी होते हुए भी पहले कहे हुए भगवानके वीर्य(पराक्रम) विभागको अथवा मणि सामर्थ्यको भूलकर आप भ्रान्त होनेसे एक देशमृ ही जिनकी बुद्धि रह गई है ऐसे, दूसराृको उपदेश देते हैं,

दोनॄमॄ भगवानकी इच्छा ही विस्मरण और उपदेश दोनॄमॄ लगानेवाली है।।३०।।

उनका उपदेश 'मुनिवास' इन ढाई श्लोकॄमॄ कहते हैं.

वृद्धाः ऊचुः

मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम्।।३१।।
देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै।
स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात् ततोऽवर्षत् स्म काशिषु।३२।।
तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरे यत्र यत्र ह।
देवोऽभिवर्षते तत्र नोपपाता न मारिकाः।।३३।।

मुनिका जहां वास है, ऐसे गृहके स्थित होते हुए नगरमॄ क्या अनिष्ट हो सकता है? नहीं हो सकता है, एक समय काशीके प्रदेशॄमॄ वर्षा न हुई, तब वहां श्वफल्क आ गया था, उसको काशीराजने अपनी गान्दिनी नामवाली कन्या दी थी, तब उन प्रदेशॄमॄ वर्षा हुई, यह अक्रूर उसका पुत्र है, अतः इसका भी वैसा ही प्रभाव है, जिससे जहां-जहां यह जाता है, वहां-वहां वर्षा होती है तथा न उपद्रव होते हैं और न पूतना आदि नाशकारी शक्तियां आ सकती हैं।।३१-३३।।

यह अक्रूर मुनि है, उसकी जहां स्थिति होती है कहनेका यह तात्पर्य है, कि मुनि चित्-अभिमानसे गृहकर रहता है, वहां अनिष्टका दर्शन होना बन नहीं सकता है, उसका मुनिपन सिद्ध करते हैं, पहले, इन्द्रदेवके न बरसने पर अनावृष्टिसे पीड़ित काशीके राजाने महादेवादि देवॄके कहनेसे प्रसंगसे आये हुए श्वफल्कको अपनी गान्दिनी नाम कन्या दी इस प्रकार कन्या देनेसे काशी तथा उसके प्रदेशॄमॄ सर्वत्र इन्द्र वर्षा करने लगे थे, यह प्रसिद्ध है, जो यों है तो उसके कहनेका क्या कारण है? इस पर कहते हैं कि यह उसका पुत्र है, काशिराजको पुत्र नहीं था तब उसने साल भर नित्य गौदान किया, जिससे उसको यह कन्या जन्मी, अनन्तर बारह वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन एक-एक गौ उसके हाथसे दान करवाई, वैसी यह गान्दिनी थी, उसका यह पुत्र है, अथवा श्वफल्कका पुत्र है, उन दोनॄका जितना प्रभाव है, उतने प्रभाववाला यह भी होने योग्य है अर्थात् इसमॄ भी उतना ही प्रभाव देखनेमॄ आता है अथवा इसमॄ उतने प्रभावका आविर्भाव हुआ है, वहां विशेष भक्ति होने पर भगवान् उस रूपसे प्रकाशमान हैं, इसलिये किसी प्रकार भी अनुपपत्ति नहीं है, अर्थात् जहां-जहां अक्रूर रहता है वहां-वहां इन्द्र पहले कहे हुए न्यायसे वर्षा करता है, यों पिताके सामर्थ्यका सम्बन्ध कहा है. अब माताके

सम्बन्धका सामर्थ्य बताते हैं कि, जहां अक्रूर रहता है वहां उत्पात आदि ताप भी नहीं होते है, भक्तिकी उपलब्धिवाला है जिससे इन प्रभावॄके अतिरिक्त अन्य असाधारण प्रभाव भी हैं, मारनेवाला तामसी पूतनादि शक्तियां भी वहां नहीं आ सकती है ये तामसी पूतना आदि शक्तियां जहां सात्विक भगवद्भक्त विद्यमान है, उसके निकट भी नहीं आ सकती है, यह कहना योग्य ही है उपापताका तात्पर्य है कि पातक अथवा उत्पातॄका होना, यह सब प्रभाव गोदानका वर्णन किया है, गोदानका ऐसा आश्चर्य प्रकट करनेवाला प्रभाव दिखानेकेलिये 'ह' पद दिया है, प्रभाव भी कार्यमॄ कैसे परिणत हुआ? वहां भी दोनॄका(पिता और माताका) और उससे भी विशिष्ट(भक्ति सम्बन्धसे) हुआ।।३१-३३।।

जब भगवान् विद्यमान हैं तब दूसरेके उत्कर्ष वचन भ्रान्त है यदि याॄ कहो तो उसका उत्तर 'इति वृद्धवचः' श्लोकमॄ देते हैं.

इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम्।
इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः।।३४।।

याॄ वृद्धॄके वचन सुनकर भगवानने तो समझ लिया था कि इतना ही कारण नहीं है, अतः भगवानने अक्रूरको बुलाकर कहा।।३४।।

पहले वृद्धॄका आदर करना चाहिये, जैसे भी उन्हॄने कहा वह अंगीकार करना चाहिये, पश्चात् भगवानसे सुना, वैसे यह भगवद्वचन भी सुनकर उस दोषका निराकरण करनेकेलिये प्रयत्न करना चाहिये, भगवद्वचनॄसे ज्ञात होता है, कि लोक आधे भूले हुए हैं अर्थात् उनको सम्पूर्ण विषयका ज्ञान नहीं है जिससे अक्रूर यहांसे चला गया जिसका कारण मणि और बलभद्र है. यह नहीं जानते हैं, भगवान् तो विचारशील है, अतः जैसे उसका योग्य उपाय समझा वैसे ही करने लगे. अक्रूरको बुलानेमॄ, लोक दोष देखॄगे, किन्तु भगवानने पूर्ण ही कारण समझ समाधान किया है कि केवल जितना वृद्ध लोक कहते हैं इतना ही कारण नहीं है, दूसरा असाधारण कारण भी है, जिससे यहां आध्यात्मिक आदि ताप भी होते हैं, उनको प्रकट न कर अच्छे प्रकारसे निश्चयकर पूरी तरहसे विचारकर, दूतॄके द्वारा अक्रूरको बुलाकर, उसको न मारनेका अभय दान दिया कि तुझे मारा नहीं जायेगा. भगवानके लोकॄकी अविद्या आदि समस्त दुःखॄके नाश करनेवाले होनेसे, जनार्दन कहे जाते हैं, इसलिये यहा जनार्दन नाम देकर यह सूचित किया है कि अकूरकी अक्रूर-अविद्याका नाशकर, पश्चात् मणि प्रकट करनेकेलिये

उसको कहने लगे, वह अक्रूर तो काशी अथवा प्रयागमृ मरणका निश्चयकर तीर्थोंका आश्रय ले वहां स्थित हुआ था. जो भगवान् मुझे शतधन्वाकी भांति मारृगे तो यहां ही प्रयागादि तीर्थों पर मारे, जिससे परलोकमृ हित हो यह ही वह चाहता था. भगवान् तो क्लेश युक्त कर्म नहीं करते हैं मणि तो मारनेके सिवाय भी दृगे, तो भी सत्यभामाके प्रतिनिधित्वसे अक्रूरको ही मणि देनी चाहिये यों भगवान् निश्चयकर, मौशलसे ही उसको मारने वास्ते याृ किया, हमारे स्वामी जीवृसे निश्चिय ज्ञात होने पर भी प्राकृतकी भांति उसका शोक ग्रहण नहीं करते हैं, अर्थात् उसको क्लेश नहीं देते हैं सात्यकिकी तरह मरनेकेलिये अनशन करनेवालेको नहीं मारते हैं, अथवा तक्षककी भांति खाकर नहीं मारते हैं और कालकी तरह भी नहीं मारते हैं, इस कारणसे जो भगवान् अक्लिष्टकर्मा हैं, उन भगवानने अक्रूरको बुलाकर ही कहा।।३४।।

पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः।
विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह।।३५।।

अक्रूरका पूजनकर, वाणीसे स्वागतकर, प्रिय कथाएं कहकर, सबके चित्तकी बातृको जाननेवाले भगवान् मुस्कराते हुए कहने लगे।।३५।।

भगवानने अक्रूरजीके देह, इन्द्रिय और अन्तःकरणृका विविध सत्कार किया जैसे कि प्रथम पितृव्य(चाचा) होनेके कारण पूजन किया, जिससे देहका सत्कार हुआ. पश्चात् 'आप भले पधारे' आदि शब्दृ द्वारा कुशल प्रश्नृसे इन्द्रियृका आदर किया. अन्तमृ आदरसे अन्तःकरणको प्रसन्न करनेकेलिये प्रिय कथाएं सुनाई. इस प्रकार तीन तरहसे देह, इन्द्रिया और अन्तःकरणको सुख देकर, विचार किया कि मणि तो इसके पास है, किन्तु मांगनेसे ही दिखाएगा, यह निश्चय किया याृ निश्चय करनेका कारण बताते है कि, समस्तृके चित्तके भावृको जाननेवाले हैं, जिससे जान लिया कि अक्रूरजी सोच रहे हैं कि भगवान् जब याचना करृगे तब दिखाऊंगा अक्रूरका यह ज्ञान ही दिखलानेको स्वीकारमृ हेतु है इसलिये यह निरूपण किया है, भगवान् उस समय मुस्कुराने लगे, क्यृकि भगवानके विचारमृ कि जो मेरा भक्त होकर मेरे चरणृकी धूलिमृ लेटा था वह ऐसा केवल कुसंगके वशसे हुआ है यह आश्चर्यका विषय है, 'ह' शब्द देनेका यह भाव है, जिससे जो डरता अथवा जो दण्डके योग्य है, वह कृपापात्रकी भांति बोला जाता है।।३५।।

'ननु दानपते' श्लोकसे भगवद्वाक्य कहते हैं.

श्रीभगवानुवाच

ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना।
स्यमन्तको मणिः श्रीमान्विदितः पूर्वमेव नः।।३६।।

हे दानपति! सदैव शोभावाली स्यमन्तकमणि शतधन्वाने निश्चय है कि तुम्हारे पास धरी है, यह हमृ पहलेसे ही मालूम है।।३६।।

भगवानने अक्रूरके मुखमृ किसी प्रकारका विकार नहीं देखा, जिससे जान लिया कि अक्रूर यह बात स्वीकार करेगा कि मणि मेरे पास है, क्यृकि वह सर्व धर्मकी सूक्ष्मताको जानता है, इसलिये ही दानाध्यक्ष रहा है, यों मुखकी आकृति और कार्यसे निश्चयकर अक्रूरको कहने लगे, मणि आपके पास धरी है, यह आज तक भी आपके स्थानमृ रखी है कहीं गई नहीं है. वह शतधन्वाने ही दी है न कि उसके सम्बन्धियृने दी है, स्यमन्तकमणि प्रसिद्ध है, उसका नाश आदि होता ही नहीं है. कारणकि वह 'श्रीमान्' है, जिससे वह सदैव श्रीवाली होनेसे, आपद्रूप नाशको प्राप्त नहीं होती है ये जो अर्थ कहे हैं उसमृ प्रमाण देते हैं कि 'विदित' सब कोई इस बातको जानते हैं कि यह मणि ऐसी है, अब जानी हुई बात भूली हुई वा झूठी होगी, इसके निवारणकेलिये कहते हैं कि पहले हमने ही जाना है।।३६।।

जब आपको मालूम था तो उस समय ही क्यृ न मांग ली, यदि यृ कहृ तो उसका उत्तर 'सत्राजितोऽनपत्यत्वात्' श्लोकमृ देते हैं.

सत्राजितोऽनपत्यत्वाद् गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः।
दायं निनीयापः पिण्डान्विमुच्यर्णं च शेषितम्।।३७।।

सत्राजितके पुत्र नहीं है, इसलिए उसकी मृतकक्रिया पिण्ड आदि कर और जो उसको देना रह गया हो, वह देकर शेष बचा हुआ धन आदि वह बेटीका पुत्र लेवे, यह शास्त्र नियम है।।।३७।।

अधिकारी ही याचना कर सकता है, जो पिण्ड देनेवाला है वह 'दाय' भाग लेनेवाला होता है इतने समय तक सत्यभामाके सन्तान पैदा नहीं हुई थी और वह तो अपुत्र तथा उसका कोई भाई भी नहीं है, मणि तो उस(सत्राजित)की थी, उस मणिके लेनेके हकदार कन्याके पुत्र हैं वे लेवे, इस विषयमृ साधारण नियम वा न्याय कहते हैं कि 'दायं निनीय' धर्मशास्त्रमृ कहा है, यदि यों न्याय न होवे तो यह कार्य भी स्वतन्त्र हो जाये कोई नीति या मर्यादा न रहे. मातामहका धन कन्याके

पुत्र लेवृ यह पूर्वसे सम्बन्ध है, जबतक जीता है तबतक उसका ही है, मरनेके बाद भी पुत्र न हो तो जलतर्पण, पिण्ड आदि मृतकक्रियाकर और उसको जो देना हो वह सब देकर शेष बचे हुए धनको दौहित्र लेवे, किसी पुस्तककी प्रतिमृ 'शेषभाक्' पाठ है जिसका आशय है कि वारस बनता है, धन लेता है. वह लेता है, वह उपरोक्त कार्य करनेके बाद शेष धन ले लेवे न कि धन लेकर उसकी क्रिया न करे और न उसका ऋण उतारे केवल द्रव्य ले लेवे इस प्रकार शास्त्राज्ञा नहीं है. जिसके धनका कोई मालिक नहीं बनता है उसका मालिक राजा है, चोरको मारकर जो वस्तु मिले उसका भी मारनेवाला सच्चा भागी नहीं है. वह द्रव्य नहीं ले सकता है, जो उत्पन्न हुवा है वह ही वारिस हो सकता है. जिसमृ कुछ फरक पड़ गया है वैसी ज्ञातिवाला दायभागी नहीं होता है यों कोई कहते हैं. वास्तवमृ दाय (वारिस) कौन होता है? इसका निर्णय करते हैं द्रव्यका स्वामी जब परलोकगामी होवे, उस स्वामीके परम्परासे मूल शाखा पर्यन्त जाकर जांच की जाये कि उसकी शाखामृ निकट कौन है जो समीप हो वह 'दाय' भागी होना चाहिये अथवा जो कोई भी सर्वकी अनुमतिसे पिण्डदान करे वह दायभागी हो सकता है, इस प्रकार दो श्लोकृसे भेद और दण्ड कहा अथवा दो प्रकार दायके बताये।।३७।।

'तथापि' श्लोकसे दो श्लोकृमृ 'सामदान' कहते हैं.

तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः।
किन्तु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति।।३८।।

तो भी यह मणि अपने पास ही रहने दो; क्यृकि यह अन्यृके पास रहे, ऐसी नहीं है, किन्तु आपके पास रह सकेगी, कारणकि आप सुन्दर व्रत धारण करनेवाले हैं, परन्तु बड़े भाई बलरामजीको इस मणिके विषयमृ हमारा विश्वास नहीं है।।३८।।

यह मणि दूसरे अपने पास रख नहीं सकते हैं, इसलिये यह आपके ही पास भले हो, क्यृकि लौकिकमृ, अलौकिक ठहर नहीं सकता है, जो अलौकिक अपवृतकर्म आदि मार्गोंसे लौकिकपनको प्राप्त नहीं होता है, अपवृत्त कर्मवाला लौकिक होता है, (परन्तु) कभी-कभी व्रत करनेवाला भी समय भेदसे लौकिक ही हो जाता है, जब यो है तो मेरे पास कैसे रह सकेगी इस शंकाको निवृत्त करनेकेलिये कहते हैं कि आप सदैव नियमपूर्वक व्रत करते हो, इस प्रकार इसके व्रत कहनेसे दानका वर्णनकर अब सामका वर्णन करते हैं. सामका तात्पर्य है कि समतासे

कार्यकी सिद्धि होती है इससे समता द्वारा अक्रूरजीको कहने लगे कि आपके पास पड़ी रहे, किन्तु एकबार ही दिखा दो, समता करनेसे दोनूमृ एकता बढ़ती है, एकता होने पर, जैसे आपके कार्यमृ मणिका उपयोग होता है, वैसे हमारे कार्यमृ भी उसका उपयोग होता रहेगा जो योग्य ही है. यदि आप न दिखाते है तो मेरे बड़े भ्राता श्रीदाऊजी मणिके विषयमृ मेरे ऊपर विश्वास नहीं करते हैं, किन्तु समझते हैं कि मणि श्रीकृष्णके पास है मुझसे छिपाता है. अतः एकबार मणि दिखाओ।।३८।।

अतः जैसे जाम्बवानने अपयश मिटानेकेलिये मणि दी, वैसे आपको भी मणि दिखानी चाहिये–यह 'दर्शयस्व' श्लोकमृ कहते हैं.

दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिमावह।
अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः।।३९।।

हे महाभाग! मणिको दिखा दो, जिससे बान्धवामृ शान्ति बना रखो, अब आपके सुवर्णकी वेदी पर अखण्ड यज्ञ हो रहे हैं।।३९।।

आप बड़े भाग्यवाले हैं, जिससे मणि अन्यत्र जा नहीं सकती है, हम पर यदि विश्वास न आता है तो भाग्य पर तो विश्वास करो, महाभाग विशेषण देनेका यह ही भाव है, मणिके दिखानेसे दूसरा भी उपकार होगा, जैसेकि अब हम बान्धवामृ मणिके कारण कलह उत्पन्न हो गया है, वह शान्त हो जायेगा, कितने मेरे पक्षपाती हैं और कई बलरामजीका पक्ष ले बैठे हैं, मणि देखने पर वह सन्देह मिट जायेगा, तो कलह भी न रहेगा, मणि आपके पास है ही, इसमृ लौकिक प्रमाण है, वह प्रमाण यह है कि इस समय सुर्वणकी ईंटासे निर्मित वेदियामृ पर साग्निक द्वादशाहादि यज्ञ निरन्तर(लगातार–सिलसिलेसे) चल रहे हैं, यदि आपके पास मणि न होती तो ऐसे यज्ञ आप नहीं करा सकते।।३९।।

एक ही उपायसे जब वह अपना कार्य सिद्धकर देवे तो चार उपायाृको काममृ क्याृ लिया. 'एवं सामभिः' श्लोकसे कहते हैं कि अक्रूरने भगवानने जैसे कहा वैसे किया.

श्रीशुक उवाच
एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम्।
आदाय वाससा च्छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम्।।४०।।

इस प्रकार अक्रूरजीको साम वचनासे समझाया, तब श्वफल्कके पुत्र सूर्यके समान प्रभाववाली मणिको वस्त्रसे लपेटकर ले आए और भगवानको

दी।।४०।।

यहां 'सामभिः' बहुवचनसे भेद दण्ड, दानका भी ग्रहण किया जाता है, किन्तु सामसे ही कार्य हो गया है जिससे वह ही कहा है–'आलब्ध' पदका भावार्थ कहते हैं कि सामके शब्दॄने जब हृदयका स्पर्श किया तब अक्रूर मरेकी तरह लज्जित हुआ और वशमॄ हो गया, अक्रूर सामसे ही ऐसा क्यॄ हुआ? इस पर कहते हैं कि महान् श्वफल्कका पुत्र है, जिससे एक कथनसे समझ गये, वस्त्रसे आच्छादित सूर्यके समान प्रभावाली मणि भगवानको दी, 'आदाय' पदसे जाना जाता है अन्य स्थानसे लाया है, अर्थात् कृतवर्माके घर यह मणि रखी थी, वहांसे ले आया, यॄ समझमॄ आता है, प्रत्यक्ष(खोलकर) देनेमॄ लज्जा आती थी इसलिये कपड़ेमॄ लपेटकर दी, उसी तरह रखी थी यह जतानेकेलिये भी यदि वस्त्रसे आच्छादित मणि न दे तो उससे प्राप्त किया हुआ सुवर्ण भी देना पड़े इससे दिखानेकेलिये तो नहीं दिया, परन्तु सर्वथा ही सर्व दिया यह दानके प्रकारसे जाना जाता है. मणिकी प्रभा सूर्यके समान थी, यदि खुली मणि देता तो दान करनेवाले और लेनेवालेके प्रत्यक्ष दर्शन हो जाते वे न हो दान गुप्त हो इसलिये वस्त्रसे लपेटकर दी यह भी आशय था अथवा अनुपहत शक्तिको।।४०।।

भगवानने तो फिर लौटाकर देनेकेलिये ली थी इसलिये कार्य पूराकर उसको दे दी, यह 'स्यमन्तकं' श्लोकमॄ कहते हैं.

स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः।
विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयद्विभुः।।४१।।

भगवानने अपने ज्ञाति बान्धवॄको मणि दिखलाकर अपना कलंक मिटाया, पश्चात् उसको लौटा दी।।४१।।

निन्दा करनेवाले गोत्रवालॄको तथा ज्ञातिवालॄको मणि दिखाकर अपनी अपकीर्ति मिटाई इससे आगेके कार्यमॄ भोजन तथा दानकी भांति पहला नाट्य किया यों लक्षित होता है, जब भगवानमॄ दोषीके आरोपनका अभाव हो अर्थात् भगवान् निर्दोष है तब सर्वका उद्धार हो सकता है, अतः अपना[१] कार्य पूर्णकर मणि उसको लोटा दी, 'भूयः' पद देनेका भाव है कि पहले भी सत्यभामाके स्थानमॄ रखी हुई मणि लौटा दी थी, आप 'विभुः' अर्थात् सर्वसमर्थ हैं उसको दण्ड देनेकेलिये भी देकर यह लीला की, अथवा आपको अपेक्षा नहीं होनेसे यॄ किया।।४१।।

१.कलंक उतार–बान्धवॄका विग्रह मिटा शान्तिकर.

इस प्रकार दो अध्यायॄमॄ लौकिकीभाषाका निरूपण किया इस प्रकार साक्षात् उपयोगके अभावसे श्रवणमात्रसे जो फल प्राप्त होता है वह 'यस्त्वे तत्' श्लोकमॄ कहते हैं.

यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ।
आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम्।।४२।।

जगदीश्वर भगवान् विष्णुके वीर्य(पराक्रम)युक्त, पापनाशक और मंगलरूप चरित्रको जो पढ़ता है, सुनता है और स्मरण करता है, वह अपयश, पापको नष्टकर शान्तिको प्राप्त होता है।।४२।।

इतिहास है, इसमॄ तीन प्रकारकी लीला है, यह जतानेकेलिये भगवानके तीन नाम दिये है, जैसे कि भगवान् नामसे यह बताया है कि शास्त्रॄका अर्थ यही है, ईश्वर नामसे यह कहा है कि इनका होना आवश्यक है, विष्णु नामसे कहा है कि पापनाशक है, इस प्रकार चरित्रमॄ भी तीन गुण हैं, जैसेकि एक वीर्ययुक्त, दूसरा पापनाशक और तीसरा मंगलरूप है, जिससे एक भक्ति उत्पन्न करता है, दूसरा पापनाश करता है और तीसरा पुण्यको इकट्ठा करता है. 'च' कहनेका यह भाव है कि चरित्र ज्ञानप्रद भी है क्रिया भी तीन प्रकारकी है. पढ़ना, सुनना और स्मरण करना, श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण इन तीनमॄसे कोई एक भी करे अथवा 'च'से यह बताया है कि तीनॄको करे, 'च' शब्दसे यह ध्वनि भी निकलती है कि अन्य फलॄमॄ तो विकल्प है किन्तु भक्तिमॄ विकल्प नहीं है किन्तु समुचय है पहले कहा हुआ फल भी तीन प्रकारका है, जैसेकि अपकीर्ति और पापके नष्ट होनेसे शान्ति प्राप्त होती है, अपयश, मिटना बाह्य फल है. पापनाश होना आन्तर फल है, इन दोनॄ बाह्य तथा आन्तर फलॄकी प्राप्तिसे समझना चाहिये कि दो दोष नष्ट हुए, अनन्तर लय विक्षेपकी उत्पत्ति नहीं होती है, तब मनुष्य शान्तिको प्राप्त करता है जिससे मन निरुद्ध होता है, अथवा ज्ञान हो जाता है, इससे यह निरूपण किया है कि श्रवणादि भक्तिके अंगरूपसे करना चाहिये।।४२।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कंध (उत्तरार्ध) अध्याय ५४ की
श्रीवल्लभाचायचरण विरचित श्रीसुबोधिनी टीकाके राजस फल अवान्तर प्रकरणके
प्रथम अध्यायका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण

अध्याय ५५

भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य विवाहकी कथा

नवमे पञ्चकन्यानां विद्यापर्वस्वरूपतः।
विवाहः प्रोच्यते सम्यक् कृष्णेनाशेषमुक्तये।।का.१।।

नवम अध्यायमें विद्याके पांच पर्वोके स्वरूप रूप पांच कन्याओंसे विवाह कहा है, क्योंकि श्रीकृष्णको सर्वकी मुक्ति करनी है।।१।।

मायासम्बन्धदोषेण क्रोधः कामस्तथापरः।
निराकृतः सर्वमुक्त्यै विद्याफलमतः परम्।।का.२।।

१.मायासे(रुक्मिणी) सम्बन्ध होनेके कारण काम, क्रोध तथा लोभ तीन दोष प्राप्त होते हैं, तो मायारूप रुक्मिणीके सम्बन्धसे भगवानमें भी ये दोष आए होंगे? जिनका निवारण किया गया है, पहला दोष पुत्रादि कामना उत्पन्न होती है, वह भी भगवानमें उत्पन्न नहीं हुई है, क्योंकि यदि पुत्र कामना होती तो नारद आदि सर्वकी सम्मतिके बिना स्वयं ले लेते, किन्तु स्वतः ही ग्रहण न करनेसे आपने अपनेमें कामनाका न होना सिद्ध किया है. २.दूसरा दोष क्रोधका उद्भव होता है, वह भी आपमें नहीं है, यदि क्रोध होता तो जाम्बवान् पर कृपा न करते कृपाकर अपनेमें क्रोधका अभाव सिद्ध किया है. ३.तीसरा दोष लोभ होता है, उसका भी आपमें अभाव है, यदि लोभ होता तो मणि स्वयं लेते, वह आपने नहीं ली, जिससे अपनेमें निर्लोभता सिद्धकर दिखाई है. इस प्रकारकी लीला द्वारा तीनों दोषोंका निराकरणकर अनन्तर सबकी मुक्तिकेलिए विद्यारूप फलका दान किया है।।२।।

त्रैलोक्यसुखदानं च मायादोषनिवारणम्।
द्वाभ्यां तथैव सर्वेषां राजसे पूर्णता ततः।।का.३।।

तीन लोकोंमें जो सुख है, उसका दान दशमअध्यायमें और रुक्मिणी (माया)के दोषोको दो अध्यायोंसे[१] अनन्तर ही सबकी राजसमें पूर्णता हुई।।३।।

१.पहलेमें आन्तरदोष और दूसरेमें बाह्यदोष रुक्मणीका निवारण किया पश्चात् सबका दोष भी उसी प्रकार दोसे निवारण किया.

विद्यायाः सूर्यमुख्यत्वात्प्रथमा दुहिता रवेः।
विपक्षनिग्रहात्मत्वात् द्वितीया सोमवंशजा।।का.४।।

सूर्यके मुख्यपनसे सूर्यकी कन्या कालिन्दी जो ज्ञानरूप है, उसको प्रथम

ग्रहण किया, विपक्षको निग्रह करनेवाली होनेसे सोमवंशमृ उत्पन्न तपस्यारूप मित्रविन्दाको स्वीकार किया, भक्तृको ध्यानमृ रखकर ही ज्ञानमार्गको अंगीकार किया है, कारणकि भक्त ही भगवत्स्वरूप आदिका पूर्णज्ञान प्राप्तकर सकते हैं, अतः गीतामृ कहा है कि '**भक्त्यामामभिजानाति यावात् य श्चास्मित त्वतः**' मैं वास्तवमृ जो हूं और जैसा हूं, उसको भक्तिसे ही पूर्णतया मनुष्य जान सकता है, अतः भक्त ही ज्ञान प्राप्तकर सकता है, जिससे ही भगवानने ज्ञानमार्गको अपनाया है, जिनमृ भक्ति नहीं हैं, वे ज्ञानमार्गके अधिकारी नहीं है, मेरे स्वरूपको नहीं समझ सकते हैं, अतः उनके उद्धारकेलिए तपोरूप मित्रविन्दाकी अंगीकृतिसे तपोमार्ग स्वीकार किया है।।४।।

मार्गद्वयं हितार्थाय द्वयं स्वीकृतवान् हरिः।
भक्तानभक्तानालक्ष्य तृतीया सूर्यवंशजा।।का.५।।
भक्तिरूपा प्रयत्नेन याचयित्वा स्वयं गतः।
व्यसनानि निराकृत्य तदुद्वाहं चकार ह।।का.६।।

ज्ञान और तपोमार्ग दोनृ हितकर है, अतः हितकेलिए दोनृकों[१] स्वीकार किया है, भक्त तथा अभक्त दोनृके हितको ध्यानमृ रखकर सूर्यवंशमृ उत्पन्न इस तीसरी भक्तिरूपसे आपने जाकर रुकावटृको दूरकर मांगकर विवाह किया।।५-६।।

१.ज्ञानरूप कालिन्दी और तपोरूप मित्रविन्दाको. निबन्धमृ लक्ष्मणाको भक्तिरूप और नाग्नजितीको योगरूप कहा है, वह विकल्प है.

अग्रे बाधास्तु भक्तेन ह्यर्जुनेन निराकृताः।
ज्ञानभक्त्योरतो भूयान् पर्वणोरुद्यमः कृतः।।का.७।।

आगे जो रुकावटृ हुई, वे अर्जुनने दूर की है, अतः भगवानने विद्याके दो पर्व ज्ञान और भक्तिकी स्वीकृतिकेलिए बहुत उद्यम किया. यहां ज्ञानरूप पर्व कालिन्दी और नाग्नजिती भक्तिरूप पर्व है।।७।।

धर्मस्नेहौ तयोरङ्गं मध्यमो लौकिकः स्मृतः।
द्वयोः स्वतन्त्रतासिद्धयै जीवानां तु ततो द्विधा।।का.८।।

कालिन्दी और नाग्नजितीके विवाहके धर्म और स्नेह अंग हैं अर्थात् कालिन्दीने विष्णुको वरण योग्य समझ धर्म बुद्धिसे विवाह किया तथा नाग्नजितीने स्नेहसे भगवानको वरा, मित्रविन्दाका विवाह लौकिक भावयुक्त होनेके कारण

मध्यम कोटिका है, ज्ञानी और भक्त दोनॄ स्वतन्त्र हैं. उनकी स्वतन्त्रता सिद्ध करनेकेलिए मध्यमॄ मित्रविन्दाका लौकिकभाव विवाह कहकर दोनॄ विवाहॄका भाव पृथक्-पृथक् है, यह बताया है, इससे यह भी प्रकट किया कि जीव मुख्य दो प्रकारके हैं।।८।।

भक्तिज्ञानफले कृष्णः पुंसां स्त्रीणां चकार ह।
अतो दत्तां स्वयं दत्तामक्लेशक्लेशभावनात्।।का.९।।

अनन्तर श्रीकृष्णने योग और सांख्य दोनॄका पुरुष तथा स्त्रियां दोनॄमॄ दान किया, अतः पिताने दी. जो सांख्यरूप भद्राको बिना क्लेश प्राप्त किया, स्वयंवरमॄ स्वयं प्राप्त योगरूप लक्ष्मणाको युद्धादि क्लेशके अनन्तर प्राप्त किया है. यहां नाग्नजितीको[१] भक्तिरूप कहनेसे लक्ष्मणाको[२] योगरूपत्व है, यॄ समझना चाहिए।।९।।

१-२.इन दोनॄके स्वरूपमॄ विकल्पपन है.

उपयेमे स्वयं कृष्णस्तासु सर्वं प्रतिष्ठितम्।
ततः सर्वकलाभिस्तु हरिः पूर्णो निरूप्यते।।का.१०।।

स्वयं श्रीकृष्णने इनसे विवाह किया है, इसलिए उनमॄ सर्व प्रतिष्ठित हुआ है, इस कारणसे हरि सर्व कलाओॄसे पूर्ण हरिका निरूपण किया जाता है।।१०।।

सषष्ठो भगवानेवं निःसन्दिग्धो निरूपितः।।का.।।

इस प्रकार पांच विद्या और छठा आप स्वयं होनेसे भगवत्स्वरूपका यहां निःसंदिग्ध रूपसे वर्णन हुआ है।।

कारिकार्थ पूर्ण.

आभासार्थ-वहां प्रथम विवाहमॄ २८तत्त्व और एक आप व्यापारवाले हैं, इसलिये उनतीस श्लोकॊमॄ विवाहका निरूपण किया जाता है. भक्ति और कर्म ज्ञानके अंग है, यॄ निरूपण करनेकेलिये १२श्लोकॊसे भक्तिका तथा ५श्लोकॊसे कर्मका निरूपण करता है. पश्चात् भक्त द्वारा दशसे उनका ग्रहण होता है और प्रसंगसे भक्तॄके उपकारका वर्णन होता है. भक्तॄके उद्धारकेलिये ही, प्रयत्न करनेवाले ही ज्ञानशक्तिको ग्रहण करता है, यॄ कहनेकेलिये भगवान् पाण्डवॄके स्थान पर पधारे, जिसका वर्णन 'एकदा' श्लोकमॄ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि,

श्रीशुक उवाच

एकदा पाण्डवान् द्रष्टुं प्रतीतान् पुरुषोत्तमः।
इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान् युयुधानादिभिर्वृतः।।१।।

एकसमय पाण्डवॄको आए हुए निश्चितरूपसे जानकर आप श्रीमान् पुरुषोत्तम सात्यकि आदिके साथ उनको देखनेकेलिए इन्द्रप्रस्थ पधारे।।१।।

लाक्षाभवनसे निकलकर द्रुपदके यहां त्रधन्विचित्रविशेषके बींधनेके समय देखनेमॄ आये, किन्तु उस समय वहां प्रकट न हुए इसलिये उस समय न जाकर जब इन्द्रप्रस्थ आये हैं यह निश्चय हुआ तब वहां पधारे. द्रुपदके यहां जो उनकी प्रतीति हुई वह तो लाक्षाभवनमॄ जलनेके संदेहको मिटानेकेलिये ही थी लोकमॄ प्रसिद्ध हो गया कि पाण्डव आ गये हैं. पुरुषोत्तम नाम देनेका भावार्थ यह है कि इन सबको पुत्ररूपसे ही जानते व मानते हैं. अतः उनको देखनेकेलिये पधारना उचित ही है. भगवानके पधारनेसे प्रथम ही नारदके उपदेशसे भीष्म आदिने उनको निवासकेलिये स्थान दिया था. भगवान् पाण्डवॄके पास पधारे किन्तु वे अब ही वहां आये हैं और सब अपनेलिये भी सामग्रीकेलिये विचारमॄ हैं अर्थात् उनकेलिये अपनेलिये भी सामग्री नहीं हैं. वे भगवानके स्वागतकेलिए सामग्री कहांसे लायॄगे? इसके उत्तरमॄ कहते हैं कि श्रीमान् आप स्वयं सर्वसाधन और लक्ष्मीवाले हैं और वहां जानेका कारण ही यह है कि वहां जाकर उनको सर्व प्रकार सम्पन्न करूं. इसलिये ही महान् वीर युयुधान(सात्यकि) आदिको साथमॄ लिये है. वह(सात्यकि) वहां अर्जुनका शिष्य बनेगा और भगवान् विश्वकर्मा आदिसे गृह आदि सिद्ध कराएंगे इस वास्ते ही भगवानका वहां पधारना हुआ है. वह गृह बहुत पुरुष बनावे वैसा सुन्दर गृह बना, यों न होता तो वह गृह ही कहनेमॄ न आता गृहका उत्कर्ष ही सम्पादन करना चाहिये।।१।।

भगवान् जब इस प्रकार भक्तॄकेलिये पधारे हैं तब 'दृष्ट्वा तमागत' दो श्लोकॄमॄ भक्तॄके कर्तव्य कहते हैं.

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम्।
उत्तस्थुर्युगपद् वीराः प्राणा मुख्यमिवागतम्।।२।।
परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसङ्गहतैनसः।
सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः।।३।।

सकलके ईश्वर भगवानको पधारते हुए देख, पाण्डव एक साथ यॄ उठ

खड़े हुए, जैसे प्राणॄको पाकर इन्द्रियां सचेत हो जाती हैं।।२।।

वीर पाण्डव अच्युत भगवानसे आलिंगन कर मिले, इस प्रकार भगवानके श्रीअंगके स्पर्शसे जिनके पाप नष्ट हो गए हैं, वे अनुराग सहित मुसक्यानवाले उस भगवानके मुखारविन्दको देख आनन्दको प्राप्त हुए।।३।।

आनेकी सम्भावना भी न थी, अचानक ही पधार गये हो, भक्त पृथाके पुत्र पाण्डव स्वयं राजा थे, अतएव आगे उनकी भक्तिका वर्णन तीनसे होगा. भगवानका नाम 'मुकुन्द' देनेसे यह बताया है कि आप पाण्डवॄको इच्छित देनेवाले हैं वा देनेकेलिये आये हैं, अखिलॄके ईश्वर हैं, इसलिये यॄ करना आपको आवश्यक है. अतः सहसा सब उठ खड़े हो गये, यॄ उठनेसे अपना आपके प्रति परम स्नेह व आदर प्रकट किया है, 'वीर' विशेषणसे उनका यह स्वधर्म है, यह निरूपण किया, अन्य तो भगवानके परायण नहीं होता है, स्वयं परम्परासे जो उत्तम होते हैं, वे ही भगवानसे परम स्नेह करते है, दृष्टान्तसे इसको समझाते हैं, जैसे प्राण, इन्द्रियादि, मुख्य आसन्य प्राणके आनेसे प्रसन्न हो सचेत हो उनसे स्नेह करती है, क्यॄकि उनकी(इन्द्रियादिक) सब(कुछ)की जड़ वही है, इस प्रकार सर्वात्मभावसे उनका तदीयपन सिद्धकर, उनका(पाण्डवॄका) कर्तव्य कहते हैं कि भगवानका आलिंगन किया, यह आलिंगन सर्वदा ही रहे इसलिये भगवाका नाम यहां 'अच्युत' दिया, 'वीरा' दूसरी बार देनेका भाव यह है कि भगवान जैसा ही ज्ञान, स्वधर्म पालनसे ही होता है ये पाण्डव स्वधर्म पालते हैं इसलिये 'वीर' है जिससे भगवानका इनको इस प्रकार ज्ञान हो गया है, इनके पाप तो भगवानके श्रीअंगके स्पर्श मात्रसे नष्ट हो गये हैं. उत्तरकेलिये पापक्षय आनुषंगिक फल हुआ है, इसलिये निरूपण किया है, अतएव भगवानका अनुराग सहित मुसक्यानवाले मुखारविन्दको देखकर उसको ही पुरुषार्थ मानते हुए आनन्दको प्राप्त हुए. इतना ही भक्तॄका कार्य है।।२-३।।

अनन्तर भगवान् लौकिक करने लगे, जिसका वर्णन 'युधिष्ठिरस्य' श्लोकमॄ करते हैं.

युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम्।
फाल्गुन परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः।।४।।

युधिष्ठिर तथा भीमके चरणॄमॄ पड़कर आपने प्रणाम किया, अर्जुनसे आलिंगनके साथ मिले, बादमॄ नकुल सहदेवने आपको प्रणाम किया।।४।।

भगवान् यदि इस प्रकार स्वत्व प्रदर्शित न करते तो शत्रुनाश आदि कार्य नहीं कर्ू, न करनेसे इनकी बढ़ाई भी न होवे, अतः व्यामोहमृ डालनेकेलिये अपनेको आप ही लौकिक दिखाने लगे, युधिष्ठिर तथा भीम आपसे बड़े है, अर्जुन समान है, दूसरे दो छोटे हैं, बड़ृको नमन करना चाहिये, समानसे आलिंगन तथा बातचीत, छोटृके नमन होनेके अनन्तर उनको आशीर्वाद देनी चाहिये, वह क्रमसे ही कहा गया है, बड़ृके पैरृमृ पड़ प्रणाम करना, यृ कहकर सम्बन्धसे जो सदाचार है, वह निरूपण किया है. 'यमाभ्यां' पदसे नकुल और सहदेवका जन्म समान कालमृ भी हो सकता है, यों धर्म व्यवस्थाका निरूपण करनेकेलिये आन्तर भी कहा है, यह आन्तर 'सुहृद' सिद्धकर जतानेकेलिये कहा है।।४।।

उस समय, अर्जुनसे विवाही हुईने आकर नमस्कार किया, जिसका वर्णन 'परमासन' श्लोकमृ करते हैं.

परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिन्दिता।
नवोढा व्रीडिता किञ्चिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत।।५।।

नव विवाहित, निन्दारहित द्रौपदीने लज्जासे धीरे-धीरे आकर बड़े आसन पर विराजमान श्रीकृष्णको नमस्कार किया।।५।।

इससे यह सूचित किया कि सबकी यथा योग्य पूजा होनेके अनन्तर दास्य भावसे मानो आत्मनिवेदन करनेकेलिये आई 'आसीनम्' पद भावार्थ बताते हुए आचार्यश्री आज्ञा करते है कि भगवान् उस समय व्यग्र नहीं थे, व्यग्रता न होनेका कारण यह था कि दास्यभावसे आत्मनिवेदन करनेकेलिये आई हुईके ऊपर कृपा दृष्टि करनी थी. वह व्यग्रतामृ नहीं होती है इसलिये आप अव्यग्र बिराजमान थे, इसलिये विशेषतामृ उसका नाम भी योग्यता दिखानेके वास्ते कृष्णके समान ही 'कृष्ण' कहा है शास्त्रमृ कहा है 'यो यच्छ्रद्धः स एव स' इसलिये भगवान कृष्ण भी इस समय पंचात्मक हैं, शब्दके अर्थकी शक्ति जो भक्त है उनकी क्रीड़ाका आधार हुए हैं, अतः व्यास, भगवान् कालिन्दी, अर्जुन और द्रौपदी ये पांच है, शंका होती है कि यह विशेष परिग्रह(पांच पाण्डव पति होनेसे) करनेके कारण दुष्ट है वह कैसे शरण हुई? इस शंका निवारणकेलिये कहा है कि 'अनिन्दिता' इस प्रकार विवाह होनेमृ कोई दोष नहीं है एवं इससे किसी प्रकार निन्दा भी नहीं हुई है सम्बन्धके अभावसे वैसे है, वह 'नवोढ़ा' है अथवा विधिसे सम्बन्ध होनेके कारण दोष आदि नही अतएव कुछ लज्जित हो रही थी. स्त्री स्वभाव भी धीरे-धीरे आनेमृ कारण है

और इससे निर्लज्जता इसमृ नहीं है यह भी सूचित किया है।।५।।

साथमृ गये हुआृका आदर कहनेकेलिये सात्यकिका पूजन 'तथैव' श्लोकसे कहते हैं.

तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिनन्दितः।
निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासत।।६।।

पाण्डवृाने वैसे ही सात्यकिको आदरपूर्वक पूजा तथा अभिवादन किया और आसन पर बिठाया तथा दूसरेका भी पूजन किया. वे भी भगवानके चारृ तरफ आसनृ पर बैठ गए।।६।।

जैसे भगवान् पूजे गये, वैसे भगवद्भक्तृका भी पूजन किया, क्यृकि भक्त पृथाके पुत्र हैं सम्बन्ध तो समान ही है, उचित हुआ जो आप पधारे इस प्रकार स्वागत वचनृसे समादर किया. यहां ज्ञानशक्ति प्रकट करनी चाहिये, इसलिये आसन पर ही बिराजे. दूसरे जो साथ आये थे, वे भी पूजे गये तथा भगवानके चारृओर आसनृ पर बैठे।।६।।

पृथाकी स्तुति कहनेकेलिये पहले परस्पर एकदूसरेका कुशल निम्न श्लोकमृ पूछते हैं.

पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाभिरम्भितः।
आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं परिपृष्टबान्धवः।।७।।

भगवानने पृथाके समीप आकर उसको प्रणाम किया, उस समय अतिशय हार्दिक प्रेम उत्पन्न होनेसे जब कुन्तीकी आंखृसे आंसू टपकने लगे, तब उसने आलिंगन किया तथा अपने बान्धवृाका कुशल पूछा, अनन्तर भगवानने भी बूआसे सबकी कुशलताके समाचार पूछे।।७।।

भगवान्, पृथाके समीप आकर, उसको प्रणाम करने लगे, जिससे अतिशय प्रेमके कारण उसके नेत्रृमृ आंसू भर गये. दया तथा प्रेमसे दृष्टि आर्द्रा हो जाती है और नेत्रृसे जल बहने लग जाता है. उससे भी लौकिक सम्बन्धके कारण अतिशय हार्दिक स्नेहवाली दृष्टि आर्द्र होती है. अर्थात् आंखृ आंसूआृसे भर जाती है पश्चात् ऐसी पृथाने प्रेमसे भतीजेका आलिंगन किया अनन्तर कुशल समाचार पूछे. स्वयंसे पूछे गये. यृा यह भगवत्कृत लौकिकीभाषा स्थिर हुई, जिसका निरूपण किया गया।।७।।

'तमाह' इस श्लोकसे स्तुतिकेलिये हुई उसकी प्रवृत्तिको कहते हैं.

तमाह प्रेमवैक्लव्य रुद्ध कण्ठाश्रुलोचना।
स्मरन्ती तान् बहून् क्लेशान् क्लेशापायात्मदर्शनम्।।८।।

प्रेमकी विक्लवतासे जिसके कण्ठ रुद्ध हो गए हैं और आंखॄ आंसूओंसे भर गई हैं, ऐसी उन बहुत क्लेशोंको स्मरणकर उनके नाशका उपाय भगवानके दर्शन ही समझने लगी।।८।।

कुन्तीको अन्तःकरणके प्रेमके कारण विक्लवता(घबराहट) होने लगी, जिससे कण्ठ रुद्ध हो गया. इससे शरीरकी घबराहट प्रकाशित की. आंखोंमें आंसू भर जानेसे इन्द्रियकी व्याकुलता जता दी. स्वस्थोंकी भी दशा, प्रेमसे इस प्रकारकी हो जाती है. यह तो बहुत दुःखोंको भोग चुकी है, जिनको यह स्मरण करती थी, तब उनके निवृत्तिके वास्ते प्रार्थना करेगी? जिसके उत्तरमें कहा कि 'क्लेशापायात्मदर्शनम्' उसने क्लेशोंके मिटानेका उपाय आपके स्वरूपका दर्शन ही जाना है, अर्थात् दर्शनसे ही दुःख मिट गये, जिससे उनके मिटानेकेलिये प्रार्थना नहीं की।।८।।

भगवानके दर्शनसे ही हम कृतार्थ हो गये है, यों यह कहना ही भगवानका स्तोत्र है, जो किया और जो किया जाएगा के भेदसे दो प्रकारके है, जिसको 'तदैव' दो श्लोकोंसे निरूपण करते हैं.

पृथा उवाच

तदैव कुशलं नोऽभूत्सनाथास्ते कृता वयम्।
ज्ञातीन्नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया।।९।।
न तेऽस्ति स्वः परो भ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः।
तथापि स्मरतां शश्वत् क्लेशान् हन्सि हृदि स्थितः।।१०।।

हे कृष्ण! हमारी कुशल तब ही हो गयी. जबकि आपने हमें कृतार्थ कर दिया और हमारा स्मरण करते ही भ्राताको भेज दिया।।९।।

जगत् बन्धु और आत्मरूप जो आप हैं, उनको अपना-पराया भेद नहीं है, तो भी स्मरण करनेवालोंके हृदयमें विराजमान होकर निरन्तर उनके क्लेशोंका नाश करते है।।१०।।

जब ही आपने हमको याद किया उस समय ही हमारा कल्याण हो गया, चिन्ताका अभाव हो गया, जिसकेलिये विशेष कहती है कि आपने हमको सनाथ भी किया है. कैसे? जिसके उत्तरमें कहती है कि समय पर नाथ ही स्मरण करते हैं,

'वयं' बहुवचनसे बताया कि आपकी इस कृत्तिसे हमारी प्रशंसा होती है, अर्थात् हम उत्तम बड़े गिने जाते हैं. आप हमको स्मरण करते रहते हैं, जिसका प्रमाण अक्रूरका भेजना है. इसलिये श्लोकमॄ यॄ कहा है कि हमारा स्मरण आते ही अक्रूरको भेज दिया है. यह 'येनोपशान्तिर्भूताना' श्लोकमॄ निरूपण किया है. 'कृष्ण' नामसे यह सूचित किया कि उसकेलिये ही आपका यह अवतार है. सबकी रक्षाकेलिये भाईको भेजा है. इससे यह बताया कि भ्राता स्वयं नहीं आये, किन्तु आपने भेजा. जिससे सिद्ध है कि भ्राताकी अपेक्षा ही हम पर अधिक स्नेह है. यह दैहिकन्यायसे कृतार्थ करना नहीं है? निकटके बन्धुको ही भेजना चाहिये, इस प्रकारसे लौकिक रक्षा भी सूचित की है. यॄ अपने रक्षकपनसे होनेवाली विषमताको भी दूर किया. जैसेकि आपकी यह अपना है और वह पराया है ऐसी भ्रान्तिवाली भेदबुद्धि तो है ही नहीं. इस विषयकी सिद्धिमॄ तीन कारण है कि 'विश्वस्य सुहृदात्मनः' दैहिक विचार करते हैं तो आप ही विश्वरूप है. अन्तःकरणकेलिये विचार करने पर सबके सुहृद आप भगवान् ही हैं. यदि वस्तुका विचार किया जाता है तो आप सबकी आत्मा ही है. अतः इस प्रकारके तीन भावसे भगवानको विषमतावाली बुद्धि है ही नहीं यह ही सिद्ध होता है. यदि यॄ है, तो विषम कार्य कैसे होते हैं? जिसके उत्तरमॄ कहा जाता है कि जो आपका निरन्तर स्मरण करते हैं, उनके हृदयमॄ आप विराजमान होकर क्लेशके समान अधिकरण नहीं होते हैं? 'अग्निस्तृणमिव क्लेशान् हंसि' जैसेकि अग्नि तिनकोको जलाती है वैसे ही आप क्लेशॄका नाश करते हैं, अतः क्लेशॄका नाश, भावनाका ही कार्य है, वह भी स्वाभाविक ही है।।१०।।

'किं न आचरितं' इस श्लोकसे राजा भी स्तुति करता है.

युधिष्ठिर उवाच

किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर।
योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम्।।११।।

युधिष्ठिरने कहा हे अधीश्वर! मैं नहीं जानता हूं कि हमने कौनसे श्रेय करनेवाले श्रेष्ठ कार्य किए हैं, जिनसे योगेश्वरॄको भी जिनके दर्शन दुर्लभ है, वे हम कुमतियॄको कृपापूर्वक दर्शन दे रहे है।।११।।

आपका अभिनन्दन करनेसे उसकी भी स्तुति हो गई है. वे सर्व कर्मफल को जानते ही हैं, अतः भगवानका दर्शन भी महान् फल है. यॄ कहकर साधनकी

कल्पना करते हैं. हमारा कुछ सत्कर्म किया हुआ मालूम होता है अथवा हमने कोई (उत्तम)श्रेयसकर कर्म किये हैं. यदि आपको इसकी जानकारी है तो भगवानके निरन्तर दर्शन होते रहे, उसकेलिये सदैव वैसे ही कर्म करते रहिये, जिसके उत्तरमॄ कहते हैं कि 'न वेदाह' हमे तो ज्ञात नहीं है कि हमने कौनसे उत्तम कार्य किये है. आप नहीं जानते है तो कौन जानता है? इसके उत्तरमॄ कहते हैं कि आप अधीश्वर होनेसे अर्थात् अन्तःकरणके स्वामी होनेसे आप भगवान् होनेसे आप ही जानते हैं. दर्शनका महाफल बताते हैं कि यह दर्शन योगीश्वरॊको भी कठिनाईसे होता है, हम तो वैसे नहीं है, यह बताते हुए कहते हैं कि हम दुर्बुद्धि है, तो भी अपनी दयालुता बतानेकेलिये आपने दर्शन दिये है।।११।।

इस प्रकार सबकी स्तुति सुनते हुए भगवान् उनके हित करनेकेलिये कुछ समय वहीं ठहरे, यह 'इति वै' श्लोकमॄ कहते हैं.

श्रीशुक उवाच

इति वै वार्षिकान् मासान् राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम्।
जनयन्नयनानन्दम् इन्द्रप्रस्थौकसां विभुः।।१२।।

राजा युधिष्ठिरकी प्रार्थना स्वीकारकर वे(श्रीकृष्ण) वर्षाके चार मास तक वहां विराजे. वहां रहकर इन्द्रप्रस्थके निवासियॊके नेत्रॊको आनन्द दान देने लगे।।१२।।

स्थानॊमॄ विराजमान होते हुए भी निश्चयसे यहीं विराजमान हो रहे हैं, यह वहांके सब निवासियॊको प्रतीति हुई. वर्षाऋतुके चार मास ही वहां रहे. इससे यों दिखाने लगे कि नींद आनेसे भक्तॊके हृदय शय्या पर पौढ रहे है. लोकमॄ भी वर्षाके दिनॊमॄ बाहर आना-जाना कठिन होता है. इसमॄ भी फिर युधिष्ठिरने रहनेकेलिये प्रार्थना की है. इस वास्ते इन्द्रप्रस्थ निवासियॊके नेत्रॊकेलिये आनन्द उत्पन्न करते हुए निवास करते थे. एक ही क्रियासे तीन फल सिद्ध करते है. यॊ करनेमॄ कारण बताते हैं कि आप 'विभुः' सर्वव्यापी है, यह लोक तो भ्रान्त है।।१२।।

इस प्रकार भक्तिका वर्णनकर कर्मका वर्णन 'एकदा' श्लोकमॄ करते हैं.

एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम्।
गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ।।१३।।
साकं कृष्णेन संनद्धो विहर्तुं विपिनं महत्।

बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत् परवीरहा।।१४।।

एक समय चतुर वीर शत्रुओंके नाशक अर्जुन श्रीकृष्णके साथ वानरकी ध्वजावाले अपने रथमें चढ़, गाण्डीव धनुष हाथमें उठाकर, अक्षय तीरोंसे भरे हुए तरकस बांधकर तैयार होकर, अनेक हिंसक जानवर और मृगोंसे व्याप्त वनमें शिकार खेलने गए।।१३-१४।।

इस चातुर्मासके मध्यमें शिकारकेलिये वा अष्टकादि तिथियोंमें पितृ देवताओंकी तृप्ति करानेकेलिये जाना होता है अन्यथा नहीं. जिस रथमें हनुमानकी ध्वजा है, वह रथ अर्जुनका है, इसकी प्राप्तिका वर्णन भी आगे करेंगे. अब साधन रहित है, इसलिये जब शक्ति सहित होगा, तब असाधन बनेगा, इसलिये विवाहके बाद वा भार्याके साथ होनेके पश्चात् वह करेंगे. रथकी ध्वजामें वानरका चिन्ह भगवानकी महती कृपाका सूचक है. गाण्डीव धनुष भी अग्निसे अर्जुनको प्राप्त हुआ है, जिसके तीर, क्षय होनेवाले नहीं, वैसे ही तूणीर(तरकश-जिसमें तीर रखे जाते है) है. ये तीन ही उससे पाये है. कृष्णके साथ सहभावका भावार्थ है. सर्वका इस प्रकार प्रहर भी इनके साथ सम्पर्क अन्य किसीका नहीं होता है अथवा फलके साधनकी योग्यता प्रकट होती है. कवच बान्धकर तैयार हुआ है, इस प्रकार तैयार होकर बताया है कि आगे लड़ाई हुई है, फिर भी युद्ध होगा, यों नहीं हो तो विवाहकी मुख्यता प्रकट सिद्ध न होगी. यह पदार्थ क्रम भगवानकी इच्छानुसारी है, इसलिये इसमें विपरीतता नहीं है, प्रथम खाण्डवका दाह पश्चात् स्त्रीकी प्राप्ति विचार तो यों किया था, किन्तु जो किया वा हुआ वह यहां कहा जाता है. अर्थात् विचारसे विपरीत किया. विहारकेलिये गये, कहां? जहां बहुत दुष्टपशु(शेर आदि) अदुष्टपशु (मृग) आवरणवाले, आवरण रहित, इससे कर्मका बन्धन मिटाया, जहां वनमें गये वह बड़ा था, अर्थात् वहां अनन्त प्रकार मृगयारूप क्रीड़ाएं हो सकती हैं, दोनोंका नाश होता है यह जिसका उत्कर्ष है, उनके मारनेमें सामर्थ्य कहते हैं कि 'परवीरहा' विवेकसे युद्ध करनेवाले शत्रुओंका भी जो नाश कर सकता है।।१३-१४।।

अतः वहां जाकर पंचविध और द्विविधोंको भी मारा, जिसका वर्णन 'तत्राविध्यत्' श्लोकमें करते हैं.

तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान् शूकरान् महिषान् रुरून्।
शरभान् गवयान् खड्गान् हरिणान् शशशल्लकान्।।१५।।

वहां बाणसे व्याघ्र, शुकर, भैंसे, रुरू, शरभ, रोज, गैंडे, हरिण, खरगोश और श्याही इनको बींधने लगे।।१५।।

शरसे मारने लगे न कि कपटसे, व्याघ्र, भैंस और रुरू(एक प्रकारके हरिण) ये तीन दुष्ट है इसलिये मारने योग्य है. उनके चर्म और नख आदि काम आते हैं. श्याही पशु भी कठिन है, इस कारण साथ ही कहे गये है, किन्तु खाने योग्य हैं. शरभसे(आठ पांववाला हरिण) लेके जो ६ नाम है, उनसे शरभ और गवय(रोज) खाने योग्य नहीं है शूकरका आगे कहा ही है, तो भी भक्ष्य हैं, पांच पशु खाने योग्य है और पांच खाने योग्य नहीं है, इस प्रकारका दशका निरूपण किया है।।१५।।

'तान्निन्युः' श्लोकसे वहां उत्तम के कर्मका उपयोग कहते है.

तान्निन्युः किङ्करा राज्ञे मेध्यान् पर्वण्युपागते।
तृट्परीतः परिश्रान्तो बीभत्सुर्यमुनामगात्।।१६।।

उन पवित्रकर्मके योग्य पशुओंको पर्वणी निकट थी, इसलिए राजाके नौकरोंने वे लाकर राजाको अर्पण किए, अर्जुन प्यासा होने और थकावटके कारण यमुना पर गया।।१६।।

श्लोकमें शिकार किये हुए पशुओंको ले जानेवाले 'नौकर' कहे है. नौकर क्यों ले गये? इस शंकाको मिटानेकेलिये आचार्यश्री आज्ञा करते हैं कि जिन पशुओंको ले जाना था, वे पशु मेध्य(पवित्र-यज्ञमें काम आनेवाले) थे, अष्टकादि पर्वणी निकट थी, इसलिये गर्दभ और भैंसों पर नहीं ले गये, क्योंकि यज्ञकेलिये ले जाया जानेवाला पवित्र पदार्थ उन पर ले जानेका शास्त्रोंमें निषेध है, अतः नौकर ले गये।।१६।।

'तत्रोपस्पृश्य' श्लोकमें कहते हैं कि वहां पशुओंकी तरह 'कन्या' भी प्राप्त की.

तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ।
कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम्।।१७।।

वहां आकर दोनों महारथी कृष्ण और अर्जुनने स्नान किया और जल पीकर बैठे तो उनकी दृष्टिमें एक सुन्दर कन्या इधर-उधर घूमती हुई देखनेमें आई।।१७।।

'उपस्पृश्य'का अर्थ है स्नानकर अनन्तर जल पीया. विशद् होनेसे जल

लाकर संग्रहकी आवश्यकता नहीं थी. दोनॄ महारथी थे, इसलिये स्त्रीके देखनेमॄ किसी प्रकार शंका नहीं. दोनॄ कृष्ण थे क्यॄकि भगवानका ही तेज, दोरूपॄमॄ विभक्त होकर दर्शन दे रहा था. इसलिये स्त्रीके देखनेमॄ कोई दोष नहीं है, और वह स्त्री अब तक कन्या ही थी, इसके अलावा वह भगवानके दर्शन करनेकेलिये यमुनाजीके तट पर फिर रही थी एवं सुन्दररूपवाली भी थी, एवं वह स्वयं भी देख रही थी, इससे यह भी निरूपण किया है. इससे उससे प्रश्नादिक करना विरुद्ध नहीं है यह भाव है।।१७।।

तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम्।
पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम्।।१८।।

सुन्दर दांतॄवाली, मनोहर मुखवाली, स्त्रीयॄमॄ उत्तम, उस कमनीय कमरवालीके पास भगवानका भेजा हुआ अर्जुन आकर पूछने लगा।।१८।।

देखी हुई, वह भोगके योग्य रूपवाली है. इस कारणसे उसको लौकिक रीतिसे ही ग्रहण करना चाहिये. यदि भगवान् स्वयं उससे पूछनेकेलिये पधारते तो कदाचित् अर्जुनके मनमॄ विषमता उत्पन्न हो जाये इसलिये आपने अर्जुनको ही भेजना, नीति योग्य समझकर भेजा. वह कमनीय कमरवाली है, इसलिये काल उनसे मिलनेमॄ विलम्ब सहन नहींकर सकता है. अब उसके लक्षण बताते हैं कि सुन्दर दान्तॄवाली है, मनोहर मुखारविन्दवाली है, जिससे उसके मुखमॄ वा उसमॄ रस है. मित्रने भेजा है इसलिए अर्जुन कपट भी नहीं कर सकता है तथा अर्जुन जितेन्द्रिय भी है, कैसे? इसके उत्तरमॄ कहते हैं कि अर्जुनने स्पर्श मात्रसे पांच अप्सराओॄका उद्धार कर दिया. वैसे यहां भी उसके साथ केवल सम्भाषण करनेसे वह भगवानको प्राप्त करेगी, इसलिये उसका प्रश्नोत्तर दूसरारूप नहीं है. अर्जुन तो पूछने गया, किन्तु ऐसी वह इससे बोलेगी नहीं, ऐसी शंका मिटानेकेलिये कहते हैं कि जब जो विशेष मदवाली हैं. वे भी ऐसी विषयमॄ प्रेमसे बोलती है, तब तो यह उनमॄ उत्तम होनेसे अवश्य बोलेगी।।१८।।

का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतो वा किं चिकीर्षसि।
मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने।।१९।।

हे सुश्रोणि! तू कौन है? किसकी है? कहांसे आई है? क्या करना चाहती है? हे शोभने! मेरे ध्यानमॄ तो यों आया है कि तू पतिकी इच्छाकर रही है, अतः सब वृत्तान्त मुझे कह दे।।१९।।

अर्जुनने उससे 'तू कौन है?' आदि ४ प्रश्न पूछे. स्वरूपसे तू देवस्त्री है वा किसी दूसरी जातिकी है? किसकी है, इससे यह पूछा कि तेरे पिता आदि सम्बन्धी कौन है? हे कमनीय कमरवाली! यह सम्बोधन देकर उसको सूचित किया कि तुझे ऐसे स्थानमॄ इस प्रकार एकाकी नहीं फिरना चाहिये. यहां आनेका क्या कारण है? यदि आ भी गई है, उस दैवदोष[१] निवारणकेलिये क्या करना चाहती है? यह प्रश्न इसलिये किया है कि वह उद्विग्न नहीं है और कहीं दूसरे स्थान पर जाना नहीं चाहती है, इससे तपस्या आदि करनेकी इच्छा है? यॄ पूछा. यदि यह तपस्या करना चाहती है तो उससे अपना हित न होगा, क्यॄकि हमको यह मिलेगी नहीं, जो हम चाहते हैं, इसलिये सम्भावनासे पूछता है कि मैं समझता हूं कि तू पतिकी इच्छाकर रही है. इस तरह पांच प्रश्न करने चाहिये, यदि यॄ पांच प्रश्न न किये जायॄगे तो परिग्रह उचित न होगा. अतः हे शोभने! सब कह दो, शोभने सम्बोधनसे उसको निर्भय होनेको सूचित किया तथा अपनी प्रीतिकी सूचना भी दी है।।१९।।

१.टिप्पणीमॄ 'दोषाभावार्थ'के स्थान पर 'समागमनार्थ' पाठ माना है इस पाठके अनुसार अर्थ यों हो सकता है कि, दैवगतिसे जिस पतिके प्राप्तिकेलिए आ गई है तो उसकी प्राप्तिकेलिए क्या तप आदि करना चाहती है?

अर्जुनने जो प्रश्न किये उनके उत्तरमॄ कालिन्दी 'अहं देवस्य' श्लोकमॄ कहती है कि मैं भगवानको ही वरूंगी.

कालिन्द्युवाच

अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती।
विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता।।२०।।

कालिन्दी कहने लगी कि मैं सूर्य नारायण देवकी कन्या पति चाहती हूं. वह भी वरद, वरेण्य विष्णु ही, न कि अन्य कोई अतः परम अर्थात् शीघ्र फल देनेवाले तपमॄ स्थित हूं।।२०।।

'देव' पद देनेसे अपनी देव जाति बताई है. मेरे देवत्वमॄ किसी प्रकार असम्भावना नहीं, कारणकि मेरे पिताजी सूर्य नारायण देव है, मैं उनकी कन्या हूं, अतः अब देने योग्य हूं अर्थात् अविवाहित हूं. इसलिये कोई भी मुझसे भाषण करे वा मैं भी किसीसे करू तो दोष नहीं है. तुमने जो कल्पना की है, वह सत्य है. मैं वास्तवमॄ पतिकी कामनावाली हूं, किन्तु वह अन्य कोई नहीं, विष्णु ही चाहती

हूं. कारणकि वह वरण योग्य है, सब उनका ही वरण करते हैं क्यूंकि भगवान् अर्थात् षड्गुण सम्पन्न हैं. उनमूं भी कारण है कि वरको देते हैं अर्थात् मनकी इच्छा पूर्ण करते हैं. जो इच्छा पूरण करे वही 'वर' हो सकता है. यूं कहनेसे बताया कि वे अपनेको भी दे देते हैं; क्यूं आई हो? क्या करना चाहती हो? जिसका उत्तर देती है मैं उस तपस्यामूं पूर्णतया स्थित हूं जिससे शीघ्र ही फलकी प्राप्ति हो जावे. पूर्णतया स्थित कहनेका भावार्थ यह है कि फल प्राप्त किए बिना मैं लौटना नहीं चाहती हूं।।२०।।

विष्णु होनेके कारण सबको वैसा सुख देनेमूं समर्थ है यद्यपि लोकन्यायसे उसकी विभूति भी वरण योग्य होती है, कोई ऐसा भी होगा जो अन्य हीनूंको दान देनेमूं समर्थ होवे. कोई ऐसा भी है, जो अपनेको वैसा मानते हैं. ऐसी शंका उठाकर उसका उत्तर देती हुई 'नान्यं पति' श्लोकमूं भगवानसे इतरको मैं वरूंगी ही नहीं, ऐसे मना करती है.

नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम्।
तुष्यतां मे स भगवान् मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः।।२१।।

हे वीर! जिसको लक्ष्मीने वरा है, जिसके पास सदैव लक्ष्मी रहती है, उस पतिके सिवाय अन्यको न वरूंगी. वह अनाथूंका आश्रय, मुकुन्द भगवान् मुझ पर प्रसन्न हो।।२१।।

भक्ति देनेवाले तथा षड्गुणैश्वर्य देनेको तत्त्वसे वरण करती हूं न कि पतिपनसे. हे वीर! इस सम्बोधनसे बताया है कि यह जो पक्ष मैं कह रही हूं वह बलात् मैंने स्वीकार नहीं किया है, परन्तु अपनी इच्छा एवं प्रेमसे किया है. अथवा यदि सन्धिविच्छेदकर 'हे अवीर' पद लिया जाय तो इसका आशय होगा कि आप वीर नहीं हैं, इसलिये उनकी विभूति होने पर भी आपको न वरूंगी, यदि वह सायुज्य देकर वैसेको दे देवूं तब उस गुप्त आशयको मैं नहीं जानती हूं, किन्तु मेरा मन्तव्य (हार्दिक इच्छा) तो यह है कि उनके सिवाय दूसरेको नहीं वरूंगी, क्यूंकि उनका मुझे ज्ञान है तथा नियमकी भी सुधि है. उसमूं कारण कहती है–श्रीनिकेतन लक्ष्मीने उनको ही वरा है, यों, या लक्ष्मी सहित है, कौस्तुभमणिके चिन्हवाले भगवान् हैं, इस प्रकार ज्ञान है. भगवान् तो 'नाहं वेदैः' वाक्यसे कहते हैं कि 'मैं तपस्यासे नहीं प्राप्त होता हूं' इससे वह तपस्यासे नहीं मिलूंगे. इस पूर्वपक्षका उत्तर देती है कि प्राप्त तो वह अपनी तुष्टिसे ही होते हैं, तपस्यासे वह प्रसन्न हो,

(प्रसन्न होने पर ही) 'वरद' बनते हैं, इसलिये प्रथम प्रसन्नताकी याचना करती हूं. अनन्तर मेरेलिये अन्यकी याचना करूंगी, वह लक्ष्मी पर भी प्रथम प्रसन्न हुए. तूं कहती है वह ठीक है, किन्तु 'नाहं वेदै' वाक्य बाधक है. यदि यों कहो तो इस पर मेरा उत्तर है कि यदि इस वाक्यसे भगवानकी प्राप्तिमृ जिन साधनाृको निषिद्ध कहा है तो उन(भगवान)की प्रसन्नतामृ प्रयोजकता न होगी, जिससे मुक्तिकी प्राप्ति किसीको न होगी? यदि कोई भी मुक्त न हुआ तो 'मुकुन्द' नामकी सार्थकता जाती रहेगी, अतः उस वाक्यका भावार्थ यह है कि इन साधनाृसे स्वतन्त्र भक्ति तथा वैसे रसरूप स्वरूपका दर्शन, नहीं हो सकता है. विशेषमृ कहती है कि मेरा साधन फलीभूत न हो, किन्तु आप अपना धर्म विचारकर तो प्रसन्न होवे, आप 'अनाथाश्रय' है अर्थात् जिनका कोई नाथ नहीं है उनको पूर्ण आश्रय देनेवाले आप ही है, क्याृकि दीन दयालु है, अथवा दूसरा कोई मत प्रसन्न हो, यह निषेध वास्ते है, वा इसमृ कोई संशय नहीं है।।२१।।

'कालिन्दीति' श्लोकमृ नाम, स्थान आदि बताती है.

कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले।
निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम्।।२२।।

मैं कालिन्दी नामसे प्रसिद्ध हूं. यमुनाजलमृ पिताके बनवाए गृहमृ तब तक रहूंगी, जब तक अच्युतके दर्शन न हाृगे अर्थात् वह नहीं मिलृगे।।२२।।

मेरा जन्म कालिन्द पर्वत पर, कलिन्द पर्वतरूप धारणकर आये हुए सूर्य नारायणसे हुआ है. अतः मैं सूर्यकी पुत्री हूं. जैसे पर्वतसे उत्पन्न पार्वतीका प्रण शंकरको ही वरण करनेका था, वैसे ही मेरा भी विष्णुको प्राप्त करनेका है, यह सूचित किया. मैं यमुनाजलमृ याृ रहती हूं, जैसे दुर्गमृ रहा जाता है. इस प्रकार कहकर अपना और यमुनाका भेद दिखा दिया है. यह कालिन्दी आधिदैविकी है, न कि आधिभौतिकी; क्याृकि सूर्यनारायण आधिदैविक कलिन्द पर्वत थे, इसलिए 'कालिन्दी' नामसे उत्पन्न हुई हूं एवं प्रसिद्ध हुई हूं. सूर्यनारायणने पहले यमको उत्पन्न किया. उसके उत्पन्न करनेसे जो दोष लगा, उसको मिटानेकेलिए पश्चात् यमुनाको उत्पन्न किया. दोनाृ यमुना और कालिन्दीका परस्पर ऐक्य आधिदैविक आधिभौतिकके समान होनेसे लोकमृ दोनाृकी एकरूपसे प्रसिद्धि है. इसका 'तपती'की भांति शापसे नदीपन नहीं हुआ है. प्रथम नदीरूप विद्यमान था, न कि आध्यात्मिक देवरूप था. यदि वह रूप हो तो यमुनाका परित्यागकर न

सके. अनुग्रह और निग्रहमूं ही उसके अभिव्यक्तिका हेतु है. दोनूं सूर्यकी पुत्रियां है. लोकमूं वैसी प्रसिद्धि न होनेसे सर्वथा भेद नहीं है. जिससे आधिदैविक स्वरूपसे प्रकट सूर्यदेवने कलिन्द होकर इसको जन्म दिया, यह कल्पना की जाती है. यहां जलमूं ही रहनेमूं नियामक कारण बताती है. मेरे जनक सूर्यदेवने यमुनाजलमूं भवन तैयार कराकर उसमूं मेरा निवास भगवानकी प्राप्ति तक रखा. अतः जब अच्युत भगवानके दर्शन हूंगे, तब इस भवनका त्यागकर भगवानके भवनमूं जाकर रहूंगी यहां भगवानको स्थापित न करूंगी, कारणकि यहां ही निवास करनेसे परिग्रहका नियमन न हो सकेगा।।२२।।

इस प्रकार संवादसे उसके स्वरूपको जानकर जो यथार्थ है, वह 'तथावदत्' श्लोकमूं कहने लगे।

तथावदद् गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम्।
रथमारोप्य तद्विद्वान् धर्मराजमुपागमत्।।२३।।

अर्जुनने भगवानको कालिन्दीने जो कहा, वह सुनाया उसका यथार्थ जाननेकेलिए भगवान् उसको रथमूं बिठाकर धर्मराजके पास ले गए।।२३।।

उसमूं कारण कहते हैं कि अर्जुन व्यामोह करनेवाली निद्राका स्वामी है और वह वासुदेव मोक्षदाता है. उस(कालिन्दी)के आग्रहको दूर करते हुए, यथार्थ अर्थको जाननेवाले भगवान् वासुदेव उस(कालिन्दी)को रथमूं बिठाकर, उदाहरणरूप अथवा धर्मके निर्णय करनेवाले धर्मराजके पास ले आए।।२३।।

इस साधन शक्तिकी सिद्धिकेलिए उसको लेकर पश्चात् भक्तूंकेलिए विश्वकर्मा आदिको आज्ञा दी, जिसका वर्णन 'यदैव' श्लोकूंमूं करते हैं.

यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम्।
कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा।।२४।।

जैसे ही पाण्डवूंने नगर बसानेकेलिए भगवानकी प्रार्थना की, वैसे ही अपने विश्वकर्मासे अत्यन्त अद्भुत विचित्र नगर रचवाया।।२४।।

यह उस(अर्जुन)की कृतिका आग्रह नहीं है, क्यूंकि श्रीकृष्ण ही सबके स्वामी है. जब ही भगवान् मनमूं अथवा उनको पास बुलाकर स्थित हुए, तब पाण्डवूंने प्रार्थना की अर्थात् यह प्रार्थना भगवानके मन द्वारा भगवानको की गई है. जैसे किसीको संदेश द्वारा कहा जाता है वैसे यहां भी भगवानको जो करना चाहिये वह संदेशकी भांति कहा गया है. अर्थात् संदेश भेजनेवाले भगवान्

सुननेवाले भी भगवान् ही है, तब ही परम अद्भुत नगर विश्वकर्मासे निर्माण कराया. विश्वकर्मासे बनवानेका कारण यह था कि दूसरेसे बनवानेसे दुर्योधन आदिका निराकरण नहीं होता था. या तो भगवान् मनसे भी बना लेते और उसमे किसी प्रकारके दोष भी नहीं होते।।२४।।

भगवांस्तत्र निवसन् स्वानां प्रियं चिकीर्षयन्।
अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः।।२५।।

अपने भक्तोका प्रिय करनेकी इच्छासे आप खाण्डवको अग्निदेवकी भेट करनेकेलिए कुछ काल वहां विराजे और अर्जुनके सारथी बने।।२५।।

यदि विश्वकर्मा जानते कि यह नगर भगवानके उपयोगमे न आएगा तो, सुन्दर न बनाता, इसलिये आप वहां विराजमान होकर बनवाने लगे, जिससे उस(विश्वकर्मा)को विश्वास हो गया कि इसमे भगवान् विराजेगे, अतः अतीव अद्भुत नगर बनाने लगा. तब तो भगवान् अपने लिये बनवाते हैं? इस शंकाके मिटानेकेलिये कहते हैं कि 'स्वानामेव प्रियं चिकिर्षयन्' भगवान् अपने सम्बन्धी सुहृदोका प्रिय करनेकी इच्छा करते थे, इसलिये अपनेलिये ही नहीं, किन्तु सुहृदोके सुखकेलिये यह कार्य करवाया है. भगवानने केवल उत्तम स्थान ही तैय्यार नहीं करवाया किन्तु आप वहां विराजकर खाण्डववनको अग्निको दे दिया. यदि भगवान् यो न करते तो अग्निदेव प्रसन्न न होते. भगवान् भक्तोके हितकेलिये गुणरूप भी धारण करने लगे, जैसेकि आप अर्जुनके सारथी बने, सारथीका कार्य गुणरूपका कार्य है।।२५।।

गुप्त रहकर भी अर्जुन नामसे इन्द्रादिकोको जीतूंगा इस प्रकार भगवान्का निश्चय देख, अग्निदेव भी अर्जुन पर प्रसन्न हुआ जिसका वर्णन 'सोऽग्निः' श्लोकमे कहते हैं.

सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद् हयान् श्वेतान् रथं नृप।
अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः।।२६।।

हे राजन्! उस अग्निने प्रसन्न होकर, अर्जुनको धनुष, श्वेत घोड़े, अक्षय तरकस, अस्त्रोसे अकाट कवच दिया।।२६।।

अग्निके पांच अंग है. वे पांच ही अर्जुनको दिये. यज्ञसे 'धनुष' उत्पन्न हुआ है. तीर भी यज्ञसे जन्मे हैं, यों श्रुतिमे कहा है कि अग्निके मथनके समय सात्विक घोड़े पैदा हुए है, अतः वे भी आग्नेय हैं. अर्थात् अग्निसे उत्पन्न हुए हैं.

अक्षय तरकस भी साथ रहनेवाले होनेसे आग्नेय माने जाते है. सब अस्त्रासे श्री अभेद्य 'वर्म' अर्थात् कवच ये पांचा ही दैवत्य हैं, इसलिए कहा है, 'अग्निः सर्वाः देवताः' जिसका तात्पर्य है कि ये अग्निके ही सम्बन्धी अंग है।।२६।।

अन्य भी दिलाया यह वर्णन 'मयश्च' श्लोकमा करते हैं:

मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत्।
यस्यां दुर्योधनस्यासीद् जलस्थलदृशि भ्रमः।।२७।।

और वहां अग्निसे मयको बचाया, इस कारणसे मयने अर्जुनको एक सभा दी, जिसमा दुर्योधनको जलमा थलका और थलमा जलका भ्रम हुआ।।२७।।

मयकी समग्र कथा भारतसे जाननी वह्निसे छूटे हुए मयने मित्र(अर्जुन)को एक सभा दी. भगवानने छुडाया और भगवानको अपना कार्य देना उचित नहीं समझा. भगवान् पर इसका प्रभाव न पड़ेगा और उपकार तो करना चाहिए अन्यथा कृतन्धता देखनेमा आएगी. अतः साक्षात् भगवानको देनेमा अशक्त होनेसे उनके मित्र अर्जुनको दी. मित्रको मिली हुई वस्तु अपनेको मिली मानूगे. यद्यपि मित्र तो अर्जुन ही है, तो भी उसके सम्बन्धी होनेसे राजाको दी. उस(सभा)का उपयोग कहते है कि जिसमा दुर्योधनको जलमा स्थलका भ्रम हुआ और स्थलमा जलका भ्रम हुआ था. यह भ्रम वस्तुमा नहीं था, किन्तु दुर्योधनकी दृष्टिमा भ्रम हुआ था।।२७।।

इस प्रकार अपने ऐश्वर्यरूप अथवा स्वरूपके ज्ञानरूप मुख्यशक्तिसे जितना करना चाहिए था वह करके उससे उसको आत्मसात्(अपने आधीन) न करके, अन्यथा यदि अपने काबूमा कर ले तो सर्वात्मरूपसे दूसराका उपकार न हो सकता, याा उससे विवाह करनेके वास्ते भगवान् द्वारका गए, जिसका वर्णन 'स तेन' श्लोकमा करते हैं.

स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः।
आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः।।२८।।

वे राजा अर्जुन उस मयसे परामर्श ले सुहृदासे अनुमोदित हो सात्यकि आदि मुख्य यादवाको साथकर, द्वारका लौट आए।।२८।।

'सः' उनने सखा अर्जुन अथवा राजा, 'तेन' मयसे वा अर्जुनसे अच्छी तरह परामर्श पूर्वक अनुमति ले अपना कार्य पूर्ण हुआ जानकर समस्त बान्धवाके साथ गमन किया और उन्हाने इस कार्यका अनुमोदन भी किया. 'च' पदका

भावार्थ है कि देवॄने भी अनुमोदन किया. यॄ कहनेका तात्पर्य है, कि जो हमने किया, वह सर्व जनताको पसंद आया है. जिनके साथ गए उनके साथ लोटे अपने कार्यसे सबको कृतार्थ किया. इससे यह सूचित किया कि सहायताकेलिए उनका उपयोग कर्तव्य नहीं है. अतः सात्यकि प्रभृति यादवॄको उस काममॄ नहीं लगाया था. ले जाना और ले आना ये दोनॄ तो विवाहकी प्रामाणिकताको जतानेवाले हैं।।२८।।

अतः सर्वकी सम्मतिसे उससे पश्चात् विवाह किया वह 'अथ' श्लोकसे कहते हैं.

अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते।
वितन्वन् परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम्।।२९।।

अच्छा पवित्र बलवान् ऋतु तथा नक्षत्र देख अपने बान्धवॄको परम आनन्द एव मंगल देते हुए भगवानने कालिन्दीसे विवाह किया।।२९।।

ज्योतिषशास्त्रसे प्रशंसनीय शुद्ध सर्वग्रह जिसमॄ शुभ थे तथा वैदिक पुण्य नक्षत्रमॄ परम आनन्दका विस्तार करते हुए, यॄ कहनेसे बताया कि रुक्मिणी प्रभृति सबको तथा सर्व बान्धवॄकी यों करनेमॄ सम्मति है, केवल विवाहकर सुखदान नहीं किया, किन्तु अपने स्वरूपसे भी सबकेलिए परम मंगलरूप हुए. अतः विशेष उत्तम फल देनेवाले हुए, यह तात्पर्य है।।२९।।

'विन्दानुविन्दा' इन दो श्लोकॄसे दूसरे विवाहको कहते हैं.

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ।
स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम्।।३०।।
राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः।
प्रसह्य हृतवान् कृष्णो राजन् राज्ञां प्रपश्यताम्।।३१।।

मित्रविन्दा नामवाली राजकन्या जो विन्द और अनुविन्दकी बहिन थी, उसने श्रीकृष्णको वरना चाहा परन्तु उसके भ्राताओॄने निषेध किया, क्योॄकि वे दुर्योधनके वश तथा पीछे चलनेवाले थे।।३०।।

मित्रविन्दा जो अपनी फूफी(अभक्त दुर्योधनके पक्षवालॄकी थी) राजाधिदेवीकी कन्या थी, उसको राजाओॄके देखते हुए बलात्कारसे कृष्ण हर ले गए।।३१।।

यह दूसरे(अभक्त दुर्योधनके पक्षवालॄकी थी) पक्षकी थी, उनका भी

उद्धार करनेकेलिए भगवान् ग्रहण करते हैं. मित्रविन्दाका निवास अवन्तीमॅ था. वहीं स्वयंवर हुआ. वहां दुर्योधन आदि गए और भगवान् भी पधारे थे पश्चात् स्वयंवरके मौके पर भगवानको दूरसे देखकर समीपमॅ स्थित भ्राताओंको मित्रविन्दा कहने लगी कि मैं कृष्णको वरूंगी. यह सुनकर वे इसकी आसक्ति श्रीकृष्णमॅ है यह जान गए. उनका विचार था कि यह दुर्योधनको वरण करे क्योंकि वे उसके वश तथा अनुयायी थे. जैसे रुक्मी, मित्रविन्दा इनकी सगी बहन थी, इसलिए कोई इनके विचारमॅ रुकावट करनेमॅ समर्थ नहीं था. अतः इन्होंने बहिनको कृष्णसे वरण करनेकेलिए रोका. वह उस समय कृष्णके सामने खड़ी थी. वहांसे दूर हटाकर दुर्योधनके समीप लेनेमॅ प्रवृत्त हुए. तब भगवान् रथके वेगसे शीघ्र पधारकर उनको दूरकर उस(मित्रविन्दा)को ले गए. राजाधिदेवी मित्रविन्दा की माता वसुदेवकी बहिन थी. यह नवम स्कन्धमॅ निरूपण किया है, अतः वह लोकन्यायसे मामेकी कन्याकी तरह इष्ट(लेने योग्य हिस्सा) ही होती है. अतः इसकेलिए दानकी अपेक्षा नहीं है. शेष यह विचार अन्यमॅ आसक्त कन्या लेनी चाहिए वा नहीं, वह(मित्रविन्दा) भी सब राजाओमॅ विशेष प्रकाशमान होनेसे भगवानको ही उत्तम मानती है. कन्या भी हितकारीको चाहती है. जिससे दुःखको नहीं पाती है. बूआ कहनेसे यह बताया कि दोनों कुलोंमॅ उसका विवाह हो सकता है. बलात्कार कहनेका आशय है कि भ्राताओंसे छीनकर ले आये, क्योंकि कृष्ण स्त्रियोंके हितकारी हैं. दूसरे राजा तो केवल साक्षी बन गए. उससे यह विवाह सर्व सम्मत हुआ तथा सर्व इसके साक्षी बने और सम्बोधन भी वैसा सर्व सम्मतिकेलिए दिया है।।३०-३१।।

भक्तिरूप तीसरा विवाह 'नग्नजित्' श्लोकसे २४ श्लोकोंमॅ कहते हैं.

नग्नजिन्नाम कौरव्य आसीद् राजाऽतिधार्मिकः।
तस्य सत्याभवत् कन्या देवी नाग्नजिती नृप।।३२।।

हे कुरुवंशमॅ उत्पन्न नृप! नग्नजित नामवाला राजा बहुत धर्मात्मा था. उसकी कन्या नाग्नजिती सत्या थी।।३२।।

ज्ञानमॅ प्रपंचके सर्व पदार्थ विरोधी है. भक्तिमॅ केवल प्रकृति विरोधी है. जिससे इसमॅ व्यसनं ही बाधक है. वे एक ही तरीकेसे दूर करने कठिन हैं. इसलिए उनको दूर करनेकेलिए सात प्रकारकी साधन शक्ति कही है. योंॅ(सात प्रकारकी साधन शक्ति) नहीं कहते तो तीन श्रवण, कीर्तन और स्मरणसे ही प्रेम सम्पत्ति

प्राप्त हो जावे तो पादसेवन आदिकी व्यर्थता हो जाती. शेष दो सख्य तथा आत्मनिवेदन तो भगवानने अपने धर्मकी स्थापना करनेकेलिए ही किये हैं. अतः इन दोनॄसे भगवत्तुल्यकर, पश्चात् व्यसनॄको समूल दूर करते है. यह जतानेकेलिए भगवान् स्वयं सात स्वरूप धारण करॄगे. यह भक्ति पाषण्डमॄ नहीं होती है. यह जतानेकेलिए कहा है कि बड़े धर्मात्मा नग्नजितके यहां ही वह कन्यारूपसे प्रकट हुई है. यॄ निरूपण किया जाता है. यह राजा बड़े धर्मात्मा हैं, ऐसा क्यॄ प्रसिद्ध हुआ? जिसका वर्णन करते हैं कि यह राजा जो वेदको नहीं मानते हैं अर्थात् अवैदिक हैं उनको जीतता है. तात्पर्य यह कि उनको वेदका तात्पर्य समझाकर वेदधर्ममॄ रुचि उत्पन्नकर भगवद्भक्त बनाते हैं. तुम भी कुरुवंशमॄ उत्पन्न हुए हो. इसलिए विश्वास करोगे ही केवल विपक्षियॄको दूर करता है यॄ नहीं किन्तु श्रोत-स्मार्त धर्ममॄ परायण भी करता है. जिससे वे भक्त बन जाते हैं, इत्यादि कारणॄसे वह अतिधर्मात्मा था एवं स्वरूपसे भी महान् राजा था. उसके तीन गुण भी समीचीन थे, वैसे राजासे उत्पन्न कन्या भी नाग्नजिती थी. यदि 'कौशल्या' पाठ माना जाय तो वह कोसलदेशका अधिपति अयोध्याका राजा था. इसका ही नाम सत्या था. स्वरूपसे, फलसे और साधनसे यह 'सत्या' भक्तिरूपा है. इस कारणसे ही अधम जो वेद विरुद्ध मत है और कर्मसे हीन है, उनमॄ सत्याभक्ति(सच्चीभक्ति) नहीं होती है. यह प्रकाशित किया है. इस कारणसे जो इससे अन्य प्रकार कहते हैं अर्थात् अधमोमॄ असत्य भक्ति हो तो वह भी उद्धार करनेमॄ समर्थ है. वह केवल भक्तिका उत्कर्ष दिखानेकेलिए कहा है. इस प्रकार उत्कर्ष न दिखाया जाय तो भक्तिशास्त्र ही व्यर्थ हो जाये. अथवा अधमाॄमॄ भी यदि सत्याभक्ति मानी जावे तो सदाचारकेलिए जो शास्त्रमॄ शासन है वह व्यर्थ हो जाय, क्यॄकि अधमाॄमॄ सदाचार आदि शिष्ट कर्म नहीं रहता है. लोकमॄ जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव देखनेमॄ आता है ऐसे हजारॄ भगवदंश देखनेमॄ आते हैं. ऐसाॄमॄ जो भक्ति है वह शास्त्र सिद्ध सत्यभक्ति नहीं है, केवल भक्तिका आभास है. भगवानके साक्षात्कारसे प्रथमकी ही यह व्यवस्था है. वह देवतारूप कन्या अलौकिक है. किसी भी भगवदंशको ग्रहणकर स्थित नहीं है. यह साधारण नहीं है, किन्तु मूलभूत स्वरूपसे ही ग्रहण करने योग्य है, न केवल वही वेदानुसारी मार्ग वा माहात्म्य है जिससे भक्ति प्राप्त होती है किन्तु जहां भी रहती हो उसको भी वैसा हो जाना चाहिए, इसलिए 'नाग्नजिती' कहा है, यह संज्ञा इसलिए दी है

कि यह सत्या, पिताका अनुसरण करनेवाली है, न कि माताका. शास्त्रमृ कहा है कि 'धन्या पितृमुखी कन्या' जो कन्या, पिताके मुख(आचरण–कर्त्तव्य)को देखकर चलती है, वह धन्य(प्रशंसाके योग्य) है. हे नृप! यह सम्बोधन, स्नेह अथवा अनाशक्ति प्रकट करनेके वास्ते दिया है।।३२।।

१.भूख, प्यास, रोग और कर्म, ये चार लोकमृ उपद्रव करनेवाले है. जूआ, शराब पीना और स्त्रियां ये उतने उपद्रव करनेवाले नहीं, इस प्रकार सात व्यसन है.

वह भगवानके आनेकेलिए ही क्यृ रुकी? इस शंकाको दूर करनेकेलिए 'न तां शेकुः' श्लोकमृ कहते हैं कि उनकी प्राप्तिमृ व्यसनृकी भांति बैल प्रतिबन्धक थे.

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्तगोवृषान्।
तीक्ष्णशृङ्गान् सुदुर्मर्षान् वीरगन्धासहान् खलान्।।३३।।

राजाने प्रतिज्ञा की थी कि वह मेरी कन्याको वर सकता है, जो इन वीर पुरुषृकी गन्धको भी सहन न करनेवाले, दुष्ट, तीखे सींगोवाले, अतिदुर्धर्ष, सात साड़ृको जीतृगे. जो राजा वहां आए वे इनको जीत न सके इसलिए इस सत्याको भी ले न सके।।३३।।

नृप राजस थे, इसलिए ही जो अवध्य हैं और जिनका स्वल्प भी रक्त न निकले, इस प्रकार उन सात सांड़ृको अपने आप ही न जीतकर उसको लेनेकेलिए समर्थ न हुए. सात मिलकर इनको जीते तो वह कन्या सातृकी हो जाए. यह कार्य वैदिकपक्षमृ निषिद्ध है, इसलिए धर्मात्मा नग्नजित इस अवैदिक कार्यको नहीं करना चाहता है, क्यृकि श्रुतिमृ कहा है कि 'तस्मात् नैका द्वौ पती विन्दते' एक कन्या दो पति नहींकर सकती है. वार्क्षी द्रौपदी आदिमृ जो अन्यथा हुआ है, उसको समझाते हैं कि वे दश प्राण थे. ये पांच ही इन्द्र थे अथवा पंचमुख महादेव थे. यृ कालवश वा पुष्टिवशसे वैसा हुआ. प्रलयसे पहले यृ होता था. किन्तु मर्यादामृ यृ करना योग्य नहीं है. इस कारणसे सत्यारूपा भक्ति तो भगवानको ही प्राप्त करनी चाहिए. ज्ञानसे भगवत्त्व होता है, इसलिए जिनको पूर्णज्ञान है वे ही भगवद्भक्त होते हैं. वे सांड जीतने जैसे नहीं हैं. जिनके गुणृका वर्णन करते हैं. उनके सींग तीक्ष्ण थे, इससे उनके शरीरमृ दुष्टता दिखाई, और अजेयपन बताया. दुष्ट क्रोध जिनमृ था, इससे स्वभावका दोष कहा अथवा अन्तःकरण दोष कहा. वीरकी गन्ध भी सहन नहीं कर सकते हैं, इससे इन्द्रिय दोष कहा है. वे खल थे अतः स्वाभाविक जीवदोष

कहा. वे आसुरी जीव थे, अतः इन चार दोषोंसे अजेय थे।।३३।।

सब जब निवृत्त हो गए तब भगवान् प्रवृत्त हुए. वह 'तां श्रुत्वा' श्लोकमें कहते हैं.

तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान् सात्वतां पतिः।
जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महता वृतः।।३४।।

यादवोंके पति भगवानने सुना कि यह सत्या उसको मिलेगी, जो सांडोंको जीतेगा, यह सुनकर बड़ी सेनाके साथ आप अयोध्या गए।।३४।।

जो निश्चयसे व्यसनोंको तोड़ देता है, वह ही विषय होता है, यों लोकमें फलेगा.

क्षुत्पिपासे तथा रोगाः कर्माणि द्विविधानि च।
लोकोपद्रवरूपाणि चत्वार्यावश्यकानि हि।।का.१।।

भूख, प्यास, रोग, दो प्रकारके कर्म(एक निषिद्ध सुवर्ण आदिकी चोरी, दूसरे काम्यकर्म) ये आवश्यक चार, लोकोंको उपद्रव करनेवाले है।।१।।

द्यूतं पानं स्त्रियश्चेति त्रीण्यनावश्यकानि हि।
मृगयादिर्न सर्वेषां तस्मान्न व्यसनानि हि।।का.२।।

जूआ, मद्यपान और स्त्रियां ये तीन व्यसन आवश्यक नहीं है, शिकार आदि सब नहीं करते हैं इसलिए वे व्यसन नहीं हैं।।२।।

विशेषेणासनं यत्र व्यसनं तत्प्रकीर्तितम्।
ज्ञातेऽपि दोषे यस्यास्ति न निवृत्तिस्तदेव तत्।।का.३।।

जिसमें विशेष स्थिति या आसक्ति होती है उसको व्यसन कहते हैं. जिसके दोष जाने भी जावे किन्तु वह छूटे नहीं, वह ही व्यसन कहलाता है।।३।।

भगवान् ही उनको दूर करनेकेलिए समर्थ हैं, इसलिए वह उसको मिलेगी जो सांडोंको जीतेगा. यह सुनकर यादवोंके पति समर्थ भगवान् स्वयं वहां पधारे. नहीं पधारते तो भक्तका उद्धार न होता. कोसलदेशके राजाओंको कौसल्य कहा जाता है. उनका पुर 'अयोध्या' कहा जाता है. 'देवानां पूरयोध्या' श्रुतिमें कहा है कि 'अयोध्या' देवताओंकी नगरी है, जिससे यह बताया कि वहां दैत्योंका निवास नहीं हो सकता है. भगवान् बड़ी सेना, महत्त्वकी इच्छावाले राजाके सन्तोषकेलिए ले गए, अन्यथा आपको सेनाकी आवश्यकता ही नहीं थी।।३४।।

पश्चात् उसका अभिनन्दन 'स कौसलपति' श्लोकसे करते हैं.

स कौसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ।
अर्हणेनापि गुरुणा पूजयन् प्रत्यनन्दत।।३५।।

वह कौसलका राजा भगवानको पधारते देख आसनसे उठ, आसन आदि देने आदि अनेक प्रकारकी महती पूजा द्वारा अभिनन्दन करने लगा।।३५।।

यदि महान् होता, तो इस प्रकार सत्कार न करता. तब बलसे लाई जाती, तो वह प्रेमियॄकी सम्बन्धिनी न होती. जिससे अच्छी न लगती, इसलिए बताते है कि वह अयोध्याका पति महान् अर्थात् अभिमानी नहीं था इसलिए आपका सत्कार करने लगा. यह सत्कार लौकिक नीतिके कारण किया होगा? इस शंका निवारणकेलिए कहा है कि 'प्रीतः' प्रसन्न होकर, उठना और आसन आदि देना, जब आप बिराजे तब अमूल्य द्रव्यॄसे महती पूजा करने लगा. जो इस प्रकार पूजा करता है, वह कन्या देना अभीष्ट समझता है. पूजाके बाद स्वागतके शब्द भले पधारे आदि कहने लगा. यों करनेका आशय यह था कि भगवान् करे तो मेरी कन्या कृतार्थ हो जावे. यॄ विचार करनेसे ज्ञात होता है कि राजा संदिग्ध था अर्थात् राजाकी इच्छा ऐसी हो गई कि सांड्रॄको न भी जीते तो भी मेरी कन्या कृपाकर ग्रहण करे तो अच्छा है।।३५।।

दूसरे माता एवं कन्या आदि तो निःसंदेह थे प्रतिज्ञा पूरण न होगी तो भी ये ग्रहण करॄगे.

वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम् ।
भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः।।३६।।

अपनी इच्छानुकूल आए हुए वरको देख, जो कि रमापति हैं, उनको प्राप्त करनेकी इच्छा करने लगी. भगवानको प्रार्थना करने लगी कि मुझे यह वर मिले. यदि मैंने इसलिए व्रत आदि किये हैं तो प्रभु मेरी मनःकामना सत्य करॄ।।३६।।

जो वर, कन्या तथा सबको अभीष्ट है कि यह ही वरण योग्य है, वह स्वयं वरनेकेलिए आगए हैं. अपनी सम्मति भी यह ही है. राजाकी पुत्री स्वयं चतुर तथा विशेष लक्षणॄवाली है. भगवानके वरणका मार्ग तो बिना रुकावटवाला है. यॄ निरूपण करनेकेलिए 'रमापति' विशेषण दिया है. जिनको लक्ष्मीने वरा है, उनको वरनेमॄ किसी प्रकारका संशय नहीं है. देखकर, दर्शनका फल लेना चाहती है. जिससे प्रार्थना करती है कि यह मेरा पति हो. भगवानकी प्राप्तिमॄ धर्मादिकी

सामर्थ्य नहीं है तब भगवान् पति कैसे ह्मगे? निर्मल आशीर्वाद सत्य करू. अर्थात् भगवान् ही यह सब सम्पादन करू. आपमे आप ही समर्थ है. भगवान् स्वयं तो फलरूप हैं वह साधनरूप कैसे बनूगे? इस पर कहती है कि 'यदि मे धृतो व्रतैः' जिन नियमूसे भगवान् वश होते हैं वे यदि मैंने किये हैं तो मेरे आधीन हो, अर्थात् मेरी कामनाओंको पूरण करू. एवं नियम पालनसे प्राप्त आशीर्वादूको सत्य करू. इससे यह कहा कि गोपिकाओंकी तरह दूसरूकी भी आशिष सत्य करते हैं, अतः मुझे वरूगे इसमू मुझको कोई सन्देह नहीं है, इससे यह सूचित किया कि भगवान् सबको अभीष्ट हैं, नहीं तो व्रत करनेमू ही विरोध करू।।३६।।

इस निम्न 'यत्पादपंकज' श्लोकमू कन्याने प्रार्थना की है. यू कितने ही कहते हैं और किसीका मत है कि राजाकी प्रार्थनाका श्लोक है, इसलिए आगे पढते हैं. इनमू कन्याका ही प्रसाद उचित है इस कारणसे यहां ही इसकी व्याख्या की जाती है. पहले अपने किए हुए व्रतके विश्वाससे कहा है कि भगवान् करूगे, ईश्वरका नियामक कोई नहीं है. उनकी प्रसन्नताकेलिए आकांक्षा प्रकट करती हुई कृपाके वास्ते ही प्रार्थना 'यत्पाद' श्लोकमू करती है.

यत्पादपङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सहलोकपालैः।
लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयासौ काले दधत् स भगवान् मम केन तुष्येत्।।३७।।

जिनके चरणकमलकी रज, लक्ष्मीजी, ब्रह्माजी, महादेवजी और लोकपाल ये सब शिर पर धारण करते हैं, और जो अपनी मर्यादाकी पालनाकेलिए स्वइच्छासे समय पर लीलाविग्रह धारण करते हैं, वे परमेश्वर मुझ पर किस उपायसे प्रसन्न ह्मगे।।३७।।

भगवानके प्रसन्न होने पर ही भगवान् प्राप्त ह्मगे. वह ही कामना की जाती है, वह प्राप्त होना कठिन है. जहां उनकी चरणरज ही सब चाहते हैं, जैसेकि लक्ष्मी, ब्रह्मा, महादेव और लोकपाल. ये सब रजकी ही कामना करते रहते हैं, क्यूकि उनके चरणरजसे ही यह शरीर भगवदीय होता है. यू आगे कहा गया है, जब शरीर भगवदीय हो जाता है तब निश्चयसे भगवान् प्राप्त होते हैं. अथवा स्वतन्त्रभक्ति (शुद्ध पुष्ट पुष्टि भक्ति) होती है. उसी अवस्थामू भी रजको शिर पर धारण करते है. इस शरीरके वियोग होने पर भी प्रथम उससे ही देहके आरम्भ करनेवाले तत्त्व मिलाप करते है अर्थात् अन्य देह भी भगवदीय ही बनती है. जब भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं, तब लक्ष्मीके अवतारकी भी अपेक्षा रहती है जो

भी देह मिले उनमृ जैसे भगवानसे सम्बन्ध हो, उसकेलिए खोज करनी चाहिए, ब्रह्मादिक भी चरणरज इसलिए धारण करते हैं कि अपने अधिकारकी समाप्तिके बाद इस अधिकारकी निवृत्ति होकर भगवदीय देहकी ही प्राप्ति होती.

यदि यह इच्छा इनकी है तो इससे पहले कैसे धारण करते थे? इस शंकाको मिटानेकेलिए कहते है कि 'लीलातनु' जो भगवान् अपनी बनाई धर्ममर्यादाकी रक्षाकी इच्छासे लीला शरीर धारण करते हैं, इस कारणसे चरणरजके सम्बन्धकी प्रार्थना उचित है यह भाव है. इस प्रकार सबको इसकी ही प्रार्थना करनी चाहिए, जो सामने वा आगे स्फुरित हो रहे हैं. साधन विलम्ब सहना भी अब कठिन है अथवा सहा नहीं जाता है. आपकी कृपा ही इस कार्यको सिद्धकर सकती है. किस उपायसे प्रसन्न ह्मगे, यह जिज्ञासा है. जाकर चरणमृ पड़कर प्रार्थना की जाय वा दूसरा कोई उपाय है. भगवान् होनेसे दानादिसे प्रसन्नताके पक्षका निराकरण किया है।।३७।।

जिसका विचार भी न किया हो उसको भी आप रचृगे, इस सम्भावनासे मनोरथ किया, अतएव भगवानने वह उपाय रचा, जिसको 'अर्चित' श्लोकमृ कहा गया है.

अर्चित पुनरित्याह नारायण जगत्पते।
आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः?।।३८।।

राजा फिर भगवानका पूजनकर कहने लगे कि, हे नारायण! हे जगतके पति! आत्मानन्दसे पूर्ण आपका मैं तुच्छ क्या पूजादि सत्कारकर सकता हूं?।।३८।।

राजा फिर भगवानकी पूजाकर, उनकी प्रेरणासे कुछ प्रार्थना करने लगा. यह कहनेका ढंग है, जिससे कन्याका मनोरथ सिद्ध होता है. भीतर और बाहर पूर्ण तथा नियामकको क्या कहा जाय कि क्या करना चाहिये, इस अभिप्रायसे कहता है कि आप नारायण होनेसे प्रेरक है और जगतके पति होनेसे बाहरके नियामक है. इस कारणसे जैसी आपको इच्छा होती है, वैसे ही कराते हैं. इस कारण कुछ कहना नहीं चाहिए. किञ्च, जो अपूर्ण होता है उसको किसी क्रियासे पूर्ण किया जाता है. आप जो सामने दर्शन दे रहे हैं वे तो पूर्ण आनन्दसे ही पूर्ण हैं. आत्मा ही आनन्द है, व्यापकपनमृ विरलता हो, इसलिए यहां तो बृहत्त्व लक्षणवाला पूर्णत्व 'पूर्णस्य' पदसे कहा है. जहां ऐसी पूर्णता है, वहां मैं अतिअल्प अर्थात् बहुत

तुच्छ, निरानन्द होनेसे क्या कह सकता हूं?।।३८।।

भगवानने ही प्रस्तावनाकेलिए उसको वैसी प्रेरणा की है. जैसे मांगते भी नहीं. प्रकट करता है, अतः अवसर पाकर भक्तके हित चाहनेवाले भगवान् उससे मांगने लगे यह 'तमाह' श्लोकमृ कहते हैं.

श्रीशुक उवाच

तमाह भगवान् कृष्णः कृतासनपरिग्रहः।
मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन।।३९।।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे कुरुनन्दन! भगवान् आसन पर विराजमान हो, प्रसन्नचित्तसे, मुस्कराते हुए मेघ जैसी गम्भीर वाणीसे राजाको कहने लगे।।३९।।

भगवान् कहनेका तात्पर्य है सर्वसमर्थ पूर्ण. पूर्ण यदि याचना करे तो निन्दित नहीं है. प्रत्युपकारकर सकनेसे अथवा उनकी याचना भी अपने ऊपर उपकारक है. कृष्ण है, इससे स्त्रियाृके हितरूप है. आसन आदि ग्रहण किये हैं जिससे व्यग्रतारहित है. उनने जब आसन ग्रहण किया है तब दूसरा भी लेना चाहिये. जैसे जो भोजन पर बैठा हुआ वह तृप्तिसे प्रथम नहीं उठता है. उस समय अन्य वस्तु मांग लेनेमृ कोई दोष नहीं है. भगवान् मेघ जैसी गम्भीर वाणीसे मांगते हुए सर्व ही दुःख नाश करते है. मुसक्यानके साथ अर्थात् कुछ मोहमृ डालते हुए जो कुछ मांगते है, वह कन्या ही मांगते हैं न कि आत्माको वैसी कन्या होनेसे अग्राह्य होनी चाहिये, कुरुनन्दन! सम्बोधन विश्वासकेलिए दिया है।।३९।।

भगवान् दोषका परिहार करते हुए मांगते हैं:

श्रीभगवानुवाच

नरेन्द्र याच्ञा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिनः।
तथापि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम्।।४०।।

श्रीभगवानने कहा कि हे नरेन्द्र! पण्डित लोग कहते हैं कि मांगना बहुत बुरा है. जो क्षत्रिय अपने धर्ममृ चलता है, उसकेलिए ही उसकी निन्दा की गई है. तो भी मैं आपसे जो आपकी कन्या मांग रहा हूं, जिसका कारण हैं कि मैं आपसे मित्रभाव करना चाहता हूं. हम पैसा देकर भी कन्या लेनेवाले नहीं है।।४०।।

स्त्रियाृके हितकेलिए अवतरितको किसी भी उपायसे उनका हित सिद्ध करना चाहिए, इसलिए मुझे मांगनेमृ दोष नहीं है, तो भी क्षत्रियका नाट्य

करनेवालेको उसके विरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिए, जिसकेलिए सामान्य न्याय कहते हैं. क्षत्रियकेलिए मांगनेकी निन्दा की है. मांगना ब्राह्मणकी वृत्ति है. नरेन्द्र! कहनेसे बताया है कि इसमॅ आपकी भी सम्मति है. यज्ञकेलिए, यज्ञ आदिमॅ इन्द्रकी प्रार्थना की जाती है, इसलिए नरके नाट्यमॅ मांगना निन्दित नहीं है. यह सूचित किया, इससे स्तुति भी की है. 'कवि' शब्दका भावार्थ है जो चतुर हैं, वे यों मानते हैं. भगवानने वीर्य(पराक्रम) क्षत्रियाॅको दिया है, अतः क्षत्रियाॅको जिसकी अपेक्षा होवॅ वह वीर्यसे ही प्राप्त करॅ. याॅ कहकर यह बताया कि यदि मांगनेसे न दोगे तो बलसे भी लूंगा. आपदाआॅमॅ याचना दूषित नहीं है. इसलिए कहा है कि जब आपदा न हो अपना धर्मपालन हो सके, तब क्षत्रियको मांगना नहीं चाहिए. वीर्यसे ही लेना चाहिए. किसीमॅ प्रेम उत्पन्न हो जाय तो उसको मिटा देना चाहिए. यदि प्रेम निवृत्त न हो सके तो अपना धर्म करना चाहिए. उस वीर्यधर्मसे उस प्रिय वस्तुकी प्राप्ति होगी अथवा मृत्यु होगी. मरनेपर परलोकमॅ उत्तम स्त्रीकी प्राप्ति होगी, इस कारणसे वीरता ही करनी चाहिए. याॅ होते हुए भी जो मैं याचना करता हूं, जिसका कारण यह है कि जैसी तुम्हारी कन्याकी चाहना है वैसी ही तुम्हारी मित्रता भी चाहता हूं. वीर्य करूंगा तो दोनाॅ कार्य सिद्ध न हाॅगे. दोनाॅ सिद्ध करना चाहते हैं, ईश्वर होनेसे कपटसे जो जय की जावे वह जय नहीं कही जाती है, इसलिए कदाचित् साङाॅके दमन करने पर भी न माने. इस कारण याचना की गई है. यह कहना धर्मकी परीक्षा वास्ते है. कन्या देने योग्य ही है, इसलिए याचना माननेमॅ कोई विशेष भार नहीं है. पूर्णरीतिसे मांगने पर ही दी जाती हैं, इस शंकाके मिटानेकेलिए कहते है कि 'न हि शुल्कदा' हम पैसे देकर लेनेवाले नहीं है, क्याॅकि पैसे देकर जो ली जाती है वह पत्नी न होकर दासी होती है. उसमॅ भी हम वीर्य ही उत्तम शुल्क देते हैं. श्रोत्रिय मतिसे यदि शुल्क मांगे जैसाकि नवममॅ कहा है 'कन्यायाः कुशिका वयम्'।।४०।।

राजाने तो भगवानकी याचनासे प्रथम ही विचारकर लिया था कि कन्या तो भगवानको दूंगा किन्तु प्रतिज्ञा भी पूरी करूंगा. प्रतिज्ञा पूर्तिमॅ भगवानको कष्ट होगा, उसमॅ भी उनको लगाना नहीं चाहिए, इस विचारमॅ ही चुप हो रहा, मनमॅ कहा कि यदि प्रेम होगा तो कष्ट भी स्वतः करॅगे. यदि प्रेम न होगा तो न करॅगे, अब देखनेमॅ आता है कि कन्याकेलिए इसमॅ प्रेम है, इसलिए वृषाॅके दमनके वास्ते 'कोऽन्य' श्लोकमॅ प्रार्थना करता है.

राजोवाच

कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यायाश्चेप्सितो वरः।
गुणैकधाम्नो यस्यांगे श्रीर्वसत्यनपायिनी।।४१।।

राजा कहने लगा कि आपसे विशेष उत्तम इस संसारमृ दूसरा कौन सा वाञ्छित वर कन्याको मिलेगा, आप गुणृके एक ही धाम हैं, जिनके अंगमृ लक्ष्मी अविचल होकर सदैव रहती है।।४१।।

आपसे भी विशेष उत्तम दान लेनेका पात्र कोई नहीं है, और कन्याको भी आप ही इच्छित वर हो, न कोई अन्य अतः प्रत्यक्ष जितनी सम्पत्ति चाहिए वह आपमृ सिद्ध ही है और विशेष सब आपकी ही स्त्रियां हैं, क्यृकि गुणृका स्थान आप एक ही हैं. अनन्त नित्यगुण आपमृ ही रहते हैं, अतएव स्थिर लक्ष्मी आपमृ ही है, जहां श्री है वहां सब रहते हैं, दूसरेके यहा तो केवल भटकना है।।४१।।

किन्तु हमने जो प्रतिज्ञा की है वह मेरा धर्म भी आपको पालना चाहिए, यह 'किन्त्वस्माभिः' श्लोकमृ कहता है.

किन्त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्त्वतर्षभ।
पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीक्षया।।४२।।

हे यादवश्रेठ! आपकी याचनासे पहले ही हमने प्रतिज्ञाकर रखी है. कन्याके वरकी परीक्षा करनी चाहिए कि उन पुरुषृमृ जो वरना चाहता है, कितना पराक्रम है।।४२।।

आपकी याचनाके अनन्तर यदि प्रतिज्ञा की हो तो अपराध लगे, किन्तु यह पहले ही की हुई है. समयका तात्पर्य है कि मैंने नियम बना लिया है कि कन्या किसको दूंगा. एकप्रकार शपथ ली है. 'तु' पदसे अति मात्र दानको टालता है. भगवानको 'सात्वतर्षभ' विशेषणसे यह प्रार्थना की है कि आप यादव श्रेष्ठ हैं. अतः मेरी प्रतिज्ञा पालन करनी चाहिए, जिसमृ आपकी भी सम्मति है. इस तत्त्वको यादव श्रेष्ठ जानते ही है. भक्तृके स्वामी भक्तकी प्रतिज्ञा पालृगे ही. प्रतिज्ञा करनेका कारण बताता है, क्षत्रियृमृ बड़ा वह है, जो वीर्यवाला है. क्षत्रियके सात अंग है. सातृ अंगृमृ जिनका सामर्थ्य शौर्य है, वह महान है, अतः सात सांड दमनकेलिए स्थापित किए हैं. जो महान् होवे, उसको कन्या देनी चाहिए, जामाताके प्रति नम्रता बतानी चाहिए. यदि जामात अधम है तो नम्रता बतानी निषिद्ध है. यदि परीक्षा न ली जावे तो वीरताका पता न लगे. यह प्रतिज्ञा

भी कन्याके वरकी परीक्षा करनेकेलिए की गई है. इसका कोई अन्य उपयोग नहीं है और न किया जावेगा, अतः इसका उपयोग कन्या दानमॄ अवश्य किया जायेगा।।४२।।

'सप्तैते' श्लोकमॄ वह प्रतिज्ञा बताता है जिससे परीक्षा हो जाती है.

सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः।
एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः।।४३।।

हे वीर! ये सात सांड ऐसे हैं, जो कठिनाईसे दमन किए जाते हैं और इनसे लड़ना भी अपनी मृत्यु लाना है. बहुत राजपुत्र जो मेरी प्रतिज्ञा सुन कन्याको वरनेकेलिए आए थे, वे इनसे अपने गात्र तुड़वाकर भाग गए हैं।।४३।।

सात सांड एक ही गृहमॄ इक्ट्ठे रुके हुए हैं. वहां उनकी पालना करनेवाला कोई नहीं है. वहां कोई गौ भी नहीं है. उनको मादक भीजन यथेष्ट मिलता है. इस कारण आपसमॄ लड़ते हुए बहुत मत्त नित्य कोध्र पूर्ण रहते हैं. उसमॄ भी वे सात होनेसे समान नहीं हैं. जिससे कि दो-दो मिलकर लड़ सके. सांड है इसलिए मारनेके भी योग्य नहीं है, क्यॄकि ये समान भूमिके गौ जातिके वृष है, न कि अरण्यकी विषम भूमिके भैंसे हैं. भगवानको वीर! यह सम्बोधन देकर प्रकट किया है कि आप अन्य समस्तॄसे दूर है, इस प्रकार आपकी स्तुति की गई है. जिसका कारण, कोई भी श्रोता इससे अन्यॄकी निन्दा समझ बैठे उस शंकाके मिटानेकेलिए यह स्तुत्यर्थ विशेषण है न कि अन्यकी निन्दाकेलिए. गौ-वृषॄके विशेषणॄके देनेसे प्रथम 'वीर' शब्द देनेका तात्पर्य, शौर्यके जगानेमॄ है. यदि भगवान् कह द्र कि एक ही मनुष्य बहुत वृषॄको चराता है, ये तो सात ही है, इसमॄ कौनसी बड़ी बात है? इसके उत्तरमॄ राजा कहता है कि ये वृष वैसे नहीं हैं, किन्तु दुर्दान्त (कठिनाईसे दमन करने जैसे) है जो वृष अदान्त होते हैं, उनसे भी कठिन है, 'दुर' उपसर्ग देनेका आशय है कि ये वृष दमन करानेके विरोधी है. किसीको दमन करने ही नहीं देते है. इन वृषोंको दमन करनेकी सम्भावना भी नहीं है. यॄ जतानेकेलिए ऐसा कहा है अथवा वीरॄको भी इनका दमन करना अत्यन्त कठिन है. विशेषमॄ इनसे लड़ना भी बुरा है. जिसका परिणाम मरण पर्यन्त हो सकता है. अथवा आग्रह दुष्ट है, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष उपायॄसे वे नहीं मारे जा सकते हैं. स्वयं नहीं मरते हैं, किन्तु अन्यॄको मार देते हैं. उनका वीर्य केवल सम्भावना ही नहीं है, किन्तु इनने वैसा कार्य भी कर दिखाया है. जैसेकि इनने राजपुत्रॄके गात्रॄको तोड़

दिया है. यह तोड़ना भी काकतालीयन्यायके समान अकस्मात् एक किसीका नहीं किन्तु बहुतॄके तोड़ डाले है. तोड़ना केवल पराजय नहीं है यॄ हो तो देखकर डरके मारे भाग जाते. किन्तु यहां तो जबतक उनके हाथ-पैर टूटे नही तबतक इनके दमनका यत्न करते रहते थे. शिक्षा एवं विजय उनमॄ अप्रयोजक होगी? यदि यॄ कहो तो उत्तरमॄ कहता है कि नहीं वे साधारण क्षत्रिय नहीं थे किन्तु राजाओंके पुत्र थे, इसलिए इनमॄ शिक्षा तथा विजय प्रयोजक हो सकती है।।४३।।

सांडोके दोष कहे, यदि उन पर आपकी कृपा होगी कि इनका भी उद्धार करू तो आप इनका दमन करॄगे. जिसमे कन्याका वर आप ही बनेंगे. तब आप उन दुष्टॉका भी उद्धार करोगे, क्यॉकि ये कन्याके कारण ही एक स्थानमॄ एकत्र रुके हुए हैं. उनके उद्धार हुए बिना कन्याका भी उद्धार नहीं होगा, अतः आप यदि उनका उद्धार करोगे तो कन्याके वर है, यह 'यदीमे निगुहीताः श्लोकमॄ कहता है.

यदीमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन।
वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते।।४४।।

हे यदुनन्दन! जो आप इनका निग्रहकर लो तो हे लक्ष्मीपति! आप ही मेरी कन्याके वर हो, यह स्वीकार करता हूं।।४४।।

निग्रह होनेसे इनका उद्धार अवश्य होनेवाला है, वह ही कहा है. यदुनन्दन सम्बोधनसे कहा है कि आप लीला करनेकेलिए ही पधारे हो, इसीसे यह कहा कि अचानक न किया जावे तो कहता है कि आप लीलार्थ आये हो तो भी यदुनन्दन है अर्थात् यादव हैं. यादव यॄ नहीं करते हैं, वे तो ऐसे कार्य करनेसे पीछे हटते नहीं है. गोवर्धन आदि लीला आपने की है, इसलिए सन्देह होता है. उद्धार करते हो तो मेरी पुत्रीके अभिमत वर आप ही है. मेरी पुत्री कहनेसे अपनी हीनता जताई है, आपमॄ योग्यता तो सर्वसे उत्तम है ही, क्यॉकि लक्ष्मीके पति हैं।।४४।।

कन्या तो प्राप्त ही है, किन्तु प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिए, यों राजाको विश्वास दिलानेकेलिए अलौकिक ढंगका निराकरण करते हुए, लौकिक प्रकार दिखानेके वास्ते कमर बान्धना आदि क्रियाका वर्णन करते हैं.

एवं समयमाकण्यं बद्धवा परिकरं विभुः।
आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णात् लीलयैव तान्।।४५।।

भगवानने इस प्रकार प्रतिज्ञा सुन, कमर बान्ध अपने सात स्वरूपकर लीलासे ही उनको पकड़ लिया।।४५।।

सर्व प्रकारसे करनेमृ समर्थ श्रीकृष्णने भीतर जहां सांड स्थित थे, वहां जाकर अपने सात स्वरूप किए. सात भी भगवान् ही है. अलौकिक तो नहीं करना चाहिए रूप तो एकके बहुत भी होते हैं. जैसे पुत्र और चित्र, वे काल भेदसे रहते नहीं है. केवल इतना ही उत्कर्षका हेतु है, इसमृ कुछ अलौकिक नहीं है. अनन्तर लीलासे ही इनको पकड़ लिया, लीला ही उत्कर्षका कारण है, बान्धना तो सरल ही है।।४५।।

पकड़कर बांधके ले आए, 'बद्धवा' श्लोकमृ कहते हैं.

बद्धवा तान् दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान् हतौजसः।
व्यकर्षल्लीलया बद्धान् बालो दारुमयान् यथा।।४६।।

शौरि जिनका गर्व एवं बल नष्ट हो गया है, ऐसे उन सांड्रको रज्जुसे बान्ध इस प्रकार खींचकर लाए, जैसे बालक काठके बैल्रको खींच लाते हैं।।४६।।

जो पहले लोहेके जंजीरसे भी बान्धे नहीं जाते थे, उन प्रत्येकको अलग अलग रज्जुसे बान्धकर ले आए, क्यृकि शूरवंशमृ उत्पन्न होनेसे 'शौरि' हैं. यह लौकिक उत्कर्ष बताया, उनका बल नाश कर दिया. पश्चात् लीलासे खींच ले आये. जैसे मरे हुए जैसे बैल भारसे पीडित लाए जाते हैं, उनका बैलपन भी निवृत्त हो गया. यह दृष्टान्त देकर बताते है कि काठके बने बैल उलटे भी पड़ जाते हैं तो भी जैसे बालक उनको घसीट लाते हैं, वैसे जिनके अवयव शिथिल हो गए है, जिनको आप खींच लाए, यों कर उनका तो गर्व मिटाया, किन्तु राजाका भी मिटा दिया।।४६।।

अनन्तर राजाने श्रीकृष्णचन्द्रको कन्या दी जिसका वर्णन 'विस्मित' श्लोकमृ करते हैं.

विस्मितो मुदितो राजा तस्मै दुहितरं ददौ।
तां प्रत्यगृह्णाद् भगवान् विधिवत्सदृशीं प्रभुः।।४७।।

यह देखकर राजा चकित हो गया और प्रसन्न हुआ, अतः भगवानको अपनी कन्या दी. भगवानने भी अपने सदृश उस कन्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया।।४७।।

राजा पहले चकित हुआ अनन्तर प्रसन्न हुआ. बान्धना, वशमृ लाना, निर्बल बनाना आदि कार्य विशेष अचम्भेवाले हैं. इनसे राजा चकित हो गया. इस

कार्यकेलिए ही प्रतिज्ञा थी. वह कार्य पूर्ण होनेसे प्रसन्नता हुई. 'राजा' कहनेका तात्पर्य यह है कि भगवानको कन्या धूम-धामसे आदरपूर्वक दी 'प्रत्यगृह्णात्' पदका भावार्थ है कि इसमृ याचना, दान और प्रतिग्रह तीनृा सिद्ध हो पाये. इस प्रकार भगवानने स्वीकार किया, 'भगवान्' पदका आशय स्पष्ट करते हैं कि भक्तिमृ ही भगवान् यृा करते हैं. यह भगवान् शब्द धर्मपरायण है. अर्थात् इससे भगवानने ऐश्वर्यादि गुण प्रदर्शित किए हैं. सारांश यह है कि धर्म प्रकारसे शास्त्रविधि अनुसार ही विवाह किया. वैदिकधर्म सब वहां किए जिससे लौकिक वा आसुरधर्म उसको स्पर्श न कर सके यों सर्वथा अपना मन चाहा ही पूर्ण करते हैं. इस(सत्या)केलिए यृा क्यृा किया? जिसका कारण बताते है कि 'सदृशी' स्वभावसे समान है. इसके अनन्तर कोई भी दोष न आवे, इसलिए यों वैदिक प्रक्रिया सम्पूर्ण की किन्तु उसमृ दोष न आवे इस वास्ते इस प्रकार करनेसे भगवानमृ लौकिकपन आजायगा. इसके उत्तरमृ कहते है कि भगवानमृ लौकिकपन नहीं आयगा, क्यृाकि आप 'प्रभु' स्वयं स्वतः सर्वसमर्थ हैं।।४७।।

भगवानने उसके द्वारा सबका हित किया यह कहते हैं.

राजपत्न्यः स्वदुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम्।
लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः।।४८।।

राजाकी पत्नियां अपनी कन्याको प्यारापति कृष्ण मिला देख, परमानन्द को प्राप्त हुई और बड़ा उत्सव मनाने लगी।।४८।।

आदिमृ राजाकी वे रानियां धर्मकी ही एक हेतु हुई. इस कारणसे पुत्रीमृ सापत्न्य भाव किसीने नहीं किया. अर्थात् सब रानियां उसको सहोदरा समझ, उसके द्वारा अपना भगवानसे सम्बन्ध हुआ है. अतः भगवानमृ उत्कर्ष बुद्धि और स्नेह उत्पन्न हो गया. इससे श्रीकृष्ण अपने भी उद्धारक एवं आन्तर प्रिय है, ऐसी कामना की. धारणा करने योग्य पति है? इसलोकमृ बाह्य और आभ्यन्तर सुख दाता है और पीछे भी सुख देनेवाले हैं. एवं सायुज्य देते हैं, अतः हमको भी इसके द्वारा उसी प्रकार सुखादिकी प्राप्ति होगी, इसलिए परमानन्दको प्राप्त होने लगीं. उनके निस्तारमृ सन्तोष ही नियामक है, यह आन्तर भाव कहकर अब बाहरका भाव प्रकट करते है कि उन्हृाने धूम-धामसे बड़ा उत्सव मनाया।।४८।।

अन्य भी जो थी उन सबको इस प्रसंगसे कृतार्थता हुई वह 'शंख-भेर्यानका' श्लोकमृ प्रकट करते हैं.

शङ्खभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः।
नरा नार्यश्च मुदिताः सुवासः स्रगलङ्कृताः।।४९।।

शंख, भेरी और नक्कारे बजने लगे. मांगलिक गीत गाये जाते थे. बाजे बजते थे, ब्राह्मण आशीर्वाद देते थे. नगरके नर तथा नारियां सुन्दर वस्त्र, आभूषण और मालाओंसे सुभूषित हो आनन्द मग्न हो रहीं थीं।।४९।।

शंख, भेरी और नक्कारे तीन प्रकारके वाद्य थे, वैसे ही गीता आदि शब्दके रूप भी तीन प्रकारके थे. ये छ ही सत्त्वसे लेकर सत्त्वके अन्त तक थे, अर्थात् इनके प्रारम्भमें सत्त्व था और अन्तमें भी सत्त्व था. गीत और नक्कारोंमें राजसत्व है. नर तथा नारियां सब थी. 'च'से जो नहीं कहे हैं उनका होना भी समझना चाहिए. प्रसन्न हुई यह आन्तरभाव है. वस्त्र, आभूषण और मालाएं ये तीन बाहरके आनन्दको प्रकट करते हैं. अलंकार तो सहज होते हैं, यों 'च' पदसे जानना चाहिए।।४९।।

राजाने प्रसन्नतासे सर्वस्व दान दिया, इसका वर्णन 'दशधेनु'से दो श्लोकोंमें करते हैं.

दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः।
युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम्।।५०।।
नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान् रथान्।
रथाच्छतगुणानश्वान् अश्वाच्छतगुणान्नरान्।।५१।।

राजाने दहेजमें दस सहस्र गायें, गलेमें धुधुकी धारण किए, सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित, तीन सहस्र दासियां, नव सहस्र हाथी, नव लक्ष रथ, नव करोड़ घोड़े, नव पद्म प्यादे दिए।।५०-५१।।

धर्म और कामको सिद्ध करनेवाले जो पदार्थ दिए वे पहले एक श्लोकमें कहे हैं और अर्थको सिद्ध करनेवाली चतुरंग सेना आदि जो दी उसका वर्णन दूसरे श्लोकमें किया है. भगवानको लेना पसंद नहीं है, इसलिए वे लूंगे नहीं, इस शंकाको मिटानेकेलिए 'पारिबर्ह' दहेज पद दिया है. जब कन्या ग्रहण की है, तब दहेज लेना आवश्यक है. आप 'विभुः' है, अर्थात् सर्व पदार्थ सम्पन्न हैं, इसलिए अपनी मान मर्यादा रखनेकेलिए कुछ दान रोक दिया, शेष लिया धर्म सहस्र दक्षिणवाला होता है और वह भी प्रावृत तथा विवृत भेदसे दश प्रकारका है, अतः दश सहस्र धेनु दी है. काम तीन प्रकारका होता है, जिससे हजारों दासियां दी हैं.

नायिका भेदसे और गुणोंके भेदसे तीन प्रकार हैं. नियत जो अलंकृत हैं, वह रसका आलम्बन है, हजारों गज सर्व प्रकारकी जातिके दिए. गजोंके भद्र आदि नव ही भेद है. रथ आदि एक दूसरेसे शतगुण थे. पूर्व बुद्धिसे उसकी पीछेवाली बुद्धि शतगुणको ग्रहण करती है।।५०-५१।।

स्नेहसे वहां न रुककर प्रस्थापन(रवानगी) 'दम्पती' श्लोकसे कहते हैं.

दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ।
स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः।।५२।।

पति-पत्नी दोनोंको रथमें विराजमानकर बड़ी सेना संगमें दी. स्नेहसे द्रवीभूत हृदयवाले कोमल राजाने उनको रवाना किया अर्थात् विदा दी।।५२।।

विवाहानन्तर कन्याको रोकनेसे धर्म और पत्नी कुण्ठित(निराश) हो जाते हैं. रथ अपना था, रवानगी करनेमें सर्व प्रयत्न राजाकी तरफसे था. बड़ी सेनाके साथ विदा दी. राजाने अपना जाना उचित न जाना इसलिए न गए. स्नेहसे हृदय द्रवीभूत होना भी जानेमें प्रतिबन्धक हुआ. इससे भक्तको जो करना चाहिए, वह सब किया. कोसल देशके अधिपति भक्त होनेके कारण भक्ति(उपासना) करनेकेलिए स्वयं स्थित थे, यह कहा है।।५२।।

वृषभोंके जयसे भगवानके सामर्थ्यकी प्रसिद्धि नहीं हुई वृषोंसे जिनके अंग भंग हुए थे वे(राजा) इकठ्ठे होकर भगवानको पकड़नेकेलिए प्रयत्न करने लगे, जिसका वर्णन 'श्रुत्वैतत्' श्लोकमें कहते हैं.

श्रुत्वैतद् रुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्यकाम्।
भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा।।५३।।

जिनका प्रथम यादव तथा सांडोंने वीर्य नष्ट कर दिया है, वे राजा यह बात सुनकर सहन न कर सके, अतः कन्याको ले जाते भगवानको मार्गमें घेर लिया।।५३।।

भगवानका चरित्र सुनकर 'भूपाः' पद देनेका आशय है कि उनका अपना देश था. भगवानका वा उनके श्वशुरका देश नहीं था. चारोंतरफ घेर लेनेसे व्यग्रता होगी, कन्याको ही ले जा रहे है, यों विरुद्ध समाचार सुनकर जो धर्मात्मा राजा थे वे भी इकट्ठे हो गए. इससे बहुत राजा हो गए. मार्गमें घेर लिया. 'मार्ग' शब्दसे यह सूचित किया कि सेना इधर-उधर चल रही थी, अतः उनको घेर लेनेका अवसर मिल गया. वे आए क्यों? जिसका कारण बताते है कि यादवोंने इनका वीर्य पूर्व

ही नष्ट किया था. उस वैरके प्रतिकारकेलिए आए थे और कन्याकेलिए भी दुःखी थे. वह बताते हैं कि कन्या प्राप्तिकेलिए जब आए थे, तब इन गोवृषाूने इनके अंग तोड़ दिए थे. जब अंग तुड़वाके गए तो फिर क्याू आए? इस पर कहते है कि 'सुदुर्मर्षाः' इनका क्रोध दुष्ट है, अतः इस दुष्ट क्रोधको मिटा न सके, इसलिए क्रोध इनको ले आया।।५३।।

केवल प्रभुको रोका नहीं किन्तु मारनेकेलिए भी प्रवृत्त हुआ, यह 'तानस्यतः' श्लोकसे कहते हैं.

तानस्यतः शरव्रातान् बन्धुप्रियकृदर्जुनः।
गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव।।५४।।

बान्धवाूका प्रिय करनेवाले गाण्डीव धनुषधारी अर्जुनने भगवानको घेरकर मारनेका प्रयत्न करनेवाले उन शरव्रताू(राजाआू)को सिंह जिस प्रकार छोटे हरिणाूको ग्रस लेता है, वैसे ही उसने उनको ग्रस लिया अर्थात् अर्जुनने उनका नाश कर दिया।।५४।।

भक्तिमू भगवान् दयालु हो तो भी भक्तकी भी उस कर्ममू समानता अपेक्षित है. अर्थात् वह(भक्त)भी दयालुपन दिखावे यह कहनेकेलिए बताते हैं कि भगवानके सेवक अर्जुनने ही उन सबका नाश किया, भगवान् ऐसे प्रसंगमू अलौकिक तो नहीं करते हैं, भक्तिमार्गमू ऐश्वर्य स्थापन करना चाहिए. अर्जुनने भी भगवानकी प्रेरणासे युद्ध नहीं किया, किन्तु बान्धव, भगवद्भक्त और वसुदेवादिकको जो प्रिय है, वह किया, जैसे भक्ति(सेवा)मू भक्तकी अपेक्षा होती है और बांधव अपना उपकार मानते थे. गाण्डीवादिकाूको उदासीनामू अपकार और उपकार निरूपण किया. यहां बान्धवाूका उपकार निरूपण किया जाता है. 'गाण्डीवी' पदसे यह सूचित होता है. काल जैसे ग्रस लेता है वैसे ही इसने भी उनको ग्रस लिया. इस ग्रसनेमू अर्जुनको कष्ट भी न हुआ जैसे सिंहको तुच्छ पशुआूके ग्रसनेमू कष्ट नहीं होता है।।५४।।

'पारिबर्ह' श्लोकसे समाप्ति करते हैं.

पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया।
रेमे यदूनामृषभो भगवान् देवकीसुतः।।५५।।

दहेज ले, द्वारकामू आकर, यादवाूमू श्रेष्ठ देवकीके पुत्र भगवान् सत्यासे रमण करने लगे।।५५।।

दहेज समेत विधिपूर्वक भी उसको ग्रहणकर द्वारका आए. वहां उसमृ परमरतिको उत्पादन करने लगे. भगवान् जैसा रमण भक्तिमृ करते हैं, वैसा अन्यत्र नहीं करते हैं, इसलिए सबसे विशेष कहा. द्वारका जाना किसी अर्थ(मतलब वा आशय)से कहा, 'यदूनामृषभः' यादवृमृ वृषभ अर्थात् वीर्यवान् कहनेका भावार्थ यह है कि उस(सत्या)के साथ गार्हस्थ्य सम्यक् रीतिसे पालन करने लगे. 'भगवान्' नाम कहनेसे यह जताया है कि आप सबकी उत्पत्ति करनेमृ समर्थ है. इस प्रकार रमण करनेमृ भक्तृ पर कृपा ही कारण है, इसलिए 'देवकी सुतः' कहा है।।५५।।

कीर्ति और श्रीको विधिपूर्वक ग्रहण करनेसे आपके अष्टैश्वर्य कहे अथवा अष्टैश्वर्य युक्त हो सबको ग्रहण किया, जिसका वर्णन 'श्रुतकीर्तेः' श्लोकसे तीन श्लोकृमृ करते हैं.

श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः।
कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः संतर्दनादिभिः।।५६।।

बूआ, श्रुतकीर्तिकी कन्या भद्रा नामवाली कैकय देशके राजाकी पुत्रीसे संतर्दन आदि भ्राताओृके देने पर आपने विवाहकर लिया।।५६।।

कैकय देशके राजाकी पुत्री भद्रा थी. जिसकी माता 'श्रुतकीर्ति' कृष्णाकी बूआ थी. ज्ञानके अनन्तर शक्ति(मित्रविन्दा) थी. उसको भ्राताओृने रोका था तो भी भगवान् उसको बलात्कारसे ले आए थे, किन्तु यहां वह बात नहीं है. अर्थात् भ्राताओृने रोका तो नहीं किन्तु स्वयं दी है, इसलिए भक्तिके अनन्तर कीर्ति वैसी हृगी, यह शंका नहीं करनी चाहिए. 'कृष्ण' नाम देनेका तात्पर्य बताते है कि बिना दहेज भी इसको लिया. अन्य भ्राताओृका नाम न देकर केवल 'संतर्दन' नाम दिया जिसका कारण है कि वह सब बान्धवृसे प्रसिद्ध था. सुननेसे कीर्ति अथवा जिसकी कीर्ति सुनी है, यृ कहकर इसकी कारणता योग्य है. यह स्पष्ट किया है 'तर्दन' शब्द, इससे प्रसिद्धि होती ही है, कैकय देश पश्चिममृ है।।५६।।

'सुतांच' श्लोकसे 'श्रीरूपा लक्ष्मणा'के विवाहको कहते हैं.

सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम्।
स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव।।५७।।

मद्र देशके राजाकी कन्या, जो सब लक्षणृसे युक्त थी, उस लक्ष्मणा

नाम कन्याको जैसे गरुड़ अकेले अमृत ले आया, वैसे आप अकेले स्वयंवरमृसे हर ले आए।।५७।।

मद्र देश भी कैकयके निकट है. लक्ष्मण कौस्तुभरूप है. इसके विवाहमृ लक्षणत्व ही प्रयोजक है, इसलिए लिखा है कि वह लक्षणाृसे युक्त है. अर्थात् लक्षणाृवाली है. धन्विचित्रका वेध जिस स्वयंवरका निमित्त था, उसको वेधकर स्वयंवरमृ कन्याको हरकर ले आए वरणके बाद आगेके वाक्यके अनुरोधसे यह समझा जाता है. 'अकेले' ले आये यह भगवानका प्रताप है, क्याृकि वह भगवान् कृष्ण है बिना प्रतिघातके ले जानेमृ दृष्टान्त देते हैं कि, जैसे गरुड़ सुधाको ले आता है. ऐसा इन्द्रादि जयमृ भी हुआ, इसका विस्तार आगे किया जायेगा. सब एकतरफ विशेष उपाख्यानवाली है और एकतरफ यह एक ही वैसी है, यह जतानेकेलिए वाचनिक विवाहमृ विस्तारसे कहा है।।५७।।

साधनरूप कहकर, साध्य, साधनाृके आधीन होनेसे, उनका संक्षेपमृ 'अन्याश्च' श्लोकसे कहते हैं.

अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन् सहस्रशः।
भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः।।५८।।

और भी श्रीकृष्ण भगवानकी ऐसी हजाराृ स्त्रियां थीं, जिन्हृ आप भौमासुरको मारकर, उसके अन्तःपुर(रनिवास)से ले आए थे।।५८।।

श्लोकमृ दिए हुए 'च'से यह बताया है कि इन स्त्रियाृके सिवाय अन्य भी कृष्णकी बहुत सुन्दर अथवा साधारण स्त्रियां थीं, जिनको भौमासुरका वधकर उसके रनिवाससे लाए थे. उसने जो भी एकस्थान पर इकठ्ठीकर रखी थीं, वे ही भगवान् लाये थे. यह केवल उदाहरण है उनके लानेमृ कारण उनका सौन्दर्य तथा ज्ञान है. विजातीय(दूसरी जातिकी) जो गोपिका आदि है, वे इनके सदृश नहीं हैं. जो उत्कृष्ट अप्सराएं हैं, वे स्वयं आगई हैं. सब स्त्रियां हुई, इनको मुक्ति दी गई, यह स्पष्ट निरूपण किया, इस प्रकार भगवानसे निरोध हुआ।।५८।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराण दशम स्कंध (उत्तरार्ध) अध्याय ५५ की श्रीवल्लभाचायचरण विरचित श्रीसुबोधिनी टीकाके राजस फल अवान्तर प्रकरणके द्वितीय अध्यायका हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण